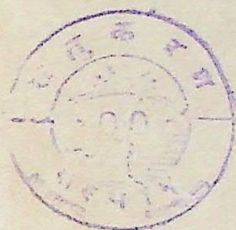


महाभारत सार

सूरजमल मोहता





महाभारत सार

महाभारत का सारगर्भित तथा
प्रेरणादायक अनुशीलन

•

लेखक
सूरजमल मोहता

भूमिका
वियोगी हरि

•

१९८५



सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक

यशपाल जैन

मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल

एन ७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

●

तीसरी बार : १९८५

मूल्य : पंद्रह रुपये

●

मुद्रक

अग्रवाल प्रिंटर्स,

नई दिल्ली-११००२८

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक से 'मंडल' के पाठक भली प्रकार परिचित हैं। कुछ समय पूर्व उनकी एक पुस्तक 'भागवत कथा' 'मंडल' से प्रकाशित हुई थी, जिसे पाठकों ने बहुत पसंद किया। उसकी लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि कुछ ही समय में उस पुस्तक के कई संस्करण हो चुके हैं और उसकी मांग बराबर बनी हुई है।

लेखक की यह पुस्तक भी अत्यन्त उपयोगी है। जैसा कि पुस्तक के नाम से स्पष्ट है, इसकी सामग्री महाभारत से ली गयी है। वस्तुतः लेखक की आकांक्षा थी कि महाभारत से चुनकर वह ऐसी सामग्री पाठकों को दें, जो जन-सामान्य के लिए उपयोगी हो और जिसे पढ़कर पाठक कुछ शिक्षा और कुछ प्रेरणा प्राप्त करें।

अपने इस उद्देश्य में लेखक कहाँ तक सफल हुए हैं, इसका निर्णय तो पुस्तक पढ़कर पाठक स्वयं कर सकेंगे, लेकिन इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि सामग्री के चयन में लेखक ने बहुत सावधानी रखी है और बड़ा परिश्रम किया है।

पुस्तक के विषय में लेखक ने स्वयं अपने प्रारम्भिक निवेदन में विस्तार से प्रकाश डाला है। उससे पाठकों को पता चलेगा कि किन मुख्य बातों को उन्होंने ध्यान में रखकर इस पुस्तक को तैयार किया है।

लेखक की भाषा और शैली अपने ढंग की निराली है। उसमें सरलता और सहजता है। इस पूरी पुस्तक में पाठकों को कहीं भी विचारों की अस्पष्टता तथा भाषा-शैली की उलझन नहीं मिलेगी।

हमें पूरा विश्वास है कि सभी वर्गों और क्षेत्रों के पाठक इस पुस्तक को मनोयोग-पूर्वक पढ़ेंगे और इसके विचारों से भरपूर लाभ लेंगे।

—मंत्री

प्रस्तावना

भारतीय वाङ्मय में 'महाभारत' हिमालय के शुद्ध शिखर की तरह दूर से ही दिखाई देता है। इसकी उच्चता और शुभ्रता अनायास खींच लेती है अपनी ओर। इस हिम-शृंग को देखते ही श्रान्ति दूर हो जाती है और प्राणों में उत्साह और ओजस् का जैसे नया संचार होने लग जाता है।

अध्यात्म की मीमांसा, धर्म का विवेचन तथा लोक-व्यवहार का दर्शन और इस सबका सुन्दर समन्वय 'महाभारत' में हम एकत्र पाते हैं। बड़े-बड़े मनीषियों ने 'महाभारत' की महिमा का गान किया है, फिर भी पार नहीं पाया।

देश में और विदेशों में भी 'महाभारत' पर काफी लिखा गया और शोध-कार्य हुआ है। इस वृहत्काय ग्रन्थ के अध्ययन के लिए लम्बे समय और धैर्य की आवश्यकता है, जबकि इस दौड़-धूप के युग में कहाँ तो इतना समय और कहाँ अवकाश और धैर्य! सामान्य इच्छा रहती है कि थोड़े में बहुत-सारा मिल जाय। 'महाभारत' के प्रमुख पात्रों पर लिखे गये अनेक निबन्ध और पुस्तकें, वासुदेवशरण अग्रवाल की भारत-सावित्री तथा अंग्रेजी में कमला सुब्रह्मण्यम् के संक्षिप्त महाभारत और सर्वाधिक लोकप्रिय राजाजी (चक्रबर्ती राजगोपालाचारी) के साररूप 'महाभारत' ने इस दिशा में बड़ा अच्छा काम किया है, थोड़े में अधिक चाहने वाले पाठकों को बड़ा लाभ पहुंचाया है।

इसी कोटि का एक और ग्रन्थ हमारे सामने प्रस्तुत है—'महाभारत-सार'। इसके रचयिता श्री सूरजमल मोहता हैं। मोहताजी द्वारा लिखित 'भागवत-कथा' ने हिन्दी-जगत् में अच्छी ख्याति प्राप्त की है।

'महाभारत-सार' में आदिपर्व, युद्धपर्व और शान्तिपर्व—इन तीनों पर्वों में सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रमुख कथाओं और प्रसंगों को कौशलपूर्वक

संकलित किया गया है—ऐसी कथाएँ और प्रसंग, जिनको मानवीय संस्कृति और आदर्श जीवन का मूलाधार कहा जा सकता है।

इसमें संदेह नहीं कि मोहताजी ने 'महाभारत' का अच्छा अध्ययन और चिन्तन किया है। 'महाभारत-सार' में जिस सुबोध शैली और प्रवाहमयी भाषा का उपयोग उन्होंने किया है, वह सराहनीय है। मोहताजी औद्योगिक प्रवृत्तियों में संलग्न रहते हुए भी आश्चर्य होता है कि अध्ययन और चिन्तत को लेकर इतना अच्छा लिखने के लिए वे कैसे समय निकाल लेते होंगे। किन्तु आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि धर्म-जिज्ञासा तथा भक्ति-भावना को अपने जीवन में उन्होंने एक विशेष स्थान देने का प्रयास किया है।

आशा है, 'महाभारत-सार' का हिन्दी-जगत् में वैसा हीं स्वागत होगा जैसा कि 'भागवत-कथा' का हुआ है।

—वियोगी हरि

दो शब्द

भारतीय संस्कृति में रामायण और महाभारत दो अनुपम रत्न हैं, जिनके विषय में प्रत्येक भारतीय कुछ-न-कुछ ज्ञान रखता है। वास्तव में इन दोनों ग्रन्थों से पहले भारतीय साहित्य में केवल वैदिक वाङ्मय का अस्तित्व था। महर्षि वाल्मीकि के प्रथम छन्द को ही श्लोक की संज्ञा दी गई थी। अनन्तर महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास का प्रादुर्भाव हुआ। अप्रतिम कार्यों के कारण उन्हें भगवान का ही अवतार माना गया है। उन्होंने वेदों का विभाग किया, जिससे उन्हें 'वेद-व्यास' कहा गया, ब्रह्मसूत्रों का सम्पादन किया और अन्त में श्रीमद्भागवत का निर्माण किया। सांसारिक प्राणी के लिए विनश्वर जीवन में इतना लिखना असंभव प्रतीत होता है, अतः उनमें भगवत्ता का आरोप किया गया।

केवल महाभारत में एक लाख श्लोक माने जाते हैं, जिनकी रचना में कितना समय लगा होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। भरत के वंश का वर्णन होने से इसका नाम 'भारत' तथा विशालता के कारण 'महाभारत' संज्ञा हुई। इसमें बड़े युद्ध का वर्णन होने के कारण भी 'महाभारत' नाम हुआ होगा। महाभारत से श्रीमद्भागवत गीता, विष्णु सहस्रनाम जैसे उच्चकोटि के ग्रन्थ निकले हैं तथा कथावस्तु में श्रीमद्भागवत भी महाभारत से ही अनुप्राणित प्रतीत होती है। महाभारत में चार अंग हैं: नीति, आध्यात्मिक, भक्ति और जप। गीता आध्यात्मिक विषयों का प्रतिपादन करती है। भागवत भक्ति तथा विष्णु सहस्रनाम हमें जप की ओर आकर्षित करते हैं, अतः जो विषय मैंने भागवत कथा[1] में लिख दिये, उन्हें महाभारत में लिखने का साहस नहीं किया है। महाभारत, अठारह पुराण

---

१. लेखक द्वारा संक्षिप्त रूप में अनूदित तथा 'सस्ता साहित्य मण्डल' द्वारा प्रकाशित।

और श्रीमद्भागवत की कथाओं में एक ही चरित्र-नायक के चरित्र विविध रूपों में मिलते हैं तथा तीनों ही महाग्रन्थों की भाषा में भी बहुत भेद मिलता है, जिससे प्रतीत होता है कि ये ग्रन्थ एक ही व्यक्ति के लिखे हुए नहीं होने चाहिए। एक ग्रन्थ में जिस नाम के व्यक्ति का चरित साधारण रूप में अंकित हुआ है, दूसरे ग्रन्थ में उसी व्यक्ति का चित्रण बहुत ही उदार रूप में वर्णित किया गया है। भाषा और शैली का अन्तर भी स्थान-स्थान पर स्पष्ट प्रतीत होता है, जिससे एक ही लेखनी की रचना मानने में बुद्धि को आपत्ति होती है। सम्भव है, महर्षि व्यास की रचना में अन्य विद्वानों ने क्षेपक मिला दिये हों। सम्भव है, व्यास पदवीधारी अन्य-अन्य विद्वानों ने अन्य-अन्य समय पर इनकी रचना की हो। सम्भव है, बाद में भी नीति-कथायें जोड़ दी गई हों। इसका निर्णय करना तो विशिष्ट विद्वानों का काम है। मेरी बुद्धि इस विशाल ग्रन्थ पर अपने विचार प्रकट करने में असमर्थ है। अतः इस ग्रंथ की शुद्धि हेतु किसी संस्था द्वारा विद्वानों की सहायता से क्षेपकों को हटाकर शुद्ध करने का कार्य सम्पन्न हो सके, तो समाज की बड़ी सेवा होगी। मैं तो मात्र इतना कह सकता हूँ कि केवल महाभारत में ही भाषा और शैली को देखते हुई कई स्थानों में अन्य लेखनी का चमत्कार प्रतीत होता है। महाभारत वस्तुतः कौरव-पांडवों की कीर्ति का ही वर्णन करता है। भगवान श्रीकृष्ण के परिचय का उल्लेख पाण्डवों के साथ की घटनाओं तक ही सीमित है। श्रीमद्भागवत भगवान के अवतारों का विशद वर्णन करती है और भक्ति बढ़ाने का उपदेश देती है। महाभारत का महत्व विशेषतः नीति-शास्त्र के रूप में ही है। भाषा की दृष्टि से यह ग्रन्थ अद्वितीय और रोचक है। कहावत है कि जो मानव के हित की शिक्षा महाभारत में नहीं है, वह दूसरे किसी ग्रन्थ में भी नहीं। अतः विद्वानों ने इस ग्रंथ की महत्ता का प्रतिपादन किया है।

श्रीमद्भागवत में विविध चरित्रों का चित्रण महाभारत से पूर्णतया भिन्न है, यथा, श्रीमद्भागवत के परीक्षित को जब शमीक मुनि के पुत्र से मिले शाप की सूचना प्राप्त हुई तो उन्होंने सोचा, "मेरे लिए वैराग्य का अवसर आ गया है, अब भगवान के चरण-कमलों की सेवा ही मेरे लिए

सर्वोपरि है।" ऐसा विचार कर वह आमरण-अनशन व्रत लेकर गंगातट पर जा बैठे और अनन्य भाव से श्रीकृष्ण के चरण-कमलों का ध्यान करने लगे। उनकी ऐसी अवस्था सुनकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि वहाँ आ पहुँचे, जिनका यथेष्ट सत्कार कर राजा ने अपना निश्चय सुनाया और उनसे आशीर्वाद माँगा। जब परमहंस श्री शुकदेवजी वहाँ पधारे तो राजा की प्रार्थना पर भगवत-कथा कहते हुए परम तत्व का उपदेश देने लगे। अन्त में राजा ने श्री शुकदेवजी की बड़े आदर और श्रद्धा के साथ विधिवत् पूजा की। उनके चले जाने के बाद राजर्षि परीक्षित परमात्मा के चिन्तन में ध्यान-मग्न होकर ब्रह्म-स्वरूप हो गये। तक्षक के डसने के समय से पहले ही राजर्षि ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर चुके थे। अतः उन्हें उसके दंश का अनुभव ही नहीं हुआ।

इस तरह परीक्षित का चित्रण बहुत ही उदात्त, निर्भीक और वीतराग के रूप में किया गया है, जबकि महाभारत का परीक्षित ऋषि पुत्र के शाप से बहुत ही भयभीत हो गया है। उसने एक ऊँचा महल बनवाया, जिसमें एक ही खंभा लगा था। वहाँ रक्षा के लिए आवश्यक प्रबन्ध किया गया, सब प्रकार की औषधियाँ जुटा ली गयीं और वैद्यों तथा मंत्रसिद्ध ब्राह्मणों को चारों ओर नियुक्त कर दिया गया। उस महल में पूर्णतया सुरक्षित होकर राजा सब कार्य करने लगे। वहाँ कोई भी उनसे मिलने नहीं आता था। वायु को भी प्रवेश के समय रोका जाता था। सातवें दिन फल खाते समय राजा को फल पर छोटा-सा कीड़ा दिखायी दिया, जिसे देखकर राजा हँसकर बोले—सूर्यास्त हो रहा है। ऋषि-पुत्र के शाप से मैं अब मुक्त हो जाऊँगा। किन्तु वही कीड़ा तक्षक बनकर राजा को डसने लगा और परीक्षित वज्र से आहत के समान पृथ्वी पर गिर पड़े।

दोनों चित्रण पढ़ने के बाद यह तर्क-संगत नहीं प्रतीत होता है कि जिस लेखनी ने श्रीमद्भागवत के परीक्षित का चरित्र लिखा है, वही लेखनी महाभारत के परीक्षित की कथा लिख पाई है। दोनों चरित्रों के चित्रण में बहुत अन्तर मालूम देता है। श्रीमद्भागवत का परीक्षित जहाँ बहुत मनस्वी, दृढ़ प्रतिज्ञ और निर्भीक है, वहाँ महाभारत का अजितेन्द्रिय, भयभीत और ओछे मनवाला दिखाई देता है। अतः इस

पुस्तक में श्रीमद्भागवत वाला चरित्र ही अपनाया गया है।

वृत्रासुर की कथा भी दोनों ही ग्रंथों में वर्णित है। उसके वध की समस्या के समाधान के लिए दधीचि की अस्थियों से वज्र के निर्माण का भी वर्णन है। किन्तु श्रीमद्भागवत में वृत्रासुर को देवताओं के लिए जहाँ भयंकर और प्रबल शत्रु चित्रण किया गया है, वहीं उसे परम भागवत भी बताया गया है। अन्तिम समय निकट जान उसने भगवान की जो स्तुति मुक्त कण्ठ से की है, वह आज भी भगवद्भक्तों के द्वारा प्रतिदिन परम आदर से गाई जाती है। वृत्रासुर ने युद्ध के समय असुरों के प्रति और इन्द्र के प्रति जो नीति वचन कहे हैं, वे भी अविस्मरणीय हैं। देवराज इन्द्र ने भी उन वचनों का आदर करते हुए वृत्रासुर की प्रशंसा की है। किन्तु महाभारत में ऐसा कुछ भी नहीं है। वृत्रासुर को भयंकर असुर बताते हुए इन्द्र के वज्र से उसका वध मात्र दिखाया गया है।

इनके अतिरिक्त महाराज पृथु, राजा रन्तिदेव और दुष्यंत-शकुन्तला आदि बहुत से चरित्रों के चित्रण में अन्तर प्रतीत होता है, जिससे यही सिद्ध होता है कि भिन्न-भिन्न लेखकों के द्वारा चरित्र लिखे गये हैं।

इसी सन्दर्भ में महान् विचारक लोकमान्य श्री बाल गंगाधर तिलक ने भी अपने 'गीता-रहस्य' की भूमिका में लिखा है :

"कर्ण पर्व में कर्ण-अर्जुन के युद्ध का वर्णन पढ़ने से दीख पड़ता है कि उसकी भाषा रचना अन्य प्रकरणों की भाषा रचना से भिन्न है।"[१]

इससे भी उपर्युक्त मत की पुष्टि होती है। वस्तुतः महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में इतना लिख दिया है कि अन्य ग्रंथों में भी बहुत-सी बातें दोहरानी पड़ी हैं। बहुत से ऐसे प्रकरण हैं, जिनका पुराणों में ही नहीं, श्रीमद्भागवत में भी सन्निवेश आवश्यक माना गया है। इसलिए विद्वानों की मान्यता है :

धर्मे चार्थे च कामेच मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्तिदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।

"जो इसमें है वह दूसरी जगह भी मिल सकता है; जो इसमें नहीं है, वह

१. 'गीता-रहस्य', भूमिका, पृष्ठ ५१५

कहीं भी नहीं है।" इसी प्रकार लोकोक्ति है। "यन्न भारते तन्न भारते।" जो महाभारत ग्रंथ में नहीं है, वह भारत में कहीं नहीं है। अतः महाभारत के कई प्रकरण भागवत-कथा में आ जाने के कारण इस पुस्तक में नहीं लिखे गये हैं।

महाभारत के निर्माण-काल के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। किन्तु उच्चतम विद्वानों ने बहुत से प्रमाणों के आधार पर ईसा से पंद्रह शताब्दी पूर्व इनका काल निश्चय किया है, जिसकी चर्चा हमने 'गीता-ज्ञान"[१] की भूमिका में विशेष रूप से किया है। साधारणतया तो भगवान श्रीकृष्ण का समय और महाभारत युद्ध का समय ईसा के ५००० वर्ष पहले माना जाता है।

प्रसिद्ध ज्योतिषी तथा विद्वान पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी ने अपने विस्तृत लेख में ज्योतिष के अकाट्य प्रमाणों द्वारा महाभारत युद्ध को ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व सिद्ध किया है तथा महाभारत ग्रंथ का निर्माण ३० वर्ष बाद माना है। प्रसिद्ध भारतीय विद्याविद् डा० पी० बी वर्तक महाभारत में वर्णित ग्रहों की स्थिति को सही मानते हैं। उनकी यह भी मान्यता है कि महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास को यूरेनस, नेपच्यून और प्लैटो के बारे में सम्पूर्ण जानकारी थी। उनकी यह भी मान्यता है कि महर्षि व्यास को पुष्य, रेवती, अश्विनी नक्षत्रों की स्थिति तथा 'सायन' पद्धति का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने गणना करके बताया कि महाभारत में वर्णित स्थिति ५५६१ ई० पू० की है। अतः उनके अनुसार महाभारत का युद्ध १७ अक्तूबर ५५६१ ई० पू० आरम्भ हुआ। किन्तु हम इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते। कब लिखा है, किसने लिखा है, एक ने लिखा है या बहुतों ने लिखा है, कौरव-पांडव ऐतिहासिक व्यक्ति हैं या काल्पनिक, इत्यादि प्रपंच का विवेचन हमारा विषय नहीं है। हम तो इस ग्रंथ की नीति और शिक्षा के महत्व पर ही विशेष रूप से ध्यान देते हैं, जो सर्वथा विवादरहित है। महाभारत में महाकाव्य की मधुरता, इतिहास की सार्थकता नीति-शास्त्र की गम्भीरता, राजनीति की गहनता, धर्मशास्त्र की मार्मिकता

---

१. गीता का लेखक द्वारा पद्य में भावानुवाद

ही नहीं अपितु अध्यात्म दर्शन का परम तत्व-ज्ञान भी देखने को मिलता है। इसीलिए इसे पहले 'पंचम वेद' भी कहा जाता था।

इसकी परम उपयोगिता को ध्यान में रखकर ही इसका संक्षिप्त रूप प्रस्तुत कर पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जाता है।

सूरजमल मोहता

अनुक्रम



आदि

युद्ध

शान्ति

□□

महाभारत
सार
•

नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम्

देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्

व्यासाय विष्णु रूपाय व्यास रूपाय विष्णवे

नमो वै ब्रह्मविधये वसिष्ठाय नमो नमः ।

आदि-पर्व

जनमेजय द्वारा सर्पयज्ञ

एक समय नैमिषारण्य में महर्षि शौनक के आश्रम में वेद-पुराणों के विद्वान् लोमहर्षण-पुत्र उग्रश्रवा आये। महर्षि शौनक के तपस्वियों ने विद्वान् उग्रश्रवा का भली भाँति स्वागत-सत्कार कर ज्ञानवर्धक कथाओं को कहने का आग्रह किया।

ऋषि उग्रश्रवा ने कहा—तपस्वियो ! मैं बहुत से तीर्थों की यात्रा करता हुआ, परम पुण्य कुरुक्षेत्र में गया, जहाँ कौरव-पाण्डव युद्ध हुआ था। वहाँ मैंने ऋषियों से सुना कि दशज्योति, शतज्योति और सहस्रज्योति से कुरु, यदु, भरत, ययाति और इक्ष्वाकु के वंश चले हैं और वेदव्यासजी ने अत्यन्त पुनीत महा-भारत महाकाव्य की रचना की है। इस महाकाव्य में वेदों और अन्य शास्त्रों का सार संकलित है। चक्रवर्ती सम्राट महात्मा परीक्षित-नंदन जनमेजय के सर्प-यज्ञ में श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी ने महाभारत की जो कथा कही थी, उसे मैं आप लोगों को सुनाता हूँ।

राजा जनमेजय के तीन पुत्र थे— श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन। राजा जनमेजय ने दीर्घकाल तक पुण्य-भूमि कुरुक्षेत्र में यज्ञों का अनुष्ठान किया था। उसी समय सरमा का पुत्र सारमेय वहाँ आया। महाराजा जनमेजय के पुत्रों ने सारमेय को वहाँ से निकाल दिया। इस पर उसकी माता सरमा ने महाराजा जनमेजय को शाप दिया : 'तुम्हारे ऊपर अकस्मात भय उपस्थित होगा।' यह शाप सुन महाराजा जनमेजय बहुत दुःखी हुए। यज्ञों के समाप्त होने पर महाराजा जनमेजय हस्तिनापुर आये, और इस शाप-निवारण की चेष्टा करने लगे। एक दिन वे शिकार खेलने गये और श्रुतश्रवा ऋषि के आश्रम में पहुँचे। उस ऋषि के पुत्र का नाम सोमश्रवा था। वह बड़ा

तपस्वी तथा स्वाध्यायी था।

जनमेजय के जिज्ञासा करने पर ऋषि श्रुतश्रवा ने कहा—मेरा पुत्र तुम्हारे शाप-निवारण में समर्थ है। उनका यह कथन सुन, राजा जनमेजय ने सोमश्रवा को अपना पुरोहित बना लिया। उनके तीन शिष्य, उपमन्यु, आरुणि तथा वेद थे। सोमश्रवा ने अपने शिष्य वेद को गृहस्थ के कार्य में लगा दिया। गुरुजी वेद की सेवा से संतुष्ट हो गये, उसने श्रेय और सर्वज्ञता प्राप्त कर ली और घर लौट गया। वेद भी अब तीन शिष्यों को शिक्षा देने लगे। जनमेजय और पौष्य ने आचार्य वेद को अपना उपाध्याय बना लिया। एक समय उपाध्याय ने अपने शिष्य उत्तंक को अग्निहोत्र की सामग्री की व्यवस्था करने के लिए नियुक्त किया और स्वयं बाहर चले गये। जब उपाध्याय वेद घर लौटे तब वे उत्तंक की कार्यक्षमता पर बहुत प्रसन्न हुए और उसे घर लौटने की आज्ञा दे दी। उत्तंक ने गुरु दक्षिणा अर्पण करने के लिए उनसे आग्रह किया। इस पर गुरुपत्नी ने उसे राजा पौष्य की पत्नी के कुण्डल लाने को कहा—'मैं आज से चौथे दिन उन कुण्डलों से सुशोभित हो ब्राह्मणों को भोजन परोसना चाहती हूँ। गुरुपत्नी की आज्ञा पाकर उत्तंक राजा पौष्य के पास गया और गुरुपत्नी के लिए कुण्डल माँगे। राजा पौष्य ने उसे अपनी पत्नी के पास भेज दिया।

महारानी ने उत्तंक की बात सुन, अपने दोनों कुण्डल उसे दे दिये और कहा—नागराज तक्षक इन कुण्डलों को लेने केलिए बहुत प्रयत्न करता है, अतः आप उससे सावधान रहिये। उत्तंक उन कुण्डलों को ले, गुरुकुल की ओर चला। मार्ग में उन कुण्डलों को एक जलाशय के किनारे रख, जब वह स्नान करने लगा तभी क्षपणक शीघ्रता से आया और दोनों कुण्डलों को ले भागा। सरोवर से बाहर निकलने पर, उत्तंक ने उन दोनों कुण्डलों को वहां न देख, बड़े वेग से क्षपणक का पीछा किया। उसने क्षपणक को पकड़ लिया, जो वास्तव में नागराज तक्षक ही था। वह

अपना वास्तविक रूप धारण कर एक कंदरा में घुस गया। उत्तंक भी तक्षक के पीछे-पीछे वहाँ गया। वहाँ उत्तंक ने नागलोक का दर्शन किया और नागराज की स्तुति करने लगा। इस पर प्रसन्न हो नागराज ने उत्तंक को वे दोनों कुण्डल दे दिये। उत्तंक ने आश्रम में पहुँच, गुरुपत्नी को प्रणाम कर, वे कुण्डल भेंट किये। इस सफलता पर गुरुपत्नी ने उत्तंक को अनेक आशीर्वाद दिये। तदनन्तर उत्तंक ने गुरु को प्रणाम किया और जो दृश्य मार्ग में देखे थे, उनके बारे में जिज्ञासा की।

गुरुजी ने कहा—'वत्स ! जो दो स्त्रियाँ तुमने देखी थीं, वे धाता और विधाता थीं। काले और सफेद तंतु रात और दिन थे, जिसका वे कपड़ा बुन रही थीं। बारह आरों से युक्त चक्र को जो छः कुमार घुमा रहे थे, वे बारह महीने और छः ऋतुएं थीं। संवत्सर ही वह चक्र था। जो पुरुष तुमने देखा, वह इन्द्र और अश्व अग्नि थे। मार्ग में तुमने जो बैल देखा, वह गजराज ऐरावत था। तुमने बैल के जिस गोबर को खाया था, वह अमृत है, इसी-लिए तुम नागलोक में जाकर भी मरे नहीं। भगवान इन्द्र मेरे सखा हैं। यही कारण है कि तुम दोनों कुण्डल लेकर यहाँ लौट सके हो। उत्तंक ! तुम अपने कार्य में सफल हुए, अतः अब अपने घर चले जाओ।'

उत्तंक तक्षक से प्रतिशोध लेने की इच्छा से हस्तिनापुर गया और राजा जनमेजय से बोला—'राजन् ! तुम आवश्यक कार्य को छोड़, अज्ञानवश दूसरा ही कार्य कर रहे हो। नागराज तक्षक ने आपके पिता की हत्या की है, अतः आप उस दुरात्मा सर्प से प्रतिशोध लीजिये। जो सर्प-यज्ञ धर्म-शास्त्र में लिखा है, उसका अनुष्ठान करने का यह उचित अवसर है। यद्यपि आपके पिता धर्मात्मा परीक्षित ने उसके प्रति कोई अपराध नहीं किया था, तो भी इस दुष्टात्मा सर्प ने उन्हें डँस लिया, जिससे वे काल के गाल में चले गये। कश्यप नामक एक वैद्य आपके पिता की रक्षा करने आ रहे थे, किन्तु इस पापाचारी ने उन्हें संतुष्ट कर लौटा दिया।

महाराज ! आप सर्प-यज्ञ का अनुष्ठान कर, प्रज्वलित अग्नि में इस पापी को होम दीजिये।' उत्तंक का यह कथन सुन, राजा जनमेजय तक्षक पर कुपित हो गये।

उन्होंने उत्तंक से पूछा—'ऋषिदेव ! मेरे पिता जब पूर्ण धर्मात्मा थे तब तक्षक ने उन्हें क्यों डँसा, इसका पूर्ण विवरण मुझे सुनाइये।'

मुनि उत्तंक—राजन् ! एक दिन राजा परीक्षित शिकार खेलने गये। वहाँ उन्हें तीव्र भूख और प्यास लगी, इसलिए पास के ही शमीक ऋषि के आश्रम में गये। वहाँ आँखें बन्द किये वे मुनि आसन पर बैठे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से परे, निर्विकार ब्रह्मरूप तुरीय अवस्था में लीन थे। राजा परीक्षित ने उनसे जल माँगा। जब राजा को वहाँ बैठने को भी किसी ने न कहा, तब अपने को अपमानित मान, वे क्रोधान्ध हो गये। उन्होंने धनुष की नोक से एक मरा साँप उठाकर ऋषि के गले में डाल दिया और अपनी राजधानी लौट गये। उन शमीक मुनि का पुत्र बड़ा तेजस्वी था। जब उस बालक ने सुना कि राजा ने मेरे पिता के साथ दुर्व्यवहार किया है, तो उसने कौशिक नदी के जल से अपने वाणी-रूपी वज्र का यह कहकर प्रयोग किया, 'राजा परीक्षित ने मेरे पिता का अपमान किया है, इसलिए आज के सातवें दिन उसे तक्षक सर्प डँस लेगा।'

आश्रम में अपने पिता के गले में सांप देख उसे बड़ा दुःख हुआ और वह जोर-जोर से रोने लगा। शमीक मुनि ने पुत्र के रुदन को सुन, अपनी आँखें खोलीं और देखा कि उनके गले में एक मृत सर्प पड़ा है। उसे फेंक, उन्होंने पुत्र से रोने का कारण पूछा। उसने सारी घटना कह सुनाई। ब्रह्मर्षि शमीक ने राजा के शाप की बात सुन, दुःखित हो उससे कहा—'अरे मूर्ख बालक ! तूने बड़ा पाप किया है। खेद है कि तूने उनकी थोड़ी-सी भूल के लिए उन्हें इतना बड़ा दण्ड दिया। प्रतापी और धर्म-परायण राजा के न होने पर चोर आदि पाप-कर्म करने लगते हैं

तथा प्रजाजन की स्त्रियां और धन-सम्पत्ति लूट लेते हैं। सम्राट परीक्षित तो बड़े ही यशस्वी और धर्मधुरंधर हैं, वे कदापि शाप के पात्र नहीं।'

राजधानी पहुँचने पर राजा परीक्षित को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे सोचने लगे कि मैंने ब्राह्मण के साथ बड़ा घृणित व्यवहार किया है, अवश्य ही मुझ पर घोर विपत्ति आयेगी, जिससे मेरे इस पाप का प्रायश्चित्त हो सकेगा। वह इस प्रकार चिंता कर ही रहे थे कि उन्हें ऋषि-कुमार के शाप की सूचना मिली। अतएव उन्होंने सोचा—मेरे लिए वैराग्य का अवसर आ गया है। अब भगवान के चरण-कमल की सेवा ही सर्वोपरि है। ऐसा निश्चय कर, वे आमरण अनशन-व्रत ले, गंगातट पर जा बैठे और अनन्य भाव से श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगे। उनकी ऐसी अवस्था जान बड़े-बड़े ऋषि-मुनि वहाँ पहुँचे। उन ऋषियों का राजा ने यथायोग्य सत्कार किया और कहने लगे—'महर्षियो! स्वयं भगवान ही, ब्राह्मण-शाप के रूप में, मुझ पर कृपा करने पधारे हैं। यह वैराग्य उत्पन्न करने वाला है। अब मैंने अपने चित्त को भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया है। तक्षक आकर मुझे डँस ले, इसकी मुझे तनिक भी चिंता नहीं। आप लोग मुझ पर अनुग्रह कर, भगवान की रसमयी लीलाओं का वर्णन करें। मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरा भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में अनुराग उत्पन्न हो, महात्माओं में विशेष प्रीति हो और जगत के समस्त प्राणियों के प्रति एक-सी मैत्री रहे। आप मुझे आशीर्वाद दीजिये।'

सभी महर्षियों ने परीक्षित के इस निश्चय की प्रशंसा की। उन लोगों ने भगवान श्रीकृष्ण के गुणों से प्रभावित परीक्षित को अनेक उपदेशात्मक वचन कहे और निश्चय किया कि 'हम लोग तबतक यहीं रहेंगे, जबतक भगवान के ये परम भक्त परीक्षित अपने नश्वर शरीर को छोड़, दोष और शोक से रहित होकर भगवद्धाम को नहीं चले जाते।'

यह वार्ता हो ही रही थी कि परमहंस श्री शुकदेव भी वहाँ आ पहुँचे। उनका वेश अवधूत का था। दिगम्बर वेश में वह महान् तेजस्वी दीख रहे थे। मुनियों ने उन्हें देखते ही पहचान लिया और उनके सम्मान में खड़े हो गये।

राजा परीक्षत ने शुकदेवजी की वंदना कर उनसे भगवान की लीला वर्णन करने का अनुरोध किया और मुनि का सम्पूर्ण उपदेश बड़े ध्यान से सुना। तदनन्तर उन्होंने सिर झुका, अंजलि बाँध, बड़े विनीत भाव से उनकी प्रार्थना की, 'भगवन्! आप करुणा के मूर्तिमान रूप हैं। आपने अनुग्रह कर मुझे भगवान श्रीकृष्ण की परमपावन मुक्तिदायिनी लीला-कथाओं का अमृत-पान करा दिया है। मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। संसार के दुःख-दावानल में जलने वाले मुझ सरीखे प्राणियों पर आप जैसे महात्माओं का अनुग्रह करना स्वाभाविक ही है। अब मैं पूर्णतः अभय हूँ। तक्षक अथवा किसी भी निमित्त से मृत्यु मुझे भयभीत नहीं कर सकती। आपकी आज्ञा मिलते ही अब मैं मौन हो जाऊँगा और चित्त को परमात्मा में लीन कर प्राणों का विसर्जन कर दूँगा।'

ऐसा कह परीक्षित ने बड़े प्रेम और श्रद्धा से परमहंस शुकदेवजी की विधिवत् पूजा की। महर्षि शुकदेव के चले जाने के उपरान्त राजर्षि परीक्षित परमात्मा के चिन्तन में ध्यानमग्न होकर ब्रह्म-स्वरूप हो गये।

जब मुनिकुमार शमीक का भेजा हुआ तक्षक उन्हें डसने के लिए वहाँ आया, तब रास्ते में सर्वचिकित्सा-विशेषज्ञ कश्यप ब्राह्मण उसे मिले। उसने धन देकर उन्हें लौटा दिया। तक्षक के डसने के पहले ही राजर्षि परीक्षित ब्रह्म-स्थिति प्राप्त कर चुके थे,. इसलिए उसके डसने के साथ ही विष की ज्वाला से उनका शरीर देखते-ही-देखते जलकर भस्म हो गया।

राजा परीक्षित की मृत्यु के पश्चात मंत्रियों ने जनमेजय को राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया और वे सर्प-यज्ञ करने में संलग्न हो गये। उन्होंने ऋत्विजों और विद्वान ब्राह्मणों को

बुलाकर विनयपूर्वक कार्य सिद्ध करने को कहा और विज्ञ ब्राह्मणों ने सर्प-यज्ञ को विधिपूर्वक आरम्भ कर प्रज्वलित अग्नि में आहुति देना प्रारम्भ किया। मंत्रों के प्रभाव से सर्प प्रज्वलित अग्नि में गिरने लगे। नागराज तक्षक सर्प-यज्ञ के भय से इन्द्र की शरण में गया। सर्पों का यह घोर विनाश देख शक्तिशाली वासुकी आस्तीक मुनि के पास गये और हिंसात्मक सर्प-सत्र बन्द कराने के लिए, उन्हें राजा जनमेजय के पास भेजा। वे यज्ञ- मण्डप में पहुँचे । राजा जनमेजय, ऋत्विज, सदस्यों तथा अग्निदेव का स्तवन करने लगे। मुनि आस्तीक के स्तुति करने पर राजा जनमेजय, ऋत्विज और अग्निदेव प्रसन्न हो गये, किन्तु नागराज तक्षक इन्द्र की शरण में है, यह सुन उन्हें पुनः क्रोध आ गया। उन्होंने ऋत्विजों से तक्षक सहित इन्द्र को भी यज्ञ-कुण्ड में मंत्रों द्वारा भस्म करने की याचना की। राजा की प्रेरणा से ऋत्विजों ने इन्द्र सहित तक्षक का अग्नि में आवाहन किया, अतः इन्द्र ने तक्षक को अपनी शरण से मुक्त कर दिया।

ऋत्विजों ने तक्षक को अग्नि-कुण्ड की ओर आते देख राजा जनमेजय से कहा—'राजन् ! अब आपका यज्ञ-कर्म सम्पन्न होने वाला है, अतः मुनि आस्तीक को प्रसन्न करें।'

राजा जनमेजय ने मुनि आस्तीक से कहा—'ऋषि ! तुम अप्रमेय हो। तुम्हारी प्रतिभा की कोई सीमा नहीं है। मैं तुम जैसे तपस्वियों को प्रसन्न करना चाहता हूँ।'

आस्तीक मुनि बोले—'राजन् ! तुम्हारा यह सत्र हिंसात्मक है, इसे बन्द कर दो।' इस पर ऋत्विजों ने भी आस्तीक मुनि के वचनों का आदर करते हुए राजा जनमेजय को सर्प-यज्ञ बन्द करने की सम्मति दी, और राजा ने यज्ञ की समाप्ति करा दी। यज्ञ से प्रसन्न हो जनमेजय ने शास्त्रीय विधि से द्रव्य, भोजन, वस्त्र आदि दान दिया और सब ऋत्विज एवं विद्वानों को प्रसन्नतापूर्वक विदा किया।

वासुकी ने प्रसन्न होकर आस्तीक से कहा—'जो मनुष्य प्रसन्न चित्त से इस उपाख्यान का पाठ करेगा, उसे सर्पों से भय नहीं होगा।' यह सुन महात्मा आस्तीक को बड़ी प्रसन्नता हुई।

कौरव पाण्डवों का जन्म

सूतजी बोले—शौनकजी! वेदव्यासजी की माता सत्यवती और पिता शक्तिनंदन पाराशरजी थे। वेदव्यास जी को बचपन में वेदों, अन्य शास्त्रों और परमतत्व का ज्ञान प्राप्त हो गया था, अत: वे वेद-वेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं। उन्होंने ही वेदों का विभाजन किया। व्यासजी परब्रह्म और अपरब्रह्म के ज्ञाता, कवि, महान यशस्वी, सत्यपरायण और परम पवित्र हैं। उनकी कीर्ति पुण्य-मयी है। महाभारत इतिहास पाण्डवों के यश का वर्णन करने वाला है। जो पुण्यात्मा भगवान व्यास द्वारा रचित परम पावन महा-भारत ग्रंथ को सुनते हैं, वे स्वर्ग के अधिकारी होते हैं। अब मैं तुम्हें व्यासजी द्वारा रचित महाभारत की कथा सुनाता हूँ।

एक समय महात्मा वसिष्ठजी ने आठ वसुओं को मृत्युलोक में जन्म लेने का शाप दिया। जब वे मृत्युलोक आ रहे थे, तब उन्हें मार्ग में गंगाजी के दर्शन हुए। वसुओं ने मृत्युलोक में जन्म लेने का वर्णन कर, गंगाजी से अपनी माता बनने का अनुरोध कर कहा—'माता! जब हम जन्म लें, तब तुम हमें अपने जल के प्रवाह में छोड़ देना, जिससे हमारी मृत्यु हो जायेगी और हम स्वर्ग में लौट आयेंगे।' गंगाजी ने उनका यह अनुरोध स्वीकार कर लिया। उन्हीं दिनों राजा प्रतीप के पुत्र धर्मात्मा शान्तनु राजा हुए। वे वेद, शास्त्रों के ज्ञाता, धर्मज्ञों में श्रेष्ठ और लोक-रक्षा के कार्य में तत्पर रहते थे। उन्होंने एक सुन्दर युवती से विवाह किया, जो यशस्विनी गंगाजी ही थीं।

गंगाजी ने शान्तनु से कहा—'राजन्! मैं भला करूँ या बुरा, उसके लिए आप मुझे रोकेंगे नहीं और कभी कोई अप्रिय वचन

भी नहीं कहेंगे। महाराजा शान्तनु ने यह आग्रह स्वीकार कर लिया। अब उत्तम शील स्वभाव, सदाचार, उदारता और सद्-गुणों से सम्पन्न राजा सुखपूर्वक अपनी पत्नी के साथ रहने लगे। महाराजा शान्तनु के आठ पुत्र हुए। जैसे-जैसे पुत्र उत्पन्न होते गये, वैसे-वैसे गंगाजी उन्हें जल में प्रवाहित करती रहीं। यद्यपि पत्नी का यह व्यवहार राजा शान्तनु को अच्छा नहीं लगता था, किन्तु अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वे उन्हें कुछ नहीं कह सकते थे।

जब आठवें पुत्र का जन्म हुआ तब राजा ने गंगा से कहा—'भद्रे ! तू इस बालक का वध न कर। तू किसकी कन्या है और कौन है ? तुझे पुत्र हत्या का यह अत्यन्त निन्दनीय कार्य नहीं करना चाहिए।'

गंगा बोलीं—'राजन् ! मैं तुम्हारी इच्छा से इस पुत्र का वध नहीं करूँगी, किन्तु अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मैं गंगा हूँ और देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए ही तुम्हारे साथ रहती थी। तुम्हारे आठ पुत्र महा तेजस्वी वसु देवता हैं। उनको शाप-मुक्त करने के लिए ही मैंने मानव-शरीर धारण किया है। तुम इस आठवें पुत्र का पालन करो। यह महान व्रतधारी, अत्यन्त पराक्रमी और कुल की कीर्ति बढ़ाने वाला होगा। राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो। 'ऐसा कह माता गंगा अंतर्धान हो गयीं। शान्तनु ने अपने उस पुत्र का नाम देवव्रत रखा। वह बालक अस्त्र-अस्त्र की कला में पारंगत और बल, धैर्य एवं पराक्रम में महान् था। उसने नीतिशास्त्र, राजधर्म और अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। महाराजा शान्तनु ने उस सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र को युवराज पद पर अभिषिक्त किया। एक दिन राजा शान्तनु यमुना तट पर गये। वहाँ उन्होंने एक मल्लाह की सुन्दर कन्या देखी। राजा शान्तनु ने उसके रूप और माधुर्य को देख, निषादराज (मल्लाह) से उसे अपनी पत्नी के रूप में माँगा।'

निषाद ने कहा—'पृथ्वीपते ! इसके पुत्र को ही तुम्हें राजा

के पद पर अभिषिक्त करना होगा, अन्य किसी कुमार को नहीं।' निषादराज की यह दुष्कर माँग महाराजा शान्तनु ने नहीं मानी और वे अपनी राजधानी लौट गये। एक दिन जब महाराजा शान्तनु चिन्ता में मग्न थे, उसी समय उनका यशस्वी पुत्र देवव्रत उनके पास आया और उनसे उनके दुःख का कारण पूछा।

महाराजा शान्तनु—'बेटा ! तुम इस विशाल वंश में मेरे एक ही पुत्र हो। तुम अस्त्र-शस्त्र के अभ्यास में रत रह पुरुषार्थ के लिए सदैव उद्यत रहते हो। यदि किसी कारण तुम पर कोई विपत्ति आयी तो उसी दिन हमारा यह वंश समाप्त हो जायेगा। हमारे वंश का लोप न हो, इसके लिए मैं पुनः पत्नी की कामना करता हूँ। जिसे मैं प्राप्त करना चाहता हूँ, वह एक धीवर की कन्या है। उसके पिता ने अपनी पुत्री का मुझसे विवाह करने के पूर्व यह आश्वासन माँगा है कि उसका पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा, अन्य कुमार नहीं। यह प्रस्ताव मुझे मान्य नहीं है।' यह सुन कुमार देवव्रत ने उस धीवर के पास जाकर वह कन्या अपने पिता के लिए माँगी।

धीवर ने कहा—राजकुमार ! मेरी पुत्री सत्यवतो को राजर्षि शान्तनु ने अपने लिए पहले भी माँगा था, किन्तु मैंने उनका वह प्रस्ताव अस्वोकार कर दिया। मैं कन्या का पिता और परम शुभचिन्तक हूँ, अतः मैं चाहता हूँ कि उसका ही पुत्र राजा हो।' गंगानन्दन देवव्रत ने पिता का मनोरथ पूर्ण करने के लिए निषाद का प्रस्ताव स्वोकार कर प्रतिज्ञा की कि मैं राजा नहीं बनूँगा और आजीवन अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा। मैंने जीवन में कभी असत्य वचन नहीं कहा है, अतः तुम पिताजी को अपनो कन्या दे दो। यह कठिन प्रतिज्ञा सुन, धीवर ने अपनी कन्या सत्यवती का विवाह महाराजा शान्तनु से कर दिया और तब से देवव्रत का नाम भीष्म पड़ा। इस कठिन प्रतिज्ञा पर महाराजा शान्तनु भी भीष्म से वड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे स्वैच्छिक मृत्यु का वरदान दिया।

सत्यवती चेदिराज वसु की पुत्री थी और निषादराज ने तो उसका पालन-पोषण मात्र ही किया था, यह जानकर राजा शान्तनु ने उससे विधिवत विवाह किया। कुछ काल के पश्चात शान्तनु के सत्यवती से चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र हुए, जो बड़े ही बुद्धिमान, पराक्रमी तथा श्रेष्ठ थे। नर-श्रेष्ठ विचित्रवीर्य की यौवन अवस्था के पहले ही महाराजा शान्तनु की मृत्यु हो गयी। उनके स्वर्ग चले जाने पर भीष्म ने चित्रांगद को राज-पद पर बैठाया, किन्तु एक यक्ष ने उसे युद्ध-भूमि में मार डाला। यद्यपि विचित्रवीर्य बालक था, तथापि भीष्म ने उसे माता सत्यवती की इच्छा से राज्य सिंहासन पर अभि-षिक्त किया और उसकी रक्षा करने लगे। जब विचित्रवीर्य युवा-वस्था में पहुँचा तब बुद्धिमान श्रेष्ठ भीष्म वाराणसी गये। वहाँ काशीराज की तीन सुन्दर कन्याओं का स्वयंवर होने वाला था। निमंत्रित राजाओं और घर वालों को देखते-देखते वीर भीष्म ने उन तीनों कन्याओं को बलात अपने रथ पर बैठा लिया और शीघ्रतापूर्वक चल दिये। कुछ राजा भीष्म से युद्ध करने लगे, किन्तु वे सब असफल रहे। जब शाल्वराज ने भीष्म पर आक्रमण किया, तब उन्होंने शाल्व के घोड़ों सहित सारथी को मार डाला और उसके केवल प्राण ही छोड़े। यह देख अन्य नरेश युद्ध-स्थल से भाग गये। भीष्म ने अपने पराक्रम द्वारा हरण की हुई उन कन्याओं को माता सत्यवती को दे दिया।

उनमें से सबसे बड़ी बहन अम्बा भीष्म से बोली—'धर्मात्मन्! मैंने पहले से ही राजा शाल्व को पति के रूप में वरण किया था। वे भी मुझे पत्नी-रूप में चाहते हैं। मेरे पिताजी की भी यही इच्छा थी कि मेरा विवाह राजा शाल्व से हो।' धर्मज्ञ! इन सब प्रश्नों पर विचार कर धर्मपूर्वक कार्य कीजिये। 'भीष्म ने माता सत्यवती की आज्ञा से अम्बा को राजा शाल्व के पास जाने की अनुमति दे दी। माता सत्यवती ने काशीराज की अम्बिका और अम्बालिका दो कन्याओं का अपने पुत्र विचित्र-

वीर्य से विधिपूर्वक विवाह कर दिया। राजा विचित्रवीर्य अब अपनी दोनों पत्नियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगे, किन्तु कुछ ही समय में रोग से पीड़ित हो यमलोक चले गये।

गंगानन्दन महात्मा भीष्म को भाई की मृत्यु से शोकाकुल देख माता सत्यवती ने उनसे कहा—'बेटा ! सदा धर्म में तत्पर रहने वाले महाराजा शान्तनु को पिण्ड देना और उनकी कीर्ति तथा यश बढ़ाना अब तुम पर ही अवलंबित है। तुम धर्म को जानते हो और वेदांग का भी तुम्हें पूर्ण ज्ञान है। तुम्हारी धर्म-निष्ठा और कर्तव्य-पालन से मैं भी परिचित हूँ, अतः तुम राजा बन जाओ और जिससे वंश चल सके, वह उपाय करो।'

धर्मात्मा भीष्म बोले—'माता ! तुम्हारे वचन धर्मयुक्त हैं। पर मैं न तो राज्य के लोभ से राजा ही बनूँगा और न विवाह ही करूँगा। तुम तो मेरी प्रतिज्ञाओं को जानती ही हो।'

माता सत्यवती—'बेटा ! मैं जानती हूँ कि तुम सत्यवादी हो। तुम्हारी सत्य में दृढ़ निष्ठा है। फिर भी मेरा आग्रह है कि तुम आपद्धर्म का विचार कर अपने बाप-दादा का राज्य स्वीकार करो। परंतप ! जिस उपाय से तुम्हारे वंश की परम्परा नष्ट न हो, धर्म की अवहेलना न हो, वही करो।' जब धर्मात्मा भीष्म ने माता की आज्ञा स्वीकार नहीं की, तब उसने व्यासजी का आवाहन किया, जो उनके ही प्रथम पुत्र थे। उनकी कृपा से अम्बिका से धृतराष्ट्र, अम्बालिका से पाण्डु और दासी से धर्मात्मा तथा बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विदुर का जन्म हुआ। विदुर अर्थतत्व के ज्ञाता और काम-क्रोध से रहित साक्षात धर्मराज थे, किन्तु महात्मा माण्डव्य के शाप से विदुर के रूप में उत्पन्न हुए थे।

जनमेजय ने पूछा—श्रेष्ठ धर्मराज ने ऐसा कौन-सा अपराध किया था, जिसके कारण उन्हें मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ा ?

वैशम्पायनजी ने कहा—राजन् ! पूर्वकाल में माण्डव्य नाम के धैर्यवान, सब धर्मों के ज्ञाता, सत्य-निष्ठ एवं तेजस्वी ब्राह्मण

थे। वे अपने आश्रम में मौनव्रत धारण कर कठिन तपस्या करते थे। एक दिन उनके आश्रम में चोरी का धन लेकर बहुत से चोर आये, जिनका सैनिक पीछा कर रहे थे। उन्होंने अपने प्राणों की रक्षा हेतु वह धन महर्षि के आश्रम में रख दिया और वहीं छिप गये। सैनिकों ने महर्षि से चोरों के बारे में पूछा, किन्तु तपस्या के धनी महर्षि ने उनके प्रश्न का कोई भी उत्तर नहीं दिया। सैनिकों ने जब चोरों द्वारा चुराया हुआ धन और चोरों को भी उन्हीं के आश्रम में देखा, तब वे उन्हें चोरों के साथ बांधकर राजा के पास ले गये। राजा ने उन चोरों के साथ महर्षि को भी प्राण-दण्ड दिया। सैनिकों ने मुनि सहित चोरों को शूली पर चढ़ा दिया। महात्मा ब्रह्मर्षि अनाहार रहकर उस शूली पर चढ़े रहे, किन्तु उनकी मृत्यु नहीं हुई। महर्षि का यह प्रभाव देखकर अन्य ऋषि उनके समीप आये और राजा को धिक्कारने लगे। रक्षकों ने यह सारा वृतान्त राजा को कह सुनाया।

श्रेष्ठ माण्डव्य मुनि का यह अपूर्व पराक्रम देख राजा ने उन्हें प्रसन्न करने का अत्यधिक प्रयत्न करते हुए कहा—'महर्षि! मैंने अज्ञानवश यह अपराध किया है, अतः आप मुझ पर क्रोध न करें और प्रसन्न हों।' राजा के विनयपूर्वक वचन सुनकर मुनि उन पर प्रसन्न हो गये। अपने अपराध को जानने की इच्छा से वे धर्मराज के यहाँ गये और उनसे पूछा—'मैंने कौन-सा पाप किया था, जिसका फल भोगने के लिए मुझे शूली पर चढ़ना पड़ा?'

धर्मराज ने कहा—तपोधन! तुमने बाल्यावस्था में एक पतंगे के शरीर में सींक घुसेड़ दी थी। उसी कर्म का यह प्रतिफल तुम्हें प्राप्त हुआ है। विप्रर्षे! जैसे थोड़ा-सा भी दान कई गुना फल देने वाला होता है, वैसे ही अधर्म भी प्रतिफल देता है।

महर्षि माण्डव्य बोले—धर्मराज! धर्मशास्त्र के अनुसार जन्म से लेकर बारह वर्ष की आयु तक बालक जो भी कार्य करता है, वह अधर्म नहीं माना जाता, क्योंकि उसे धर्म-अधर्म का ज्ञान

नहीं होता। तुमने मेरे थोड़े से अपराध के लिए मुझे बहुत बड़ा दण्ड दिया है, जो प्राणियों के वध से भी अधिक भयंकर है। इस अपराध के लिए मैं शाप देता हूँ कि तुम मर्त्यलोक में शूद्र योनि में जन्म लोगे। इसीलिए धर्मराज, विदुर के रूप में उत्पन्न हुए। वे धर्म और अर्थशास्त्र के विद्वान, लोभ और क्रोध से रहित, शान्ति-परायण थे तथा पाण्डव और कौरव वंश के हित में तत्पर रहते थे। धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर के जन्म के बाद प्रजा सत्यव्रत के पालन में तत्पर और धर्मानुकूल कर्मों में संलग्न रहने लगी। लोगों के आचार-व्यवहार में धर्म की ही प्रधानता थी। भीष्मजी के द्वारा सब प्रकार से धर्मपूर्वक शासन चलता था। धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा परम बुद्धिमान विदुर का भीष्म ने जन्म से ही पुत्र की भाँति पालन किया। धृतराष्ट्र अंधे और विदुरजी दासी पुत्र होने से, राज्य न पा सके, अतः सबसे छोटे भाई पाण्डु ही राजा हुए।

एक समय नीतिज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ भीष्मजी ने तीनों भाइयों को न्यायोचित वचन कहे—'वत्स ! हमारा यह कुल अनेक गुणों से सम्पन्न तथा जग-प्रसिद्ध है। पूर्वकाल में धर्मज्ञ एवं महात्मा राजाओं ने इसकी रक्षा की थी। तुम तीनों भाई इसके तंतु हो, अतः तुम्हारे ही द्वारा अब इसकी प्रतिष्ठा सम्भव है। यह हमारा कुल जिस प्रकार बढ़ता रहे, वही उपाय हम सबको करना चाहिए। मैंने सुना है कि यदुवंशी शूरसेन की कन्या पृथा हमारे कुल के अनुरूप है। अतः उसका पाण्डु से, गांधार राजा सुबल की कन्या गांधारी का धृतराष्ट्र से, विवाह सम्बन्ध करना सर्वथा उचित है। भीष्म के नीतिपूर्ण वचन सुन, वे दोनों उनसे सहमत हो गये और दोनों का विवाह प्रसन्नतापूर्वक पूर्वोक्त कन्याओं से सम्पन्न हुआ। कुछ समय बाद मद्रास नरेश की कन्या महाराजा शल्य की बहन, माद्री का भी भीष्म ने पाण्डु के साथ विवाह कर दिया। गांधारी बड़ी पतिव्रता थी, इसलिए अपने पति को अंधा देख, उन्होंने भी रेशमी वस्त्र द्वारा अपनी

आँखें बाँध लीं। देवी गांधारी ने अपने उत्तम स्वभाव, सदाचार एवं सद्व्यवहार द्वारा गुरुजनों को प्रसन्न कर लिया। शूरसेन के फुफेरे भाई कुन्तीभोज के संतान न थी, इसलिए उसने अपनी कन्या पृथा कुन्तीभोज को बचपन में ही दे दी। पृथा देवताओं का पूजन और अतिथियों का सत्कार किया करती थी। एक समय कठोर व्रत का पालन करने वाले दुर्वासा महर्षि राजा कुन्तीभोज के महल पर आये। पृथा उनकी सेवा करने लगी। यद्यपि दुर्वासा का हृदय कठोर था, फिर भी कुमारी पृथा ने अपनो सेवा द्वारा उन्हें प्रसन्न कर लिया। मुनि दुर्वासा ने पृथा पर प्रसन्न हो उसे एक वशीकरण-मंत्र की दीक्षा दी और कहा कि जिस देवता का तुम इस मंत्र द्वारा आवाहन करोगी, उसी के अनुरूप तुम्हें पुत्र की प्राप्ति हो जायेगी। कुन्ती के मन में उस मंत्र के प्रति संदेह उत्पन्न हो गया, इसलिए मंत्र की परीक्षा लेने के लिए उसने सूर्यदेव का आवाहन किया। मंत्र ने अपना प्रभाव दिखाया और भगवान भास्कर वहाँ प्रकट हो गये। उनके वरदान से कुन्ती के एक पुत्र हुआ, जो जन्म से ही कवच और कुण्डल पहने हुए था।

भगवान सूर्य ने कुन्ती से कहा—'तुम्हारे बालक का यह कवच किसी अस्त्र-शस्त्र से नहीं टूटेगा। यह स्वाभिमानी, दानी होगा और कर्ण के नाम से जगत में विख्यात होगा।' 'उस नवजात कुमार को देख कुन्ती के मन में लज्जा उत्पन्न हो गई। उसने कुल की अपकीर्ति को ध्यान में रखकर उस सुन्दर कुमार को नदी के जल में प्रवाहित कर दिया। उस सुन्दर बालक को नदी के प्रवाह से सूतपुत्र अधिरथ अपने घर ले गया और अपनी पत्नी राधा की गोद में रख दिया। दोनों ने बड़े प्रेम से उसे पाला-पोसा और वसुसेण नाम रखा। सब प्रकार से अस्त्र-विद्या में निपुण वह बलवान बालक। नित्य, प्रातःकाल भगवान सूर्य की उपासना किया करता था।

महाराजा पाण्डु दिग्विजय की इच्छा से एक महान सेना ले

पूर्व दिशा में गये। वहाँ उन्होंने अनेक राजाओं को परास्त किया। महाराजा शान्तनु की कीर्ति, जो इस समय तक फीकी पड़ गई थी, उसे महाराजा पाण्डु ने पुनर्जीवित कर दिया। बड़े भाई धृतराष्ट्र की आज्ञा ले, महाराजा पाण्डु ने शत्रुओं से जीता हुआ धन-रत्न, माता सत्यवती और अन्य सुहृदों को भेंट किया। तदनन्तर भीष्म ने राजा देवक की कन्या से बुद्धिमान विदुर का विवाह किया, जिससे उसके ही समान गुणवान और विनयशील पुत्र उत्पन्न हुए। राजा धृतराष्ट्र के गांधारी से सौ और दूसरी स्त्री से एक पुत्र हुआ। गांधारी के पुत्र कौरव कहलाये और दूसरी के पुत्र का नाम युयुत्सु था। गांधारी के एक कन्या भी थी, जिसका नाम दुःशला था। गांधारी के सबसे बड़े पुत्र का नाम दुर्योधन था। उसके जन्म के समय भयानक अपशकुन प्रकट हुए।

इस पर विद्वान ब्राह्मणों और बुद्धिमान विदुर ने राजा धृतराष्ट्र से कहा—'राजन् ! आपके ज्येष्ठ पुत्र के जन्म लेने पर भयंकर अपशकुन प्रकट हो रहे हैं, अतः आपका यह पुत्र समूचे कुल का संहार करने वाला होगा। यदि इसका त्याग कर दिया जाये, तो सब विघ्न शान्त हो जायेंगे।' किन्तु पुत्र स्नेह के बन्धन में बंधकर राजा धृतराष्ट्र ने वैसा नहीं किया। उसके सब पुत्र शूरवीर, अस्त्र-विद्या में निपुण और वेदों के ज्ञाता थे। राजा धृतराष्ट्र ने अपनी पुत्री दुःशला का विवाह राजा जयद्रथ से किया।

महात्मा पाण्डु के कुन्ती से तीन और माद्री से दो पुत्र उत्पन्न हुए। कुन्ती के धर्मराज के अंश से युधिष्ठिर, वायु से भीम, इन्द्र से अर्जुन और अश्विनीकुमारों से माद्री के नकुल और सहदेव हुए। इन पाण्डव-पुत्रों में उन्हीं देवताओं के गुण उपस्थित थे। कुछ समय पश्चात महात्मा पाण्डु वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर वन में चले गये। उन्होंने अपने सब आभूषण ब्राह्मणों को दिये और स्वयं कठिन तपस्या में निमग्न हो गये। उस महान रमणीय

वन में महाराजा पाण्डु अपने गुणवान पुत्रों के साथ प्रसन्नतापूर्वक निवास करते थे।

कालांतर में महात्मा पाण्डु काल के गाल में चले गये, तब उनकी स्त्री माद्री उनके साथ चिता में बैठने के पहले युधिष्ठिर और अन्य पुत्रों से बोली—'बच्चो ! कुन्ती देवी ही तुम सबकी वास्तविक माता हैं। मैं तो केवल तुम लोगों को दूध पिलाने वाली धाय थी। तुम्हारे पिता स्वर्ग में चले गये हैं, अतः बड़े भैया युधिष्ठिर ही धर्मतः तुम्हारे पिता हैं। तुम सब गुरुजनों की सेवा में संलग्न रहना। सत्य एवं धर्म के पालन से कभी मुँह न मोड़ना। ऐसा करने वाले कभी नष्ट नहीं होते।' तत्पश्चात माद्री ने ऋषियों तथा कुन्ती को प्रणाम कर, क्लान्त हो, कुन्ती देवी से दीनतापूर्वक कहा—'बहन ! तुम धन्य हो। तुम्हारे समान दूसरी कोई स्त्री नहीं है, जो अमित तेजस्वी और यशस्वी पाँचों पुत्रों का भरण-पोषण करोगी। तुम्हीं इनका बल, पराक्रम, तेज, योगबल तथा महात्म्य देखोगी। देवी ! तुम मेरी गुरु और वंदनीया हो। तुम मुझसे अवस्था में बड़ी और गुणों में श्रेष्ठ हो। मुझे जिस प्रयत्न द्वारा धर्म, स्वर्ग और कीर्ति प्राप्त हो सके, वैसा आदेश दो।'

कुन्ती गद्गद वाणी से बोली—'बहन ! तुम मेरे पुण्य के प्रभाव से पति के साथ स्वर्ग प्रस्थान करो।' कुन्ती से आशीर्वाद मिलने पर यशस्विनी माद्री नरश्रेष्ठ पाण्डु के साथ चिता पर बैठ स्वर्ग चली गई और महारानी कुन्ती अपने पाँचों पुत्रों को ले हस्तिनापुर आ गई। उसने अपने पति की मृत्यु का समाचार वीर भीष्म, राजा धृतराष्ट्र एवं धर्मात्मा विदुर को सुनाया। वीर भीष्म और महात्मा विदुर पाण्डु पुत्रों को सब प्रकार की शिक्षा देने लगे।

कौरवों और पाण्डवों की बाल्यावस्था

पाण्डव खेल में अपने बल के प्रभाव से धृतराष्ट्र-पुत्रों से बढ़-चढ़कर सिद्ध हुए। भीमसेन अकेला ही कौरवों का मान-मर्दन कर उन्हें अपने वश में कर लेता था। दुर्योधन को जब विश्वास हो गया कि भीमसेन अत्यन्त बलशाली है, तब वह पाण्डवों के प्रति दुर्भाव रखने लगा। वह सदा धर्म से दूर रहता और पाप-कर्मों पर ही दृष्टि रखता था। उसने भाइयों से मंत्रणा की कि भीमसेन को गंगा में फेंक दें और दूसरे पाण्डवों को बंदी बना लें। इस अभिप्राय को पूर्ण करने हेतु उसने गंगा तट पर एक विशाल गृह का निर्माण करवाया और पाण्डवों को लेकर गंगा तट पर जल-विहार करने चला गया। वहाँ पहुँचकर कौरव और पाण्डव यथा-योग्य स्थानों पर बैठ गये और नाना प्रकार की सामग्रियों का उपभोग करने लगे। पापी दुर्योधन ने भीमसेन को मार डालने की इच्छा से, उसके भोजन में विष डलवा दिया। भीमसेन उस भोजन के दोष से अपरिचित थे, अतः बिना किसी संकोच के उस विषैले भोजन को खा, जड़ के समान निश्चेष्ट हो, सो गये। दुर्योधन ने उन्हें लताओं के पाश से बाँधकर गंगाजी के जल में बहा दिया, जहाँ अनेक सर्प थे। गंगा जल के स्पर्श और सर्पों के डसने से उनके ऊपर जो विष का प्रभाव था, वह कम हो गया और वे पुनः स्वस्थ हो जल से बाहर निकले। दुर्योधन ने युधिष्ठिर से झूठ कह दिया कि भीमसेन हस्तिनापुर पहले ही चला गया है। युधिष्ठिर धर्मात्मा थे, इसलिये उनके हृदय में दुर्योधन के पाप-पूर्ण विचार का भान तक न हुआ। माता कुन्ती के पास पहुँचकर, उन्होंने भीमसेन के बारे में पूछा, किन्तु वह भी इस प्रश्न से व्याकुल हो उठी। कुछ ही समय में महाबली भीमसेन हस्तिनापुर माता के पास पहुँचे और दुर्योधन की कुचेष्टाएं भाइयों को बता दीं। इसी प्रकार दुर्योधन, शकुनि और दुःशासन ने पाण्डवों को मार डालने के लिए अनेक प्रयास किये, पर ईश्वर की कृपा से वे

जीवित रहे। राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा से कौरव और पाण्डु-पुत्र कृपाचार्य से शस्त्र-विद्या की शिक्षा लेने लगे।

भरद्वाज-नंदन द्रोण और द्रुपद बचपन में एक साथ भरद्वाज मुनि के गुरुकुल में निवास करते थे, अतः गुरु भाई थे। द्रोणाचार्य ने भृगु-श्रेष्ठ परशुरामजी से पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की। एक समय द्रोणाचार्य राजा द्रुपद के पास गये, किन्तु उन्होंने उनका सत्कार नहीं किया। मित्र के व्यवहार से दुःखित हो द्रोणाचार्य हस्तिनापुर चले गये और कृपाचार्य के गृह में रहने लगे। उन्होंने कृपाचार्य की बहन कृपी से विवाह किया, जिसने अश्वत्थामा को जन्म दिया। एक दिन कुछ बालक गाय का दूध पी रहे थे। उन्हें देख बालक अश्वत्थामा भी दूध पीने का आग्रह कर रोने लगा। यह देख द्रोणाचार्य की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। उनकी पत्नी कृपी ने अपनी विवशता के कारण बालक अश्वत्थामा को जल में आटा मिलाकर पिला दिया। बालक अश्वत्थामा ने उसे दूध ही समझा और आटे के जल को पी फूला नहीं समाया एवं हर्ष से नाचने लगा। भीष्म को जब पता चला कि द्रोणाचार्य,कृपाचार्य के घर में ठहरे हुए हैं, तब वे उन्हें सत्कारपूर्वक अपने घर ले गये और कौरव एवं पाण्डवों को उनके द्वारा धनुर्वेद की शिक्षा दिलवाने लगे।

पाण्डुनन्दन अर्जुन धनुर्वेद की जिज्ञासा, शिक्षा, बाहुबल और उद्योग की दृष्टि से सभी शिष्यों में श्रेष्ठ एवं आचार्य द्रोण की समानता करने योग्य हो गये। आचार्य द्रोण उपदेश ग्रहण करने में अर्जुन को अनुपम प्रतिभाशाली मानते थे, अतः वे उनके बड़े प्रिय हो गये। तदनन्तर निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य आचार्य के पास धनुर्वेद की शिक्षा लेने आया, किन्तु उन्होंने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। एकलव्य द्रोणाचार्य के चरणों में प्रणाम कर वन में लौट गया और आचार्य की मिट्टी की प्रतिमा सामने रख, धनुर्विद्या का अभ्यास नियम के साथ करने लगा। आचार्य में अनुपम श्रद्धा रखने के कारण उसने बाणों को छोड़ने,

लौटाने और संधान करने की शक्ति प्राप्त कर ली। एक समय कौरव और पाण्डव आचार्य के साथ वन में विहार करने निकले, जहाँ एकलव्य रहता था। कौरव और पाण्डवों को अपने स्थान पर आया देख, एक कुत्ता भौंकता हुआ उनकी ओर दौड़ा। यह देखकर एकलव्य ने कुत्ते के मुँह में एक ही साथ सात बाण मारे। कुत्ते का मुँह बाणों से भर गया, अतः उसने भौंकना बन्द कर दिया। इस घटना से कौरव और पाण्डव बड़े विस्मित हुए। एकलव्य के हाथ की गति और शब्द के अनुसार लक्ष्य-भेदन की उत्तम शक्ति देखकर सब उसकी प्रशंसा करने लगे। द्रोणाचार्य को अपने आश्रम में आया देख, एकलव्य ने उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। आचार्य द्रोण उसकी धनुर्विद्या प्राप्त करने की एकाग्रता पर प्रसन्न हो गये। उन्होंने गुरु दक्षिणा के रूप में उसके दाहिने हाथ का अँगूठा माँगा। द्रोणाचार्य का यह दारुण वचन सुन सत्य पर अटल रहने वाले एकलव्य ने प्रसन्न-मुख और उदार-चित्त हो, बिना सोचे-विचारे, अपना अँगूठा आचार्य को अर्पित कर दिया। इस कार्य पर आचार्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने एकलव्य को तर्जनी और मध्यमा के संयोग से बाण चलाने की शिक्षा दी।

द्रोणाचार्य के दो शिष्य, दुर्योधन और भीमसेन, गदायुद्ध में सुयोग्य निकले। अश्वत्थामा धनुर्वेद को जानता था। नकुल और सहदेव तलवार चलाने में निपुण थे। यद्यपि कौरव-पाण्डव सभी को समान रूप से अस्त्र-विद्या की शिक्षा दी जाती थी, तथापि वीर अर्जुन सब प्रकार की युद्ध-कला में अत्यन्त प्रवीण था। धृतराष्ट्र के पुत्र दुरात्मा होने के कारण, भीमसेन का बल और अर्जुन को अस्त्र-विद्या में प्रवीण देख, उनके प्रति ईर्ष्या से जलते रहते थे। जब समस्त कुमार धनुर्विद्या और अस्त्र-संचालन की कला में पारंगत हो गये, तब नर-श्रेष्ठ द्रोण ने उनकी परीक्षा लेने का आयोजन किया। उन्होंने एक कृत्रिम गृद्ध बनवाकर वृक्ष के अग्रभाग पर रखवा दिया और राजकुमारों को उस

लक्ष्यभेदन का आदेश दिया। सबसे पहले दुर्धर्ष वीर युधिष्ठिर धनुष-बाण हाथ में लेकर लक्ष्य पर शस्त्र चलाने हेतु तत्पर हुए।

गुरु द्रोण ने उनसे पूछा—'तुम क्या-क्या देख रहे हो?' उन्होंने उत्तर दिया—'मैं वृक्ष, डाली पर बैठे गृद्ध तथा आप सबको देख रहा हूँ।' यह सुन द्रोणाचार्य ने दूसरे कुमारों को एक-एक कर लक्ष्य को ध्यानपूर्वक देखने को कहा। उन सबने भी वही उत्तर दिया, जो युधिष्ठिर दे चुके थे। अंत में उन्होंने अर्जुन से भी वही प्रश्न किया।

अर्जुन ने कहा—'मैं केवल गृद्ध के मस्तक को ही देखता हूँ, अन्य कुछ भी नहीं। अर्जुन के ऐसा कहने पर द्रोणाचार्य ने उसे बाण छोड़ने की आज्ञा दी। उसने अपने तीक्ष्ण बाण से गृद्ध का मस्तक काट गिराया। कुछ समय पश्चात आचार्य द्रोण अपने शिष्यों के साथ गंगा में स्नान कर रहे थे। जल में गोता लगाते समय एक ग्राह ने द्रोणाचार्य का पैर पकड़ लिया। उन्होंने अपने शिष्यों को ग्राह को मार डालने को आज्ञा दी। उनका आदेश पाकर अर्जुन ने अपने तीखे वाणों द्वारा उसे मार डाला। अन्य द्रोणाचार्य को पुकार सुन धैर्य खो बैठे और किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये। द्रोणाचार्य अर्जुन की कार्य-क्षमता पर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे ब्रह्मशिर नामक अत्यन्त कठिन अस्त्र के प्रयोग की विधि बताई।

जब कौरव पाण्डवों की अस्त्र-विद्या पूर्ण हो गई, तब वे कृपाचार्य, सोमदत्त. बाह्लिक, महात्मा भीष्म, विदुर, महर्षि व्यास और धृतराष्ट्र के पास गये और बोले—'राजन्! आपके कुमार अस्त्र-विद्या प्राप्त कर चुके हैं। आपकी अनुमति से वे उसका प्रदर्शन करना चाहते हैं। मैं इस आयोजन की व्यवस्था स्वयं ही करूँगा।' राजा धृतराष्ट्र ने विदुरजी को उचित प्रबंध करने को कहा। बुद्धिमान द्रोण ने रंग-मण्डप के लिए वास्तु-पूजन कर, एक विशाल गृह का निर्माण करवाया। उसमें आमंत्रित सुहृद वीर-समुदाय, राजा धृतराष्ट्र, माता गांधारी और कुन्ती

को उन्होंने बैठाया। तदनन्तर आचार्य द्रोण, अश्वत्थामा और वीर कुमारों ने अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो रंगभूमि में प्रवेश किया। शिष्यों ने आचार्य द्रोण और कृपाचार्य की पूजा की और अनेकानेक आशीर्वाद प्राप्त कर, प्रसन्न मन से वे अपने-अपने आसन पर बैठ गये। तत्पश्चात पराक्रमी राजकुमार गुरु की आज्ञा पाकर परम अद्‌भुत अस्त्र-कौशल दिखलाने लगे, जिसको देखकर समस्त दर्शक आश्चर्यचकित हो गये।

द्रोणाचार्य ने दर्शकों से कहा—'श्रेष्ठ दर्शको! अब आप कुन्ती-पुत्र अर्जुन का कौशल देखें, जो मुझे अपने पुत्र से भी अधिक प्रिय है। यह महावीर भगवान नारायण के समान पराक्रमी है और सम्पूर्ण शास्त्रों में निपुणता प्राप्त कर चुका है। यह कुन्ती-पुत्र तेजस्वी, कुरुवंश का रक्षक, अस्त्र-विद्या के महारथियों में सर्वोत्तम और धर्मात्माओं एवं शीलवानों में श्रेष्ठ है।' जब दर्शकों का कोलाहल शान्त हो गया, तब अर्जुन ने अपनी अस्त्र-विद्या दिखानी आरम्भ की। उसने पहले आग्नेयास्त्र से अग्नि उत्पन्न की, फिर वरुणास्त्र से उसे शान्त कर दिया। वायव्यास्त्र से आँधी चला दी और पर्जन्यास्त्र से बादल उत्पन्न कर दिये। उसने भौमास्त्र से पृथ्वी और पार्वतास्त्र से पर्वत उत्पन्न किये। फिर अन्तर्धानास्त्र के द्वारा स्वयं अदृश्य हो गया। अर्जुन ने अति शीघ्रता से सूक्ष्म और बड़े लक्ष्य को भी बाणों द्वारा बींध डाला। उसने लोहे के चलते हुए सुअर के मुख में पाँच बाण मारे। एक स्थान पर गाय के हिलते हुए सींग के छिद्र में अनेक बाण डाल दिये। जब अस्त्र-कौशल दिखलाने का कार्य सम्पन्न हो गया, तब दर्शक, वीर अर्जुन और द्रोणाचार्य की प्रशंसा करने लगे। दर्शकों के मुख से तुमुल ध्वनि सुन कुन्ती के स्तनों से दूध और नेत्रों से स्नेह के आँसू बहने लगे।

धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा—'महामते! कुन्ती-रूपी अरणि से प्रकट पाण्डव रूपी अग्नि से आज मैं धन्य हो गया हूँ। इनके द्वारा मैं सर्वदा आश्वस्त और सुरक्षित रहूँगा।'

तभी वीर कर्ण ने उस विशाल रंग-मण्डप में प्रवेश किया। उसने सुन्दर कवच और कुण्डल धारण कर रखे थे, जो उसके शरीर के साथ ही उत्पन्न हुए थे। उसमें सिंह के समान बल, साँड़ के सदृश वीर्य और गजराज के समान पराक्रम था। उसमें सूर्य की-सी दीप्ति, चन्द्रमा की-सी कान्ति, अग्नि का-सा तेज था। वक्ताओं में श्रेष्ठ कर्ण ने द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को प्रणाम कर अर्जुन से कहा—'कुन्तीनन्दन ! तुमने जो अस्त्र-विद्या प्रदर्शित की है, उससे भी अद्‌भुत कार्य कर मैं दर्शकों को दिखाऊँगा।' ऐसा कह जो-जो अस्त्र-कौशल अर्जुन ने प्रदर्शित किये थे, वे सब उसने कर दिखाये। इस पर दुर्योधन ने कर्ण को हृदय से लगाया। कर्ण ने कहा—'अर्जुन ! रंग-मण्डप में तो अनेक योद्धा अपनी विद्या का प्रदर्शन करते हैं। जो बल और पराक्रम में श्रेष्ठ होते हैं, वे ही राजा कहलाने योग्य हैं। साहस हो तो तुम मुझसे बाणों से बातचीत करो। मैं आज गुरुजनों के समक्ष ही अपने बाणों द्वारा तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर देता हूँ।' तदनन्तर अर्जुन आचार्य द्रोण की आज्ञा ले, भाइयों से गले मिल, युद्ध के लिए कर्ण की ओर आगे बढ़े। दुर्योधन ने भाइयों सहित कर्ण का आलिंगन किया। धृतराष्ट्र के पुत्र, जिस ओर कर्ण था, उसी ओर खड़े हो गये। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और भीष्म अर्जुन के पास खड़े थे। कुन्ती देवी अपने दोनों पुत्रों को जानती थी, अतः चिन्ता के कारण उन्हें मूर्च्छा आ गयी। जब वह सचेत हुई, तब उन्हें युद्ध में उद्यत देख व्याकुलता-वश रोकने का कोई उपाय उसे ध्यान में नहीं आया।

कृपाचार्य ने कहा—'कर्ण ! कुरुवंश का रत्न, अर्जुन कुन्ती-देवी का सबसे छोटा पुत्र है। तुम भी अपने माता-पिता और अपने वंश का नाम बताओ। इसके पश्चात हम निश्चय करेंगे कि तुम दोनों में द्वन्द्व युद्ध होना चाहिए या नहीं।'

दुर्योधन बोला—'यदि अर्जुन राजा से भिन्न पुरुष के साथ लड़ना नहीं चाहता, तो मैं इन्हें अंग देश के राजपद पर अभि-

षिक्त करता हूँ।' ऐसा कह उसने कर्ण के मस्तक पर तिलक लगा दिया और तब से वे दोनों घनिष्ठ मित्र बन गये।

तदनन्तर द्रोणाचार्य ने गुरु दक्षिणा हेतु शिष्यों को कहा—'शिष्यो! पांचाल-राज द्रुपद को बंदी बनाकर मेरे पास ले आओ। यही मेरे लिए सर्वोत्तम गुरु-दक्षिणा होगी।' गुरु की आज्ञा सुन राजकुमारों ने द्रोणाचार्य के साथ पांचाल देश के लिए प्रस्थान किया। पांचाल-राज द्रुपद कौरवों के द्वारा आक्रमण की सूचना पाकर अपनी विशाल सेना और भाइयों सहित युद्ध करने के लिए नगर से बाहर निकले। वीर अर्जुन को विश्वास था कि कौरव राजा द्रुपद को बंदी नहीं बना सकेंगे, इसलिए गुरुदेव की आज्ञा ले,वह युद्ध-स्थल से दूर ठहर गया। राजा द्रुपद ने कौरवों पर धावा कर अनेक वीरों को मूर्च्छित कर दिया। यद्यपि दुर्योधन, विकर्ण, सुबाहु, दीर्घलोचन, दुःशासन और कर्ण, द्रुपद से युद्ध कर रहे थे, किन्तु कौरव उन्हें परास्त नहीं कर सके। द्रुपद ने अपने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण के अंगों को क्षत-विक्षत कर, दिया, इससे भयभीत हो, वह युद्ध-भूमि से भाग गया। कौरव सैनिकों का आर्त्तनाद सुन, पाण्डव द्रोणाचार्य को प्रणाम कर पांचाल नरेश द्रुपद से युद्ध करने लगे। पाण्डुनन्दन-अर्जुन राजा द्रुपद पर अपने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगा और भीमसेन ने उनकी सेना का भीषण संहार करना आरम्भ कर दिया। सत्य-पराक्रमी सत्यजीत, द्रुपद की सहायता हेतु अर्जुन से युद्ध करने लगे, किन्तु अर्जुन ने सबको परास्त कर, राजा द्रुपद को बन्दी बना लिया।

उन्होंने भीमसेन से कहा—'भैया! राजा द्रुपद हमारे सम्बन्धी हैं, अतः इनकी सेना का संहार न करो। गुरु दक्षिणा के रूप में हमें गुरुजी को महाराज द्रुपद को ही समर्पित करना है।' यह कहकर पाण्डवों ने मंत्रियों सहित द्रुपद को बन्दी बना द्रोणाचार्य को उपहार के रूप में दे दिया।

द्रोणाचार्य ने राजा द्रुपद से कहा—'वीर! तुम शत्रुओं के

वश में हो। अब पुरानी मित्रता चाहते हो क्या ? हम क्षमाशील ब्राह्मण हैं। तुम बचपन में मेरे साथ खेला करते थे, अतः तुम्हारे ऊपर मेरा स्नेह है। नरेश्वर! मैं पुनः तुमसे मैत्री के लिए प्रार्थना करता हूँ। मैं तुमसे तुम्हारा आधा राज्य लूँगा।'

द्रुपद—'आचार्य ! आप उदार, पराक्रमी और महात्मा हैं। मैं आपके साथ मैत्री और प्रेम चाहता हूँ।' द्रोणाचार्य ने उनका आधा राज्य ले आदर-सत्कार के साथ उन्हें छोड़ दिया। कुछ समय पश्चात राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को धृति, स्थिरता, सहिष्णुता, दयालुता, सरलता तथा अविचल सौहार्द्र आदि गुणों से सम्पन्न और प्रजा पालने योग्य जानकर युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया। थोड़े ही दिनों में कुन्तीनंदन युधिष्ठिर अपने शील तथा सद्व्यवहार द्वारा प्रजा में महाराज पाण्डु से भी अधिक प्रिय हो गये। पाण्डुनंदन भीमसेन नित्य खड्ग, गदा और रथ-युद्ध की शिक्षा बलराम से लेते थे, अतः शिक्षा समाप्त होने पर वे राजा द्युत्सेन के समान पराक्रमी हो गये। अर्जुन धनुर्विद्या में निपुण निकले, इसलिए द्रोणाचार्य को विश्वास हो गया कि इसके समान अन्य योद्धा इस समय पृथ्वी पर नहीं है।

गुरु द्रोण ने कौरवों की सभा में अर्जुन से कहा—'भारत ! मेरे गुरु अग्निवेश नाम से विख्यात हैं। उन्होंने पूर्वकाल में महर्षि अगस्त्य से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी। मैं उसी महात्मा अग्निवेश का पुत्र हूँ। एक पात्र से दूसरे को विद्या प्राप्ति कराने के उद्देश्य से मैंने तुम्हें ब्रह्मशिर नामक अस्त्र प्रदान किया है। वह अमोघ अस्त्र वज्र के समान है। उसमें पृथ्वी को भस्म करने की शक्ति है। मुझे वह अस्त्र देते समय, गुरु अग्निवेश ने कहा था कि तुम यह अस्त्र मनुष्यों पर न चलाना। वीर अर्जुन ! यदि युद्ध-भूमि में, मैं भी तुम्हारे विरुद्ध लड़ने आऊँ तो तुम निस्संकोच मेरा सामना करना।'

वीर अर्जुन ने अपने पराक्रम की परीक्षा हेतु सौवीर देश के राजा पर चढ़ाई कर उसे पराजित कर दिया। उसने यवन

देश के राजा को भी अपने अधीन कर लिया, जिसे राजा पाण्डु नहीं जीत सके थे। वीर अर्जुन ने सौवीर निवासी सुमित्र का दमन किया। अर्जुन ने भीमसेन की सहायता से पूर्व दिशा के योद्धाओं को भी जीता। इसी प्रकार धनंजय ने दक्षिण दिशा में भी विजय पाई और वहाँ के राजाओं से उन्हें प्रचुर धन प्राप्त हुआ। पाण्डवों ने दूसरे राष्ट्रों को जीतकर अपने राष्ट्र की वृद्धि की। उनके बल और पराक्रम की कीर्ति सुन राजा धृतराष्ट्र चिन्तित रहने लगे।

उन्होंने एक दिन राजनीति और अर्थशास्त्र के पण्डित तथा मंत्रों के ज्ञाता कणिक से पूछा—'मुझे पाण्डवों से किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए ?'

कणिक ने कहा—'राजन् ! राजा को पुरुषार्थी और सर्वदा दण्ड देने के लिए उद्यत होना चाहिए। उसे अपनी दुर्बलता प्रकट नहीं करनी चाहिए और शत्रु के छिद्र देखते हुए अनिष्ट करने वालों का वध करना चाहिए। यदि शत्रु दुर्बल हो तो भी उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। राजन् ! पाण्डव बहुत बलवान हैं, अतः ऐसी नीति से काम लीजिये, जिससे आगे चलकर आपको पछताना न पड़े।'

लाक्षागृह तथा बकासुर वध

तदनन्तर राजा दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्ण ने कुन्ती सहित पाण्डवों को आग में जला डालने का निश्चय कर वारणावत में एक लाक्षागृह का निर्माण करवाया। तत्वज्ञानी विदुर को उनकी गुप्त मंत्रणा का पता चल गया। वे सदा पाण्डवों के हित में संलग्न रहते थे। उन्होंने एक सुदृढ़ नौका बनवाई और यशस्विनी कुन्ती को पुत्रों सहित वारणावत के लाक्षागृह से रात्रि के समय गंगाजी की यात्रा करने को कहा। विदुरजी के आदेशानुसार पाण्डवों ने यात्रा करने के पश्चात उस नौका को गंगाजी

में डुबो दिया और वन में चले गये। इसी समय एक निषाद जाति की स्त्री अपने पाँचों पुत्रों के साथ उस लाक्षागृह में ठहरी हुई थी। रात्रि में वह बिचारी निरपराध अपने पुत्रों सहित उस गृह में जलकर भस्म हो गयी और पाण्डव मृत्यु से बच गये। वारणावत के नगरवासी लाक्षागृह को दग्ध हुआ देख, पाण्डवों के लिए शोक करने लगे। जब धृतराष्ट्र ने यह समाचार सुना, तब वह भी शोकाकुल हो गया। चलते-चलते पाण्डव भूख और प्यास से व्याकुल हो थक गये, अत: वन में ही विश्राम करने लगे। भीमसेन जल लाने के लिए जंगल में आगे बढ़े। उन्होंने एक जलाशय देखा। उसने पहले स्नान कर अपनी थकान मिटाई, फिर जल लेकर जहाँ माता और भाई विश्राम कर रहे थे वहाँ गया। अपनी माता और भाइयों को पृथ्वी पर सोते हुए देख उसे बड़ा दु:ख हुआ। पाण्डवों के विश्रामस्थल से थोड़ी दूर पर हिडिम्ब नामक राक्षस रहता था। वह बड़ा क्रूर और मनुष्य-भक्षी था। देवेच्छा से उसकी दृष्टि उन महारथी पाण्डवों पर पड़ी। भूख से व्याकुल राक्षस हिडिम्ब पाण्डवों की ओर आया और भीमसेन पर टूट पड़ा। भीमसेन ने उस राक्षस को बल-पूर्वक पकड़ लिया और कुछ दूर घसीटकर ले गया। अब दोनों में भीषण मल्लयुद्ध होने लगा। भीमसेन ने उस राक्षस को जोर से पृथ्वी पर पटक दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी।

हिडिम्ब की बहिन हिडिम्बा अलौकिक रूप धारण कर माता कुन्ती के पास आई और उन्हें प्रणाम कर बोली—'इस निर्जन वन में, मैं और मेरा भाई हिडिम्ब रहते हैं। मेरा क्रूर भाई आपके पुत्रों की हत्या करने यहाँ आया था। मैं भी उसके साथ ही आई थी और मेरी दृष्टि महाबली भीमसेन पर पड़ी। मैंने अपने मन में उन्हें पति के रूप में वरण किया है, अत: मेरी इच्छा आप पूर्ण करें। आप मुझे एक मूढ़ स्वभाव की स्त्री मान-कर या अपनी भक्त जानकर अथवा अनुचरी समझकर कृपा करिये। मैं आप लोगों का अभीष्ट ही करूँगी। मैं न तो यातुधानी

हूँ और न निशाचरी ही। मैं राक्षस जाति की सुशीला कन्या हूँ। मेरा नाम सालकटकंटी है। मैं आप सभी की सेवा में निरंतर संलग्न रहूँगी। आपकी आज्ञा से ही भीमसेन मुझे स्वीकार करेंगे।'

कुन्ती देवी बोली—'पुत्रो! सालकटकंटी ने उत्तम धर्म का ही प्रतिपादन किया है। यदि इसकी हार्दिक भावना भी भीमसेन के प्रति दूषित हो, तो भी यह उसका क्या बिगाड़ लेगी? तुम सबकी सम्मति हो तो यह भीमसेन की सेवा में रहे, जबतक इसके पुत्र न हो जाये।' इस पर सब भाइयों ने माता के हितपूर्वक कथन का अनुमोदन किया। माता की आज्ञानुसार भीमसेन ने हिडिम्बा से विवाह किया और उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगे। कुछ काल पश्चात हिडिम्बा के भीमसेन से महान बलवान पुत्र उत्पन्न हुआ। उस वीर ने सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र में बड़ी निपुणता प्राप्त की और घटोत्कच के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महामना इन्द्र ने कर्ण की अनुपम शक्ति का आघात सहन करने के लिए ही घटोत्कच की सृष्टि की थी। हिडिम्बा से विदा ले, महारथी पाण्डव वनस्थलियों और सरोवरों को देखते हुए यात्रा कर रहे थे। पाण्डवों के सिर पर जटाएं थीं और शरीर पर मृगचर्म। पाण्डव सब शास्त्रों के ज्ञाता थे, अत: प्रतिदिन उपनिषद्, वेद-वेदांग तथा नीतिशास्त्र का स्वाध्याय किया करते थे। मार्ग में उन्हें पितामह व्यासजी मिले।

पाण्डवों ने माता सहित उन्हें प्रणाम किया। व्यासजी ने कहा—'मैं तुम्हारे संकटों को जानता हूँ। धृतराष्ट्र-पुत्रों ने तुम्हें जिस प्रकार अधर्मपूर्वक राज्य से बहिष्कृत किया है, इसके लिए तुम्हें विषाद नहीं करना चाहिए। यह सब तुम्हारे भावी सुख के लिए ही हो रहा है। यद्यपि मेरे लिए पाण्डव और कौरव दोनों समान हैं, पर जो धर्म के मार्ग पर चलते हैं, उन पर मेरा अधिक स्नेह रहता है। यहाँ से पास ही एक रमणीय एकचक्रा नगर है, जहाँ आधि-व्याधि का भय नहीं है। तुम सब वहीं छिपकर रहो

और मेरे पुनः आने की प्रतीक्षा करो।' उन्होंने कुन्ती को सान्त्वना दी और कहा—'तुम्हारे पुत्र धर्मपरायण हैं, अतः धर्म से पृथ्वी को विजित कर राजाओं पर शासन करेंगे। भीमसेन और अर्जुन के बल से समुद्र पर्यन्त सारी वसुधा पाण्डवों के अधिकार में आ जायगी। वे राजसूय तथा अश्वमेघ यज्ञ करेंगे।' ऐसा कहकर व्यासजी ने उन्हें एकचक्रा नगर में एक ब्राह्मण के घर में ठहराया और उनसे विदा ले चले गये। पाण्डव ब्राह्मण के घर में रहकर भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह करते थे। उनके सद्‌गुणों के कारण वहाँ के नागरिक उनसे प्रेम करने लगे। प्रतिदिन रात्रि के आरम्भ में जो भिक्षा वे लाते, माता कुन्ती उसे यथोचित सबमें बाँट देती थीं, किन्तु भिक्षा का अधिक भाग भीमसेन को मिलता था। एक दिन किसी कार्यवश भीमसेन माता कुन्ती के साथ घर में रहा। उस दिन ब्राह्मण के घर में सहसा आर्त्तनाद होने लगा।

ब्राह्मण परिवार को रोते और विलाप करते देख माता कुन्ती ने भीमसेन से कहा—'बेटा! हम लोग ब्राह्मण के घर में सुखपूर्वक निवास कर अपने दुःख और दैन्य को भूल गये हैं। मैं सदा सोचती रहती हूँ कि इस ब्राह्मण का कौन-सा प्रिय कार्य करूँ। जो किसी के ऊपर उपकार करता है, वही मनुष्य है। जो किये हुए उपकार का बदला चुकाता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। इस समय निश्चय ही इस ब्राह्मण पर कोई दुःख आ पड़ा है, जिसके कारण वह विलाप कर रहा है। यदि इसकी हम सहायता करें तो वास्तविक प्रत्युपकार हो सकता है।'

भीमसेन ने कहा—'माँ! तुम्हारी आज्ञा मिलने पर मैं इस ब्राह्मण का यदि अत्यन्त दुष्कर कष्ट होगा तो भी उसे निवारण करने का उद्योग करूँगा।' तदनन्तर माता कुन्ती ब्राह्मणी के पास गयी और उसके दुःख का कारण पूछा।

ब्राह्मणी आर्त्त स्वर में बोली—'पुण्येश्वरी! जगत के इस जीवन को धिक्कार है, क्योंकि यह सारहीन, निरर्थक, दुःख की जड़, पराधीन और अप्रिय घटनाओं को भोगने वाला है। मनुष्य

को जीवन-काल में बड़ी चिन्ता का सामना करना पड़ता है, अतः उसे दुःख की प्राप्ति होती है। मनुष्य के किये हुए कर्मों के अनुसार जीवात्मा अकेला ही धर्म, अर्थ और काम का सेवन करता है। कुछ लोग मोक्ष को सर्वोत्तम बताते हैं, किन्तु वह भी मेरे लिए किसी प्रकार से सुलभ नहीं है। मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं दिखाई देता, जिससे इस समय आई हुई विपत्ति से मैं छुटकारा पा सकूँ। मैंने अपने पति से पहले ही दूसरे स्थान पर चले जाने का आग्रह किया था, जिससे हम सुखपूर्वक रह सकें, किन्तु उसने मेरी बात नहीं मानी। आज वह विनाश की घड़ी आ पहुँची है, जो मेरे लिए अत्यन्त दुःख का कारण है।'

ब्राह्मण बोला—'मैं अपनी सहधर्मिणी के साथ, जो इंद्रियों को संयम में रखने वाली है, और जो माता के समान मेरा भरण-पोषण करती है, अत्यन्त दुःखी हूँ। यह सती-साध्वी कुलीन, सुशीला, और संतानवती है। इसने मेरा कभी अपकार नहीं किया, अतः इसे और अपने प्रिय पुत्र और पुत्री को मैं कैसे त्याग सकता हूँ? जिस पर पुण्य-लोक, वंश-परम्परा और सुख निर्भर है, उस निष्पाप बालक को मैं त्याग नहीं सकता। इनमें से किसी का भी त्याग, विद्वानों ने निन्दनीय बताया है। आज मैं कठिन विपत्ति में पड़ गया हूँ, जिससे पार होना मेरी शक्ति के बाहर है, इसलिए मैं मर जाना चाहता हूँ।'

ब्राह्मणी ने कहा—'आप विद्वान हैं, अतः आपको साधारण मनुष्य की भाँति संताप नहीं करना चाहिए। संसार में एक-न-एक दिन, सभी को मरना पड़ता है, इसलिए जो अवश्यम्भावी है, उसके लिए दुःख नहीं करना चाहिए। पत्नी, पुत्र और पुत्री आपके लिए अभीष्ट हैं, अतः मैं राक्षस के समीप चली जाऊँगी। पत्नी के लिए सबसे बड़ा कर्तव्य है कि वह अपने प्राणों को निछावर करके भी पति की भलाई करे। एक पुत्र और एक पुत्री मैं उत्पन्न कर चुकी हूँ, अतः संतानोत्पत्ति से उऋण हो चुकी हूँ। आप इन दोनों संतानों का पालन-पोषण और संरक्षण करें।

आपके बिना मैं और ये दोनों बच्चे नष्ट हो जायेंगे, अतः आप अपने प्राणों को न त्यागिये। एक ओर संपूर्ण कुल हो और दूसरी ओर कुल की वृद्धि कराने वाला शरीर हो, तो उन दोनों की तुलना में पुरुष-शरीर भारी होगा, अतः आप मेरे द्वारा अभीष्ट कार्य की सिद्धि कीजिये और स्वयं अपने को इस संकट से बचाइये। धर्मज्ञों ने नारी को अवध्य बताया है, इसलिए वह राक्षस भी मुझे स्त्री समझकर, सम्भव है, न मारे, और यदि मेरी मृत्यु हो भी गयी, तो मुझे दुःख न होगा। मेरी मृत्यु के पश्चात, आप दूसरी स्त्री प्राप्त कर, पुनः गृहस्थ-धर्म प्रतिष्ठित कर लें।' ब्राह्मणी के ऐसा कहने पर ब्राह्मण देवता ने अत्यन्त दुःखित हो, आँसू बहाते हुए उसे हृदय से लगाया।

माता-पिता को दुःख में डूबे हुए देख कन्या बोली—'पिताजी ! एक-न-एक दिन आप दोनों को मेरा परित्याग करना ही पड़ेगा, तब आज ही मुझे त्यागकर इस कुल की रक्षा कर लीजिये और शोक सागर से पार हो जाइये। जो संतान अपने माता-पिता को दुर्गम संकट से पार लगाए अथवा मृत्यु के पश्चात भी उनका उद्धार करे, उसे ही विद्वान वास्तव में संतान मानते हैं। यदि आप लोग परलोकवासी हो गये, तो मेरा छोटा भाई भी बिना लालन-पालन के नष्ट हो जायेगा, तब पितरों को पिण्ड कौन देगा ? मैं पिता, माता और भाई की मृत्यु दुःख से निश्चित हो मर जाऊँगी। पुत्र तो पिता की आत्मा है, पत्नी मित्र है, किन्तु कन्या संकट ही कही गयी है। आप इस संकट से अपने को बचा लीजिये और मुझे भी धर्म में लगाइये। पिताजी ! जो कार्य अवश्य करना है, उसका निश्चय करने में आपको समय व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। आप लोग इस दुःख से मुक्त हो जाइये और मैं अमरलोक में सुखी हो निवास करूँगी।' उनकी वार्ता सुन कुन्ती ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—'आप लोग मुझे अपने दुःख का कारण बताइये ?'

ब्राह्मण वोला—'साध्वी ! इस नगर के पास एक बक नामक

नरभक्षी अत्यन्त बलवान राक्षस रहता है, वह शक्तिशाली असुर-राज इस नगर की रक्षा करता है, इसलिए हमें हिंसक प्राणियों से भय नहीं होता। प्रत्येक गृहस्थ अपनी बारी आने पर एक मनुष्य और पशु भक्षण के लिए उसके पास भेजता है। जो गृहस्थ उससे छूटने का प्रयत्न करता है, वह राक्षस उसके परिवार को मारकर खा जाता है। आज हमारी बारी आई है, अतः मुझे उस राक्षस को कर के रूप में नियत भोजन और एक मनुष्य की बलि देनी होगी। मुझे उस निशाचर से छूटने का कोई उपाय दिखाई नहीं देता, अतः मैं दुःख के महासागर में डूबा हुआ हूँ।

ब्राह्मण का दुःखपूर्ण कथन सुन कुन्ती बोली—'विप्र ! आप शोक न करें। मेरे पाँच पुत्र हैं। उनमें से एक उस पापी राक्षस के पास बलि-सामग्री ले, चला जायगा।'

ब्राह्मण बोला—'मैं अपने अतिथि का प्राण-नाश अपने जीवन के लिए नहीं करूँगा। ऐसा निन्दनीय कार्य तो नीच और अधर्मी पुरुष भी नहीं करते। ब्रह्महत्या बहुत बड़ा पाप है, अतः आत्म-हत्या को ही मैं अच्छा समझता हूँ। महात्माओं ने कहा है कि मनुष्य को क्रूर और निंदित कर्म नहीं करने चाहिए। मेरा विनाश ही सर्वश्रेष्ठ होगा, किन्तु ब्राह्मण-वध की अनुमति मैं नहीं दूँगा।

कुन्ती ने कहा—'मैंने निश्चय किया है कि अपना पुत्र समर्पित कर तुम सबकी रक्षा करूँगी। चाहे किसी माता के सौ पुत्र भी क्यों न हों, उसे अपने सब पुत्र प्रिय लगते हैं। मेरे पुत्र का राक्षस विनाश नहीं कर सकता, क्योंकि वह पराक्रमी, मंत्र-सिद्ध और तेजस्वी है। आप मेरे इस कथन को किसी से भी नहीं कहेंगे, अन्यथा वे मंत्र सीखने के लोभ में हमारी शांति भंग करेंगे।' कुन्ती देवी के इस कथन पर ब्राह्मण सपरिवार अत्यन्त प्रसन्न हुआ। भीमसेन जब राक्षस के पास बलि लेकर जाने लगे, उसी समय उनके भाई भिक्षा लेकर आ गये।

युधिष्ठिर ने भीमसेन को जंगल में राक्षस के पास जाते देख माता कुन्ती से कहा—'मां! आपने यह असह्य और दुष्कर साहस

क्यों किया है ? साधु पुरुष अपने पुत्र के परित्याग को अच्छा नहीं बताते। दूसरे के पुत्र के लिए आप अपने पुत्र को त्याग रही हैं, यह कार्य लोक और वेद दोनों के विरुद्ध है।'

माता कुन्ती बोली—'बेटा! तुम्हें भीमसेन के लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए। ब्राह्मण के घर में हम अत्यन्त सुख में हैं। इस घर में हमारा जितना सत्कार हुआ है, उसके कारण हम पिछले दुःख को भूल गये। ब्राह्मण के उपकार से उऋण होने का मुझे यही उत्तम उपाय दिखाई देता है। मैंने लाक्षागृह में भीमसेन का महान पराक्रम देखा है। हिडिम्ब का वध भी मेरे ही सामने हुआ था, अतः भीमसेन के बल पर मेरा पूरा विश्वास है। भीमसेन राक्षस को निश्चित ही मार डालेगा, यह मेरी मान्यता है। इस कार्य से ऋण चुक जायेगा और धर्म का पालन भी होगा।' माता का कथन सुन भीमसेन माता और बड़े भाई को प्रणाम कर राक्षस के पास चले गये और उसे पुकार-पुकारकर वह अन्न स्वयं ही खाने लगे। यह देख नरभक्षी राक्षस भीमसेन को मार डालने की इच्छा से भयंकर गर्जना करता हुआ उसकी ओर दौड़ा और एक विशाल वृक्ष द्वारा प्रहार किया, किन्तु विफल रहा। भीमसेन ने उसी विशाल वृक्ष द्वारा उसे गहरी चोट पहुँचाई। पसली की हड्डियों के टूट जाने पर, विशालकाय बकासुर प्राणहीन हो, पृथ्वी पर चीत्कार करता हुआ गिर पड़ा। बकासुर की मृत्यु के बाद, उसके कुटुम्बी भय से व्याकुल हो भाग गये और उस नगर के निवासी, सुख-पूर्वक जीवन-यापन करने लगे। बकासुर का वध करने के पश्चात पाण्डव उस ब्राह्मण के घर में वेदों और उपनिषदों का स्वाध्याय करने लगे।

द्रौपदी-स्वयंवर

राजा द्रुपद ने पुत्र की कामना से यज्ञ किया था। उनके मन में द्रोणाचार्य से प्रतिशोध लेने की भावना थी। ऋषि-श्रेष्ठ याज और

उपयाज ने इस यज्ञ का संचालन किया। यज्ञ की समाप्ति के कुछ समय बाद राजा द्रुपद के घर धृष्टद्युम्न और देवी कृष्णा ने जन्म लिया। धृष्टद्युम्न ने आचार्य द्रोण से अस्त्र विद्या की शिक्षा पाई। द्रौपदी के स्वयंवर की बात सुन ब्राह्मण देवता से विदा ले, पाण्डव माता कुन्ती के साथ पांचाल देश गये। मार्ग में वे गंगा तट पर सोमाश्रयायन नामक तीर्थ में पहुँचे। गंधर्वराज चित्रसेन को वहाँ पाण्डवों का आगमन अच्छा नहीं लगा, अतः उसने वीर अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। वीर अर्जुन ने उसे परास्त कर दिया, किन्तु कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने अर्जुन को उसका वध करने से रोक दिया। अब गन्धर्व चित्रसेन अर्जुन का मित्र बन गया और उसने उसे गंधर्व विद्या सिखाई। तदनन्तर महर्षि देवल के छोटे भाई धौम्य मुनि को, जो वहीं तपस्या कर रहे थे, पाण्डवों ने पुरोहित बनाया। धौम्य मुनि के साथ पाण्डव द्रुपद की राजधानी में पहुँचे और एक कुम्हार के घर में ठहर गये। महाराजा द्रुपद अपनी पुत्री कृष्णा का विवाह वीर अर्जुन के साथ करना चाहते थे, किन्तु उन्हें पाण्डवों का कहीं भी पता नहीं चला। महाराजा द्रुपद ने एक विशाल धनुष बनवाया, जिसे झुकाना अत्यन्त कठिन था। उन्होंने एक यंत्र भी बनवाया, जो घूमता रहता था और जिसके छिद्र में लक्ष्य लगाया गया था। महाराजा ने घोषणा की थी कि जो वीर रंगमण्डप में इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर बाण द्वारा यंत्र के छेद से लक्ष्य को वेध डालेगा, उससे मैं अपनी कन्या का विवाह कर दूँगा। इस घोषणा को सुनकर अनेक राजा, महामना द्रुपद की राजधानी में आये। बहुत से ऋषि मुनि भी स्वयंवर देखने आये थे। कुरुवंशी दुर्योधन भी कर्ण के साथ वहाँ उपस्थित हुआ। भगवान श्रीकृष्ण भी यादव वीरों के साथ स्वयंवर देखने आये। उन्होंने पाण्डवों को जो अंगों में भस्म लपेटे हुए थे, देखते ही पहचान लिया। महामना द्रुपद ने सब अतिथियों की भलीभाँति सेवा-पूजा की। पाण्डव भी महाराजा द्रुपद की समृद्धि का अव-

लोकन करने ब्राह्मणों के साथ बैठ गये। उसी समय सुन्दर वस्त्र और आभूषणों में विभूषित, दो जयमाला लिये द्रुपद कुमारी उस रंगभूमि में आई।

धृष्टद्युम्न ने रंगभूमि में कहा—'जो उत्तम क्षत्रिय कुल का भूपाल, इस धनुष और वाण द्वारा, यंत्र के छेद के भीतर से लक्ष्य को बेध देगा, मेरी बहन कृष्णा उसकी धर्मपत्नी हो जायेगी।' इसके पश्चात धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी को आमंत्रित राजाओं का परिचय दिया। द्रुपद कुमारी को पाने की इच्छा से रंग-मण्डप में एक-एक राजा उठे और धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने का उद्योग करने लगे। जब उनसे यह कार्य सफल नहीं हुआ, तब वे लज्जित हो अपने-अपने आसनों पर पुनः बैठ गये। सब राजाओं की यह दशा देख धनुर्धारियों में श्रेष्ठ कर्ण ने उस धनुष को उठा लिया और प्रत्यंचा चढ़ा दी।

कर्ण को देख द्रौपदी ने उच्च स्वर में कहा—'मैं सूत जाति के पुरुष का वरण नहीं करूँगी।' यह सुन अमर्षयुक्त कर्ण ने भगवान सूर्य की ओर देखा और उस विशाल धनुष को पृथ्वी पर डाल दिया। तब यमराज के समान बलवान, धीर, वीर, दमघोष का पुत्र शिशुपाल धनुष उठाने चला, किन्तु असफल रहा। राजा दुर्योधन को अपने बल का बड़ा अभिमान था, इसलिए वह भी धनुष को उठाने हेतु शीघ्रता से बढ़ा, किन्तु धनुष उठाते समय पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब निमंत्रित राजा लक्ष्य-भेद करने में असफल हो गये तब ब्राह्मण वेशधारी वीर अर्जुन अपने आसन से उठा, धनुष की परिक्रमा की और उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। वीर अर्जुन बल में इंद्र और धैर्य में हिमालय के समान दिखायी देता था। उसने भगवान शंकर को मन-ही-मन प्रणाम किया और भगवान श्रीकृष्ण का चिन्तन कर दृढ़तापूर्वक खड़ा हो गया। उसने एक बाण हाथ में लिया और लक्ष्य को वेधकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। यह देख सभा में आनन्द की लहर दौड़ गई और पुरवासी अर्जुन के मस्तक पर फूलों की वर्षा

करने लगे। वीर अर्जुन का यह अपूर्व कार्य देखकर महाराजा द्रुपद के हर्ष की सीमा न रही, और सुन्दर फूलों की जयमाला को द्रौपदी ने अर्जुन के गले में डाल दिया। स्वयंवर-सभा में वीर अर्जुन द्रौपदी को लेकर बाहर निकलने लगे तब ब्राह्मणों ने उनका बड़ा सत्कार किया। राजा द्रुपद ने ब्राह्मण को अपनी कन्या दी है, यह विचार कर उपस्थित राजा क्रोधपूर्वक उसे मार डालने के लिए उद्यत हो गये। यह अनुचित कार्य महाधनुर्धर अर्जुन और पाण्डुनन्दन भीमसेन सहन न कर सके, अतः उनका सामना करने खड़े हो गये।

भगवान श्रीकृष्ण ने दोनों पक्षों में युद्ध होने की संभावना मानकर बलरामजी से कहा—'भैया! ये दोनों वीर अर्जुन और भीमसेन हैं। जो तीन श्रेष्ठ पुरुष ब्राह्मणों के साथ बैठे हैं, वे धर्म पुत्र युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव हैं। लाक्षागृह में इनकी मृत्यु नहीं हुई है।' तदनन्तर कर्ण आदि को अपनी ओर आते देख अर्जुन ने रंगभूमि का धनुष हाथ में ले लिया और भीमसेन ने एक वृक्ष उखाड़ लिया। अब कर्ण अर्जुन से और मद्रराज शल्य भीमसेन से भिड़ गये। महारथी कर्ण ब्रह्मतेज को अजेय मानकर युद्ध से विरक्त हो वहाँ से चला गया। भीमसेन ने मद्रराज शल्य को पृथ्वी पर पटक दिया। भगवान श्रीकृष्ण ने सब राजाओं को अनुनय-विनय कर युद्ध करने से रोका।

तत्पश्चात पाँचों पाण्डव द्रौपदी के साथ कुम्हार के घर चले गये और द्वार पर खड़े होकर जोर से पुकारा—'माँ! हम लोग अपूर्व भिक्षा लाये हैं।' कुन्तीदेवी ने घर के भीतर से ही कह दिया कि 'भिक्षा को सब मिलकर ग्रहण करो।' इसके बाद माँ ने बाहर आकर द्रौपदी को देखा और अपने कथन पर चिन्ता करने लगी। कुरुश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर बड़े बुद्धिमान थे। उन्होंने माता कुन्ती की बात पर दो घड़ी तक विचार किया, फिर बन्धुओं से कहा—'कल्याणमयी द्रौपदी हम सबकी पत्नी होगी।' उसी समय भगवान श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ कुम्हार के घर

आये। उन्होंने माता कुन्ती और अजातशत्रु युधिष्ठिर के चरणों में प्रणाम किया। पाण्डवों ने उनसे यादवों का समाचार पूछा।

महामना युधिष्ठिर बोले— 'वसुदेवनन्दन ! हम सब तो यहाँ छिपकर रहते हैं, फिर आपने हमें कैसे पहचान लिया ?'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'आग को किसी प्रकार भी छिपाया नहीं जा सकता। पाण्डवों को छोड़कर मनुष्यों में कौन ऐसा है, जो यह अद्भुत कर्म कर सके ? बड़े सौभाग्य की बात है कि लाक्षाग्रह से आप सब जीवित बच गये।' पाण्डवों को दूसरे राजा पहचान न लें, यह सोच, भगवान श्रीकृष्ण बलदेवजी के साथ शीघ्र ही वहाँ से चले गये। जब पाण्डुनन्दन भीमसेन और अर्जुन कुम्हार के घर जा रहे थे, तब धृष्टद्युम्न ने गुप्त रूप से उनका पीछा किया। उसने देखा कि सभी पाण्डव, माता कुन्ती और द्रौपदी कुश बिछाकर पृथ्वी पर लेटे हुए दिव्य अस्त्रों की चर्चा कर रहे हैं। यह सब देख और उनका वार्तालाप सुन धृष्टद्युम्न अपने पिता राजा द्रुपद के पास गया। उसने पिता को जो देखा और सुना था वह सब बता दिया। उन वीरों की बातें सुनकर राजा द्रुपद अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने सब पाण्डवों को निमन्त्रण भेजा। माता कुन्ती, पाण्डव और सती-साध्वी कृष्णा राजा द्रुपद के रनिवास में गये। वहाँ माता कुन्ती और पाण्डवों का राजा द्रुपद ने बड़ा आदर-सत्कार किया और उनका परिचय पूछा।

युधिष्ठिर बोले—'राजन् ! हम क्षत्रिय वंश में महात्मा पाण्डु के पुत्र हैं। माता की आज्ञा से द्रौपदी सभी की पटरानी होगी।' राजा युधिष्ठिर से परिचय पाकर, राजा द्रुपद की आँखों में हर्ष के आँसू छलक आये और उसने द्रौपदी का विवाह पाँचों पाण्डवों से कर दिया। जब राजा धृतराष्ट्र और उनके दुरात्मा पुत्रों को पता चला कि पाण्डव जीवित हैं, तब वे दुःख से पीड़ित हो गये।

शकुनि बोला—'कुन्ती के सभी पुत्रों को नष्ट कर देना चाहिए। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो संसार में उपहास के भागी होंगे और हमें अत्यन्त दुःख उठाना पड़ेगा।'

भीष्म ने कहा—'धृतराष्ट्र! मुझे तो पाण्डवों के साथ विरोध या युद्ध करना उचित नहीं लगता। उन वीरों को आधा राज्य दे दो, इसी में सबका हित है।'

द्रोणाचार्य बोले—'मैं सब प्रकार से भीष्मजी से सहमत हूँ। राजा द्रुपद के पास बहू के लिये वर पक्ष की ओर से धन और रत्न लेकर जाना चाहिए। पाण्डवों सहित द्रुपद से सान्त्वनापूर्ण वचन कहकर पाण्डवों को आदरपूर्वक हस्तिनापुर में लाना चाहिए।'

द्रोणाचार्य का कथन सुन विदुरजी बहुत हर्षित हुए। उन्होंने भीष्म और द्रोणाचार्य के कथन का अनुमोदन करते हुए राजा धृतराष्ट्र से कहा—'राजन्! भीष्मजी और आचार्य द्रोण ने आपको जो हितकर और प्रिय वचन कहे हैं, उन्हें आपको धारण करना चाहिए। ये दोनों नर-श्रेष्ठ और बुद्धिमान हैं, अतः आपसे कोई कुटिलतापूर्ण बात नहीं कहेंगे। ये दोनों धर्म के ज्ञाता, महापुरुष हैं, अतः स्वार्थ साधने के लिए किसी का पक्षपात नहीं करेंगे। जैसे दुर्योधन आदि आपके पुत्र हैं, वैसे ही पाण्डव भी हैं, अतः परिवार में कलह न हो, उसे ही मैं कल्याणकारक मानता हूँ। कुन्ती के पुत्रों को जीवित सुनकर नागरिक उन्हें देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। उन सबका भी प्रिय कीजिये। श्रीकृष्ण और बलरामजी आदि सभी पाण्डवों से स्नेह करते हैं, अतः जो कार्य शान्तिपूर्वक हो सकता है, उसे युद्ध के द्वारा क्यों सिद्ध करना चाहते हो?'

धृतराष्ट्र ने कहा—'विदुर! तुम अभी राजा द्रुपद के यहाँ जाओ और देवी कुन्ती, देवरूपिणी वधू कृष्णा के साथ पाण्डवों को सत्कारपूर्वक यहाँ ले आओ।'

विद्वान विदुर नाना प्रकार के धन-रत्नों की भेंट लेकर राजा द्रुपद के यहाँ गये। राजा द्रुपद ने अति हर्ष से उनका आदर-

सत्कार किया। विदुर भगवान श्रीकृष्ण और पाण्डवों से मिले और सबको स्नेहपूर्वक हृदय से लगाया। उन्होंने राजा द्रुपद को महाराज की आज्ञा सुनाई। 'राजन् ! कुन्ती, द्रौपदी और पाण्डवों को शीघ्र हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दीजिये।' यह सुन, राजा द्रुपद ने सबको प्रेमपूर्वक विदा किया। राजा धृतराष्ट्र ने पाण्डव वीरों का आगमन सुन, कौरवों को उनकी अगवानी करने भेजा। हस्तिनापुर में पहुँचने पर नगरवासियों ने पाण्डवों का स्वागत-सत्कार किया। पाण्डवों ने राजा धृतराष्ट्र, महात्मा भीष्म, द्रोणाचार्य तथा अन्य वंदनीय पुरुषों के चरणों में प्रणाम किया। दुर्योधन की रानी ने अन्य बंधुओं के साथ द्रौपदी का स्वागत किया। द्रौपदी ने माता गांधारी को प्रणाम किया और उनसे अनेक आशीर्वाद प्राप्त किये। तदनन्तर कुन्ती देवी ने पाण्डवों और पांचाली कृष्णा को लेकर अपने महल में प्रवेश किया।

युधिष्ठिर का राज्याभिषेक

जब पाण्डव स्थायी रूप से अपने महल में निवास करने लगे, तब एक दिन राजा धृतराष्ट्र और भीष्म ने कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर से कहा—'मेरी आज्ञा से पाण्डु ने इस राज्य को बढ़ाया और पिता के समान इसका पालन भी किया। मेरे भाई पाण्डु बड़े बलवान थे, अतः वे हमारे हित के लिए सदा दुष्कर कार्य किया करते थे। मेरे दुरात्मा पुत्र दर्प और अहंकार से प्रभावित रहते हैं, इसलिए बहुधा वे मेरी आज्ञा का पालन नहीं करते और अपने स्वार्थ-साधन में ही लगे रहते हैं। मैं चाहता हूँ कि उन दुरात्माओं के साथ तुम्हारा झगड़ा न हो, अतः तुम आधा राज्य लेकर खाण्डव-प्रस्थ में निवास करो। विदुर! तुम शीघ्र राज्याभिषेक की सामग्री लाओ। मैं आज ही प्रजावर्ग के सामने कुरुकुलनन्दन युधिष्ठिर का अभिषेक करूँगा। राजा पाण्डु ने मुझे राज्य देकर,

जो उपकार किया था, उसका बदला मैं आज चुकाना चाहता हूँ।' राजा धृतराष्ट्र के वचनों का भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर और भगवान श्रीकृष्ण ने स्वागत किया। उसी समय वहाँ महर्षि व्यास पधारे। पाण्डव और कौरव जब उनकी पूजा कर चुके, तब भगवान व्यास ने सबकी सम्मति से अभिषेक कार्य सम्पन्न किया और राजा युधिष्ठिर को सबने अनेक आशीर्वाद दिये।

धृतराष्ट्र ने कहा—'युधिष्ठिर! तुम्हारा राज्याभिषेक हो गया है, जो सामान्य पुरुषों के लिए दुर्लभ है। नृपश्रेष्ठ पुरुरवा, आयु, नहुष तथा ययाति खाण्डवप्रस्थ में ही निवास करते थे। कुछ समय बाद मुनियों ने बुध-पुत्र के कारण इसे नष्ट कर दिया था। तुम इस नगर को पुनः बसाओ और अपने राष्ट्र की श्रीवृद्धि करो।' राजा धृतराष्ट्र की बात मान पाण्डवों ने उन्हें प्रणाम किया और खाण्डवप्रस्थ की ओर चल दिये, जो भयंकर वन के रूप में परिणत हो गया था। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण की सहायता से पाण्डवों ने उस स्थान को शोभायमान किया और वह स्थान इन्द्रप्रस्थ के नाम से विख्यात हुआ।

राजा युधिष्ठिर बोले—'निष्पाप माधव! आपकी ही कृपा से मैंने राज्य प्राप्त किया है। आपके ही प्रभाव से दुर्गम तथा निर्जन प्रदेश आज धनधान्य से सम्पन्न राष्ट्र बन गया है। आप ही हमारे माता-पिता और इष्टदेव हैं। पाण्डवों के लिए जो अभीष्ट हो, उसी कार्य को करने की आप हमें अनुमति दें।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—महाभाग! आपको अपने ही धर्म के प्रभाव से राज्य प्राप्त हुआ है। धृतराष्ट्र के पुत्र दुराचारी हैं, किन्तु जब आप धर्म की शरण में रहते हैं, तब वे आपका क्या बिगाड़ सकते हैं? आप धर्म-मर्यादा का अनुसरण करते हुए पृथ्वी का पालन और गुरुजनों की सेवा कीजिये।'

कुन्ती देवी बोली—'केशव! लाक्षागृह में जाकर मैंने जो कष्ट भोगे हैं, उन्हें कोई नहीं जानता। गोविन्द! तुम्हारी ही सहायता से मैं इस दुःख-समुद्र से पार हुई हूँ। प्रभो! तुम अनाथों और दीन-

दुःखियों के रक्षक हो। तुम्हारे दर्शन से हमारे सब दुःख दूर हो जाते हैं। महामते ! इन पाण्डवों की तुम सदा रक्षा करना। ये तुम्हारे चिन्तन से ही जीवन धारण करते हैं।'

तदनन्तर कुन्ती देवी से विदा ले भगवान श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ द्वारिकापुरी चले गये।

सत्यप्रतिज्ञ महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर जब धर्मपूर्वक राज्य कर रहे थे, तब एक दिन देवर्षि नारद अकस्मात उनके पास आये। विप्रवर नारद सम्पूर्ण वेदान्त शास्त्र के और अस्त्र-विद्या के ज्ञाता थे। वे ब्रह्मतेज से सम्पन्न, न्यायोचित बर्ताव करने वाले तथा नीति शास्त्र के सुविख्यात पंडित थे। उन्होंने धर्म-बल से परात्पर परमात्मा का ज्ञान प्राप्त किया था। वे शुद्धात्मा, शान्त, मृदु और सरल स्वभाव के थे। वे धर्म और सदाचार के सदा स्थिर रहने के कारण संसार-भय से रहित थे। राजा युधिष्ठिर ने उन्हें भाइयों सहित प्रणाम कर उत्तम आसन पर बैठाया।

नारदजी बोले—पाण्डवो ! यशस्विनी कृष्णा तुम सबकी एक ही धर्मपत्नी है, अतः तुम्हें एक नीति बनानी चाहिए, जिससे तुम्हारा परस्पर मतभेद न हो। मैं तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ—राजन् ! सुन्द और उपसुन्द नाम के दो असुर अवध्य भाई थे। वे दोनों क्रूर-हृदय सदा साथ रहते थे। तीनों लोकों में उनकी बड़ी ख्याति थी। उनका निश्चय और आचरण एक ही होता था, मानो एक ही जीवात्मा दो शरीरों में विभक्त हो। उन दोनों ने तीनों लोकों पर विजय पाने की इच्छा से कठोर तपस्या की। उनकी उग्र तपस्या देखकर देवता डर गये और उनके तप को भंग करने के लिए, अनेक प्रकार से विघ्न डालने लगे, पर असफल रहे। सम्पूर्ण लोकों के हितैषी पितामह ब्रह्मा ने उन्हें वर माँगने को कहा, इस पर सुन्द और उपसुन्द हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से बोले—'भगवन् ! हमें ऐसा वरदान दीजिये जिसके प्रभाव से हम दोनों सम्पूर्ण मायाओं के ज्ञाता, अस्त्र-शस्त्र

के विद्वान और अमर हो जायें।'

ब्रह्माजी ने कहा—'महाबाहो ? अमरत्व के सिवाय तुम्हें याचना की हुई सारी सिद्धि प्राप्त हो जायेगी।'

सुन्द और उपसुन्द बोले—'पितामह! यदि आप हमें अमरत्व नहीं प्रदान कर सकते, तो ऐसा वर दीजिये कि हम दोनों की अन्य चर या अचर भूत से मृत्यु न हो।' ब्रह्माजी उन असुरों की प्रार्थना पर वैसा ही वरदान दे अन्तर्धान हो गये। यह अभीष्ट वर पाकर दैत्यराज सुन्द और उपसुन्द ने सम्पूर्ण लोकों पर विजय प्राप्त कर ली और सबको पीड़ा देने लगे।

उन्होंने अपने सेनापतियों से कहा—'वीरो! राजर्षि और ब्राह्मण, यज्ञ और हव्य-कव्यों द्वारा देवताओं के तेज, बल और लक्ष्मी की वृद्धि किया करते हैं, अतः असुरों के द्रोही हैं। तुम्हें उन सबका वध कर देना चाहिये। तुम शुद्धात्मा मुनियों के आश्रम में जाओ और जो ब्रह्मचर्य का पालन और यज्ञ करते हैं, उनका वध कर दो।'

दैत्यों ने वैसा ही किया। इस दुःख से पीड़ित हो, महात्माओं ने उन्हें शाप दिये, किन्तु वरदान के प्रभाव से असुरों का कुछ न बिगड़ा। जब पत्थर पर चलाये हुए बाणों की भाँति वे शाप, असुरों को पीड़ित नहीं कर सके, तब महात्मा, ऋषि, मुनि और अन्य साधु अपने-अपने स्थान से भाग गये, और सर्वत्र भय का आर्तनाद ही सुनाई पड़ने लगा। सत्पुरुषों की ऐसी स्थिति देख, ब्रह्माजी ने एक सुन्दर स्त्री की रचना की। वह मूर्तिमति काम-रूपिणी तिलोत्तमा, सबके मन को हरने वाली थी। ब्रह्माजी की आज्ञा से वह सुन्दरी महाबली सुन्द और उपसुन्द के पास गयी। उस सुन्दर अगों वाली स्त्री को देख दोनों असुर उससे प्रेम की याचना करने लगे। वे दोनों वरदान से उन्मत्त थे और अब काल उनके सिरों पर नाच रहा था। ऐसी दशा में उनमें उस स्त्री को लेकर विवाद आरम्भ हो गया। उस सुन्दरी को पाने के लिए अब वे परस्पर युद्ध करने लगे और कुछ ही समय में दोनों धरा-

शायी हो गये। राजन्! सुन्द और उपसुन्द यद्यपि परस्पर संगठित और एकमत थे, किन्तु तिलोत्तमा के कारण एक-दूसरे से मारे गये। इस उपाख्यान को याद कर, तुम लोग ऐसा नियम बनाओ, जिससे द्रौपदी को लेकर तुम लोगों में मतभेद न हो। नारदजी का नीतियुक्त कथन सुन पाण्डवों ने निश्चय किया कि पाप रहित देवी द्रौपदी प्रत्येक भाई के घर में एक वर्ष निवास करेगी। द्रौपदी के साथ एकान्त में बैठे हुए भाई को, उनमें से यदि एक भी देख लेगा, तो उसे एक वर्ष तक वन में निवास करना पड़ेगा। नारदजी की प्रेरणा से पाण्डवों ने यह नियम बना लिया और उसके प्रभाव से एक-दूसरे के विरोधी नहीं हुए।

अर्जुन का वनवास तथा सुभद्रा-हरण

एक दिन चोरों ने एक ब्राह्मण की गौएं चुरा लीं। ब्राह्मण अत्यन्त दुःखी हो, इन्द्रप्रस्थ में जाकर बोला—'पाण्डवो! मेरे गाँव के कुछ नीच, क्रूर और पापात्मा चोरों ने मेरी गायें चुरा ली हैं, इसलिए उन्हें दण्ड देकर मेरी गौएं छुड़ा लायें। जो राजा प्रजा की रक्षा नहीं करता, वह पापाचारी है।' धनंजय ने ब्राह्मण की बात सुनी और अस्त्र-शस्त्र लेने घर में गया, जहाँ धर्मराज युधिष्ठिर कृष्णा के साथ एकान्त में बैठे थे। उन्होंने निश्चय किया कि यदि ब्राह्मण की गौओं की रक्षा नहीं करूँगा, तो जगत में निन्दा और अधर्म प्राप्त होंगे। उन्होंने राजा युधिष्ठिर से पूछकर अपने अस्त्र घर से ले लिये और चोरों का विनाश कर ब्राह्मण का गोधन उसे लौटा दिया।

अर्जुन ने धर्मराज से कहा—'प्रभो! मैं प्रतिज्ञा के अनुसार प्रायश्चित्त करने वन में जा रहा हूँ, आप मुझे आज्ञा दें।'

धर्मराज युधिष्ठिर बोले—'वीरवर! तुमने घर के भीतर प्रवेश कर मेरा प्रिय कार्य ही किया है, अतः वनवास का विचार त्याग दो।' किन्तु धनंजय ने अपना आग्रह नहीं छोड़ा और भाई

की आज्ञा ले वन को चला गया। हरिद्वार में पहुँचकर जब वह गंगास्नान कर रहा था, नागराज कन्या उलूपी से उसका मिलन हुआ। वीर अर्जुन के नागकन्या उलूपी से इरावान नामक महान बल-पराक्रम से सम्पन्न पुत्र हुआ। तत्पश्चात वे पूर्व दिशा को चले गये। उन्होंने अंग, बंग और कलिंग के पवित्र मंदिरों का दर्शन एवं तीर्थों में स्नान किया और मणिपुर पहुँच गये। मणिपुर के स्वामी धर्मज्ञ चित्रवाहन के चित्रांगदा नाम की एक सुन्दर कन्या थी। वीर अर्जुन ने उसका पाणिग्रहण किया। कुछ समय पश्चात चित्रांगदा ने बभ्रुवाहन को जन्म दिया। सती-साध्वी चित्रांगदा से विदा ले वीर अर्जुन गोकर्ण तीर्थ गये। अमित पराक्रमी अर्जुन पुण्य तीर्थों और मंदिरों का दर्शन करते हुए प्रभासक्षेत्र पहुँचे। जब भगवान श्रीकृष्ण को पता चला कि वीर अर्जुन आये हैं, तब वे उन्हें द्वारिकापुरी में ले गये। वहाँ के वासियों ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया। कुछ समय पश्चात रैवत पर्वत पर वृष्णि और अंधक वंश के लोगों का एक उत्सव हुआ। वहाँ उन्होंने ब्राह्मणों को दान दिया और अनेक अभीष्ट कार्य किये। उत्सव में वसुदेवजी की पुत्री सुभद्रा अपनी सहेलियों के साथ आई थी।

वीर अर्जुन ने उसे देखा और वे भगवान श्रीकृष्ण से बोले—'जनार्दन ! मैं सुभद्रा को अपनी रानी बनाना चाहता हूँ। यदि आप सहमत हों, तो आपकी आज्ञा से इसे पाने का प्रयत्न अवश्य करूँगा।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'पार्थ ! क्षत्रियों के लिए स्त्रियों को पाने हेतु स्वयंवर में वरण या बलपूर्वक हरण का विधान है। स्वयंवर में कन्या को पाना अनिश्चित है, अतः तुम सुभद्रा का हरण कर लो।' अर्जुन ने दूत भेजकर महाराज युधिष्ठिर से भी सुभद्रा को प्राप्त करने की आज्ञा माँगी। उनकी स्वीकृति मिलने पर वे समय की प्रतीक्षा करने लगे। सुअवसर पर जब सुभद्रा देवताओं की पूजा कर महल में लौट रही थी, वीर अर्जुन ने उसे

बलपूर्वक रथ पर बैठा लिया और अपने नगर की ओर चल दिये। सुभद्रा के रक्षकों ने जब उसके हरण का वृतान्त यदुवंशियों से कहा तब वे उत्तेजित हो गये।

भगवान वासुदेव धर्म और अर्थ से युक्त वचन बोले—'अर्जुन ने इस कुल का अपमान नहीं किया है, अपितु हम सबका गौरव बढ़ाया है। उन्होंने क्षत्रिय-धर्म के अनुसार कन्या का हरण किया है। मेरी बुद्धि के अनुसार यह सम्बन्ध उचित है। आप लोग प्रसन्नता के साथ धनंजय को यहाँ लौटा लाइये।' वासुदेव की आज्ञा सुन यादवों ने वैसा ही किया। उन्होंने शक्तिशाली अर्जुन के साथ सुभद्रा का विवाह विधिपूर्वक कर दिया। तदनन्तर अर्जुन और सुभद्रा इन्द्रप्रस्थ चले गये। वहाँ पहुँचकर सुभद्रा ने माता कुन्ती और द्रौपदी को प्रणाम किया। उन्होंने भी प्रसन्नता से अनुपम वधू को अनेक आशीर्वाद दिये। कुछ काल के पश्चात सुभद्रा ने तेजस्वी अभिमन्यु को जन्म दिया। इस अवसर पर महाराजा युधिष्ठिर ने याचकों और ब्राह्मणों को बहुत दान दिया। भगवान श्रीकृष्ण और बलरामजी यह सुखद समाचार सुन, अर्जुन और सुभद्रा से मिलने के लिए, अनेक प्रकार की भेंट लेकर इन्द्रप्रस्थ गये। अभिमन्यु शास्त्रों के अध्ययन और शस्त्र-विद्या में बड़ा प्रवीण निकला। वह शूरता, पराक्रम, रूप तथा आकृति में भगवान श्रीकृष्ण के सदृश था। शुभलक्षणा द्रौपदी के भी पाँचों पतियों से पाँच श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए उनके नाम युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसेन से श्रुतसोम, अर्जुन से श्रुतकर्मा, नकुल से शतानीक और सहदेव से श्रुतसेन थे। उन बालकों ने धौम्य मुनि से वेदाध्ययन और अर्जुन से दिव्य अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया।

खाण्डव-वन-दहन

कुछ समय पश्चात भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन यमुना

तट पर गये। उन दोनों के पास एक ब्राह्मण देवता आये, जिनकी कान्ति तपे हुए स्वर्ण के समान थी। वे प्रातःकालीन सूर्य के समान तेजस्वी जान पड़ते थे। उन्हें देखते ही भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन अपने आसनों से खड़े हो गये।

ब्राह्मण देवता बोले—'महाबाहो! मैं अपरिमित भोजन करने वाला अग्निदेव हूँ। आप मुझे भोजन करा कर तृप्त कीजिये। मुझे अन्न की भूख नहीं है। मैं खाण्डव वन को जलाना चाहता हूँ, किन्तु इन्द्र इसकी रक्षा करते हैं। इन्द्र का सखा तक्षक नाग इसमें निवास करता है। आप दोनों अस्त्र विद्या के विद्वान हैं, अतः आप दोनों की सहायता से मैं इस वन को जला डालूँगा। पुण्यकीर्ति राजाओं ने मुझे यज्ञ में घृत की अमित आहुति दे तृप्त किया है, किन्तु उससे मेरी जठराग्नि मंद हो गई है। अब मैं दूसरी हवि ग्रहण करना चाहता हूँ, जिससे घृत का पाचन हो जाये।'

वीर अर्जुन ने भगवान की आज्ञा ले अग्निदेव से कहा—'हे अनल! यद्यपि मेरे पास उत्तम अस्त्र हैं, किन्तु वे देवताओं को परास्त करने के लिए उपयुक्त नहीं हैं। तुम मुझे दिव्य धनुष, अक्षय तरकस और अलौकिक रथ प्रदान करो, जिनकी सहायता से मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण कर सकूँ।' अर्जुन के कथनानुसार अग्निदेव ने उसे दिव्य धनुष, अक्षय तरकस और एक अपूर्व रथ दिया। रथ की ध्वजा पर सिंह और व्याघ्र के समान आकृतिवाला दिव्य वानर भी बैठा था। उसने भगवान श्रीकृष्ण को अद्वितीय चक्र भी दिया। वीर अर्जुन उन सब युद्ध की दिव्य सामग्रियों को लेकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अग्निदेव को इच्छानुसार वन दहन करने को कहा। अग्निदेव ने तेजोमय रूप धारण कर खाण्डव वन को सब ओर से भस्म करना आरम्भ कर दिया। यह देख इन्द्र स्वयं वहाँ आये और जल की धारा गिराने लगे। अग्नि के प्रभाव से वह धारा आकाश में ही सूख गयी। जब खाण्डव वन नष्ट हो रहा था, तब नागराज तक्षक वहाँ नहीं था, किन्तु उसके बलवान

पुत्र अश्वसेन को इन्द्र ने उस संकट से मुक्त कर दिया। इन्द्र ने अपनी विफलता देख, उन दोनों वीरों को नर और नारायण ही माना और उनसे युद्ध करने का आग्रह छोड़ दिया। अग्निदेव ने सुखपूर्वक खाण्डव वन को भस्म कर दिया, पर मयदानव को उस भयंकर अग्नि से भगवान श्रीकृष्ण ने बचा लिया।

वह विनीत भाव से उनके पास आया और प्रणाम कर बोला—'इस उपकार के हेतु मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?'

धनंजय ने कहा—'असुरराज ! तुमने कृतज्ञता प्रकट की है, अत: तुम उऋण हो गये हो। हमारे लिए परस्पर स्नेह रखना ही श्रेयष्कर है।'

मायासुर बोला—'धनंजय ! आपने जो कहा है, वह आप जैसे महापुरुष के अनुरूप ही है। मैं दानवों में विश्वकर्मा हूँ, अत: बड़े प्रेम से आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'शिल्पियों में श्रेष्ठ दानवराज ! तुम महाराजा युधिष्ठिर के लिए एक अत्यन्त सुन्दर सभा भवन बना दो।' भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर मयदानव राजा युधिष्ठिर के लिए अद्वितीय सभा भवन का निर्माण करने लगा। अनन्तर भगवान श्रीकृष्ण ने पिताजी के दर्शन के लिए उत्सुक हो, द्वारिका जाने के लिए, भुवा कुन्ती और महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम कर, विदा माँगी। उन्होंने सुभद्रा और कृष्णा को विविध प्रकार की शिक्षा और आशीर्वाद दिये। उन्होंने पाण्डवों को हृदय से लगाया और रथ पर आरूढ़ हो द्वारिका के लिए प्रस्थान किया। भगवान की विदाई में सब पाण्डवों के नेत्रों से प्रेमाश्रु बह रहे थे। मयदानव ने कुछ ही समय में राजा युधिष्ठिर के लिए रमणीय सभा भवन का निर्माण किया। उसने भीमसेन को एक श्रेष्ठ गदा और वीर अर्जुन को देवदत्त नामक उत्तम शंख भी भेंट किया। महाराजा युधिष्ठिर ने बड़ी धूमधाम के साथ सभा भवन में प्रवेश किया। उन्होंने ऋषि और ब्राह्मणों द्वारा उस भवन में अनेक प्रकार से भगवान श्री हरि की पूजा की। याचकों को दान

दे, पाण्डवों ने मित्र राजाओं को सभा भवन में आमंत्रित किया। भगवान नारदजी, जो वेद और उपनिषदों के ज्ञाता, ऋषियों तथा देवताओं द्वारा पूजित और धर्म के तत्वों को जानने वाले थे, वहाँ आये।

पाण्डवों से बहुविध सत्कार पाकर, नारद मुनि उत्तम आसन पर बैठ गये और उनको सभासदों सहित उपदेश देने लगे—'राजन्! यद्यपि वेद के वचन परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तव में वे एक ही ज्ञान का प्रतिपादन करते हैं। उन वचनों का विवेचन प्रयोग के अनुसार करना चाहिए। यज्ञ करते समय अनेक कार्य उपस्थित हो जाते हैं, उनका यजमान के साथ जो सम्बन्ध होता है, उसे समवाय कहते हैं। किसी वस्तु का बोध कराने के लिए जो वाक्य का प्रयोग किया जाता है, उसमें पाँच लक्ष्य होते हैं—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपवचन और निगमन। निश्चय रूपी वाक्य को प्रतिज्ञा कहते हैं। समझाने के लिए उदाहरण दिया जाता है। जो वस्तु कहीं सम्भव हो सकती है, उसे उपवचन कहा गया है, और जिसे प्रत्यक्ष में देखा है, वह निगमन है। वाक्य के अनुकूल तर्क को गुण कहते हैं, और प्रतिकूल को दोष।' तदनन्तर नारदजी ने पाण्डवों को धर्म, अर्थ और काम के विषय में अनेक उपदेश दिये। उन्होंने राजाओं के गुण और जीविका के उपाय भी पाण्डवों को बताये।

राजसूय-यज्ञ

देवर्षि नारद के वचन सुन, महाराजा युधिष्ठिर ने अपने भाइयों और मंत्रियों की सम्मति लेकर, राजसूय यज्ञ करने का निश्चय किया। यह कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो, इसके लिए उन्होंने सर्व-शक्तिमान भगवान श्रीकृष्ण की शरण लेने द्वारिका एक दूत भेजा। उस दूत ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा—'महाबाहु हृषिकेश! धर्मराज युधिष्ठिर अन्य पाण्डव सभासद सहित आपका

दर्शन करना चाहते हैं। आप उन सबको अनुगृहीत करिये।' दूत के आग्रह पर भगवान श्रीकृष्ण ने इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान किया। उनके वहाँ पहुँचने पर पाण्डवों ने उनका समुचित सत्कार किया।

जब भगवान श्रीकृष्ण सबसे मिलकर उत्तम आसन पर बैठ गये, तब महाराज युधिष्ठिर ने उनसे कहा—'भगवन ! मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ, वह जिस प्रकार पूर्ण हो सके, वह उपाय हमें बताइये। आप सर्वेश्वर हैं, अतः इस विषय में अन्तिम निश्चय आप पर ही निर्भर है। हमारे लिए जो हितकर हो, उसकी हमें आज्ञा दें।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'महाराज ! आपमें सभी सद्गुण विद्यमान हैं, अतः आप राजसूय यज्ञ करने योग्य हैं। किन्तु राजाओं ने सामूहिक रूप से यह नियम बना रखा है, कि जो उन्हें जीत लेगा वही सम्राट कहलायेगा। अभी-अभी भूपाल जरासंध राजाओं को जीतकर सम्राट पद पर अभिषिक्त हुआ है, अतः सारे राजा उसके वश में हैं। महाबली राजा शिशुपाल उसका सेनापति है। मायायुद्ध करने वाला पराक्रमी करूपराज दंतवक्र जरासंध का शिष्य है। अतुलित बलशाली हंस और डिम्भक सम्राट जरासंध की शरण में हैं। यदि आप इस यज्ञ को सम्पन्न करना चाहते हैं तो बंदी राजाओं की मुक्ति और जरासंध के वध का प्रयत्न कीजिये। जरासंध का वध करने पर समस्त भूपालों पर विजय स्वतः ही हो जायेगी।'

महाराजा युधिष्ठिर ने कहा—'भगवन् ! आप परम बुद्धिमान हैं। आप ही समस्त संशयों को मिटा सकते हैं। जो दूसरों के प्रभाव को जानता है, वह अपनी प्रशंसा नहीं करता। दूसरे पर विजय पाने से ही मनुष्य प्रशंसनीय होता है, और उसीकी सर्वत्र पूजा होती है। मैं तो मन और इंद्रिय-संयम को सबसे उत्तम समझता हूँ। राजसूय यज्ञ के फलस्वरूप ब्रह्मलोक की प्राप्ति भी असम्भव है, फिर मोक्ष की तो बात ही क्या ? जरासंध से हम भी

भयभीत रहते हैं, किन्तु आपके ही बाहुबल का भरोसा है।'

भीमसेन बोले—'महाराज ! जो राजा उद्योग नहीं करता तथा जो दुर्बल होकर युक्ति से काम नहीं लेता, वह नष्ट हो जाता है। परन्तु जो आलस्य त्यागकर उत्तम नीति से काम लेता है, वह दुर्बल होने पर भी बलवान शत्रु को जीत लेता है। भगवान श्रीकृष्ण में नीति, मुझमें बल और अर्जुन में विजय की शक्ति है। हम तीनों मिलकर मगधराज जरासंध के वध का कार्य पूरा कर लेंगे। गोविन्द ! आपके बुद्धि-बल का आश्रय ले धर्मराज युधिष्ठिर सबकुछ पा सकते हैं।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'राजन् ! अज्ञानी मनुष्य बड़े-बड़े कार्य को आरम्भ तो कर देते हैं, पर उसके परिणाम को नहीं सोचते। हम लोग सेना लेकर जरासंध से युद्ध में विजय नहीं प्राप्त कर सकते, अतः उसे द्वंद्व-युद्ध में ही मार सकेंगे। जरासंध ने छियासी राजाओं को बन्दी बना लिया है। वह चौदह राजाओं को और बन्दी बनाकर क्रूर कर्म में प्रवृत्त होगा। जो उसको जीतकर इस कार्य में विघ्न डालेगा, वह उज्ज्वल यश का भागी और निश्चय ही सम्राट होगा।'

युधिष्ठिर बोले—'भगवन् ! मैं स्वार्थ साधन में तत्पर हो, केवल साहस के भरोसे आप लोगों को जरासंध के पास कैसे भेजूं ? भीमसेन और अर्जुन मेरे नेत्र हैं और आपको मैं अपना मन मानता हूँ। अपने मन और नेत्रों को खो कर मेरा जीवन कैसे रह सकता है ? जरासंध का पराक्रम भयानक है। युद्ध में यमराज भी उसका सामना नहीं कर सकते, अतः आप लोगों का प्रयत्न क्या कर सकता है ? इसलिए राजसूय यज्ञ की ओर मेरा ध्यान देना अनुचित जान पड़ता है।'

वीर अर्जुन ने कहा—'राजन् ! शस्त्र विद्या, पराक्रम, श्रेष्ठ सहायक, भूमि और यश की प्राप्ति बड़ी कठिनाई से होती है। महापराक्रमी राजा कृतवीर्य के कुल में जन्म ले, आप स्वयं को निर्बल न समझें। शत्रुओं को जीतने में जिसकी प्रवृत्ति हो, वही सब

प्रकार से श्रेष्ठ क्षत्रिय है। जिसमें मानसिक दुर्बलता है, वह सर्वगुण-सम्पन्न होकर भी क्या करेगा? मनोयोग और प्रारब्ध के अनुकूल पुरुषार्थ ही विजय का हेतु है। यदि हम राजसूय यज्ञ की सिद्धि के लिए जरासंध का विनाश और बंदी राजाओं की रक्षा कर सकें, तो इससे उत्तम कार्य क्या हो सकता है? यदि हम सब यज्ञ का आरम्भ नहीं करेंगे, तो हमारी अयोग्यता और दुर्बलता प्रकट होती है।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'राजन्! कुन्ती माता के पुत्रों की जैसी बुद्धि होनी चाहिए, वैसा ही परिचय अर्जुन ने दिया है। मृत्यु तो सबके सिर पर नाचती ही रहती है, चाहे वह घर में रहे या युद्ध में, अतः वीर पुरुषों का कर्तव्य है कि नीति के अनुसार शत्रुओं पर आक्रमण करे। दैव के अनुकूल रहने पर ही नीति-पूर्वक किया हुआ कार्य सफल होता है। जरासंध मगध देश के बृहद्रथ नाम के प्रसिद्ध राजा का पुत्र है। राजा बृहद्रथ बलवान, धनवान और अनुपम पराक्रमी थे। उनके उत्तम सद्गुणों की प्रशंसा थी, किन्तु उनके कोई सन्तान न थी। एक दिन महात्मा चण्डकौशिक मुनि अकस्मात उनके नगर में आये। राजा बृहद्रथ ने अपनी रानियों सहित उनका अपूर्व स्वागत किया। मुनि ने प्रसन्न होकर उन्हें पुत्र-प्राप्ति का वरदान दिया और कहा, 'यह तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण-भक्त, बलवान, युद्ध में पराक्रमी और अतिथियों का प्रेमी होगा। इसका शरीर उत्पन्न होते समय दो भागों में विभक्त जान पड़ेगा, इसलिए उसी जगह से निर्बल होगा।' मगधराज का वही तेजस्वी बालक जरासंध नाम से विख्यात हुआ। वह रूप, बल, सत्य और राज्यलक्ष्मी से सम्पन्न है। जरासंध सर्वदुःखहारी महादेव शंकर का भक्त है। इसके महापराक्रमी मंत्री हंस और डिम्भक थे, किन्तु वे जमुना के जल में डूबकर मर गये। मथुरा-नरेश वीर कंस भी अपने सहायकों सहित काल के गाल में चला गया है। अब जरासंध के नाश का उचित अवसर है। मैं, भीमसेन और अर्जुन तीनों

जरासंध से एकान्त में मिलेंगे, तब वह द्वंद्व युद्ध करना स्वीकार कर लेगा। वह अपने बाहुबल के अभिमान और अपकीर्ति के भय से भीमसेन से ही युद्ध करेगा, जो जरासंध के वध के लिए पर्याप्त है।'

कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने कहा--'हे अच्युत! आप ही पाण्डवों के रक्षक और स्वामी हैं, हम आपकी आज्ञा के अनुसार चलेंगे। पुरुषोत्तम! आप वही कार्य कीजिये, जिससे जरासंध का विनाश और राजसूय यज्ञ पूर्ण हो सके। आप अजेय हैं, अतः संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं, जो आपके द्वारा पूर्ण न हो सके। उद्योगी मनुष्य आपकी ही शरण लेकर कार्य सिद्ध करते हैं।'

महाराजा युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर भगवान श्रीकृष्ण, वीर अर्जुन और भीमसेन जरासंध की राजधानी की ओर चले। वे तेजस्वी स्नातक ब्राह्मणों के वस्त्र पहन, अस्त्र-शस्त्रों को त्याग, मगधराज जरासंध के द्वार पर पहुँचे।

तीनों महारथियों का मगध नरेश जरासंध ने विधिपूर्वक आतिथ्य-सत्कार किया और कहा—'ब्राह्मणो! स्नातक-व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मण, विशेष निमित्त के बिना माला और चन्दन धारण नहीं करते। आपकी भुजाओं पर धनुष की प्रत्यंचा के घर्षण का चिह्न स्पष्ट दिखाई देता है, अतः सत्य बताइये, आप कौन हैं? राजाओं की सत्य से ही शोभा होती है। छद्मवेश धारण कर आपने अपराध किया है, इसका क्या कारण है? ब्राह्मणों के तो वचन में ही वीरता होती है, कार्यों में नहीं। आपने जो कार्य किये हैं, वे वर्ण तथा वेष से सर्वथा विपरीत हैं। यहाँ आने का आप लोगों का प्रयोजन क्या है?'

महामना श्रीकृष्ण गम्भीर वाणी में बोले—'राजन्! स्नातक व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों के लोग होते हैं। इनमें विशेष नियमों का पालन करने वाले क्षत्रिय लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं। हमने पुष्प धारण किया है, जहाँ लक्ष्मी का निवास है। क्षत्रिय का बल और पराक्रम उसकी

भुजाओं में होता है, वचनों में नहीं, इसलिए वे विनय-युक्त वचन कहते हैं। धीर मनुष्य शत्रु के घर में द्वार लाँघकर और मित्र के यहाँ द्वार से प्रवेश करते हैं। हम अपने कार्य से तुम्हारे घर आये हैं, अतः तुम्हारी पूजा ग्रहण नहीं कर सकते।'

जरासंध ने कहा--'ब्राह्मणो ! मैंने तो आप लोगों के प्रति कोई अपराध नहीं किया है, अतः मैं शत्रु कैसे हुआ ? जो सत्कर्म करते हैं, वे धर्म को ही श्रेष्ठ मानते हैं, अन्य किसी कार्य को नहीं। मैं अपने मन को वश में रख स्वधर्म को ही श्रेष्ठ मानता हूँ और प्रजा पर अत्याचार नहीं करता। ऐसी दशा में आप लोग मुझे शत्रु या अपराधी क्यों बता रहे हैं ?'

भगवान श्रीकृष्ण बोले--'राजन् ! तुमने अनेक निरपराध भूपालों को बंदीगृह में डाल रखा है और उन्हें रुद्रदेवता को भेंट चढ़ाना चाहते हो। ऐसा क्रूर-कर्म करने पर भी तुम अपने को निरपराधी कहते हो ? भगवान शिव तो कल्याणकारी हैं, अतः उनकी पूजा हिंसा द्वारा क्यों करते हो ? तुम जाति-भाइयों की हत्या करना चाहते हो, और हम संकट में पड़े हुए दीन-दुखियों की रक्षा करने वाले हैं, अतः तुम्हारा वध करने के लिए यहाँ आये हैं। मैं तुम्हारा प्रसिद्ध शत्रु श्रीकृष्ण हूँ और ये दोनों पाण्डु-पुत्र भीमसेन और अर्जुन हैं। तुम हमसे युद्ध करो या समस्त राजाओं को छोड़ दो।'

जरासंध ने कहा—'मैंने इन राजाओं को जीता है, अतः तुम्हारे भय से इन्हें नहीं छोड़ूंगा। मैं अकेला ही तुम सबसे बारी-बारी युद्ध कर सकता हूँ।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'राजन् ! हम तीनों में से किस एक व्यक्ति के साथ तुम युद्ध करना चाहते हो ?'

इस पर मगध नरेश ने भीमसेन के साथ युद्ध करने की इच्छा प्रकट की। ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्ति-वाचन सम्पन्न हो जाने पर वीर जरासंध युद्ध के लिए तैयार हो गया। भीमसेन भी भगवानश्रीकृष्ण का आशीर्वाद ले जरासंध के पास आ धमके। अब वे दोनों परा-

क्रमी वीर अत्यन्त हर्ष और उत्साह में भरकर परस्पर भिड़ गये। उन दोनों में ऐसा भयंकर युद्ध हुआ, जिसे देख दर्शक डर से दूर भाग गये। कार्तिक मास की प्रथमा से चतुर्दशी तक युद्ध चलता रहा। चतुर्दशी को जरासंध क्लेश से थककर, युद्ध से निवृत्त-सा दिखायी देने लगा। अपराजित शत्रु जरासंध को थका हुआ जान भीमसेन ने उसके वध का निश्चय किया। भगवान श्रीकृष्ण ने संकेत द्वारा एक तिनके को भीमसेन को दिखाते हुए चीर डाला। भीमसेन भगवान के आशय को समझ गये। उसने जरासंध को पृथ्वी पर पटक दिया और बीच से चीर डाला। जरासंध को मार पाण्डु-कुमार भीमसेन ने बड़ी गर्जना की, जिससे मगधवासी भयभीत हो गये। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण ने वीर भीमसेन और अर्जुन के साथ जाकर समस्त राजाओं को कारागार से मुक्त कर राजसूय यज्ञ के लिए निमन्त्रण दिया। जरासंध का पुत्र सहदेव तीनों वीरों की शरण में गया और उनसे अभयदान प्राप्त कर अपने महल में लौट गया। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन ने इन्द्रप्रस्थ पहुँचकर महाराजा युधिष्ठिर को जरासंध के वध की सूचना दी। महाराजा युधिष्ठिर आनन्द-विभोर हो, भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे। जरासंध की मृत्यु के पश्चात महाराजा युधिष्ठिर की आज्ञा से सब भाइयों ने दिग्विजय का निश्चय किया। वीर अर्जुन उत्तर, भीमसेन पूर्व, सहदेव दक्षिण और नकुल ने पश्चिम दिशा के राजाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए शुभ मुहूर्त्त में प्रस्थान किया। यात्रा करने से पूर्व विद्वान ब्राह्मणों ने स्वस्ति-वाचन किया और महाराजा युधिष्ठिर ने याचकों को दान दिया। वीर अर्जुन ने अनेक भूपालों को बिना रक्त बहाये ही वश में कर लिया, किन्तु प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त से वीर अर्जुन का युद्ध हुआ। कुछ समय पश्चात राजा भगदत्त ने वीर अर्जुन से संधि कर ली और महाराजा युधिष्ठिर को कर देने लगा। वीर अर्जुन ने राजा वृहन्त, विश्वगश्व, लोहित, रोचमान और

चित्रायुध को परास्त कर अपना साथी बना लिया। वाह्लीक, कम्बोज और अन्य देशों के वीरों को भी परास्त कर और उनसे धन-रत्न ले वे इन्द्रप्रस्थ लौट आये। इसी प्रकार भीमसेन, नकुल और सहदेव ने पूर्व, पश्चिम और दक्षिण देश के राजाओं पर विजय पाई। वे भी बहुत धन-रत्न लेकर इन्द्रप्रस्थ लौटे। भगवान श्रीकृष्ण भी राजा युधिष्ठिर के लिए धन-रत्न ले इन्द्र-प्रस्थ पहुँच गये।

पाण्डवों ने उनका बहुत सम्मान किया और विनयपूर्वक बोले—'भगवन्! हमें आज्ञा दें, राजसूय यज्ञ का कार्य कैसे आरम्भ करना चाहिए? हम लोगों ने राजाओं से प्रचुर धन प्राप्त किया है, उसे अब विधिपूर्वक दान और यज्ञ के उपयोग में लगाना चाहते हैं। आप यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कीजिये, जिससे हम पापरहित हो जायें। आपकी उपस्थिति से यज्ञ की सिद्धि सुनिश्चित है।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'धर्मराज युधिष्ठिर! आप ही इस महान यज्ञ की दीक्षा लें, इससे हम सब कृतकृत्य हो जायेंगे।' अनन्तर द्वैपायन व्यासजी बहुत से ऋत्विजों को ले वहाँ आये और यज्ञ का कार्य संचालन करने लगे। उन्होंने शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ-स्थल का पूजन कर, अनेक राजाओं, विद्वानों और ऋषि-मुनियों को निमंत्रित किया। श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने धर्मराज युधिष्ठिर को यज्ञ की दीक्षा दी। आमंत्रित अतिथि, पाण्डवों से सत्कार पाकर, इन्द्रप्रस्थ में सुखपूर्वक रहने लगे। पाण्डु-पुत्र नकुल महाराजा धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, विदुर और कौरवों को श्रद्धापूर्वक इन्द्रप्रस्थ में ले आये। महाराजा युधिष्ठिर ने उन्हें प्रणाम किया और यज्ञ आरम्भ करने की आज्ञा माँगी। यदुवंशी वीर भी उस यज्ञ में सम्मिलित हुए। इन्द्रप्रस्थ को ध्वजपताका और मालाओं से सजाया गया था। पितामह भीष्म की आज्ञा से भोजन परोसने की व्यवस्था दुःशासन ने की और स्वागत-सत्कार का कार्य अश्वत्थामा को सौंपा गया।

राजाओं की सेवा का कार्य संजय करते थे और ऊपर की देखरेख महात्मा भीष्म और आचार्य द्रोण ने की। सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता विदुर धन का व्यय करने के कार्य में लगे और उन्होंने श्रेष्ठ-पुरुषों को यथा-योग्य कार्यों में लगाया। राजा दुर्योधन राजाओं से भेंट स्वीकार करने का कार्य करते थे। भगवान श्रीकृष्ण सबको संतुष्ट करने की इच्छा से विद्वान ब्राह्मणों तथा ऋषि-मुनियों के चरण पखारते थे।

भीष्म पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा—'भरतकुल-भूषण! यहाँ पधारे हुए राजाओं का यथा-योग्य सत्कार करो। आचार्य, ऋत्विज, सम्बन्धी, स्नातक, प्रिय मित्र तथा राजा, इनका पूजन योग्य है। इन सबमें जो सर्वश्रेष्ठ एवं शक्तिशाली हो, उसको सबसे पहले अर्घ्य समर्पित करो। मैंने तो भगवान श्रीकृष्ण को ही सबसे उत्तम तथा पूजनीय माना है।' भीष्म पितामह की आज्ञा से सहदेव ने भगवान श्रीकृष्ण का ही विधि-पूर्वक पूजन किया, किन्तु श्रीमाधव की यह पूजा राजा शिशुपाल नहीं सह सका। वह भीष्म और युधिष्ठिर को कटु वचन कह भगवान वासुदेव पर आक्षेप करने लगा।

शिशुपाल बोला—'यहाँ उच्चकोटि के महात्मा और राजा हैं। उनके रहते श्रीकृष्ण अग्र-पूजा का अधिकारी कदापि नहीं है। पाण्डुकुमार! तुमने स्वार्थवश विपरीत आचरण किया है। तुम धर्म का स्वरूप, जो अत्यन्त सूक्ष्म है, नहीं जानते। भीष्म बूढ़े हो गये हैं, अत: इनकी स्मरण और समझने की शक्ति चली गई है। सभी जानते हैं कि श्रीकृष्ण राजा नहीं है। यहाँ राजा द्रुपद, द्रोणाचार्य, द्वैपायन व्यास, राजाधिराज दुर्योधन, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा और महाबली कर्ण बैठे हैं। इनके रहते हुए तुमने श्रीकृष्ण की पूजा क्यों की? यदि इसकी ही तुम्हें पूजा करनी थी, तो विद्वानों और प्रतिष्ठित राजाओं को क्यों आमंत्रित किया? तुम लोग बुद्धिहीन और कायर हो।' ऐसा कह, शिशुपाल कुछ राजाओं को साथ ले, सभा-भवन से

जाने को उद्यत हो गया।

यह देख राजा युधिष्ठिर शिशुपाल के पास गये और उससे शान्तिपूर्वक मधुर वाणी में बोले—'राजन्! तुमने जो कहा, वह कदापि उचित नहीं। किसी के प्रति कटु वचन कहना महा अधर्म है। भीष्म धर्म के ज्ञाता हैं, अतः इनका अनादर न करो। भगवान श्रीकृष्ण को यथार्थ रूप से जैसा भीष्म जानते हैं, वैसा तुम नहीं जानते।'

भीष्म ने कहा—'श्रीकृष्ण जगत में सबसे बढ़कर पूजनीय और योद्धाओं में श्रेष्ठ हैं। मुझे एक भी भूपाल यहाँ दिखाई नहीं देता, जो श्रीकृष्ण के समान पराक्रमी हो। हम इनके यश, शौर्य और विजय को भलीभाँति जानकर इनकी पूजा कर रहे हैं। श्रीकृष्ण में सर्वगुण विद्यमान हैं, अतः वे सर्वश्रेष्ठ हैं। जिसे मेरी की हुई पूजा अच्छी न लगी हो वह मेरे समक्ष आये।'

भीष्म के वचन सुन, शिशुपाल क्रोधित हो राजाओं से बोला—'मुझे आप अपना सेनापति मानो। हम पाण्डवों और यादवों में युद्ध करेंगे।' शिशुपाल के ऐसा कहने पर कुछ राजा उससे सहमत हो गये। भगवान श्रीकृष्ण और भीष्म के प्रति शिशुपाल के कटु वचन सुन, भीमसेन क्रोधाग्नि से जल उठे। वे शिशुपाल का वध करने उसकी ओर दौड़े पर भीष्म ने उन्हें पकड़ लिया। भीमसेन को अपने ऊपर आक्रमण करते देख शिशुपाल भगवान श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिए उद्यत हो गया।

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'भूपालो! शिशुपाल यद्यपि यदुकुल कन्या का पुत्र है, तथापि वह हमसे शत्रुता रखता है। यादवों ने इसका कोई अपराध नहीं किया है, पर यह क्रूरात्मा उनके अहित में ही सदा लगा रहता है। जब हम प्राग्ज्योतिषपुर गये थे, तब इसने द्वारिकापुरी में आग लगा दी थी। मैं अपनी बुआ के संबंध को स्मरण कर इसके अपराधों को सहन कर रहा हूँ। इसकी माता के याचना करने पर मैंने शिशुपाल के सौ अपराध

क्षमा करने का वचन दिया है। वे अपराध अब पूरे हो गये हैं। आज राजाओं के सामने मेरे साथ इसने जो दुर्व्यवहार किया है, इसके लिए मैं उसे क्षमा नहीं करूँगा।' इतना कह भगवान श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र द्वारा शिशुपाल का सिर धड़ से अलग कर दिया। शिशुपाल के शरीर से तेज निकलकर भगवान श्रीकृष्ण में प्रविष्ट हो गया। अनन्तर राजसूय-यज्ञ विधि-विधान और सबकी सहानुभूति से पूर्ण हुआ। राजा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों और ऋत्विजों को प्रचुर दक्षिणा दी। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण, देवेश्वर बलदेव तथा कुरुकुल-श्रेष्ठ भीष्म आदि की पूजा की और आमंत्रित राजाओं और अतिथियों का सत्कार किया। राजाओं ने भी पाण्डवों की शुभकामना की और अपने-अपने देश चले गये। भगवान श्रीकृष्ण और अन्य यादवों ने भी पाण्डवों से विदा ले द्वारका के लिए प्रस्थान किया।

पाण्डवों का बनवास

राजा दुर्योधन ने शकुनि के साथ पाण्डवों के सभा भवन का निरीक्षण किया। उसने स्फटिक मणिमय स्थल पर जल की आशंका से वस्त्र ऊपर कर लिये और स्फटिक मणि के समान जल से भरी पुष्करणी को स्थल समझकर वह जल में गिर पड़ा। यह देख भीमसेन हँसने लगे। दुर्योधन स्वभाव से ही अमर्षशील था, अतः यह उपहास सहन न कर सका। इस प्रकार बार-बार धोखा खाकर राजा दुर्योधन अप्रसन्न-मन हो हस्तिनापुर लौट गया। पाण्डवों की राजलक्ष्मी देख, वह ईर्ष्या से संतप्त हो गया और मन-ही-मन उनके प्रति पाप-पूर्ण विचार रखने लगा।

उसने शकुनि से कहा—'पाण्डवों ने अपने बल के प्रभाव से राज्य का बहुत विस्तार किया है, अतः उनका यह राजसूय-यज्ञ सब प्रकार से सम्पन्न हुआ है। यदुवंश-शिरोमणि श्रीकृष्ण ने शिशुपाल को मार डाला, पर कोई भी वीर उसका प्रतिशोध लेने

को तैयार नहीं हुआ। उनके ऐश्वर्य को देख मैं दिन-रात ईर्ष्या से जलता रहता हूँ। संसार में कौन ऐसा पुरुष होगा, जो शत्रुओं की श्रीवृद्धि और अपनी हीन दशा चुपचाप सहन कर ले। मैं अपना जीवन नष्ट करने के लिए आग में प्रवेश कर जाऊँ, विष खा लूँ या जल में डूबकर मर जाऊँ? मैं पाण्डवों की राजलक्ष्मी को हड़प लेना चाहता हूँ, किन्तु मेरे पास ऐसा कोई योग्य सहायक नहीं है, जो इस कार्य को सम्पन्न कर सके।'

शकुनि बोला—'दुर्योधन तुम्हें युधिष्ठिर के प्रति ईर्ष्या नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि पाण्डव अपने भाग्य द्वारा प्राप्त वस्तुओं का ही उपभोग करते हैं। तुमने उन्हें वश में करने के लिए अनेक अनुचित उपाय किये, किन्तु असफल रहे। उनकी समृद्धि का कारण महा-पराक्रमी श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण को देवता, असुर और मनुष्य मिलकर भी जीत नहीं सकते। पाण्डव अपने उद्देश्य से विचलित नहीं होते और अपने राज्य को समृद्धिशाली बनाने का निरंतर प्रयत्न करते रहते हैं। तुमने अपने को असहाय बताया है, वह मिथ्या है, क्योंकि तुम्हारे सब भाई तुम्हारी आज्ञा का पालन करते हैं। पराक्रमी द्रोणाचार्य और उनके पुत्र वीर अश्वत्थामा, कर्ण, कृपाचार्य और राजा भूरिश्रवा को लेकर तुम भी पृथ्वी पर विजय प्राप्त करो। यदि राजाओं से युद्ध कर लक्ष्मी और पृथ्वी प्राप्त करने का तुम में उत्साह नहीं है, तो युधिष्ठिर को द्यूत-क्रीड़ा के लिए बुलाओ। मैं जूआ खेलने में निपुण हूँ और वह इस खेल को नहीं जानता, अतः मैं उसे निश्चित रूप से जीत लूँगा।' इस प्रकार आमंत्रित कर सुबलनन्दन शकुनि राजा धृतराष्ट्र के पास गया और बोला—'महाराज! दुर्योधन की कान्ति मंद होती जा रही है। वह दुर्बलता को प्राप्त कर, दयनीय दशा में पहुँच गया है, एवं दिन-रात चिन्ता में डूबा रहता है। मेरी तो ऐसी धारणा है कि उसे शत्रुओं से कोई असह्य कष्ट प्राप्त हुआ है, उस पर आपको ध्यान देना चाहिए।' यह सुन राजा धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से दुःख का कारण पूछा।

दुर्योधन ने कहा—'पिताजी ! मैं घटनाओं से समय के परिवर्तन को देख ईर्ष्या से जलता रहता हूँ । जो शत्रुओं को पराजित कर विश्राम लेता है, वही पुरुष कहलाता है । संतोष,लक्ष्मी और स्वाभिमान का नाश कर देता है। क्लेश और भय से युक्त मनुष्य कभी शान्ति नहीं पा सकता । पाण्डवों की प्रकाशमान राज्य लक्ष्मी को देख मेरी कान्ति नष्ट हो जाती है। युधिष्ठिर के महल में अनेक विद्वान ब्राह्मण प्रतिदिन भोजन करते हैं । उसे यज्ञ में जैसी धन की प्राप्ति हुई है, वैसी मैंने पहले न तो देखी है, न सुनी ही । मेरे मामा शकुनि द्यूत-विद्या को पूर्णतया जानते हैं, अतः वे पाण्डवों की राज्य-लक्ष्मी का जूए में अपहरण कर लेंगे। मेरी यह इच्छा विदुर के द्वारा पूर्ण करवाइये, नहीं तो मैं प्राण त्याग दूँगा ।' दुर्योधन के वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाया । जुए के दोषों को जानते हुए भी उन्होंने पुत्र-स्नेह के वश हो उसका आयोजन किया ।

बुद्धिमान विदुर को जब इस संकल्प का पता चला तब उन्होंने इसे विनाश का द्वार माना और राजा धृतराष्ट्र से बोले—'मैं आपके इस निश्चय का अनुमोदन नहीं करता । पुत्रों में भेद होने पर निश्चय ही आपको कलह का सामना करना पड़ेगा । इससे मुझे समस्त कुल के विनाश का भय है ।'

धृतराष्ट्र बोले—'विदुर ! दैव के विधान को मिटाया नहीं जा सकता । तुम मेरी आज्ञा से कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर को शीघ्र यहाँ बुलाओ ।'

राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर धर्मज्ञ विदुर राजा युधिष्ठिर के पास गये । पाण्डवों ने विदुर का यथायोग्य सत्कार कर उनके आगमन का कारण पूछा ।

विदुरजी ने कहा—'राजन् ! राजा धृतराष्ट्र पुत्र सहित कुशल हैं । पाण्डवों को उन्होंने द्यूत क्रीड़ा करने हस्तिनापुर बुलाया है ।'

युधिष्ठिर बोले—'विदुरजी ! जुए का परिणाम तो भयंकर होता है, अतः कौन बुद्धिमान मनुष्य इसका आदर करेगा ? पाण्डव

तो आपकी आज्ञानुसार ही चलने वाले हैं।'

विदुर ने समझाया—'पाण्डुनन्दन ! जुआ अनर्थ की जड़ है। मैंने इसे रोकने का प्रयत्न भी किया था। शकुनि पासा फेंकने में सिद्धहस्त है, और द्यूत-विद्या के रहस्य का उसे ज्ञान है। मेरे विचार जानकर भी राजा धृतराष्ट्र ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। जो कल्याणमय हो, वही कार्य तुम करो।'

युधिष्ठिर ने कहा—'आपके कथन से बोध होता है कि दुर्योधन के यहाँ भयंकर कपटी, धूर्त, जुआरी जुटे हुए हैं। यह संपूर्ण जगत दैव के अधीन है। मैं राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा का अवश्य पालन करूँगा, यद्यपि मैं जुआ नहीं खेलना चाहता।' धर्मात्मा विदुर से ऐसा कह धर्मराज युधिष्ठिर भाइयों और स्त्रियों के साथ हस्तिनापुर गये। यात्रा करने के पहले उन्होंने विद्वान ब्राह्मणों को दान दिया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की। हस्तिनापुर पहुँचने पर पाण्डवों ने राजा धृतराष्ट्र, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, महात्मा विदुर, माता गांधारी आदि को प्रणाम किया और समस्त राजाओं से मिले।

युधिष्ठिर ने शकुनि से कहा—'राजन् ! जुआ छल और पाप का कारण है, अतः तुम क्रूर मनुष्यों की भाँति हमें जीतने की चेष्टा न करो। मुनिश्रेष्ठ असित देवल ने भी जुए को पाप कहा है। श्रेष्ठ पुरुष वाणी द्वारा किसी के प्रति अनुचित शब्द नहीं निकालते तथा कपटपूर्ण बर्ताव नहीं करते। शकुनि ! हम लोग जिस धन से अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों की रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं, उसको तुम हड़पने की चेष्टा न करो।'

शकुनि बोला—'यदि आपको जुए के खेल से भय लगता है, तो उससे निवृत्त हो जाइये।'

युधिष्ठिर ने कहा—'मैं बुलाने पर पीछे नहीं हटता। दैव बलवान है, मैं दैव के वश हूँ।'

दुर्योधन बोला—'मेरी ओर से मामा शकुनि खेलेंगे।'

विदुर ने धृतराष्ट्र को डाँटते हुए कहा—'महाराज ! यदि

अपने कुल की रक्षा चाहते हैं, तो इस जुए के खेल को बन्द करवाइये। जुआ खेलना झगड़े की जड़ है, जो बड़े भयंकर फूट की सृष्टि करता है। कहीं ऐसा न हो, पाण्डवों के साथ अन्याय करने के कारण आपके पुत्रों के मंत्री और सेना के साथ हम सभी को यमलोक जाना पड़े। जो पुरुष मूर्ख मनुष्य का अनुसरण करता है, वह भयंकर विपत्ति में पड़ जाता है। दुर्योधन कुटिलता-पूर्वक पाण्डवों को जीत रहा है और तुम प्रसन्न हो रहे हो! आज का यह विनोद शीघ्र ही भयंकर युद्ध में परिणत होने वाला है।'

धर्मात्मा विदुर के वचन सुन दुर्योधन क्रोधित होकर बोला—'विदुर! तुम सदा हमारे शत्रुओं के सुयश की ही चर्चा और हमारी निन्दा करते रहते हो। तुम किसके हितैषी हो यह हम जानते हैं। तुम्हारा हृदय हमारे प्रति द्वेष और पाण्डवों के प्रति स्नेह से परिपूर्ण रहता है। जो शत्रु का पक्षपाती हो, अपनों से द्वेष रखता हो और अहित करने वाला हो, ऐसे मनुष्य को घर में नहीं रखना चाहिये। अतः तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ चले जाओ।'

विदुर राजा धृतराष्ट्र को संबोधित कर बोले—'राजन्! जो मन के प्रतिकूल, किन्तु हित-भरी शिक्षा देने मात्र से अपने हितैषी को त्याग देता है, वह परम मूर्ख है। दुर्योधन की बुद्धि बड़ी मंद है, जो अपने को विद्वान और मुझे मूर्ख समझता है। संसार में मन को प्रिय वचन कहने वाला महापापी मनुष्य मिल सकता है, किन्तु अप्रिय, हितकर, वचन सुनने और सुनाने वाले मनुष्य दुर्लभ हैं। मैं तुम्हें पुनः कहता हूँ कि तुम उन सर्पों को कुपित न करो, जो मुख और नेत्रों से विष उगलते हैं।' शकुनि ने पाण्डवों का जुए में सारा धन हरण कर लिया। फिर उसने युधिष्ठिर, उनके चारों भाइयों और द्रौपदी को भी जीत लिया। शकुनि की विजय के द्वारा पाण्डवों को बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास भी करना पड़ेगा। यह देख बड़े-बूढ़ों के मुख से 'धिक्कार' की आवाज आने लगी। विदुर तो बेहोश हो गये।

भीष्म, संजय, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा और युयुत्सु मुख नीचा कर हाथ मलने लगे। राजा धृतराष्ट्र मन-ही-मन प्रसन्न हो उनसे पूछ रहे थे, 'क्या हमारे पक्ष की जीत हो रही है ?' वे अपनी प्रसन्नता की आकृति को छिपा न सके।

दुर्योधन ने कहा—'विदुर ! तुम जाकर पाण्डवों की प्रिय और मनोनुकूल पत्नी द्रौपदी को यहाँ ले आओ। वह पापाचारिणी मेरे महल में दासियों के साथ झाड़ू लगायेगी।'

विदुर बोले—'ओ मूर्ख ! नीच के मुख से ही ऐसे वचन निकल सकते हैं। तू काल-पाश से बंधा हुआ प्रलाप कर रहा है। तू एक साधारण मृग के समान होकर भयंकर व्याघ्रों को अत्यन्त क्रुद्ध कर रहा है। द्रौपदी दासी नहीं हो सकती, क्योंकि राजा युधिष्ठिर स्वयं को हारकर द्रौपदी को दाँव पर रखने का अधिकार खो चुके हैं। तेरे सिर पर महान विषधर सर्प चढ़े हैं। तू उनका कोप न बढ़ा और यमलोक में जाने के लिए उद्यत न हो। तू नरक के अत्यन्त भयंकर द्वारों को नहीं देखता, तभी नीच पुरुषों के मार्ग का अनुसरण कर रहा है।' दुर्योधन गर्व से उन्मत्त हो रहा था। उसने महात्मा विदुर को सभा भवन में ही अपमानित किया और प्रतिकामी को द्रौपदी को वहाँ लाने की आज्ञा दी। दुर्योधन की आज्ञा से सूत प्रतिकामी सती द्रौपदी के पास गया और उसने जूए की घटनाएँ उसे सुनाईं।

द्रौपदी ने कहा—'सूत-पुत्र ! निश्चय ही विधाता का ऐसा विधान है। जगत में धर्म ही श्रेष्ठ है। यदि हम धर्म का पालन करेंगे तो हमारा कल्याण होगा। तुम सभा में बैठे हुए धर्मात्मा, नीतिज्ञ और श्रेष्ठ पुरुषों से पूछो, मुझे क्या करना है ?' सती द्रौपदी का यह कथन सुनकर प्रतिकामी ने जाकर श्रेष्ठ पुरुषों से द्रौपदी के प्रश्नों का उत्तर माँगा, किन्तु वे सभी नीचे मुँह किये बैठे रहे और कुछ भी नहीं बोले। द्रौपदी को सभा-भवन में लाने के लिए दुर्योधन ने इस बार दुःशासन को भेजा।

वह लाल आँखें कर द्रौपदी के पास गया और बोला—

'तुम जुए में जीती जा चुकी हो। हमने धर्म के अनुसार तुम्हें प्राप्त किया है, अतः कौरवों की सेवा करो। अभी तुम सभा-भवन में चलो।' यह सुन द्रौपदी, कौरवों की स्त्रियाँ जहाँ बैठी थीं, उसी ओर भागी, किन्तु क्रूर दुःशासन ने उसके केश पकड़ लिये और रोती हुई आर्त्त द्रौपदी को बलात् सभा-भवन में ले आया।

द्रौपदी ने दुःशासन से कहा—'अरे दुष्ट! सभा में महात्मा, विद्वान और मेरे पिता के समान गुरुजन बैठे हैं। मुझे उनके सामने खड़ा न कर। मुझे क्रूरता से न खींच और वस्त्रहीन न कर। मेरे पति पाण्डव तेरे इस अत्याचार को सहन नहीं करेंगे।' सभा में प्रवेश कर द्रौपदी ने कहा—'जान पड़ता है, द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, महात्मा विदुर तथा राजा धृतराष्ट्र शक्तिहीन हो गये हैं। वह सभा नहीं है, जहाँ वृद्ध पुरुष न हों; वे वृद्ध पुरुष नहीं हैं, जो धर्म की बात न कहें; वह धर्म नहीं है, जिसमें सत्य न हो और वह सत्य नहीं है, जो छल से युक्त हो।'

द्रौपदी की दुर्दशा देखकर भीमसेन को बड़ी पीड़ा हुई। वे युधिष्ठिर से बोले—'भैया! आपने जो धन, रत्न और राज्य दाँव पर लगाये, उसके लिए मुझे क्रोध नहीं हुआ, क्योंकि आप हमारे सर्वस्व के स्वामी हैं, किन्तु द्रौपदी को दाँव पर लगाना अनुचित हुआ है। आपके कारण ये नीच, नृशंस और पापी कौरव द्रौपदी को नाना प्रकार के कष्ट दे रहे हैं।'

अर्जुन ने कहा—'भैया भीमसेन! तुमने पहले कभी बड़े भैया से ऐसी बातें नहीं कही थीं। निश्चय ही क्रूरकर्मा शत्रुओं ने तुम्हारी धर्म-बुद्धि को नष्ट कर दिया है। भैया! तुम्हें उत्तम धर्म का ही आचरण करना चाहिए।'

द्रौपदी अपने को सब प्रकार असहाय मान सर्वपापहारी विजयी भगवान श्रीकृष्ण को पुकारने लगी। वह मन-ही-मन चिन्तन करने लगी: हे गोविन्द! हे नारायण-स्वरूप कृष्ण! हे आपत्तिकाल में अभय देने वाले लोक-पितामह! हे केशव!

कौरव मेरा अपमान कर रहे हैं, मेरा उद्धार करो। हे योगेश्वर! हे विश्वात्मा! मुझ शरणागत अबला की रक्षा करो।' इस प्रकार तीनों लोकों के स्वामी श्यामसुन्दर का चिन्तन कर द्रौपदी दुःखी हो, आंचल से मुख ढक, बिलख-बिलख कर रोने लगी। द्रुपदनन्दिनी की यह करुण पुकार सुन कृपालु श्रीकृष्ण गद्गद हो पैदल ही दौड़ पड़े। सती साध्वी कृष्णा अपनी रक्षा के लिए श्रीकृष्ण, विष्णु, हरि और नर आदि भगवन्नामों को पुकार रही थी। इसी समय धर्म-स्वरूप श्रीकृष्ण ने अव्यक्त रूप से उसके वस्त्र में प्रवेश कर द्रौपदी को सुन्दर वस्त्रों द्वारा आच्छादित कर दिया। द्रौपदी के वस्त्र यद्यपि खींचे जा रहे थे, किन्तु उसी तरह के दूसरे अनेक वस्त्र प्रकट होने लगे। यह अद्भुत दृश्य देख उपस्थित राजा द्रौपदी की प्रशंसा और दुःशासन की निन्दा करने लगे। उस समय भीमसेन ने क्रोधपूर्वक भयंकर गर्जना के साथ प्रतिज्ञा की, 'नीच दुःशासन! मैं युद्ध में तेरी छाती को फाड़कर रक्त पीऊँगा।'

कर्ण ने कहा—'द्रौपदी! तुम अब राजा दुर्योधन के परिवार की सेवा करो। अब तुम शीघ्र ही दूसरा पति चुन लो।'

'आओ, द्रौपदी यहाँ बैठो।' अपनी जंघा पर हथेली मारते हुए दुर्योधन ने कहा।

भीमसेन बोला—'मुझे सूत-पुत्र कर्ण पर क्रोध नहीं आता। मैं महासमर में दुर्योधन की इसी जाँघ को अपनी गदा से न तोड़ डालूँ तो मुझे पुण्य-लोक की प्राप्ति न हो।'

भीमसेन की भीषण प्रतिज्ञा सुन राजा धृतराष्ट्र डर गये और बोले—'ए मंद-बुद्धि दुर्योधन! तू तो जीते जी ही मर गया। तूने सभा में अपने ही कुल की वधू, पाण्डवों की धर्म-पत्नी को लाकर पापपूर्ण कर्म किया है।' पुत्रों के भावी विनाश पर विचार कर धृतराष्ट्र ने सुकुमारी कृष्णा को सान्त्वना देते हुए कहा—'बहू द्रौपदी! तुम मेरी बहुओं में सबसे श्रेष्ठ और धर्मपरायण सती हो, अतः अपनी इच्छानुसार मुझसे वर माँग लो।'

द्रोपदी ने कहा—'महाराज! सम्पूर्ण धर्म के आचरण करने वाले मेरे पति, पाण्डव दास्यभाव से मुक्त हो जायें। पाण्डवों के अस्त्र-शस्त्र उन्हें दे दिये जायें।'

तदनन्तर पाण्डवों ने सुन्दर वस्त्र उतार दिये और मृगचर्म धारण कर लिया। वन में जाने से पूर्व उन्होंने महात्मा विदुर, भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण और अन्य गुरुजनों को प्रणाम किया। विदुर ने पाण्डवों से कुन्ती को अपने घर में रहने की याचना की। इस पर पाण्डव हर्ष सहित राजी हो गये। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा--'तुम धर्म के ज्ञाता हो। तुम्हें देखकर सबको प्रसन्नता होती है। परलोक-विषयक ज्ञान का तुम कभी त्याग न करना। तुम उदारता एवं दान में कुबेर का और संयम में वरुण का अनुसरण करना। तुम दूसरों के हित के लिए अपने आपको निछावर करना और दूसरों को जीवन-दान देना। तुम्हें कल्याण प्राप्त हो।' युधिष्ठिर के प्रस्थान करने पर कृष्णा ने यशस्विनी कुन्ती देवी से अत्यन्त दु:ख से व्याकुल हो वन में जाने की आज्ञा माँगी।

यह सुन माता कुन्ती अत्यन्त संतप्त हो उठी और बड़ी कठिनता से बोली--'बेटी! तुम स्त्री-धर्म को जानती हो। तुम शील और सदाचार पालन करने वाली हो, इसलिए पतियों के प्रति तुम्हारा क्या कर्तव्य है, यह तुम्हें बताने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारा जीवन विघ्न-बाधाओं से रहित हो। मेरे किये हुए शुभ कर्मों से तुम्हारा अभ्युदय हो। माता कुन्ती ने पाण्डवों से कहा—'पुत्रो! तुम उत्तम धर्म का पालन करने वाले तथा सदाचार की मर्यादा रखने वाले होओ। तुम भगवान के दृढ़-भक्त और देवाराधन में सदा तत्पर रहने वाले होओ।' धर्मराज युधिष्ठिर जब वन की ओर बढ़े, तब नगरवासी दु:ख से आतुर हो उन्हें देखने लगे। नगर-द्वार से निकलकर पाण्डवों ने द्रौपदी के साथ उत्तराभिमुख होकर यात्रा आरम्भ की।

धर्मात्मा धौम्य मुनि, जो पाण्डवों के पुरोहित थे, उन्हीं के साथ वन में गये। उनकी आज्ञा से पाण्डवों ने भगवान भास्कर की आराधना की।

भगवान भास्कर ने प्रसन्न हो पाण्डवों को एक अक्षय पात्र दिया और कहा—'पुत्रो! तुम लोग इस पात्र में भोजन बनाओ। इस पात्र में पड़ा भोजन, जबतक द्रौपदी स्वयं भोजन न कर लेगी अक्षय रहेगा।' इतना कह सूर्य भगवान अंतर्धान हो गये। उस दिव्य पात्र के प्रभाव से पाण्डव अतिथि और ब्राह्मणों को भोजन कराने लगे। जब सब भोजन कर लेते, तब अंत में द्रौपदी भोजन किया करती थी और पात्र का अन्न समाप्त हो जाता था। यात्रा करते-करते पाण्डव काम्यक वन में पहुँचे, जहाँ अनेक ऋषि-मुनि निवास करते थे।

महात्मा विदुर पाण्डवों से मिलने वहाँ गये। उन्होंने कहा—'राजा धृतराष्ट्र ने मुझे कुपित हो त्याग दिया है। तुम लोगों को भी शत्रुओं ने दुःसह दुःख दिया है, अतः अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करो। जैसे थोड़ी-सी भी आग घास-फूस के द्वारा प्रज्ज्वलित की जा सकती है, वैसे ही जो अपनी शक्ति और सहायकों को बढ़ाता है, वह भविष्य में अपने कार्य में सफल हो जाता है। जो मित्रों के साथ बैठकर समान अन्न का भोजन करता है, और उन सबके आगे अपनी प्रशंसा नहीं करता वह उन्नतिशील होता है।'

विदुर के वन में चले जाने पर राजा धृतराष्ट्र को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने संजय से कहा—'मुझसे मेधावी विदुर के प्रति बड़ा अपराध हुआ है, अतः तुम उन्हें लाने के लिये शीघ्र जाओ।' संजय ने महात्मा विदुर के पास पहुँचकर उन्हें राजा धृतराष्ट्र का आदेश सुनाया। तदनन्तर पाण्डवों से विदा ले, विदुर राजा धृतराष्ट्र के पास गये और वे एक-दूसरे से अनुनय-विनय करके प्रसन्न हो गये।

विदुर को पुनः आया देख दुर्योधन ने शकुनि, दुःशासन

और कर्ण से कहा—'पिताजी का यह मंत्री विदुर फिर लौट आया है। यह विद्वान पाण्डवों का सुहृद और उन्हीं के हित-साधन में संलग्न रहता है। यदि पाण्डव पुन: यहाँ आ गये, तो मैं अपने शरीर का परित्याग कर दूँगा।'

तब सभी ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—'पाण्डव सत्य-वचन का पालन करने वाले हैं। वे प्रतिज्ञा के अनुसार वन में गये हैं, अत: उसे भंग नहीं करेंगे। यदि वे निश्चित अवधि के पूर्व ही यहाँ आ जायेंगे, तो हम पुन: उन्हें जुए के द्वारा जीत लेंगे। यदि हम लोगों का यह विचार तुम्हें संतोष नहीं देता, तो उन पर आक्रमण कर देना चाहिए, जिससे कि उनकी मृत्यु हो जाये।'

जब वे सब इस प्रकार मंत्रणा कर रहे थे, तब भगवान व्यास वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने राजा धृतराष्ट्र से कहा—'पाण्डवों को तुम्हारे पुत्रों ने छल से वन में भेजा है। तेरहवाँ वर्ष पूर्ण होने पर वे अवश्य युद्ध करेंगे। तुम्हारे पापात्मा पुत्र रोष में भरकर पाण्डवों का वध करना चाहते हैं, किन्तु वे अपने ही प्राणों को खो बैठेंगे। स्वजनों के साथ कलह बढ़ाना निंदनीय माना गया है। वह अधर्म एवं अपयश बढ़ाने वाला है। पाण्डवों के प्रति दुर्योधन के विचारों का यदि दमन न किया गया, तो अत्याचारों की सृष्टि होगी। भीष्म, द्रोण और विदुर की सम्मति से ही तुम्हारा कल्याण हो सकता है। तुम्हें पाण्डवों से मेल कर शान्ति स्थापित कर लेनी चाहिए। महात्मा मैत्रेय पाण्डवों से मिलकर यहाँ आ रहे हैं। वे जो कुछ कहें उसे नि:संकोच करो, अन्यथा वे तुम्हारे पुत्रों को शाप दे सकते हैं।'

भगवान व्यास के प्रस्थान के पश्चात मैत्रेय मुनि वहाँ पधारे और धृतराष्ट्र से कहने लगे—'मैं पाण्डवों से मिलकर आया हूँ। तुम्हारे पुत्र बुद्धि-भ्रम के कारण अनीति में प्रवृत्त हो रहे हैं। इन्हें नियंत्रण में रखो। तुम इनके घोर अन्याय की क्यों उपेक्षा कर रहे हो? तुम पाण्डवों से प्रेम कर, अपने कुल तथा

प्रजा का प्रिय करो। पाण्डव सत्यव्रतधारी, शूरवीर, पराक्रमी और युद्ध-कुशल हैं। कौन मनुष्य युद्ध में उनका सामना कर सकता है ?'

यह नीति-पूर्ण वचन सुन दुर्योधन ने उनका अपमान किया। इस अनादर पर वे कुपित हो गये और बोले—'तू युद्ध में अपने भाइयों और मित्रों सहित पाण्डवों द्वारा निश्चित ही मारा जायगा।' यह कह मैत्रेय मुनि वहाँ से चले गये।

पाण्डव काम्यक वन से आगे बढ़े, तब बक के भाई राक्षस कर्मीर ने पाण्डवों पर आक्रमण किया, किन्तु भीमसेन ने उस राक्षस का उसी क्षण वध कर डाला। भगवान श्रीकृष्ण और धृष्टद्युम्न ने सुना कि पाण्डवों को कौरवों ने छलपूर्वक' इन्द्रप्रस्थ से निकाल दिया है, तब वे उनसे मिलने वन में गये। द्रौपदी सहित पाण्डवों ने भगवान श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें सान्त्वना दी, तब देवी द्रौपदी करुण क्रन्दन करती हुई आर्त-स्वर में बोली—'भगवन् ! पाण्डवों की उपस्थिति में दुष्ट दुःशासन, मुझे घसीटकर सभा-भवन में गुरुजनों के सामने ले गया और पापात्मा कौरवों ने मेरी हँसी उड़ाई। पाण्डवों, पांचालों और यादवों के जीते-जी वे मुझे बलपूर्वक दासी बनाना चाहते थे। पाण्डव उन नराधमों द्वारा अपमानित हुए और दुःखद वचनों को सहन करते रहे। सत्पुरुषों ने कहा है कि निर्बल पुरुष को भी अपनी पत्नी की रक्षा करनी चाहिये। मेरे पति युद्ध में अजेय हैं, इन्होंने मुझ पर हुए अत्याचारों को सहन क्यों किया ? उस समय आपने ही मेरी रक्षा की। द्रौपदी के वचन सुन भगवान द्रवित हो गये। उन्होंने कहा—'पाण्डवों के हित में जो कुछ भी सम्भव होगा, वह मैं अवश्य करूँगा। तुम शोक न करो। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण और धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवों से विदा ले, अपने-अपने राज्य में चले गये। पाण्डव भी वहाँ से द्वैत-वन को चले गये। वहाँ उन्हें महर्षि मार्कण्डेय के दर्शन हुए। कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने उनकी

यथोचित पूजा की।

मार्कण्डेयजी बोले—'तात ! तुम्हारी यह विपत्ति देख मुझे सत्य-प्रतिज्ञ श्री रामचन्द्रजी का स्मरण हो आया है। पिता की आज्ञा से केवल धनुष हाथ में ले लक्ष्मण और सीता के साथ वे वन में भ्रमण करते थे। जो युद्ध में सर्वदा अजेय थे, उन्होंने सम्पूर्ण भोगों का परित्याग कर, चौदह वर्ष तक वन में निवास किया। इसलिए अपने को बल का स्वामी मान अधर्म का आदर नहीं करना चाहिए। वेदों में अग्निहोत्र आदि कर्मों का विधान है, उसका अनुकरण करने के कारण सप्तर्षि देव-लोक में प्रकाशित हैं। तुम्हें सत्य, धर्म और यथायोग्य व्यवहार आदि सद्‌गुणों का पालन करते रहना चाहिए। समय आने पर तुम अपनी राज्य-लक्ष्मी प्राप्त कर लोगे।'

मार्कण्डेयजी के विदा होने पर द्रौपदी, जो दुःख के समुद्र में डूबी हुई थी, युधिष्ठिर से बोली—'भगवन् ! उस धाता (ईश्वर) और विधाता को नमस्कार है, जिन्होंने आपकी बुद्धि में मोह उत्पन्न कर दिया है। कर्मों के अनुसार विविध योनियों की प्राप्ति बताई गई है, किन्तु मूर्ख लोभ से ही मोक्ष पाने की इच्छा रखते हैं। इस जगत में धर्म, कोमलता, क्षमा, विनय और दया से कोई भी मनुष्य धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं कर सकता। यही कारण है कि आप पर यह दुस्सह संकट आ गया है। पाण्डवों ने धर्म से अधिक प्रिय किसी वस्तु को कभी नहीं समझा। उन्होंने अपना राज्य और जीवन धर्म के लिए दिया। मैंने विद्वानों से सुना है कि धर्मात्माओं की रक्षा धर्म करता है, तब वह हमारी रक्षा क्यों नहीं कर रहा ? आप स्वाहा, स्वधा और पूजा के द्वारा देवताओं, पितरों और ब्राह्मणों की उपासना करते हैं। ब्राह्मणों और साधु-संन्यासियों की कामना आपने पूर्ण की है। आपने शान्ति-स्थापना के लिए भी पुण्य-कर्म किये हैं और यज्ञों द्वारा अनुष्ठान किये हैं। परन्तु उस कपटपूर्ण द्यूत-क्रीड़ा के समय आपकी बुद्धि विपरीत क्यों हो गयी, जिससे आपकी यह दशा हुई ?

आप सरल, उदार और सत्यवादी हैं, तब आपकी बुद्धि में जुआ खेलने का व्यसन क्यों आया ? इस विषय में विद्वान कहते हैं कि जीव ईश्वर के वश है। विधाता (ईश्वर) ही प्राणियों के पूर्व कर्मों के अनुसार सुख-दु:ख और प्रिय-अप्रिय की व्यवस्था करता है। जैसे कठपुतली सूत्रधार से प्रेरित हो अपने अंगों का संचालन करती है, उसी प्रकार प्राणी ईश्वर की प्रेरणा से विविध कर्म करते हैं। जीव स्वतंत्र नहीं है, इसलिए उसका न दूसरों पर वश चलता है, न अपने ऊपर ही, अत: जीव अपने सुख-दु:ख के विधान में असमर्थ है। वह ईश्वर से प्रेरित होकर ही स्वर्ग एवं नरक में जाता है। जैसे क्षुद्र तिनके बलवान वायु के वश हो उड़ते-फिरते हैं, वैसे ही प्राणी ईश्वर के अधीन हो आवागमन करते हैं। कोई श्रेष्ठ कर्म करे, चाहे पाप-कर्म, ईश्वर सभी प्राणियों में व्याप्त रहते हैं। यह क्षेत्र-शरीर ईश्वर का साधन मात्र है, जिसके द्वारा वे सर्वदा, शुभाशुभ कर्मों का अनुष्ठान करवाते हैं। जैसे बालक खिलौने से खेलता है, वैसे ही भगवान प्राणियों का संयोग-वियोग कराते रहते हैं। मैं समझती हूँ कि ईश्वर प्राणियों के साथ सम-भाव नहीं रखते। वे मनुष्य की भाँति अनुचित व्यवहार भी करते हैं, क्योंकि जो लोग श्रेष्ठ, शीलवान, सत्यप्रतिज्ञ हैं, वे कष्ट पा रहे हैं, और दुष्ट सुख भोगते हैं। यह देख मेरी यह धारणा पुष्ट होती है, और मैं चिन्ता से व्याकुल हो रही हूँ। मैं आपकी आपत्ति और दुर्योधन की समृद्धि को देख विधाता की निन्दा करती हूँ, जो सज्जन को दु:ख और दुर्जन को सुख देने के पहले विचार नहीं करता। यदि किया हुआ कर्म; कर्त्ता का ही पीछा करता है, तो ईश्वर भी अपने अनुचित कर्म के द्वारा पाप में लिप्त होंगे। यदि किया हुआ पाप कर्म कर्ता को नहीं प्राप्त होता, तो उसका कारण बल ही है। उस दशा में दुर्बल मनुष्य के लिए मुझे शोक हो रहा है।'

द्रौपदी की दु:खपूर्ण बात सुनकर युधिष्ठिर बोले—'धर्मज्ञे! तुम्हारी बात सुनने में सुन्दर है, किन्तु नास्तिक मत का प्रति-

पादन करती है। मैं कर्मों के फल की इच्छा रखकर अनुष्ठान नहीं करता, किन्तु कर्तव्य मानकर ही उन्हें करता हूँ। मैं धर्म का फल पाने के लोभ से धर्म का आचरण नहीं करता, किन्तु साधु-पुरुषों के आचरण और शास्त्रीय मर्यादा से चलने के कारण उसका पालन करता हूँ। मैं शास्त्रों के आधार पर कहता हूँ कि तुम धर्म पर संदेह न करो। मार्कण्डेयजी ने धर्म-पालन से ही चिरजीविता प्राप्त की है। व्यास, वसिष्ठ, मैत्रेय, नारद, शुक तथा अन्य महर्षि धर्म के पालन से ही शुद्ध हृदय वाले हुए हैं। वे दिव्य योग-शक्ति से सम्पन्न, शाप देने और अनुग्रह करने में समर्थ तथा देवताओं से भी अधिक गौरवशाली हैं। जिनकी दृष्टि में धर्म नहीं है, उनके लिए न तो यह लोक है, न परलोक। जैसे समुद्र को पार करने के लिए जलयान की आवश्यकता है, वैसे ही स्वर्ग में जाने के लिए धर्माचरण की। यदि धर्म के कार्य निष्फल हो जाते, तो जगत अंधकार में निमग्न हो जाता और मनुष्य मोक्ष नहीं पाते। जिस प्रकार धर्म निष्फल नहीं होता, उसी प्रकार अधर्म भी अपना फल दिये बिना नहीं रहता। सत्कर्म और पाप-कर्म की उत्पत्ति और विनाश दैव ही जानता है। धर्म का फल शीघ्र दिखाई न दे तो भी धर्म एवं देवता पर आशंका न करो, किन्तु यत्नपूर्वक धर्म करते रहो।'

धर्मराज युधिष्ठिर ने वीर अर्जुन से कहा—'पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा धनुर्वेद के विद्वान हैं, अतः शस्त्रों का प्रयोग और निवारण जानते हैं। अन्य योद्धाओं से दुर्योधन अत्यधिक स्नेह रखता है और उन्हें सम्मानित और संतुष्ट भी करता है। इसलिए आचार्यगण उसके लिए सदा शान्ति का प्रयत्न करेंगे और उसकी शक्ति क्षीण नहीं होने देंगे। आज सारा राज्य दुर्योधन के वश में है, अतः हमारे उद्धार का भार तुम पर ही है। तात ! तुम एकाग्रचित्त हो देवता इन्द्र को प्रसन्न करो। धनंजय ! इन्द्र को समस्त दिव्य अस्त्रों का ज्ञान है। वही तुम्हें दिव्य अस्त्र प्रदान करेंगे। धर्मराज की आज्ञा से धनंजय ने

इन्द्र का दर्शन करने के लिए अग्नि-देव की आराधना की। उन्होंने ब्राह्मणों से स्वस्ति-वाचन कराए। धौम्य मुनि और बड़े भाइयों को प्रणाम कर उन्होंने देवराज इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए इन्द्रकील पर्वत पर घोर तपस्या आरम्भ कर दी। देवराज इन्द्र ने प्रसन्न हो उन्हें दर्शन दिया, तब धनंजय ने इन्द्र से हाथ जोड़कर कहा, 'मैं आपसे सम्पूर्ण अस्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ, अतः मुझे यही वर दीजिये।'

देवराज इन्द्र ने कहा—'अर्जुन, तुम अब अस्त्र क्यों चाहते हो? तुम्हारी कठिन तपस्या से तुम्हें उत्तम लोकों की प्राप्ति हुई है।'

अर्जुन ने कहा—'मैं अपने भाइयों को वन में छोड़ बैर का प्रतिशोध लेने यहाँ आया हूँ, अतः मैं न तो देवत्व चाहता हूँ, न सुख और ऐश्वर्य ही। यदि मैं आपकी आज्ञा मानूँ तो अपकीर्ति का भागी बनूंगा।'

इन्द्र ने वीर अर्जुन को सांत्वना देते हुए कहा—'तुम भगवान शिव की आराधना करो। उनके प्रसन्न होने पर तुम्हारी सभी कामना सिद्ध हो जायेगी।'

ऐसा कह इन्द्र अदृश्य हो गये। धनंजय ने अब भगवान शिव की आराधना आरम्भ कर दी। सर्व-पापहारी भगवान शिव अर्जुन को दर्शन देने किरात का वेष धारण कर उस पहाड़ पर आये। उनके साथ भगवती उमा भी थीं। वहाँ महापराक्रमी मूक नामक दानव सूअर का रूप धारण कर वीर अर्जुन को मारने की चेष्टा कर रहा था। वीर अर्जुन ने अपने बचाव के लिए गाण्डीव धनुष हाथ में लिया और वाण द्वारा प्रहार करने को उद्यत हुआ ही था कि भगवान शंकर ने आकर उसे रोक दिया और कहा—'इस सूअर को मैंने पहले से ही अपना लक्ष्य बना रखा है, अतः तुम न मारो।' परन्तु वीर अर्जुन ने उनके वचन की अवहेलना कर उस पर प्रहार कर ही दिया। दोनों के वाण एक ही साथ मूक दानव के शरीर में लगे, जिससे वह राक्षस मर गया। वीर अर्जुन ने किरात रूपधारी कान्तिमान एवं तेजस्वी

पुरुष से उसका परिचय पूछा, किन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया। इस पर क्रुद्ध हो अर्जुन ने उस पर अपने शस्त्रों का प्रहार किया, पर वे सब असफल रहे। किरात ने अर्जुन को एक ही वाण द्वारा मूर्च्छित कर दिया। मूर्च्छा से मुक्त होने पर अर्जुन भगवान शिव की स्तुति करने लगे। उन्होंने पार्थिव शिव पर जो माला चढाई, वह किरात के सिर पर चली गयी। यह देख वे शंकर के चरणों में गिर पड़े।

भगवान शिव प्रसन्न हो बोले—'अनघ! मैं तुम्हें पाशुपतास्त्र देता हूँ। इसके द्वारा तुम युद्ध में शत्रुओं पर विजय पाओगे।' भगवान शिव से प्रसाद पाकर अर्जुन उनकी स्तुति करने लगे—'सर्व-देवेश्वर! देवदेव-महादेव! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप समस्त कारणों में सर्वश्रेष्ठ कारण हैं। आप देवताओं के आश्रय हैं। यह जगत आपसे ही उत्पन्न हुआ है। आप भक्तों पर अभीष्ट कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं। हे मंगलकारक सृष्टिकर्ता! आपको मेरा नमस्कार है। आप मुझ पर प्रसन्न हों और मेरे अपराध क्षमा करें। प्रभो! मैंने अज्ञानवश आपसे युद्ध किया है, किन्तु अब मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मेरी धृष्टता क्षमा करें।'

भगवान शिव ने कहा—'मैंने तुम्हारा अपराध पहले ही क्षमा कर दिया है।'

भगवान शंकर के दर्शन से जो कुछ भी अर्जुन के शरीर में अशुभ था, वह नष्ट हो गया और वे कृतकृत्य हो गये। भगवान शंकर के अंतर्धान होने पर देव-श्रेष्ठ इन्द्र कुबेर के साथ वहाँ आये।

देवराज इन्द्र बोले—'महाबाहो कुंतीनंदन! तुम्हें उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है। तुम्हें अब देवताओं का कार्य सिद्ध करने स्वर्ग लोक में चलना होगा। मातलि दिव्य रथ ले तुम्हारे पास आयेगा। तुम उस पर आरूढ़ हो जाना वह तुम्हें स्वर्ग ले जायेगा। वहाँ मैं तुम्हें दिव्यास्त्र प्रदान करूंगा।' तदनन्तर इंद्र का सारथी मातलि दिव्य रथ ले वीर अर्जुन के पास आया। वीर अर्जुन

ने वहाँ के ऋषियों को प्रणाम किया और भगवान के नामों का स्मरण करते हुए रथ पर आरूढ़ हो गये। वे शीघ्र ही सिद्धों से सेवित अमरावतीपुरी में पहुँच गये। स्वर्ग में देवताओं, गंधर्वों, सिद्धों और महर्षियों ने कुन्तीकुमार अर्जुन का स्वागत किया। अर्जुन ने भी सबको प्रणाम कर, आशीर्वाद ले, देवराज इन्द्र को प्रणाम किया। उन्होंने उन्हें अपने पास के सिंहासन पर बैठाया। चित्रसेन ने वीर अर्जुन को गीत, वाद्य और नृत्य की शिक्षा दी और इंद्र ने उन्हें दिव्य अस्त्रों की दीक्षा दी। सत्य-पराक्रमी पाण्डुकुमार अर्जुन के काम्यक-वन से चले जाने पर सभी पाण्डव उनके लिए शोक और दुःख में मग्न रहने लगे। जैसे मणियों की माला टूट जाये और पक्षियों के पंख कट जायें, तब उन मणियों और पक्षियों की जो दशा होती है, वही दशा पाण्डवों की थी। उसी समय महर्षि वृहदश्व वहाँ पहुँचे। पाण्डवों ने उन महात्मा का श्रद्धापूर्वक पूजन किया।

पाण्डव अत्यन्त दीनतापूर्वक बोले—'भगवन् ! धूर्त जुआ-रियों ने अन्यायपूर्वक हमारे राज्य का अपहरण कर लिया है। दुष्टों ने गौरवशालिनी पत्नी द्रौपदी के केश पकड़कर उसे भरी सभा में अपमानित किया। गाण्डीवधारी अर्जुन में हम सबके प्राण बसते हैं, वे अस्त्र-विद्या सीख यहाँ कब लौटेंगे ? उन्हें हम कब अपनी आँखों से देखेंगे ? इन्हीं चिन्ताओं को लेकर हम बहुत दुःखी हैं।'

वृहदश्व ने कहा—'पांडुनंदन ! तुम शोक न करो ! विधाता के विधान को कोई उलट नहीं सकता। तुम्हारे कष्ट अवश्य निवृत्त हो जायेंगे। मैं तुम्हें राजा नल का चरित्र सुनता हूँ।'

राजा नल का चरित्र

वृहदश्व बोले—निषध देश में वीरसेन का पुत्र नल एक प्रसिद्ध राजा था। वह उत्तम गुणों से सम्पन्न, रूपवान और अश्व-संचालन

की कला में प्रवीण था। वह ब्राह्मण-भक्त, वेदवेत्ता, सत्यवादी और शूरवीर था। उन्हीं दिनों विदर्भ देश में भीम नाम के पराक्रमी राजा के एक कन्या और तीन पुत्र थे। पुत्रों के नाम दम, दान्त, दमन और कन्या का नाम दमयंती था। दमयंती रूप, तेज और सर्वगुण सम्पन्न थी। पथिक नल से दमयंती की और दमयंती से नल की प्रशंसा करते थे। इस प्रकार एक-दूसरे के गुणों को सुनते-सुनते दोनों में बिना देखे हो परस्पर प्रेम उत्पन्न हो गया। एक समय राजा नल समीपवर्ती उपवन में बैठे थे। इतने में उनकी दृष्टि सुन्दर हंसों पर पड़ी। उन्होंने एक हंस को पकड़ लिया।

हंस बोला—'राजन्! आप मुझे न मारें। मैं दमयंतीके निकट जा आपकी प्रशंसा करूँगा।' राजा नल ने उसे छोड़ दिया और वह विदर्भ देश में दमयंती के पास चला गया। राजकुमारी दमयंती उस अद्भुत पक्षी को देख बड़ी प्रसन्न हुई। हंस ने राजकुमारी से कहा—'सुन्दरी! निषध देश में नल नाम के एक प्रसिद्ध राजा हैं। यदि तुम उनकी पत्नी हो जाओ तो तुम्हारा जन्म सफल हो जायगा, क्योंकि मेरी दृष्टि में ऐसा गुणवान एवं रूपवान मनुष्य, अभी तक नहीं आया है।'

दमयंती बोली—'पक्षीराज! तुम राजा नल से भी मेरे सम्बन्ध में ऐसा ही कहना।'

हंस ने पुनः राजा नल के पास जाकर दमयंती के गुणों का वर्णन किया। कुमारी दमयंती ने जब से हंस के द्वारा राजा नल की प्रशंसा सुनी, तब से उनके प्रति अनुरक्त रहने लगी। उसकी सखियों ने विदर्भ नरेश को यह दशा सुना दी। इस पर विदर्भ-नरेश ने कुमारी दमयंती का स्वयंवर रचाने की योजना की। स्वयंवर की सूचना मिलने पर बहुत से नरेश विदर्भराज भीम की राजधानी में आये। महाबाहु राजा भीम ने उन नरेशों का यथा-योग्य स्वागत किया।

इसी समय देवर्षि नारद घूमते-घूमते इन्द्र-लोक में पहुँचे।

भगवान इन्द्र ने उनसे कुशलमंगल पूछा। नारद बोले—'मघवन्! विदर्भनरेश भीम की पुत्री दमयंती का स्वयंवर होने वाला है। वह एक अद्भुत रत्न है, जिसे पाने की अभिलाषा सब राजा रखते हैं।' देवर्षि नारदजी की बात सुन कुछ मुख्य देव कुमारी दमयंती का स्वयंवर देखने विदर्भ देश में गये। राजा नल भी दमयंती में अनुरक्त होकर विदर्भ देश गये। मार्ग में देवता राजा नल से मिले और अपना परिचय देते हुए बोले---'हम इंद्र, अग्नि, वरुण और यम हैं। तुम दमयंती के पास जाओ और कहो कि हममें से किसी एक को वह पति के रूप में चुन ले।'

राजा नल हाथ जोड़कर बोला---'देवो! मैं भी इसी प्रयोजन से विदर्भ-देश जा रहा हूँ, अतः मुझसे यह कार्य न हो सकेगा। देवेश्वरो! जिसके मन में किसी स्त्री को प्राप्त करने का संकल्प हो वही पुरुष, उस स्त्री को ऐसे वचन कैसे कह सकता है? अतः मेरी विवशता पर मुझे क्षमा करें।' इस पर देवताओं ने राजा नल को अपना कार्य करने के लिये बाध्य किया। तब वे उनका संदेश ले दमयंती के पास राजमहल में गये और उसे सारा वृतान्त कह सुनाया। दमयंती ने श्रद्धा से देवताओं को प्रणाम कर राजा नल से विवाह करने की इच्छा प्रकट की।

राजा नल ने कहा—'कल्याणी! लोकपालों के रहते हुए तुम एक मनुष्य को पति क्यों बनाना चाहती हो? मैं तो उनके चरणों की रज के समान भी नहीं हूँ। देवताओं के विरुद्ध आचरण करने वाला नष्ट हो जाता है। उनके पास अपार शक्ति, अक्षय भोग और सुख के साधन हैं। उन्हें ही तुमको पति बनाना चाहिए।'

दमयंती बोली---'पृथ्वीपते! मैंने देवताओं को नमस्कार कर आपको अपना पति चुना है, अतः मुझे अधिक कष्ट न दें।'

राजा नल ने कहा---'भद्रे! मैंने देवताओं से दूत का कार्य करने की प्रतिज्ञा की है, अतः अपने स्वार्थ की बात तुमसे नहीं कह सकता। तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे मेरे धर्म और स्वार्थ की सिद्धि हो।'

दमयंती बोली—'नरेश्वर ! मैं वही कार्य करूँगी, जिससे आप दोष के भागी न हों।' कुमारी दमयंती से विदा ले राजा नल देवताओं के निकट गया और उन्हें सारा वृतान्त कह सुनाया। अनन्तर उत्तम अवसर पर राजा भीम ने निमंत्रित राजाओं को स्वयंवर-गृह में बुलाया। राजा नल भी चारों देवताओं के साथ स्वयंवर-गृह में सुन्दर आसन पर बैठ गये। देवताओं की आकृति राजा नल के सदृश थी। पाँचों का एक रूप देख विदर्भ कुमारी वास्तविक राजा नल को न पहचान सकी, इसलिए उन देवताओं की आराधना आरम्भ की। कुमारी दमयंती की पूजा से प्रसन्न हो उन्होंने वास्तविक राजा नल को उसे दिखा दिया। दमयंती ने धर्म के अनुसार राजा नल का वरण किया।

देवताओं ने प्रसन्न हो राजा नल को वरदान दिये।

देवराज इन्द्र ने आशीर्वाद देते हुए कहा—'मैं तुम्हें यज्ञ में प्रत्यक्ष दर्शन दूँगा और सद्गति प्रदान करूँगा।'

अग्निदेव बोले—'जहाँ तुम चाहोगे, वहीं मैं प्रकट हो जाऊँगा।'

धर्मराज ने कहा—'तुम्हारी धर्म में निष्ठा बनी रहेगी और तुम्हारे बनाये हुए भोजन में उत्तम स्वाद उपलब्ध होगा।'

वरुण ने कहा—'तुम्हारी इच्छानुसार जल प्रकट हो जायेगा। तुम्हारी पुष्प मालाएं उत्तम सुगंध से सम्पन्न रहेंगी।' वरदान देकर देवता स्वर्ग सिधारे और निमंत्रित राजा भी अपने-अपने स्थानों पर चले गये। तत्पश्चात् राजा नल विदर्भ नरेश भीम की आज्ञा ले, सती दमयंती के साथ अपनी राजधानी गये और प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करने लगे। उन्होंने अनेक यज्ञों का अनुष्ठान किया। सती दमयंती ने एक पुत्र और एक कन्या को जन्म दिया।

कुछ समय बाद कलि ने राजा के मन को भ्रमित कर उसे अपने भाई पुष्कर से जूआ खेलने को प्रेरित किया। रानी दमयंती ने शोक से भरे हुए नेत्रों द्वारा राजा नल को जूआ खेलने से रोका, किन्तु उसने उसकी बात न मानी। सती दमयंती बुद्धिमती थी। उसने विचारा कि राजा अपना सर्वस्व खो बैठेंगे, अतः

अपने दोनों बालकों को कुण्डिनपुर पिता भीम के पास भेज दिया। सती दमयंती की पूर्व धारणा के अनुसार राजा नल का सारा धन जूए में उसके भाई पुष्कर ने जीत लिया। तदनन्तर अत्यन्त दुःखित हो राजा नल और सती दमयंती आभूषण उतार एक ही वस्त्र धारण कर राजभवन से निकले। नीच राजा पुष्कर ने नगर में घोषणा करवा दी कि जो राजा नल के साथ अच्छा व्यवहार करेगा, वह मेरे द्वारा मारा जायेगा। इस भय से नगरवासियों ने नल को आश्रय तक नहीं दिया। भूख-प्यास से पीड़ित वे एक जंगल में पहुँचे, जहाँ कुछ पक्षी बैठे थे। उन्होंने अपने आधे वस्त्र से इन पक्षियों को ढक दिया। किन्तु वे पक्षी उस वस्त्र को लेकर उड़ गये।

नल बोले—'सतीसाध्वी रानी! मैं बड़ी विषम परिस्थितियों में पड़ गया हूँ। मैं क्षुधा-पीड़ित हो जीवन-निर्वाह के लिए अन्न तक भी प्राप्त नहीं कर सकता। मेरे वस्त्र भी पक्षी लिए जा रहे हैं। यह विदर्भ-देश का मार्ग है, जिस पर महर्षियों के बहुत से आश्रम हैं और प्रचुर मात्रा में फल-फूल उपलब्ध हो सकते हैं।' राजा नल ने एकाग्रचित्त हो बड़ी आतुरता के साथ दमयंती से उपर्युक्त बातें बारंबार कहीं।

दमयंती अत्यन्त दुःख से पीड़ित होकर बोली—'महाराज! आपके मानसिक सकल्पों पर जब मैं विचार करती हूँ तब मेरे अंग शिथिल हो जाते हैं। आपका राज्य छिन गया, शरीर पर वस्त्र तक नहीं रहा और भूख तथा परिश्रम से आप कष्ट भी पा रहे हैं। ऐसी अवस्था में इस निर्जन वन में आपको असहाय छोड़कर मैं कैसे जा सकती हूँ। जब आप अपनी शोचनीय दशा देख अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं, उस समय मैं सान्त्वना द्वारा आपके संताप का निवारण करती हूँ। दुःखों की शान्ति के लिए पत्नी के समान मित्र अथवा दूसरी औषध कोई नहीं है।'

नल ने कहा—'प्रिये! मैं अपने शरीर का त्याग कर सकता हूँ, किन्तु तुम्हें नहीं। तुम मेरे वचनों पर शंका क्यों करती हो?'

दमयंती बोली—'महाराज! आप मुझे त्यागना नहीं चाहते, किन्तु घोर विपत्ति ने आपके चित्त को भ्रमित कर दिया है। यदि आपकी सम्मति हो, तो हम दोनों विदर्भ-देश चलें।

नल ने कहा—'साध्वी ! इसमें संदेह नहीं कि राजा विदर्भ जैसे तुम्हारे पिता हैं, वैसे ही मेरे भी; किन्तु आपत्ति के समय मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।'

राज्य का अपहरण, सुहृदों द्वारा त्याग और वन के क्लेशों से वे चिंतित हो रहे थे। उनके मन में विचार था कि सती दमयंती मुझ में अनुरक्त होकर अत्यन्त दु:ख उठा रही है। यदि यह मुझसे अलग हो जाये तो सम्भव है, स्वजनों के पास चली जाये। मेरे साथ रहकर तो यह मेरी भक्त और पतिव्रता नारी केवल दु:ख ही भोगेगी। इस प्रकार विचार करते-करते राजा नल ने सोती हुई देवी दमयंती का परित्याग कर दिया। मार्ग में चलते समय उन्होंने मन ही मन दमयंती को अनेक आशीर्वाद दिये। राजा नल के चले जाने पर जब दमयंती की निद्रा टूटी, तब वह अपने पति को अपने पास न देख दु:ख से व्याकुल हो, विलाप करने लगी।

उसने मन-ही-मन कहा—'महाराज ! आप तो धर्मज्ञ एवं सत्यवादी हैं, तब न छोड़ने की प्रतिज्ञा कर मुझे जंगल में सोई हुई को छोड़कर क्यों चले गये ? मैं तो आपकी सेवा में तत्पर रहने वाली अनुरक्त भार्या हूँ और मुझसे आपके प्रति कोई अपराध भी नहीं हुआ है, अत: मुझे क्यों त्यागा ? मुझे तो दु:ख इसलिए है कि आप सोचनीय दशा में पड़ जायेंगे। जब सायंकाल परिश्रम से थके, भूखे-प्यासे आकर आप विश्राम करेंगे, उस समय मुझे अपने पास न पाकर आप दु:खित हो जायेंगे। इस प्रकार विलाप करती हुई दमयंती अपने पति को जंगल में खोज रही थी। वहाँ से थोड़ी ही दूर पर एक विशालकाय अजगर बैठा था। उस अजगर ने दमयंती पर आक्रमण किया। दमयंती का करुणक्रंदन सुन एक व्याध ने अजगर को मार डाला। व्याध के दूषित मनो-

भाव को सती दमयंती समझ गयी, अतः वह रोषाग्नि से प्रज्वलित हो उठी। उसने व्याध को शाप दिया, जिसके प्रभाव से वह प्राण-शून्य हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। तदनन्तर पति के विरह-रूपी संकट से संतप्त हो सती दमयंती तपस्वी-महात्माओं के आश्रम में पहुँची। महात्माओं ने सती दमयंती का स्वागत-सत्कार किया। दमयंती ने अपना परिचय और विपत्ति में पड़ने का कारण उन महात्माओं को सुनाया।

तपस्वी बोले—'भद्रे! तुम्हारा भविष्य परम कल्याणमय है। तुम्हें शीघ्र ही निषध-नरेश नल का दर्शन होगा। तुम्हारे पति दुःखों से मुक्त हो पुनः राज्य प्राप्त करेंगे।' उसी समय व्यापारियों का दल वहाँ आया। पतिदेव के दर्शन के लिए उत्सुक दमयंती उस दल के साथ यात्रा करने लगी। रात्रि में जहाँ व्यापारी सोये हुए थे, वहाँ जंगली हाथियों ने उन पर आक्रमण किया, जिससे वे प्रायः नष्ट हो गये। सती दमयंती ने भी यह महान संहार अपनी आँखों से देखा। यात्रियों ने दमयंती पर उस भयंकर संहार का दोष लगाया, और उसे मारने को उद्यत हो गये। सती दमयंती उनसे भयभीत हो घनघोर जंगल की ओर भागी, अतः उन्होंने उसका पीछा करना छोड़ दिया। इस घटना पर सती दमयंती मन-ही-मन शोक करने लगी। उसने निश्चय किया कि यह मेरे पूर्व-जन्म के पापों का फल है, जो मुझे अत्यन्त कष्ट पहुँचा रहा है। जिसकी मृत्यु नहीं आती, वह इच्छा होते हुए भी मर नहीं सकता। मनुष्य को सुख-दुःख देने वाला विधाता ही है। दुःख से आतुर हो पतिव्रता दमयंती ने अनेक प्रकार से विलाप किया। तदनन्तर कुछ विद्वान ब्राह्मणों के साथ पुनः यात्रा करती हुई वह सत्यदर्शी चेदिराज सुबाहु की राजधानी में पहुँची। राजमाता ने दीन-दुखिया दमयंती को पथ पर चलते देखा और अपने पास बुला उसका परिचय पूछा। भीमकुमारी दमयंती ने नेत्र-भरे आँसुओं से अपनी करुण कहानी उन्हें सुनाई।

उसकी व्यथा सुन राजमाता स्वयं भी दुःखी होकर बोलीं—

'कल्याणी ! तुम मेरे पास रहो। मेरे सेवक तुम्हारे पति की खोज करेंगे।'

दमयंती बोली—'माता ! मैं जूठा नहीं खाऊँगी, किसी के पैर नहीं धोऊँगी और किसी पुरुष से वार्तालाप नहीं करूँगी। यदि कोई मेरे साथ दुर्व्यवहार करेगा, तो उसे आप दण्ड देंगी। मैं अपने पति की खोज करने वाले ब्राह्मणों से ही मिलूंगी।' राजमाता ने प्रसन्नचित्त हो, उसकी सब बातें स्वीकार कर लीं। राजकुमारी सुनंदा दमयंती को अपने भवन में ले गयी और वह वहाँ सुख-पूर्वक रहने लगी।

सती दमयंती को छोड़ जब राजा नल वन में आगे बढ़े, तब उन्होंने महान दावानल प्रज्वलित होते देखा। उन्होंने एक प्राणी का आर्त स्वर सुना, जो दावानल से अपने बचाव के लिए उन्हें पुकार रहा था। राजा नल ने जलते हुए वन के भीतर प्रवेश किया। उन्होंने वहाँ एक कर्कोट नामक नागराज को देखा, जिसने उनसे अपने को अग्नि से बचाने की याचना की। राजा नल ने उस नाग को सुरक्षित स्थान पर रख दिया, किन्तु उसने उन्हें डस लिया और कहा—'मेरे विष के प्रभाव से आपका स्वरूप बदल जायेगा, अतः प्रजा आपको पहचान नहीं सकेगी। मेरे प्रभाव से आपको जन्तुओं और शत्रुओं से कभी भय नहीं होगा। आपको विष-जनित पीड़ा नहीं होगी और आप युद्ध में सदा विजय प्राप्त करेंगे। अब आप अपने को बाहुक नामक सूत बताते हुए राजा ऋतुपर्ण के यहाँ जाइये, जो द्यूत-विद्या में निपुण है। उसकी सहायता से आप सती दमयंती और अपने बालकों को पुनः प्राप्त कर लेंगे। मैं आपको एक वस्त्र देता हूं, उससे आच्छादित होने पर आप अपना पूर्व रूप प्राप्त कर लेंगे।

निषध-नरेश नल राजा ऋतुपर्ण के नगर में गये और बोले—'राजन् ! मैं अश्वों को हाँकने की विद्या और स्वादिष्ट भोजन बनाना जानता हूँ।' यह सुन ऋतुपर्ण ने राजा नल को

अपना सारथी बना लिया। राजा ऋतुपर्ण की आज्ञा से वार्ष्णेय और जीवल दो सारथी नल की सेवा करने लगे। राजा नल दमयंती का निरंतर चिंतन करते थे और मन-ही-मन कहते थे—भूख-प्यास से पीड़ित, मंदबुद्धि पुरुष का स्मरण करती हुई, वह तपस्विनी अब किसकी शरण में रहती होगी ?

एक दिन रात्रि के समय जब राजा इस प्रकार धीरे-धीरे एकालाप कर रहे थे, तब जीवल ने उनसे पूछा—'बाहुक ! तुम प्रतिदिन किस स्त्री के लिए शोक करते हो ?'

राजा नल बोले—'जीवल ! किसी अल्प-बुद्धि पुरुष के एक अत्यन्त आदरणीया स्त्री थी। किसी विशेष प्रयोजन से विवश हो वह भाग्यहीन पुरुष अपनी पत्नी से बिछुड़ गया। रात्रि में अपनी प्रिया का स्मरण कर वह उपर्युक्त वचन कहता रहता और निरंतर दुःख भोगता। वह नारी इतनी पतिव्रता थी कि संकट काल में भी उस पुरुष के पीछे-पीछे वन में चली गयी, किन्तु उसने उसे जंगल में ही त्याग दिया। यदि वह जीवित है, तो उसके दिन बड़े कष्ट से बीतते होंगे। वह अकेली थी और मार्ग का भी उसे ज्ञान नहीं था। यदि वह जीवित भी हो, तो भी उसका जीवित रहना कठिन है।'

विदर्भराज भीम ने ब्राह्मणों को नल और दमयंती का पता लगाने यत्र-तत्र भेजा, किन्तु उन्हें उनका कहीं पता नहीं चला। एक दिन सुदेव नामक ब्राह्मण ने चेदिराज के महल में विदर्भ-कुमारी दमयंती को देखा और उसके समीप जाकर बोले—'राजकुमारी। मैं तुम्हारे भाई का प्रिय सखा सुदेव हूँ। महाराजा भीम की आज्ञा से तुम्हें खोजने यहाँ आया हूँ। तुम्हारे माता-पिता, भाई और दोनों बच्चे कुण्डिनपुर में सकुशल हैं। तुम्हारे बंधु-बांधव तुम्हारी ही चिन्ता में मृतक तुल्य हो रहे हैं। तुम्हारी और राजा नल की खोज करने अनेक ब्राह्मण पृथ्वी पर घूम रहे हैं।'

द्विज श्रेष्ठ सुदेव को सहसा आया देख दमयंती फूट-फूटकर

रोने लगी। यह देख कुमारी सुनंदा शोक से व्याकुल हो उठी। तदनन्तर राजमाता ने द्विज-श्रेष्ठ सुदेव से दमयंती का परिचय पूछा, और वे उसका यथार्थ वृत्तान्त बताने लगे।'जैसे छिपी हुई अग्नि अपनी उष्णता से पहचान ली जाती है, उसी प्रकार यद्यपि देवी दमयंती मलिन शरीर से युक्त है, तो भी इसके ललाटवर्ती तिल के चिह्न से ही मैंने इन्हें पहचान लिया।' श्रेष्ठ-ब्राह्मण के वचन सुन राजमाता और सुनंदा रोने लगीं और उन्होंने दमयंती को हृदय से लगाया।

राजमाता बोलीं—'बेटी! तुम मेरी बहन की पुत्री हो। तुम्हारे लिए जैसा पिता का घर है, वैसा ही मेरा। यह सारा ऐश्वर्य जैसा मेरा है, उसी प्रकार तुम्हारा।'

यह सुन दमयंती ने प्रसन्न-मन से अपनी मौसी को प्रणाम किया, और अपने पिता के पास जाने की आज्ञा माँगी। मौसी से विदा हो दमयंती विदर्भ-देश की राजधानी में पहुँची। दमयंती के आगमन से उसके माता-पिता आदि बहुत प्रसन्न हुए और सबने उसका स्वागत-सत्कार किया। अपने बच्चों को सकुशल देख यशस्विनी देवी दमयंती प्रसन्न हो देवता और ब्राह्मणों का नित्य पूजन करने लगी।

उसने माता से कहा—'यदि मुझे जीवित देखना चाहती हो, तो मेरे पतिदेव का शीघ्र पता चलाओ।' राजा भीम ने ब्राह्मणों को पुनः सब दिशाओं में राजा नल को ढूँढ़ने भेजा। दमयंती ने ब्राह्मणों से कहा—तुम लोग जहाँ भी जाओ, इस वचन को कहते रहो—'ओ जुआरी प्रियतम! तुम वन में सोयी हुई प्रिय पत्नी को छोड़ कहाँ चले गये? तुमने जिस दशा में उसे छोड़ा था, उसी दशा में वह आज भी है और विरहाग्नि में जलती हुई, तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रही है। वह शोक-सागर में डूबी हुई है, अतः दर्शन देकर कृपा करो।' जब आपको उपर्युक्त कथन का कोई संतोषजनक उत्तर मिले, तब मुझे सूचित करें। किन्तु यह न कहें कि मैंने आप लोगों को उनके पास भेजा है।

उत्तर देने वाला पुरुष धनी हो या निर्धन, समर्थ हो या असमर्थ, उसकी बात जानने की चेष्टा करियेगा। देवी दमयंती के आदेशानुसार ब्राह्मण राजा नल को ढूँढ़ने निकले।

दीर्घकाल के पश्चात पर्णादिक नामक ब्राह्मण दमयंती के पास आया और बोला—'देवी! मैं निषधराज नल को ढूंढ़ता हुआ अयोध्या में राजा ऋतुपर्ण के दरबार में गया। मैंने तुम्हारे बताए हुए वचन सबको सुनाये, किन्तु किसी ने भी मुझसे इन वाक्यों का स्पष्टीकरण नहीं कराया। जब मैं राजसभा से लौट रहा था, तब बाहुक नामक एक पुरुष, जो राजा ऋतुपर्ण का सारथी है, ने एकान्त में आकर तुम्हारी बातों के प्रति जिज्ञासा की। वह घोड़ों को शीघ्र हाँकने और स्वादिष्ट भोजन बनाने में कुशल है, किन्तु कुरूप है।

'उसने मुझसे कुशल समाचार पूछकर अनेक बार रोदन किया और कहने लगा—उत्तम कुल की स्त्रियाँ बड़े भारी संकट में पड़कर भी स्वयं अपनी रक्षा करती हैं, अतः सत्य और स्वर्ग पर उन्हें विजय मिल जाती है। श्रेष्ठ नारियाँ अपने पतियों से परित्यक्त होने पर भी क्रोध नहीं करतीं। वे शील और सदाचार के कवच से आवृत्त हो प्राणों को धारण करती हैं। उस पुरुष ने बड़े संकटों में पड़कर जीविका के साधनों से वंचित होने पर ही पत्नी का परित्याग किया है। वह अनेक प्रकार की मानसिक चिन्ताओं से दग्ध हो रहा था। श्यामा को उस पर क्रोध नहीं करना चाहिए।

यह सुनकर दमयंती ने ब्राह्मण सुदेव को शीघ्रता से राजा ऋतुपर्ण के पास अयोध्या जाने का आग्रह किया। द्विज अयोध्या गये और राजा ऋतुपर्ण से बोले—'राजन्! भीमकुमारी दमयंती पुनः स्वयंवर करेगी। कल ही स्वयंवर होने वाला है। यदि आपका वहाँ पहुँचना सम्भव हो तो शीघ्र जाइये।'

राजा ऋतुपर्ण ने मधुरवाणी से कहा—'अश्वविद्या में निपुण बाहुक! मैं दमयंती के स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए एक

ही दिन में विदर्भ देश की राजधानी पहुँचना चाहता हूँ ।' यह कथन सुन राजा नल महान दुःख-सागर में डूब गये। वे सोचने लगे—क्या दमयंती द्वितीय स्वयंवर कर सकती है ? क्या उसने मुझे प्राप्त करने के लिए यह उपाय सोचा है ? या मुझ नीच और पाप-बुद्धि ने उसे धोखा दिया, इसलिए वह ऐसा निष्ठुर कार्य करने को उद्यत है ? क्या मेरे वियोग से उसका स्नेह मुझ पर कम हो गया है ? संसार में स्त्रियों के स्वभाव की चंचलता प्रसिद्ध है। मेरा अपराध भी भयंकर है, अतः वह तपस्विनी अनुचित कार्य भी कर सकती है। उसने निश्चय किया कि द्विज सुदेव के कथन में कितना सत्य है या असत्य, इसकी परीक्षा करने और अपने लिए भी, राजा ऋतुपर्ण की कामना पूर्ण करेगा। अश्व-विद्या में निपुण राजा नल ने उत्तम घोड़ों को रथ में जोता और राजा ऋतुपर्ण शीघ्र उस रथ पर आरूढ़ हुए। बाहुक ने घोड़ों को तीव्र गति से हाँका। वायु-वेग के समान जब रथ चलने लगा तब राजा ऋतुपर्ण विस्मित होकर सोचने लगा—क्या बाहुक इंद्र का सारथी मातलि है, या आचार्य शालिहोत्र ? हो न हो, यह राजा नल है, क्योंकि राजा नल जो विद्या जानते हैं, वह सब बाहुक में हैं। बाहुक महापराक्रमी नल की अवस्था का है। बहुत से महात्मा प्रच्छन्न रूप धारण कर शास्त्रोक्त नियमों से युक्त हो, इस पृथ्वी पर विचरते रहते हैं। अतः यह बाहुक सर्वगुण सम्पन्न राजा नल ही है। जब रथ तीव्र गति से चल रहा था, तब राजा ऋतुपर्ण का एक वस्त्र उड़ गया। उसने बाहुक को रथ रोककर वह वस्त्र लाने को कहा, किन्तु उसने उत्तर दिया कि महाराज, आपका वस्त्र इस स्थान से बहुत दूर गिरा है, अतः वह अब लाया नहीं जा सकता। राजा ने बाहुक से प्रश्न किया—'विज्ञ ! क्या तुम इस वृक्ष में कितने पत्ते और फल हैं, बता सकते हो ? मेरी समझ में इसकी डालियों पर दो हजार फल हैं।'

बाहुक ने रथ को खड़ा कर कहा—'नरेश ! आपने जो संख्या

कही है वह अनुमान पर आधारित है। मैं इन डालियों को काट उनके फलों की गणना कर दूँगा।' राजा बोला—'बाहुक ! यह समय विलम्ब करने का नहीं है। तुम मेरे कार्य में विघ्न न डालो। किन्तु उसने अपना आग्रह नहीं छोड़ा।' बाहुक ने उस डाली को काटा। फलों की गणना करने पर जब फल राजा के कथनानुसार निकले, तब उसने विस्मित होकर पूछा—'राजन् ! आपकी गणित-विद्या की शक्ति अद्भुत है, मैं इसे सीखना चाहता हूँ।'

राजा बोले—'मुझे द्यूत-विद्या का मर्मज्ञ और गणित में अत्यन्त निपुण समझो।' बाहुक की प्रार्थना पर राजा ने गणित और द्यूत विद्या उसे सिखाई। तदनन्तर राजा नल ने प्रसन्न चित्त से पुनः घोड़ों को हाँकना आरम्भ कर दिया। सायंकाल के पूर्व ही सत्य पराक्रमी राजा ऋतुपर्ण विदर्भ-राज्य की राजधानी कुण्डिनपुर में जा पहुँचे। दर्शकों ने राजा भीम को उनके आगमन की सूचना दी। रथ के चक्कों की घर्घराहट सुन सती दमयंती बड़ी प्रसन्न हुई। उसे विश्वास था कि राजा नल ही पधारे हैं। उसने निश्चय किया कि यदि आज मैं राजा नल को न देखूँगी, तो अपने प्राण विसर्जित कर दूँगी। विदर्भ-नरेश के द्वारा प्रसन्नतापूर्वक आदर-सत्कार पा राजा ऋतुपर्ण को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने विश्राम के लिये भवन में प्रवेश किया। बाहुक भी रथ को रथ-शाला में ले गया और अश्वों की परिचर्या करने लगा। सती दमयंती राजा ऋतुपर्ण और बाहुक को देख बड़ी चिन्ता में पड़ गयी। उसे आगंतुकों में राजा नल नहीं दिखाई दिया, अतः उसने चिंतित हो अपनी दासी केशिनी को बाहुक के पास वास्तविकता का पता लगाने भेजा। केशिनी बड़ी सावधानी से बाहुक के साथ वार्तालाप करने लगी।

केशिनी बोली—'विदर्भकुमारी दमयंती जानना चाहती है कि आप लोगों ने अयोध्या से कब प्रस्थान किया और यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ?'

बाहुक बोला—'महात्मा कौशल-नरेश ने एक ब्राह्मण से सुना

है कि कल दमयंती का द्वितीय स्वयंवर होने वाला है, अतः उन्होंने शीघ्रतापूर्वक कुण्डिनपुर के लिए प्रस्थान किया। इस यात्रा में मैंने ही उनका सारथ्य-कार्य किया है।'

केशिनी बोली—'क्या आप जानते हैं, राजा नल कहाँ हैं ?'

बाहुक बोले—'भद्रे ! राजा नल का पहला स्वरूप अदृश्य हो गया है। वे पृथ्वी पर गुप्त रूप से विचरते हैं, अतः कोई भी पुरुष उन्हें पहचान नहीं सकता। परमात्मा ही राजा नल को जानते हैं, दूसरा कोई नहीं। वे अपने लक्षणों और चिह्नों को दूसरे के सामने प्रकट नहीं करते।'

केशिनी बोली—'महामते! विदर्भ-कुमारी दमयंती अपने पति को पाने के लिए दिन-रात शोक में डूबी हुई रोती रहती है, अतः दमयंती को प्रिय लगने वाली कोई बात कहिये। केशिनी के ऐसा कहने पर राजा नल के हृदय में बड़ी वेदना हुई। उनकी दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी और वे अपने दुःख के वेग को रोक न सके। यह देख, केशिनी ने सारा वृत्तान्त सती दमयंती को बता दिया और बाहुक के पास लौटकर चुपचाप बैठ गयी। बाहुक ने केशिनी से भोजन तैयार के लिए जल एवं अग्नि माँगी, किन्तु केशिनी ने उनकी प्रार्थना पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। केशिनी के देखते-देखते खाली घड़े जल से भर गये, और अग्नि प्रज्वलित हो उठी। महाराज ऋतुपर्ण की फूलों की माला जो विकृत हो गयी थी, पुनः उनके स्पर्श मात्र से विकसित और सुगंधित हो गयी। दमयंती ने पुण्य-कीर्ति महाराजा नल की-सी बाहुक की सारी चेष्टाओं को सुनकर निश्चय किया कि महाराजा नल ही बाहुक के रूप में हैं। यह सोच वह दुःख के सागर में डूबकर विलाप करने लगी। उसने केशिनी को अपने दोनों बच्चे देकर पुनः बाहुक के पास भेजा। राजा नल ने इंद्रसेन और इंद्रसेना को पहचान लिया और शीघ्रता से उन्हें अपनी छाती से लगाकर अत्यन्त दुःख मग्न हो रोने लगे।

बाहुक बोले—'भद्रे! ये दोनों बालक मेरे पुत्र और पुत्री के समान

हैं, इसलिए इन्हें देख सहसा मेरे नेत्रों से आँसू बहने लगे।' परम बुद्धिमान राजा नल के सम्पूर्ण आचरण को देख केशिनी ने आकर सारी बातें दमयंती को बता दीं। पिता और माता की आज्ञा ले दमयंती ने नल को राजभवन में जहाँ वह स्वयं रहती थी, बुलवाया। दमयंती को सहसा देखकर राजा नल की आंखों से दुःख की अश्रुधारा बहने लगी। नल को उस अवस्था में देख दुःखी दमयंती तीव्र शोक से व्याकुल हो गई।

दमयंती बोली—'बाहुक! क्या तुमने उन धर्मज्ञपुरुष कोदेखा जो अपनी सोयी हुई निर्दोष पत्नी को वन में अकेली छोड़कर चले गये थे? स्वयंवर के समय देवताओं को त्याग कर मैंने उनका वरण किया था। मैं उनकी अनुगत-भक्त, निरंतर उन्हें चाहने वाली और पुत्रवती हूँ, तो भी उन्होंने मुझे क्यों त्यागा? मेरे साथ जीवन भर रहने की उन्होंने विवाह के समय प्रतिज्ञा की थी; वह सत्य उनका अब कहाँ चला गया?' जैसे-जैसे दमयंती सब घटित बातें कह रही थी, वैसे-वैसे नल के नेत्रों से शोक-जनित आँसुओं की अटूट धारा बहती जा रही थी।

राजा नल बोले—'कल्याणी! मेरा राज्य नष्ट हो गया और तुम्हें त्याग दिया, यह सब कलियुग का ही प्रभाव था। अब तुम्हारी तपस्या से पापी कलियुग मुझे छोड़ कर चला गया है। तुम्हें प्राप्त करने के उद्देश्य से मैं और राजा ऋतुपर्ण यहाँ आये हैं।'

दमयंती बोली—'निषध-नरेश! आपको मेरे चरित्र पर संदेह नहीं करना चाहिए। आपका पता लगाने के लिए ही मैंने ब्राह्मणों को सब दिशाओं में भेजा था। वे सभी स्थानों पर हमारी दुःखपूर्ण गाथा गाते थे। इसी योजना के अनुसार पर्णादक नामक विद्वान ब्राह्मण अयोध्यापुरी में राजा ऋतुपर्ण के पास गया और वहाँ से आकर मुझे आपकी सूचना दी। मैंने स्वयंवर का आडंबर रचकर राजा ऋतुपर्ण को यहाँ बुलवाया है। मेरा यह निश्चय था कि अयोध्या नगरी यहाँ से सौ योजन दूर है। एकदिन में इस दूरी को पार करने में आपके अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष समर्थ नहीं

है। मैंने आपके वियोग में सदैव सदाचार का पालन किया है, इसके लिए मैं सत्य और आपके चरणों की शपथ खाती हूँ। गतिशील वायु और सूर्य देव सबके अंतःकरण में स्थित रहकर प्राणियों के शुभाशुभ कर्म देखते रहते हैं। यदि मैंने पाप किया है, तो वे मेरे प्राण हर लें।'

राजा नल चौथे वर्ष अपनी प्रिय पत्नी से मिलकर अत्यन्त आनन्द में निमग्न हो गये। उन्होंने नागराज कर्कोट द्वारा दिया हुआ वस्त्र धारण किया, जिसके प्रभाव से उनका शरीर पूर्ववत सुन्दर हो गया। वे दमयंती के साथ राजा भीम से मिले और उनकी पिता की भाँति वंदना की। राजा नल ने राजा ऋतुपर्ण का अभिनन्दन करने के पश्चात देवताओं की आराधना की। राजा नल को पुनः द्यूत-विद्या का ज्ञान समझाकर राजा ऋतुपर्ण अपनी राजधानी चले गये। कुछ समय तक कुण्डिनपुर रहकर राजा भीम की आज्ञा ले निषध-नरेश नल अपनी राजधानी में गये। उन्होंने जूए के खेल द्वारा अपना राज्य पुष्कर से पुनः जीत लिया।

उन्होंने पुष्कर से कहा—'मैं तुम्हारे अपराधों को क्षमा करता हूँ, और तुम्हारे भाग का धन तुम्हें लौटा देता हूँ। तुम सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह करो। तुम पर मेरा प्रेम पूर्ववत् बना रहेगा, क्योंकि तुम मेरे भाई हो। इस प्रकार पराक्रमी राजा नल ने अपने भाई पुष्कर को सान्त्वना दे हृदय से लगाया। राजा पुष्कर उन्हें और सती दमयंती को प्रणाम कर अपनी राजधानी को चला गया। राजा नल ने ब्राह्मणों का यथोचित सत्कार किया और देवताओं की यज्ञों द्वारा आराधना की।

राजा नल का आख्यान समाप्त होने पर वृहदश्व मुनि ने कहा—'युधिष्ठिर ! राजा नल ने तो अकेले ही महान दुःख सहन किया था और उन्हें पुनः अभ्युदय की प्राप्ति हुई। तुम तो अपने सभी भाइयों और सती द्रौपदी के साथ वन में भ्रमण करते हुए धर्म का चिन्तन करते हो, अतः तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है।

वीर अर्जुन जो तपस्या करने गये हैं, उनके लिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।'

राजा सगर

कुछ समय पश्चात महा तेजस्वी महर्षि लोमश पाण्डवों के पास आये। उन्हें देखते ही पाण्डव और अन्य लोग उनके स्वागतार्थ खड़े हो गये। धर्मनन्दन युधिष्ठिर ने उनका यथा-योग्य पूजन कर वहाँ आने का प्रयोजन पूछा।

महर्षि लोमश ने कहा—'कुन्तीनन्दन! मैंने एक दिन तुम्हारे भ्राता सव्यसाची अर्जुन को इन्द्र के साथ बैठे देखा। मुझे अर्जुन ने तुम लोगों के पास जाने का अनुरोध कर बताया कि उसने भगवान शंकर से पाशुपत, देवराज इन्द्र से दिव्यास्त्र और विश्वावसु के पुत्र से नृत्य, वाद्य और गान की शिक्षा प्राप्त कर ली है। वे शीघ्र ही तुम लोगों के पास आयेंगे। भरतनन्दन! तुम लोग अब श्रद्धापूर्वक सरल-चित्त हो तीर्थयात्रा करने जाओ और तपस्या में अपने मन को लगाओ। जिसके मन और इंद्रियां वश में नहीं हैं, जो पापात्मा कुटिल है, जिसका मन धर्म में नहीं लगता, जो सत्य-प्रतिज्ञ नहीं है, उसका संग त्याग दो। अधर्म द्वारा मनुष्य सुख, सम्पत्ति और शत्रुओं पर विजय पा सकता है, किन्तु अंत में नष्ट हो जाता है।'

मार्गशीर्ष की पूर्णिमा व्यतीत होने पर पुष्य-नक्षत्र में पाण्डवों ने तीर्थयात्रा प्रारम्भ की। प्रथम वे नैमिषारण्य में गये, अनन्तर अनेक तीर्थों में होते हुए प्रयाग पहुँचें। उन्होंने गंगा-यमुना संगम में स्नान किया और वहाँ के ऋषि, मुनि और ब्राह्मणों की पूजा की। इसके पश्चात् उन्होंने गयातीर्थ के ब्रह्म-सरोवर में स्नान किया और अगस्त्य ऋषि के आश्रम में गये। महात्मा अगस्त्य ने लोपामुद्रा से विवाह किया था, जिससे उन्हें तेजस्वी वृढस्यु नामक पुत्र हुआ। बालक वृढस्यु बाल्यकाल

में ही तपस्या में संलग्न रहने लगा। एक समय महात्मा अगस्त्य दक्षिण दिशा को जा रहे थे। विन्ध्याचल पर्वत ने उन्हें प्रणाम किया।

उन्होंने पर्वतराज से कहा—'जबतक मैं न लौटूँ तबतक इसी अवस्था में रहना।' तब से पर्वतराज विन्ध्याचल उनके आने की प्रतीक्षा करता हुआ उसी प्रकार लेटा हुआ है। किन्तु महात्मा अगस्त्य उस मार्ग से नहीं लौटे। एक समय देवता महामुनि अगस्त्य के पास गये। उन्होंने उनसे निवेदन किया, 'देवद्रोही कालेय नामक दानव समुद्र में निवास करता है। यदि समुद्र सुखा दिया जाये, तो उस दानव को मारने में हम समर्थ हो जायेंगे।' यह सुन मित्रावरुण-नन्दन भगवान अगस्त्य समुद्र का जल पीने लगे। यह देख दानव कालेय भयभीत हो देवताओं से युद्ध करने लगा, किन्तु कुछ ही समय में वह उनके द्वारा मारा गया।

धौम्य मुनि ने कहा—'राजन्! इक्ष्वाकु वंश में सगर नाम से रूप, धैर्य और बल से सम्पन्न एक राजा था। उसके कोई पुत्र न था। उसके दो पत्नियाँ थीं। राजा सगर अपनी पत्नियों के साथ पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से तपस्या करने लगा। उन्होंने भगवान त्र्यम्बक को प्रसन्न कर लिया। भगवान शिव की कृपा से उनके पुत्र उत्पन्न हुए। पराक्रमी राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ करने की दीक्षा ली। उनका पुत्रों द्वारा सुरक्षित यज्ञ-अश्व समुद्र के तट पर चला गया। वहाँ महात्मा कपिल तपस्या कर रहे थे। काल से प्रेरित सगर-पुत्रों ने भगवान कपिल को अश्व का चोर समझकर उनका अनादर कर दिया। इससे मुनि-श्रेष्ठ कपिल कुपित हो उठे। उन्होंने अपने तेज से मन्द-बुद्धि सगर-पुत्रों को भस्म कर दिया।

जब राजा सगर को इस घटना की सूचना प्राप्त हुई, तब वे अपने पौत्र अंशुमान से बोले—'तात! मेरे अमित तेजस्वी पुत्र महर्षि कपिल की क्रोधाग्नि से भस्म हो गये हैं, उनका उद्धार करने

और यज्ञ-अश्व लाने के हेतु तुम महात्मा कपिल के पास जाओ।' राजा सगर की आज्ञा शिरोधार्य कर अंशुमान महामुनि के पास गया और उन्हें प्रसन्न कर लिया। महात्मा कपिल ने यज्ञ-अश्व जो समीप ही विचरता था, अंशुमान को बता दिया और कहा—'तुम्हारा पौत्र भगवान शंकर को प्रसन्न कर जब पवित्र गंगा को यहाँ ले आयेगा, तब उसके जल-स्पर्श से सगर-पुत्रों का उद्धार होगा।' पुण्यकीर्ति अंशुमान अश्व को राजा सगर के पास ले गया और उन्होंने यज्ञ को पूर्ण किया। राजा सगर अपने पौत्र का राज्याभिषेक कर तपस्या हेतु वन चले गये। धर्मात्मा अंशुमान भी अपने पितामह सगर के समान ही वसुधा का पालन करते थे। उनका पुत्र दिलीप विख्यात राजा हुआ। उसने गंगाजी को भूतल पर लाने के लिए कठोर तपस्या की, किन्तु असफल रहा। राजा दिलीप का पुत्र सत्य-परायण महात्मा भगीरथ हुआ। उसने भी अपने पितरों का उद्धार करने के लिए अनेक वर्षों तक घोर तपस्या की, जिससे प्रसन्न हो माता गंगा ने उसे दर्शन दिया।

भगीरथ बोले—'माता! मेरे पितामह महात्मा सगर के पुत्र भगवान कपिल द्वारा भस्म हो गये हैं। जबतक तुम्हारे जल का उन्हें स्पर्श नहीं होगा, तबतक उनकी सद्गति नहीं होगी। महाभागे! मैं उन्हींके के उद्धार के लिए तुमसे याचना करता हूँ।'

गंगाने कहा—'राजन्! तुम्हारी प्रार्थनानुसारजब मैं स्वर्ग से पृथ्वी पर आऊँ, तब मेरे वेग को रोकने वाला कोई होना चाहिए। अतः तुम भगवान शिव को संतुष्ट करो, क्योंकि वे ही मुझे अपने मस्तक पर धारण कर सकते हैं। भगवान शंकर तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण करेंगे।' महाराजा भगीरथ भगवान शंकर की आराधना करने लगे। उन्होंने उन्हें प्रसन्न कर लिया और वे गंगा को अपने मस्तक पर धारण करने हेतु प्रसन्न हो गये। अब महाराजा भगीरथ ने एकाग्रचित्त हो पुण्य-सलिला गंगाजी का चिन्तन किया। राजा की स्तुति से पावन गंगा आकाश से उतरने

लगीं और भगवान शिव की जटाओं में समा गईं। भगवान शिव की जटा से पवित्र हो गंगाजी पृथ्वी पर आईं। राजा भगीरथ आगे-आगे चलते जा रहे थे और माता गंगा उनके पीछे-पीछे चलती थीं। राजा भगीरथ जहाँ महात्मा सगर के पुत्रों के शरीर भस्म हुए थे, वहाँ पहुँचे। पावन गंगा ने राजा सगर के पुत्रों को पवित्र कर दिया, जिससे उनकी सद्‌गति हो गयी। महाराजा भगीरथ की कथा समाप्त होने पर पाण्डव पुनः तीर्थों की यात्रा करने लगे। वे कौशिकी नदी में स्नान कर गंगासागर तीर्थ पहुँचे और वहाँ स्नान कर उन्होंने ऋषि-मुनियों की पूजा की। सागर-तटवर्ती तीर्थों से होकर वे प्रभास क्षेत्र पहुँचे। वहाँ पाण्डवों ने देवताओं और पितरों का तर्पण किया। भगवान श्रीकृष्ण और बलदेवजी यादवों सहित पाण्डवों से मिलने प्रभास क्षेत्र में आये और उनकी दयनीय दशा देख दुःखी हुए।

बलदेवजी बोले--'श्रीकृष्ण कभी-कभी आचरण में लाया हुआ धर्म भी प्राणियों को अभ्युदय की ओर नहीं ले जाता; किया हुआ अधर्म भी उनको कष्ट नहीं पहुँचाता। तभी तो पाण्डव महान क्लेश भोगते रहे हैं और अधर्म-परायण दुर्योधन पृथ्वी का शासन कर रहा है। अतः मंद-बुद्धि वाले यही समझेंगे कि धर्म-परायण होने की अपेक्षा अधर्म करना ही श्रेष्ठ है। राजा धृत-राष्ट्र, पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण तथा कृपाचार्य कौरव पुत्रों के आचरण का अनुमोदन करते हैं, इसलिए भरत-कुल के इन प्रधान व्यक्तियों को धिक्कार है। राजा धृतराष्ट्र को इह और परलोक में भी पाण्डवों को अनीतिपूर्वक कष्ट देने से कैसे सुख एवं शान्ति मिलेगी? वेगशाली भीम भयंकर बनवास के दुःखों का स्मरण कर जब शत्रुओं पर आक्रमण करेगा, उस समय कौरवों का विनाश निश्चित ही हो जायेगा।'

सात्यकि बोले--'प्रभु बलरामजी! अब विलाप करने का समय नहीं है। हमें आगे क्या करना है, उस पर विचार कीजिए। जो सहायक अपने विचारों द्वारा मित्रों के कष्टों को दूर करते हैं, वे

ही श्रेष्ठ हैं। यदुवंशी कौरवों को युद्ध में परास्त करने में समर्थ हैं।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'सात्यके ! तुम्हारे वचन सार्थक हैं, किन्तु कुरु-श्रेष्ठ युधिष्ठिर हमारे द्वारा कौरवों से जीता हुआ राज्य ग्रहण नहीं करेंगे।'

युधिष्ठिर बोले—'सात्यके ! तुमने जो हमारे हित के लिए वचन कहे हैं, वे उत्तम हैं। किन्तु मैं सत्य की रक्षा को ही प्रधान मानता हूँ। जब भगवान श्रीकृष्ण युद्ध का अवसर समझेंगे, तभी तुम कौरवों पर पराक्रम प्रकट करना।' तत्पश्चात यादवों से विदा ले पाण्डव तीर्थों में विचरने लगे। वे उत्तराखण्ड के पुण्यतीर्थ हृषिकेश में पहुँचे, जहाँ गंगाजी सात धाराओं से सुशोभित हो रही थीं। पाण्डवों ने गंगाजी की सप्तधाराओं में स्नान किया और वहाँ के निवासी ऋषि-मुनियों की यथाविधि पूजा की। तदनन्तर वे बदरिकाश्रम तीर्थ गये। वहाँ उन्होंने नर-नारायण का स्थान देखा, जो देवता और देवर्षियों से पूजित है तथा अलकनन्दा गंगा से सुशोभित था। अलकनन्दा में स्नान कर उन्होंने वहाँ के देवस्थानों का दर्शन और ऋषि-मुनियों का पूजन किया।

भीमसेन को हनुमानजी का दर्शन

बदरिकाश्रम में प्रचण्ड वायु एक दिव्य सहस्र-दल मनोहर कमल को कहीं से उड़ा लाई। शुभलक्षणा द्रौपदी ने उसे देखा और उसी प्रकार के अनेक अत्यन्त सौगन्धिक पुष्प लाने के लिए भीमसेन से अनुरोध किया। महाबली भीम अपनी प्रिया की इच्छा पूर्ण करने सामने के शैल शिखर पर गन्तव्य स्थान की ओर अग्रसर हुए। जैसे पिता को पुत्र का स्पर्श सुखद जान पड़ता है, वैसे ही पर्वतीय शीतल वायु भीमसेन की सारी थकावट हर लेती थी। निरन्तर झरने वाले झरनों से वह पहाड़ कण्ठ में मोतियों के हार-सा पहने सुन्दर प्रतीत हो रहा था। उन पर्वतों पर भीमसेन ने एक रमणीय जलाशय में स्नान किया और आगे बढ़े।

हनुमानजी भीमसेन का हित करने एक संकुचित मार्ग पर बैठ गये और अपनी पूँछ को पृथ्वी पर फटकारने लगे। उस ध्वनि को सुन भीमसेन उसके कारण को जानने हेतु आगे बढ़े। उन्होंने एक विशाल शिला पर वानर-श्रेष्ठ हनुमानजी को देखा, जो अपनी कान्तिमान आँखों से इधर-उधर देख रहे थे।

हनुमानजी बोले—'भाई ! मैं तो रोगी हूँ, इसलिए यहाँ सो रहा हूँ। तुमने मुझे क्यों जगा दिया ? जो मनुष्य बुद्धिमान होते हैं, वे सब जीवों पर दया करते हैं। तुम अज्ञान-वश जीवों को क्यों कष्ट पहुँचाते हो ? मेरी धारणा है कि तुमने विद्वानों की सेवा नहीं की है, इसलिए यह दूषित कार्य करते हो। तुम कौन हो और यहाँ किसलिए आये हो ? यहाँ से आगे जाना तो सिद्ध पुरुषों के अतिरिक्त मनुष्यों के लिए असंभव है।'

भीमसेन ने कहा—'मैं चंद्रवंशी कुरुकुल का क्षत्रिय हूँ। मेरी माता कुन्ती और पिता का नाम पाण्डु है। मुझे भीमसेन कहते हैं। मेरे हाथों से तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। निर्गुण परमात्मा समस्त प्राणियों के शरीर में व्याप्त है, अतः मैं उनका उल्लंघन नहीं करूँगा। यदि मुझे शास्त्रों के द्वारा उनका ज्ञान नहीं होता तो मैं भी जैसे हनुमानजी समुद्र को लाँघ गये थे, वैसे ही इस पर्वत को पार कर जाता। वानर श्रेष्ठ ! हनुमानजी मेरे बड़े भाई हैं। वे अपने सद्‌गुणों के कारण जीवों के लिए वंदनीय हैं। वे सर्वदा बल, बुद्धि, धैर्य एवं उत्साह से युक्त रहते हैं, अतः पवित्र रामायण में उनकी बड़ी ख्याति है।'

हनुमानजी बोले—'अनघ! बुढ़ापे के कारण मुझमें उठने की शक्ति नहीं है, सो मेरी पूँछ हटा कर निकल जाओ।' इस पर भीमसेन ने महाकपि की पूँछ दोनों हाथों से उठाने के लिए पकड़ी, किन्तु उसे हिला भी न सके।

इससे उनका मुख लज्जा से झुक गया और उन्होंने हनुमान जी के चरणों में प्रणाम कर हाथ जोड़ कहा—'मुझे क्षमा कीजिये। मुझ पर प्रसन्न होइये। मैं आपकी शरण में आया हूँ

और शिष्य-भाव से पूछता हूँ कि आप कौन हैं ?'

हनुमानजी बोले—पाण्डुनन्दन ! मैं ही वायु-पुत्र हनुमान हूँ। यह सुन भीमसेन के मन में बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने बड़े प्रेम से अपने बड़े भाई हनुमानजी को प्रणाम कर मधुर वाणी में कहा—आपके दर्शन से मुझे बड़ा सुख मिला है। समुद्र लाँघते समय आपने जो अनुपम रूप धारण किया था, उसका दर्शन मैं करना चाहता हूँ। हनुमानजी ने विहँसकर भीमसेन को अपना वह रूप दिखाया। उनके उस विराट रूप को देख भीमसेन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने डर से अपनी आँखें बन्द कर लीं और कहा—आप तो सूर्य के समान उदित हो रहे हैं। आप अप्रमेय तथा दुर्धर्ष हैं, अतः मैं आपकी ओर देख भी नहीं सकता। भीमसेन ने महाबली हनुमानजी को पुनः प्रणाम किया और उनसे आज्ञा ले वे सौगन्धिक वन की ओर चले। कुछ ही समय में उन्होंने कुबेर का उपवन देखा जो यक्षों और राक्षसों से सुरक्षित था। भीमसेन ने हनुमानजी के कथनानुसार कुबेर देव की भक्ति-भाव से आराधना की। देवप्रिय कुबेर ने भीमसेन को इच्छानुसार कमल के फूल प्रदान किये। उन फूलों को उन्होंने द्रौपदी और महाराज युधिष्ठिर को अर्पण कर दिया। पाण्डव उत्तम व्रत का पालन करते थे। उनमें सत्य एवं धैर्य विद्यमान थे, अतः गंधर्व और महर्षिगण उनसे मिलने आते थे। अब उनके मन में वीर अर्जुन से मिलने की प्रबल इच्छा जागृत हुई। वीर अर्जुन स्वर्ग में पाँच वर्ष तक रह दिव्य अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त कर भाइयों के पास लौट आये। उन्होंने महर्षि धौम्य और युधिष्ठिर के चरणों का स्पर्श किया। सभी पाण्डवों ने वीर अर्जुन को हृदय से लगाया।

जटासुर

एक दिन भीमसेन की अनुपस्थिति में पापात्मा, दुष्टबुद्धि जटासुर नामक राक्षस धर्मराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और द्रौपदी को आश्रम से उठा कर ले गया। वह ब्राह्मण के वेष में प्रतिदिन उनके साथ रहता था और अपने को शास्त्रज्ञों में श्रेष्ठ, मंत्र-कुशल ब्राह्मण बतलाता था। वह पाण्डवों के शस्त्रों और द्रौपदी का अपहरण करने के लिए सदा अवसर ढूंढ़ता था। पाण्डव उसके असली स्वरूप को नहीं पहचान सके।

युधिष्ठिर ने उससे कहा—'अरे मूर्ख! विश्वासघात करने से तो तेरे धर्म का ही नाश हो रहा है। राक्षस तो धर्म का ज्ञान रखते हैं, अतः उन्हें उचित है कि बिना अपराध के किसी को कष्ट न दें। तेरे प्रति हम लोगों की ओर से थोड़ा-सा भी अपराध नहीं हुआ है। हमने तुझे अन्न और आश्रय दिया है अतः जिनका अन्न खायें और जो आश्रय दें, उनके साथ द्रोह या विश्वासघात नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से संसार में तुझे अधर्म और अपकीर्ति ही प्राप्त होगी।' उसी समय गदा हाथ में लिए भीमसेन दिखाई दिये।

महाबली भीमसेन ने कुपित हो राक्षस से कहा—'तू हमारे यहाँ ब्राह्मण-अतिथि के रूप में रहता था, इसलिए मैंने तेरा वध नहीं किया। आज निश्चय ही तेरी आयु पूरी हो चुकी है, तभी तो काल रूपी डोरे से लटकाया हुआ काँटा तूने निगल लिया है।' काल की प्रेरणा से अन्य पाण्डवों को छोड़ वह भीमसेन से युद्ध करने लगा। अब उन दोनों में बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। वे दोनों वीर एक दूसरे से स्पर्धा करते हुए परस्पर आघात करने लगे। तदनन्तर भीमसेन ने उस राक्षस को पृथ्वी पर पटक कर पीस डाला। इस प्रकार जटासुर को मारकर भीमसेन ने सबकी रक्षा की।

जब पाण्डवों के वनवास के दस वर्ष आनन्दपूर्वक व्यतीत

हो गये, तब भीमसेन ने भाइयों से कहा—'हमें इस स्वर्ग-तुल्य प्रदेश से चलना चाहिए। हम अपने पूर्वजों के राज्य को प्राप्त करके ही सत्कर्म करने योग्य हो सकते हैं, अतः अब हमें अपराधी शत्रुओं को दण्ड देने का ही निश्चय करना चाहिये। हमारा कार्य सिद्ध करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण और वीर सात्यकि अत्यन्त प्रयत्न करेंगे। जिससे हमें धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति हो, उसी लक्ष्य की ओर हमें बढ़ना होगा। शत्रुओं से भिड़कर ही हमारा वैर शान्त होगा। भीमसेन का कथन सुन पाण्डव वहाँ के ऋषि-मुनियों को प्रणाम कर पहाड़ों से नीचे उतरे।

एक दिन धौम्य तथा महर्षि तृण विन्दु की आज्ञा से पाण्डव द्रौपदी को अकेली आश्रम में छोड़ वन में कंद-मूल-फल लाने चले गये। उसी समय सिंधु देश का राजा जयद्रथ विवाह करने शाल्व देश की ओर जा रहा था। उसने दूर से यशस्विनी द्रौपदी को देखा, और: उसके मन में दूषित भावना जागृति हो गयी।

उसने अपने साथी कोटिकास्य से कहा—'सौम्य! जाओ और पता लगाओ, यह किसकी स्त्री है और इस वन में क्यों रहती है? यदि मैं इस सुन्दरी को प्राप्त कर सकूँ तो कृतार्थ हो जाऊँगा।

कोटिक द्रौपदी के पास गया और बोला—'तुम किसकी स्त्री हो? क्या तुम्हें जंगल में डर नहीं लगता? यहाँ तुम क्या कार्य करती हो? मैं राजा जयद्रथ की आज्ञा से तुम्हारे पास उपर्युक्त बातें पूछने आया हूँ।'

द्रौपदी ने कहा—'तुम राजा सुरथ के पुत्र हो, अतः मैं तुम्हें पहचानती हूँ। मैं राजा द्रुपद की पुत्री कृष्णा हूँ। मेरे पति पाण्डव हैं, जो खाण्डवप्रस्थ में रहते थे। वे इस समय वन में गये हैं और शीघ्र ही लौटेंगे। तुम कुछ समय के लिए विश्राम करो और उनका आदर-सत्कार ग्रहण कर अपने देश को चले जाना।

इतने में जयद्रथ भी द्रौपदी के पास मन में दुर्भावना लेकर आ पहुँचा और बोला—'पाण्डवों के पास धन और राज्य नहीं

रहा। वे दीन और उत्साहहीन हो गये हैं, अतः उनका अनुसरण तुम्हें नहीं करना चाहिये। विदुषी स्त्रियाँ निर्धन पति की उपासना नहीं करतीं, अतः मेरे रथ पर बैठो और अखण्ड सुख का भोग करो।'

जयद्रथ के मुख से हृदय-कंप करने वाला कथन सुन द्रौपदी ने उससे क्रोधपूर्वक कहा—'तुम्हें निंदित कथन कहते समय लज्जा आनी चाहिये थी। तुम्हारा जन्म तो धर्मात्माओं के कुल में हुआ है, पर तुम अधर्मी हो। पाण्डवों का क्रोध भयंकर विष वाले सर्पों के समान है। क्या तेरे हितैषी नहीं हैं, जो तुझे मृत्यु के हाथ से बचा लें?'

जयद्रथ बोला—'तुम्हारे निर्बल पतियों को मैं जानता हूँ। मैं सर्वगुण सम्पन्न हूँ, अतः मैं उन्हें अपने से हीन मानता हूँ। तुम्हारे सामने दो ही मार्ग हैं—या तो सीधी-सीधी मेरे रथ पर बैठ जाओ, अथवा पाण्डवों के हार जाने पर विलाप करती हुई मुझसे कृपा की भीख माँगो।'

द्रौपदी ने कहा—'रे मूर्ख! मेरे रक्षक भगवान श्रीकृष्ण और पाण्डव हैं। अर्जुन के गांडीव धनुष से छूटे हुए बाण जब तुम्हें बींधेंगे, तब तू अपने कुकर्म को स्मरण कर पश्चात्ताप करेगा।' जयद्रथ द्रौपदी को पकड़ कर बलात् अपने रथ पर बैठा कर चल दिया। कुछ ही समय पश्चात जब पांडव आश्रम में लौटे तब उन्हें द्रौपदी की दासी छात्रेयिका ने रोते हुए कहा—'जयद्रथ ने द्रौपदी का अपहरण किया है। आप लोग शीघ्र शत्रुओं का पीछा कीजिये।' यह सुनकर पांडव जयद्रथ को पकड़ने के लिए शीघ्रता से आगे बढ़े। उन्होंने द्रौपदी को जयद्रथ के रथ पर बैठा देखा। जयद्रथ ने साथी राजाओं को पांडवों से युद्ध करने करने के लिए उत्साहित किया। जयद्रथ ने अनेक अस्त्र-शस्त्रों से पांडवों पर आक्रमण किया, किंतु उन्होंने उसकी सेना और योद्धाओं का भयंकर संहार कर डाला। अपने वीरों के मारे जाने पर जयद्रथ द्रौपदी को रथ पर ही छोड़कर भाग गया।

अमर्ष में भरे महाबली भीमसेन ने वेग से दौड़कर उसके केश पकड़ लिये और घूसों से मारने लगे। अर्जुन ने भीमसेन से कहा—'दुःशला के वैधव्य का विचार कर इसे जीवन-दान दे दो और महाराज युधिष्ठर के पास ले चलो।' महाराज युधिष्ठिर और द्रौपदी ने करुणा कर जयद्रथ को मुक्त कर दिया और वह हरिद्वार चला गया। उसने वहाँ उमापति शंकर की तपस्या की। त्रिनेत्रधारी महादेवजी ने प्रसन्न हो उसे वर दिया कि एक दिन अर्जुन के अतिरिक्त तुम चारों पाण्डवों को युद्ध में आगे बढ़ने से रोक सकोगे। इतना कह भगवान शंकर अंतर्धान हो गये।

धर्म व्याध

कुछ समय पश्चात मार्कण्डेय मुनि पाण्डवों के रहने के स्थान पर आये। पांडवों और द्रौपदी ने उनसे विनयपूर्वक पूछा, 'भगवन्! आप हमें माता-पिता की सेवा और पतिव्रत-धर्म का उपदेश दें।'

मार्कण्डेयजी बोले—भरत श्रेष्ठ! कुछ लोग माता का गौरव बड़ा मानते हैं, तो कुछ पिता का। परंतु माता संतानों को पाल-पोषकर बड़ा बनाती है, यह उसका कठिन कार्य है। माता-पिता अपनी संतानों के लिए यश, कीर्ति, ऐश्वर्य, संतान तथा धर्म की शुभकामना करते हैं। जो उन दोनों की आशा को सफल करता है, वही पुत्र धर्मज्ञ है। जिसके माता-पिता संतान से संतुष्ट रहते हैं, उसे इह और परलोक में अक्षय-कीर्ति और धर्म की प्राप्ति होती है। संतानों को देव-पूजा, तितिक्षा, दान और अन्य उपायों द्वारा श्री हरि को प्रसन्न करना चाहिए।

राजन्! पतिव्रत धर्म के बारे में मैं तुम्हें एक आख्यान सुनाता हूँ। तपस्या का धनी, धर्मात्मा और वेद का अध्ययन करने वाला कौशिक नाम का एक ब्राह्मण था। वह एक दिन वृक्ष के नीचे बैठ वेद-पाठ कर रहा था। उस वृक्ष की डाली

पर एक बगुली बैठी थी। उसने ब्राह्मण देवता पर बीट कर दी। यह देख ब्राह्मण क्रोधित हो गया, जिसके प्रभाव से वह मृत हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। तदनंतर वह ब्राह्मण गाँव में गया और एक गृहस्थ से भिक्षा माँगी। भीतर से किसी स्त्री ने उत्तर दिया—ठहरो! अभी लाती हूँ। वह पति-परायण स्त्री पति को भोजन करा रही थी, अतः ब्राह्मण को भिक्षा देने में कुछ विलंब हो गया। इस पर ब्राह्मण क्रोध से संतप्त हो उठा।

देवी ने बड़ी शांति से कहा—विद्वान! मेरे लिए सबसे बड़े देवता पति हैं। मैं अहंकार और इच्छाओं का दमन कर पति की सेवा करती हूँ। मैं उनसे अप्रिय नहीं कहती। मैं निर्लज्ज की भांति कहीं न खड़ी होती हूँ, न देखती ही हूँ और दुराचारियों से वार्तालाप भी नहीं करती। मैं पति को भोजन कराने से पूर्व भोजन नहीं करती। पति जब घर पधारते हैं, तब आलस्य को छोड़ उनका अभिनन्दन और स्वागत करती हूँ। मैं मन और इंद्रियों को संयम में रख पति के लिए शुद्ध एवं स्वादिष्ट भोजन बनाती हूँ और किसी अपरिचित स्थान पर अकेली नहीं जाती। जो वस्तु पति को अप्रिय है उसे त्याग कर पति का हर समय डर मानती हूँ। मैं पति के साथ ऐसा व्यवहार करती हूँ कि वे प्रसन्न होकर मुझे हृदय से लगा लें। पति के जो शत्रु उपेक्षणीय, अहितकारक और छल-कपट करने के लिए उद्यत रहते हैं, उनसे सदा दूर रहती हूँ। अत्यंत क्रोधी, नशा और चोरी करने वाली दुष्ट और चंचल स्वभाव की स्त्रियों से भी मैं दूर रहती हूँ। मैं देवताओं की पूजा, अतिथियों का सत्कार, भृत्यों का भरण-पोषण और सास-ससुर की सेवा में सर्वदा तत्पर रहती हूँ और मन एवं इंद्रियों पर निरंतर संयम रखती हूँ। मैंने आपको भिक्षा देने में विलम्ब किया है अतः आप क्रोध न करें। क्रोध मनुष्य का शत्रु है। मनस्वी **ब्राह्मण तो देवता के समान होते हैं। मैं बगुली नहीं हूँ, जो आपकी क्रोध भरी दृष्टि से भस्म हो जाऊँगी। मैं ब्राह्मणों के तेज और**

महत्व को जानती हूँ। धर्मज्ञ पुरुष सत्य और सरलता को सर्वोत्तम धर्म बताते हैं और धर्म सदा सत्य में प्रतिष्ठित रहता है। आपको धर्म की सूक्ष्म व्याख्या के लिए मिथिलापुरी में धर्म व्याध के पास जाना चाहिए, जो माता-पिता के सेवक, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं। यदि मैंने कोई अनुचित कार्य किया हो, तो उसके लिए मुझे क्षमा करें, क्योंकि धर्मज्ञ पुरुषों की दृष्टि में स्त्रियाँ अदण्डनीय हैं।

ब्राह्मण बोला—शुभे! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा धर्म और सदाचार उच्चकोटि का है। साध्वी-स्त्री से विदा ले द्विज-श्रेष्ठ कौशिक आत्म-निंदा करता हुआ धर्म व्याध के पास मिथिलापुरी गया। कौशिक ने धर्म-व्याध को बाधिक-गृह में माँस बेचते देखा। ब्राह्मण को देख उसने उसके चरणों में प्रणाम किया और अपने घर ले गया।

कौशिक ने कहा—तात! माँस बेचने का कार्य तुम्हारे योग्य नहीं है, अतः मुझे इस घोर कर्म से संताप हो रहा है।

व्याध बोला—यह कार्य मेरे बाप-दादों के समय से ही चला आ रहा है और मैंने भी इसे अपनाया है, अतः आप मुझ पर क्रोध न करें। विधाता ने इस कुल में जन्म दे मेरे लिए जो कार्य प्रस्तुत किया है, उसका पालन करता हुआ मैं अपने बूढ़े माता-पिता की सेवा करता हूँ। मैं सत्य बोलता हूँ, किसी की निंदा नहीं करता और अपनी शक्ति के अनुसार दान भी करता हूँ। देवताओं, अतिथियों, परिजनों तथा सेवकों को भोजन देने के पश्चात जो बच जाता है, उसीसे अपने जीवन का निर्वाह करता हूँ। मैं स्वयं किसी जीव की हिंसा नहीं करता, दूसरे के मारे हुए जीवों का ही माँस बेचता हूँ। मैं किसी का अहित नहीं करता, न दुर्व्यसनों में आसक्त ही रहता हूँ। यदि अज्ञानवश मुझसे कोई पाप हो जाता है तो उसका निवारण करने के लिए मैं प्रायश्चित्त करता हूँ। जैसे सूर्य के उदय होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही निष्काम भाव से शुभ-

कर्म करने से पापों से मुक्ति मिल जाती है। जो काम, क्रोध, लोभ, दम्भ और कुटिलता से दूर रहता है और धर्म को ही अपनाता है, वह शिष्ट-पुरुष है। शिष्टाचारी पुरुषों में गुरु-सेवा, अहिंसा, प्राणियों के प्रति हित-भावना, वेदाध्ययन, तपस्या, क्षमा, सरलता, शौच, त्याग, सत्यभाषण तथा दान ये सद्‌गुण सदा विद्यमान रहते हैं। मनुष्य को नास्तिक व अधर्म करने वालों का सहयोगी नहीं होकर धर्मात्मा पुरुषों की सेवा करनी चाहिए।

मार्कण्डेयजी ने कहा—'युधिष्ठिर! कौशिक ब्राह्मण ने धर्म व्याध का उपदेश सुन उसकी परिक्रमा की और वहाँ से प्रसन्न-चित हो चला गया।'

कौरवों का बन्दी होना

राजा धृतराष्ट्र ने जब सुना कि पाण्डव वन में दुर्बल हो कष्ट भोग रहे हैं, तब वे इसे अपने ही कार्यों का परिणाम समझकर विलाप करने लगे। दुःशासन, कर्ण, शकुनि और दुर्योधन ने जब पाण्डवों की यह दशा सुनी, तब वे उन्हें और दुःख देने हेतु बृहत सेना के साथ द्वैत-वन गये। उन्होंने देखा कि पाण्डव एक अत्यन्त निर्मल सरोवर के निकट निवास कर नित्य यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं। गंधर्वराज भी अपने सेवकों के साथ उसी सरोवर के पास रहते थे। दुर्योधन ने अपने सैनिकों को गंधर्व-राज के अनुचरों को मार भगाने की आज्ञा दी। यह सुन गंधर्व-राज चित्रसेन के सेवक कौरवों से भिड़ गये। कौरव गंधर्वों से भयभीत हो युद्ध स्थल से भाग गये, किन्तु दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन को गंधर्वों ने बंदी बना लिया। धर्मात्मा युधिष्ठिर ने भीमसेन और अर्जुन से कौरवों को मुक्त कराने को कहा। भीमसेन और अर्जुन ने गंधर्वराज चित्रसेन को महात्मा युधिष्ठिर की आज्ञा सुना दी, किन्तु उसने पाण्डवों के आग्रह

को अस्वीकार कर दिया। तदनन्तर गंधर्वों और पाण्डवों में भयंकर युद्ध होने लगा। सव्यसाची अर्जुन के वाणों से बहुत-से गंधर्व मारे गये। गंधर्वराज चित्रसेन वीर अर्जुन के सखा थे, अतः वे उनके पास गये और युद्ध बन्द करने को कहा।

अर्जुन ने कहा—'चित्रसेन! दुर्योधन हम लोगों का भाई है, अतः धर्मराज युधिष्ठिर के आदेशानुसार कौरवों को छोड़ दो।' यह सुन गंधर्वराज चित्रसेन ने कौरवों को मुक्त कर दिया। तदनन्तर राजा दुर्योधन अजातशत्रु युधिष्ठिर को प्रणाम कर भाइयों सहित हस्तिनापुर चला गया। राजा दुर्योधन गंधर्वों द्वारा अपमानित और पाण्डवों के पराक्रम से दुःखित हो आमरण अनसन-व्रत लेकर बैठ गया। इस पर वीर कर्ण ने उसे सांत्वना देते हुए प्रतिज्ञा की—'जब तक अर्जुन मेरे हाथों से मारा नहीं जाता, तब तक मैं दूसरों से पाँव नहीं धुलवाऊँगा, केवल जल से उत्पन्न पदार्थ नहीं खाऊँगा और किसी के कुछ भी माँगने पर 'नहीं' नहीं कहूँगा।' उस दिन से कौरव पाण्डवों को पराजित ही मानने लगे। वीर कर्ण की प्रतिज्ञा सुन धर्मपुत्र युधिष्ठिर उद्विग्न हो उठे और काम्यक वन को चले गये। अब वनवास का थोड़ा ही समय शेष रह गया था, उसी समय महायोगी व्यासजी पाण्डवों के पास आये। पाण्डवों ने उनकी विधिपूर्वक पूजा की और उत्तम आसन पर बैठाया।

दुर्वासा

व्यासजी बोले—'युधिष्ठिर! मनुष्य को जीवन में सुख और दुःख दोनों का सेवन करना पड़ता है। जगत में ऐसा कोई नहीं है, जिसके सुख का अंत न हो। बुद्धिमान मनुष्य सुख-दुःख को देव का विधान समझकर हर्ष और शोक नहीं करते। तप से बढ़कर आत्मा की उन्नति का अन्य कोई साधन नहीं है। जो लोग अधर्म करते हैं, उन्हें समय आने पर दुःख उठाना ही पड़ता है।

तुम लोग सभी धर्म के पथ पर चलने वाले हो, अत: शील और सदाचार को ही अपनाना।' व्यासजी पाण्डवों को उपदेश दे वहाँ से चले गये। जब दुर्योधन ने सुना कि पाण्डव वन में आनन्द से रहते हैं तब उसने उनका अनिष्ट करने का पुनः निश्चय किया।

उसने महर्षि दुर्वासा को प्रसन्न कर कहा—'महामुने! धर्मात्मा युधिष्ठिर बड़े गुणवान और सुशील है। जिस प्रकार आप मेरे अतिथि हुए हैं, उसी तरह शिष्यों के सहित उनके भी अतिथि हो उन पर भी कृपा कीजिये।' दुर्योधन की विनय से दस हजार शिष्यों सहित दुर्वासा ऋषि पाण्डवों के पास वन में गये। पाण्डवों ने उनका विधिवत सत्कार कर भोजन के लिए निमंत्रित किया। यह सुन निष्पाप मुनि शिष्यों के साथ नदी में स्नान करने चले गये। उस समय तक पाण्डवों और सती द्रौपदी ने भोजन कर लिया था, अत: अन्न के लिये कृष्णा बड़ी चिन्ता में पड़ गयी। जब अन्न प्राप्त करने का कोई साधन उसे नहीं सूझा, तब वह भगवान श्रीकृष्ण का चिन्तन करने लगी। द्रौपदी की स्तुति करने पर भगवान वहीं प्रकट हो गये। द्रौपदी ने उन्हें दुर्वासा मुनि के यहाँ अनायास ही आने और भोजन करने का समाचार सुनाया।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, 'कृष्णे! मुझे बड़ी भूख लगी है। पहले तू मुझे भोजन करा, फिर अन्य प्रबन्ध करती रहना।' यह सुन द्रौपदी बड़ी चिन्ता में पड़ी।

द्रौपदी बोली—'भगवन्! सूर्य नारायण ने जो पात्र हमें दिया है, उसमें तभी तक भोजन मिलता है, जब तक मैं भोजन कर लेती हूँ। देव! आज तो मैं भी भोजन कर चुकी हूँ, अत: अब और भोजन उसमें नहीं बचा है।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—'मैं तो भूख और थकावट से व्याकुल हो रहा हूँ, इसलिए बटलोई लाकर मुझे दिखा। भगवान श्रीकृष्ण के आग्रह पर द्रौपदी बटलोई लाई, जिसके गले में

थोड़ा-सा शाक लगा था। उसे भगवान श्रीकृष्ण ने खा लिया और सहदेव को मुनियों को बुलाने भेजा। भगवान श्रीकृष्ण के खाते ही सब मुनि पूर्ण तृप्त हो गये।

दुर्वासा बोले—'शिष्यो! राजा युधिष्ठिर के यहाँ रसोई बनवाकर हमने उनका अपराध किया है। राजा अम्बरीष के प्रभाव को याद कर मैं भक्त पाण्डवों से डरता रहता हूँ, अतः उन्हें बिना पूछे ही तुरन्त भाग चलो।' गुरु दुर्वासा के कहने पर उनके शिष्य भयभीत हो गये। सहदेव ने जब मुनियों को नदी पर नहीं देखा, तब उन्होंने सब बृतान्त महात्मा युधिष्ठिर को कह सुनाया।

महात्मा युधिष्ठिर ने कहा—'गोविन्द! तुम्हें अपना सहायक और संरक्षक पाकर हम दुस्तर विपत्तियों से उसी प्रकार पार हुए हैं, जैसे महासागार में डूबते हुए मनुष्य जलयान का अवलम्ब ले पार हो जाते हैं।' भगवान श्रीकृष्ण ने पाण्डवों के कल्याण की कामना की और द्वारकापुरी चले गये।

सावित्री-सत्यवान

मार्कण्डेय मुनि बोले—'राजन्! देव के विधान को कोई नहीं जानता। कभी-कभी सत-पथ पर चलने वाले पुरुषों को भी कष्ट उठाना पड़ता है। इस विषय में मैं तुम्हें एक आख्यान सुनाता हूँ। मद्र देश में एक धर्मात्मा, सत्य-प्रतिज्ञ, ब्राह्मण-भक्त और जितेन्द्रिय अश्वपति नाम का राजा था। उसके कोई सन्तान नहीं थी। उसने कई वर्षों तक गायत्री-मंत्र द्वारा अनुष्ठान किया। इस पर सावित्री देवी प्रसन्न हो गई। राजा द्वारा संतान-प्राप्ति का वर माँगने पर एक कमलनयनी कन्या ने उनके यहाँ जन्म लिया। ब्राह्मणों ने उसका नाम सावित्री रखा। वह राजकन्या मूर्तिमय लक्ष्मी के समान थी और यथासमय उसने युवावस्था में प्रवेश किया। जब किसी वर ने देव-

स्वरूपिणी कन्या के लिये याचना नहीं की, तब मद्रनरेश को बड़ी चिन्ता हुई। राजा ने सावित्री से कहा—'तू ही वर की खोज कर ले, जो गुणों में तेरे समान हो। जिस पुरुष को तू पति-रूप में वरण करना चाहेगी, उसीके साथ मैं तेरा विवाह कर दूंगा।' पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर मनस्विनी सावित्री राज-मंत्रियों के साथ पति प्राप्त करने की इच्छा से विभिन्न देशों में गई। कुछ समय पश्चात सावित्री अपने पिता के घर लौटी।

महाराजा अश्वपति को नारदजी के साथ बैठे देख शुभ-लक्षणा सावित्री ने दोनों के चरणों में प्रणाम किया और कहा—'पिताजी ! शाल्व-देश में द्युमत्सेन नामक एक धर्मात्मा अंधे राजा राज्य करते थे। उनके पूर्व शत्रु राजा ने बुद्धिमान नरेश का राज्य हर लिया। अब वे अपनी पत्नी के साथ वन में व्रतों का पालन करते हुए तपस्या करते हैं। उनके सत्यवान नाम का योग्य पुत्र है, जिसका मैंने मन ही मन वरण किया है।'

नारदजी बोले—'राजन् ! सावित्री ने बिना विचारे ही अपना अनिष्ट किया है। राजकुमार के माता-पिता सदा सत्य बोलते हैं अतः ब्राह्मणों ने इस बालक का नाम सत्यवान रखा है। यह मिट्टी के अश्व बनाया करता था, इसलिए इसे चित्रश्व भी कहते हैं। सत्यवान अपनी शक्ति के अनुसार दानी, ब्राह्मण-भक्त, रूपवान, शूरवीर और जितेन्द्रिय है, किन्तु आज से एक वर्ष होते ही उसकी मृत्यु हो जाएगी।'

यह सुन राजा ने बेटी सावित्री को दूसरे पुरुष का वरण करने को कहा। सावित्री बोली—'पिताजी ! कन्या एक ही बार विवाह में दी जाती है और धर्मात्मा-दानी दान देने का वचन दे, उसे निश्चय ही पूर्ण करता है। सत्यवान दीर्घायु हो या अल्पायु, गुणवान हो या गुणहीन, मैं उन्हें चुन चुकी हूँ, अतः अब दूसरे पुरुष का वरण नहीं करूँगी। जो विचार मन में निश्चय कर वाणी द्वारा कहकर कार्य-रूप में परिणत किया

जाता है, उसका मन ही प्रमाण है।' सावित्री का वचन सुन राजा अश्वपति द्युमत्सेन के आश्रम में गये। वहाँ उन्होंने नेत्रहीन नरेश को शाल-वृक्ष के नीचे एक कुश की चटाई पर बैठे देखा। राजा अश्वपति ने राजर्षि धुमत्सेन का यथायोग्य सत्कार कर अपने आने का उद्देश्य कह सुनाया।

द्युमत्सेन बोले—'महाराज! हम राज्य से वंचित हैं और वन में संयम-नियम के साथ तपस्वी-जीवन बिताते हैं, आपकी यह कन्या वनवास का कष्ट सहन नहीं कर सकेगी।'

अश्वपति ने कहा—'राजन् सुख और दुःख तो उत्पन्न और नष्ट होने वाले हैं। मैं यह निश्चय कर आपके पास आया हूँ कि इस कन्या को आप सत्यवान की पत्नी और पुत्रवधू के रूप में ग्रहण कर लीजिये।' द्युमत्सेन ने राजा अश्वपति का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और आश्रम में रहने वाले ब्राह्मणों ने सावित्री सत्यवान का विवाह विधिवत् सम्पन्न कराया। तत्पश्चात राजा अश्वपति प्रसन्नतापूर्वक अपनी राजधानी लौट गये। उस सर्व-सद्गुण सम्पन्न भार्या को पाकर सत्यवान को बड़ी प्रसन्नता हुई और सत्यवान को पति के रूप में वरण कर सावित्री को भी आनन्द हुआ। पिता के चले जाने पर सावित्री ने अपने सब आभूषण उतार दिये, वल्कल तथा गेरुआ वस्त्र पहन लिये और अपने शील से सबको प्रसन्न करने लगी। इस प्रकार आश्रम में रहकर तपस्या करते-करते कुछ काल व्यतीत हो गया। अब सत्यवान की मृत्यु का दुःखदायी समय निकट आ पहूँचा। उस समय को स्मरण कर सावित्री कठोर व्रत का पालन करने लगी। वह ब्राह्मणों, बड़े-बूढ़ों और सास-ससुर को प्रणाम कर उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हुई, अतः उस तपोवन में रहने वाले गुरुजनों और तपस्वियों ने सावित्री को सौभाग्यवर्द्धक आशीर्वाद दिये।

सास-ससुर ने कहा—'बेटी! तुमने शास्त्र के अनुसार अपना व्रत पूरा कर लिया है, अब पारण करो।'

सावित्री बोली—'सूर्यास्त होने पर जब मेरा मनोरथ पूर्ण हो जायेगा, तभी मैं भोजन करूँगी, यह मेरा संकल्प और प्रतिज्ञा है।' उसी समय सत्यवान कंधे पर कुल्हाड़ी रख फल-फूल समिधा आदि लाने वन को चले। सावित्री भी उनके साथ वन चलने को उद्यत हुई।

सत्यवान बोला—'वन का मार्ग बड़ा दुःखदायक है। तुम व्रत और उपवास करने के कारण निर्बल हो रही हो। ऐसी दशा में पैदल कैसे चल सकोगी ?'

सावित्री बोली—'उपवास के कारण मुझमें किसी प्रकार की शिथिलता नहीं है। आपके साथ वन चलने का मुझमें पूर्ण उत्साह है, अतः आप मुझे वन में जाने से न रोकें।' यह कह सावित्री सत्यवान के साथ वन में चली गयी। नारदजी के वचनों का स्मरण कर दृढ़ विश्वास हो गया था कि उसके पति की मृत्यु अवश्यम्भावी है।

सत्यवान ने फल-फूल-समिधा से टोकरी भरने के पश्चात सावित्री से कहा—'मेरे सिर में वेदना है, मुझमें खड़े रहने की शक्ति नहीं है अतः मैं सोना चाहता हूँ।' यह सुन सावित्री अपने पति का सिर गोद में लेकर बैठ गयी और नारदजी के वचन स्मरण कर उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगी। दो घड़ी पश्चात एक दिव्य-पुरुष प्रकट हुआ, जिसके शरीर पर लाल वस्त्र थे। सूर्य के समान तेजस्वी धर्मराज मूर्तिमान सूर्य ही जान पड़ते थे। उनके हाथ में पाश था और वे सत्यवान के पास खड़े थे।

उन्हें देखते ही सावित्री हाथ जोड़कर आर्त्त स्वर में बोली—'देवेश्वर ! आप कौन है। यहाँ क्यों आये हैं ?'

यमराज बोले—'मैं यमराज हूँ। सत्यवान की आयु समाप्त हो गयी है, अतः मैं उसके प्राण ले जाऊँगा। नृपति के ऋण से उऋण हो चुकी है, इसलिए इसके शरीर का मोह छोड़ दे।'

सावित्री ने कहा—'जहाँ मेरे पति ले जाये जायेंगे, मैं भी

वहीं जाना चाहूँगी। यही सनातन धर्म है। तपस्या, गुरु भक्ति, पति प्रेम, व्रत पालन और आपकी कृपा से मैं भी उनके साथ ही जा सकूँगी। विद्वानों का कथन है कि सात पद साथ में चलने मात्र से मैत्री स्थापित हो जाती है, जिसे धर्मज्ञ पुरुष निभाते हैं और सत्पुरुष धर्म को ही श्रेष्ठ मानते हैं।'

यमराज ने कहा—'तू मेरे साथ न चल। सत्यवान के जीवन के अतिरिक्त मुझसे अन्य वर माँग ले।'

सावित्री बोली—'भगवन्! मेरे श्वसुर का राज छिन गया है और वे दृष्टिहीन भी हैं, अतः आपकी कृपा से वे सूर्य के समान तेजस्वी हो जायें और पुनः राज्य प्राप्त कर लें।'

यमराज बोले—'अनिंदिते! तुम जो चाहती हो वैसा ही होगा। अब तू लौट जा, जिससे तुझे अधिक कष्ट न हो।'

सावित्री बोली—'जहाँ मेरे पतिदेव रहेंगे, मैं भी वहीं रहूँगी। सत्पुरुषों का एक बार का समागम भी अत्यन्त अभीष्ट होता है। उसका संग निष्फल नहीं होता।'

यमराज ने कहा—'भामिनी! तेरा कथन यथार्थ है, अतः सत्यवान के जीवन के अतिरिक्त और वर माँग ले।'

सावित्री ने कहा—'देव! आपका यम नाम सर्वत्र विख्यात है। मन, वाणी और क्रिया द्वारा किसी प्राणी से द्रोह न करना, सब पर दया-भाव रखना, दान देना, साधु पुरुषों का सनातन धर्म है। आप जैसे महात्मा शरण में आये हुए शत्रुओं पर भी दया करते हैं, अतः हम जैसे दीन मनुष्यों पर दया क्यों नहीं करेंगे? मेरे पिता पुत्रहीन हैं उन्हें आप उत्तम गुण वाले पुत्र प्रदान कर दीजिये।'

यमराज ने कहा—'तेरी यह कामना भी पूर्ण होगी। अब तू लौट जा।'

सावित्री ने कहा—'आप विवस्वान के प्रतापी पुत्र हैं, इसलिये विद्वान आपको वैवस्वत् कहते हैं। आप प्रजा के साथ समतापूर्वक धर्मानुसार आचरण करते हैं, इसलिये धर्मराज कहलाते

हैं। मेरे और सत्यवान के संयोग से कुल की वृद्धि कराने वाले बल और पराक्रम से पूर्ण अनेक पुत्र होने चाहिये, यह मेरी अंतिम प्रार्थना है।'

धर्मराज ने कहा—'एवमस्तु। अब तू लौट जा।'

सावित्री बोली—'सत्पुरुषों की वृत्ति निरंतर धर्म में ही लगी है। मनुष्य का सत पुरुषों से समागम निष्फल नहीं होता। मनुष्य संतों से भय नहीं करते। सत्य के बल से सूर्य के कर्तव्य का संचालन होता है। सत्य से पृथ्वी चराचर को धारण करती है। सत्य ही भूत, भविष्य और वर्तमान का आश्रय है। सत्य से ही सनातन सदाचार चलता है। आपने मुझे जो पुत्र-प्राप्ति का वर दिया है, वह दाम्पत्य-संयोग बिना नहीं हो सकता। पति के बिना अन्य उपायों से पुत्र-सुख मिल सकता है, तो वह मुझे नहीं चाहिये। पतिदेव के बिना मुझे धन-सम्पत्ति और स्वर्गलोक में जाने की भी इच्छा नहीं है। मैं उनके बिना जीवित भी नहीं रहूँगी। सत्यवान यदि जीवित नहीं होंगे तो मुझे पुत्रों की प्राप्ति कैसे होगी? अतः उन्हें जीवित कर अपना वचन सत्य कीजिये।'

धर्मराज बोले—'भद्रे! मैं तुम्हारे धर्मयुक्त वचनों द्वारा अत्यन्त संतुष्ट हूँ, अतः सत्यवान अब निरोग और सफल-मनोरथ हो जायेगा। यह दीर्घायु और विश्वविख्यात भगवत भक्त होगा।' सावित्री को वरदान दे धर्मराज अंतर्धान हो गये। तदनन्तर पुनः चेतना-शक्ति प्राप्त कर सत्यवान सावित्री की ओर देखते हुए प्रेमपूर्वक बोले—'प्रिये! खेद है, मैं बहुत देर तक सोता रहा। तुमने मुझे जगाया क्यों नहीं? जो मुझे खींच रहे थे, वे श्याम-वर्ण के पुरुष कहाँ हैं?'

सावित्री बोली—'नरश्रेष्ठ! आप मेरी गोद में अस्वस्थ होने के कारण बहुत समय से सो रहे हैं। वे श्याम-वर्ण के पुरुष प्रजा को संयम में रखने वाले साक्षात भगवान यम थे। अब वे यहाँ से चले गये हैं। रात्रि बहुत हो गयी है। यदि शक्ति हो तो

उठिये और आश्रम पर चलकर माता-पिता के दर्शन कीजिये।' पति का हित चिन्तन करने वाली सावित्री ने सत्यवान को सहारा दिया।

सत्यवान ने कहा—'हमें शीघ्र घर चलना चाहिए। मैं स्वस्थ और बलवान हूँ और माता-पिता को देखने के लिए उत्सुक हूँ। वे हमारे बिना दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकते। हम ही उनकी दृष्टि हैं तथा हम पर ही वंश प्रतिष्ठित है। हमें न देख वे किस दशा में पहुँच गये होंगे ? मैं माता-पिता के बिना जीवित नहीं रह सकता।' यह कह धर्मात्मा एवं गुरुभक्त सत्यवान और पुण्यमयी सावित्री शीघ्रता से आश्रम में पहुँचे। सत्यवान ने देखा कि उसके माता-पिता की आँखें स्वस्थ हो गई हैं और वे उनके लिये अत्यन्त विलाप कर रहे हैं। सावित्री ने सारी घटना उन्हें सुना दी। द्युमत्सेन और माता शैव्या सावित्री और सत्यवान को देखकर अत्यधिक हर्षित हुए। शल्व देश की प्रजा ने शत्रुओं को मार भगाया और राजा द्युमत्सेन का पुनः राज्याभिषेक कर दिया। मद्रराज अश्वपति के भी महारानी मालवी से अनेक बलशाली पुत्र हुए।

यक्ष के प्रश्न

द्वैतवन में पाण्डव सती द्रौपदी के साथ फलाहार द्वारा जीवन-निर्वाह करते थे। एक समय भूख-प्यास से पीड़ित पाण्डव बरगद की शीतल छाया में बैठे थे। युधिष्ठिर ने नकुल से कहा—'हम सब अत्यन्त प्यासे हैं। यदि पानी समीप ही कहीं हो तो पता लगाओ ?'

नकुल बोले—'राजन् ! मैं ऐसे बहुतेरे वृक्ष देख रहा हूँ, जो जलाशय के तट पर ही होते हैं। मुझे सारसों के स्वर भी सुनाई देते हैं, अतः निःसंदेह निकट ही कोई सरोवर है।'

युधिष्ठिर ने कहा—'तुम शीघ्र वहाँ जाओ और तरकसों

में पानी भर लाओ। नकुल भाई की आज्ञा मान वहाँ गया, जहाँ जलाशय था। स्वच्छ जल देखकर उसे पानी पीने की इच्छा हुई। इतने में ही उसे एक यक्ष की वाणी सुनाई दी, 'तात! मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना पानी पीने का साहस न करना।'

नकुल बहुत प्यासा था, अतः यक्ष के वचनों की अवहेलना कर उसने शीतल जल पी लिया और अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ा। नकुल के लौटने में जब विलम्ब हो गया, तब कुन्ती-नन्दन युधिष्ठिर ने सहदेव से जल लाने को कहा। सहदेव भी उसी ओर गये, जिस मार्ग से नकुल गया था। उसने जलाशय के तट पर प्रिय नकुल को पड़े देखा। भाई के शोक से उसका हृदय संतप्त हो उठा, किन्तु वह पानी के अभाव में अत्यन्त कष्ट पा रहा था।

उसने सुना—'पानी पीने का साहस न करना। पहले तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, तत्पश्चात इच्छानुसार जल पीओ।' प्यासा सहदेव उस वाणी की अवहेलना कर ठंडा जल पीने लगा और अचेत हो भूमि पर गिर पड़ा। यही दशा वीर अर्जुन और भीम की भी हुई। तदनन्तर पुरुषरत्न युधिष्ठिर जल की खोज में सरोवर के पास पहुँचे। उन्होंने अपने भाइयों को सरोवर के तट पर मृत देखा। यह दृश्य देख वे विलाप करने लगे। महाबाहु युधिष्ठिर देश और काल के तत्व को जानते थे, तो भी अपने भाइयों की मृत्यु का कारण उनकी समझ में नहीं आया। इस प्रकार चिन्ता करते-करते उन्होंने जलाशय के जल का स्पर्श किया। इतने में ही उन्हें अमोघ वाणी सुनाई दी—'मैंने ही तुम्हारे छोटे भाइयों को स्वर्गलोक भेजा है, मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना यदि तुमने जल पी लिया तो तुम्हें भी स्वर्ग में जाना पड़ेगा।'

युधिष्ठिर बोले—'हे देव! तुम्हारा क्या नाम है? तुमने मेरे बलवान भाइयों को क्यों मारा है? तुम क्या चाहते हो?

मैं विनयपूर्वक पूछता हूँ कि तुम कहाँ विराजमान हो ?'

यक्ष ने कहा—'मैं यक्ष हूँ। मैंने तुम्हारे भाइयों को पानी पीने से बराबर मना किया था, किन्तु ये बलपूर्वक जल पीना चाहते थे, अतः मैंने उन्हें मार डाला है। तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर ही जल पी सकोगे।'

युधिष्ठिर बोले—'मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूँगा।'

यक्ष ने पूछा—'सूर्य को उदित और अस्त कौन करता है ? उसके चारों ओर कौन चलते हैं ? उसमें कौन प्रतिष्ठित है ?'

युधिष्ठिर बोले—'ब्रह्म उसे उदित करता है, धर्म उसे अस्त करता है, देव उसके चारों ओर चलते हैं, सत्य उसमें प्रतिष्ठित है।'

यक्ष ने पूछा—'मनुष्य श्रोत्रिय किससे होता है ? वह महत्पद किसके द्वारा प्राप्त करता है ? वह किसके द्वारा द्वितीय-मान होता है और किससे बुद्धिमान ?'

युधिष्ठिर बोले—'वेदाध्ययन द्वारा मनुष्य श्रोत्रिय होता है, तप से महत्पद प्राप्त करता है। धैर्य से द्वितीयमान (दूसरे साथी से युक्त) होता है। सज्जनों की सेवा से बुद्धिमान बनता है।'

यक्ष ने पूछा—'ब्राह्मण कौन है ? उसे कौन-से तत्व जानने चाहिए ? ब्राह्मण में देवत्व क्या है ? उनमें सत्पुरुषों का धर्म क्या है ? उसका मनुष्य-भाव क्या है ? और उसमें असत्पुरुषों का आचरण क्या है ?'

युधिष्ठिर वोले—'जिसमें सत्य, दान, क्षमा, सुशीलता, क्रूरता का अभाव, तपस्या और दया हो, वही ब्राह्मण है। जानने योग्य तत्व ही परब्रह्म है। उसे जानकर मनुष्य सुख-दुख से परे हो जाता है। बालक जब तक वेद का स्वाध्याय न कर ले, तब तक वह शूद्र के समान है। यदि उपर्युक्त लक्षण ब्राह्मण में नहीं हैं, तो वह भी शूद्र है और यदि शूद्र उन लक्षणों से युक्त है तो

उसे ब्राह्मण ही कहना चाहिए। इसलिए तत्वदर्शी विद्वान शील को ही प्रधानता देते हैं और उसे ही अभीष्ट मानते हैं। वेदाध्ययन करने पर यदि उसे सदाचार की उपलब्धि हो, तब ही वह ब्राह्मण है। वेदों का स्वाध्याय ही ब्राह्मणों में देवत्व है। तप सत्पुरूषों का धर्म है। मरना मनुष्य-भाव है। निन्दा करना असत्पुरुषों का आचरण है।'

यक्ष ने पूछा—'क्षत्रियों में देवत्व क्या है ? उनमें सत्पुरुषों का धर्म क्या है ? उनका मनुष्य-भाव क्या है और उनमें असत्पुरुषों का आचरण क्या है ?'

युधिष्ठिर बोले—'शस्त्र-विद्या क्षत्रियों का देवत्व है। यज्ञ उनका सत्पुरुष का धर्म है। भय मानवीय भाव है और शरण में आये हुए दुखियों का परित्याग करना उनमें असत्पुरुषों का आचरण है।'

यक्ष ने पूछा—'कौन एक वस्तु याज्ञीय साम और यजु है ? कौन एक वस्तु यज्ञ का वरण करती है ? किसका यज्ञ अतिक्रमण नहीं करता ?'

युधिष्ठिर बोले—'प्राण ही याज्ञीय साम है। मन ही यज्ञ-सम्बन्धी यजु है। ऋचा ही यज्ञ का वरण करती है और उसीका यज्ञ अतिक्रमण नहीं करता।'

यक्ष ने पूछा—'किसान के लिये कौन-सी वस्तु श्रेष्ठ है ? बोने वालों के क्या श्रेष्ठ है ? प्रतिष्ठा प्राप्त धनियों के लिये क्या श्रेष्ठ है। तथा पिता के लिये क्या श्रेष्ठ है ?'

युधिष्ठिर बोले—'किसान के लिये वर्षा, बोने वालों के लिये बीज, उत्तम धनियों के लिये गौ और पिता के लिये पुत्र श्रेष्ठ है।'

यक्ष ने पूछा—'ऐसा कौन पुरुष है जो श्वास लेता हुआ भी वास्तव में जीवित नहीं है ?'

युधिष्ठिर बोले—'जो देवता, अतिथि, कुटुम्बीजन, पितर और आत्मा का पोषण नहीं करता, वह श्वास लेने पर भी

जीवित नहीं है।'

यक्ष ने पूछा—'पृथ्वी से भारी, आकाश से ऊँचा, वायु से वेगवान और गणना में तिनकों से अधिक क्या है?'

युधिष्ठिर बोले—'माता-पिता का स्नेह पृथ्वी से भारी एवं आकाश से ऊँचा है। मन वायु से भी तेज चलने वाला है। चिन्ता तिनकों से गणना में अधिक और अनंत है।'

यक्ष ने पूछा—'कौन कभी आँख नहीं मूँदता? कौन उत्पन्न होकर भी चेष्टा नहीं करता? किसमें हृदय नहीं है? कौन वेग से बढ़ता है?

युधिष्ठिर बोले—'मछली आँख नहीं मूँदती, अण्डा उत्पन्न होकर भी चेष्टा नहीं करता। पत्थर में हृदय नहीं है और नदी वेग से बढ़ती है?'

यक्ष ने पूछा—'यात्रा के समय मित्र कौन है? गृहस्थ का मित्र कौन है? रोगी का मित्र कौन है? पुरुष का मित्र कौन है?'

युधिष्ठिर बोले—'साथ में यात्रा करने वाला यात्री का, पत्नी गृहस्थ का, वैद्य रोगी का और दान मनुष्य का मित्र है।'

यक्ष ने पूछा—'प्राणियों का अतिथि कौन है? सनातन धर्म क्या है? अमृत क्या है? जगत क्या है?'

युधिष्ठिर बोले—'अग्नि प्राणियों का अतिथि है। अविनाशी नित्य धर्म ही सनातन धर्म है। गौ का दूध अमृत है और वायु जगत है।'

यक्ष ने पूछा—'अकेला कौन विचरता है? एक बार उत्पन्न होकर पुनः कौन उत्पन्न होता है? शीत की औषधि क्या है? महान क्षेत्र क्या है?'

युधिष्ठिर बोले—'सूर्य अकेला विचरता है। चन्द्रमा बार-बार जन्म लेता है। अग्नि शीत की औषधि है। पृथ्वी महान क्षेत्र है।'

यक्ष ने पूछा—'धर्म, यश, स्वर्ग और सुख का मुख्य स्थान क्या है? किस कर्म के आचरण से सर्वोत्तम गति प्राप्त होती है?'

युधिष्ठिर बोले—'धर्म का मुख्य स्थान दक्षता, यश का दया, स्वर्ग का सत्य और सुख का शील है। सतपात्र को दान देने से सत्य और प्रिय वचन बोलने वाले से, अहिंसा-धर्म में स्थित रहने से मनुष्य उत्तम-गति पा सकता है।'

यक्ष ने पूछा—'मनुष्य की आत्मा क्या है? उसका दैव कृत सखा कौन है? उसके जीवन का सहारा औऱ परम आश्रय क्या है?'

युधिष्ठिर बोले—'मनुष्य की आत्मा पुत्र, स्त्री दैवकृत सहचरी, मेघ जीवन का सहारा और दान परम आश्रय है।'

यक्ष ने पूछा—'धन्यवाद के योग्य पुरुषों में उत्तम गुण क्या है? धनों में उत्तम धन क्या है? लाभों में प्रधान लाभ क्या है? सुखों में उत्तम सुख क्या है?'

युधिष्ठिर बोले—'दक्षता ही उत्तम गुण है। धनों में शास्त्र-ज्ञान प्रधान है। लाभों में आरोग्यता श्रेष्ठ है। संतोष ही उत्तम सुख है।'

यक्ष ने पूछा—'लोक में श्रेष्ठ धर्म क्या है? नित्य फल वाला धर्म क्या है? किसे वश में रखने से मनुष्य शोक नहीं करते? किनके साथ की हुई मित्रता नष्ट नहीं होती? मनुष्य को निश्चित रूप से मिलने वाला फल किस प्रकार देखने में आता है?'

युधिष्ठिर बोले—'दया श्रेष्ठ धर्म है। वेदोक्त धर्म नित्य-फल देने वाला है। मन को वश में रखने से मनुष्य शोक नहीं करते। सत्पुरुषों के साथ की हुई मित्रता नष्ट नहीं होती। अपने-अपने कर्मों के अनुसार जीवों में तीन प्रकार की गतियाँ देखी जाती हैं—स्वर्गलोक की प्राप्ति, मनुष्य योनि में जन्म और पशु-पक्षी आदि योनियों में उत्पन्न होना।'

यक्ष ने पूछा—'किस वस्तु को त्याग करमनुष्य प्रिय, अर्थ-वान और सुखी होता है और शोक नहीं करता? मन और बुद्धि का उत्तम लक्षण क्या है?'

युधिष्ठिर बोले—'मनुष्य मन को त्यागने से प्रिय और काम के त्याग से अर्थवान और लोभ के त्याग से सुखी होता है, वह क्रोध को त्यागने से शोक नहीं करता। आत्मा की मुक्ति और मोक्ष का सम्पादन ही बुद्धि का प्रयोजन है तथा आत्मा का आश्रय लेकर ही बुद्धि विषयों की ओर जाती है। बुद्धि तो कार्य से प्रकट होती है और मन सदैव प्रकट रहता है।'

यक्ष ने पूछा—'ब्राह्मण, नट और नर्तक, सेवक और राजा को क्यों दान दिया जाता है ?'

युधिष्ठिर बोले—'ब्राह्मण को धर्म, नट और नर्तक को यश, सेवकों को भरण-पोषण और राजा को भय के कारण दान दिया जाता है।'

यक्ष ने पूछा—'जगत किस वस्तु से ढका हुआ है ? किसके कारण यह प्रकाशित नहीं होता ? मनुष्य मित्रों को क्यों त्याग देता है ? स्वर्ग में किस कारण नहीं जाता ?'

युधिष्ठिर बोले—'जगत अज्ञान से ढका है। तमोगुण से प्रकाश नहीं होता। लोभ के कारण मनुष्य मित्रों को त्याग देता है और आसक्ति के कारण वह स्वर्ग में नहीं जाता।'

यक्ष ने पूछा—'मनुष्य को क्यों मृत कहते हैं ? राष्ट्र की मृत्यु क्या है ? श्राद्ध किस प्रकार मृत हो जाता है ? यज्ञ कैसे नष्ट होता है ?'

युधिष्ठिर बोले—'दरिद्र मरे के समान है। श्रेष्ठ राजा के अभाव में राज्य नष्ट हो जाता है। श्रोत्रीय ब्राह्मण के अभाव में श्राद्ध मृत हो जाता है। दक्षिणा रहित यज्ञ नष्ट हो जाता है।'

यक्ष ने पूछा—'दिशा, जल, विष क्या है और श्राद्ध का समय क्या है।'

युधिष्ठिर बोले—'सत्पुरुष दिशा, आकाश जल, कामना विष और ब्राह्मण ही श्राद्ध का समय है।'

यक्ष ने पूछा—'तप का क्या लक्षण है? दम किसे कहा

गया है ? उत्तम क्षमा क्या है और लज्जा किसे कहते हैं ?'

युधिष्ठिर बोले—'अपने-अपने धर्म में तत्पर रहना तप है। मन के दमन का नाम दम है। शीत उष्ण आदि द्वंद्वों को सहन करना क्षमा और अयोग्य कार्य से दूर रहना लज्जा है।'

यक्ष ने पूछा—'ज्ञान, शम और सरलता किसे कहते हैं ? उत्तम दया क्या है ?'

युधिष्ठिर बोले—'परमात्म तत्व का बोध ही ज्ञान, चित्त की शान्ति ही शम और समदर्शी रहना ही सरलता है, सबके सुख की इच्छा ही उत्तम दया है।'

यक्ष ने पूछा—'मनुष्य का दुर्जय शत्रु कौन है ? अनन्त व्याधि क्या है ? साधु और असाधु किसे कहते हैं ?'

युधिष्ठिर बोले—'क्रोध शत्रु है। लोभ व्याधि है। समस्त प्राणियों का हित करने वाला साधु और निर्दयी असाधु है।'

यक्ष ने पूछा—'मोह, मान, आलस्य और शोक किसे कहते हैं ?'

युधिष्ठिर बोले—'धर्ममूढ़ता मोह, आत्माभिमान मान, धर्म का पालन न करना आलस्य और अज्ञान को ही शोक कहते हैं।'

यक्ष ने पूछा—'स्थिरता, धैर्य, परम-स्नान और दान किसे कहते हैं ?'

युधिष्ठिर बोले—'धर्म में स्थिर रहना, स्थिरता; इन्द्रिय निग्रह, धैर्य; मानसिक मलों का त्याग, परम-स्नान है; प्राणियों की रक्षा, दान है।'

यक्ष ने पूछा—'पण्डित एवं नास्तिक कौन है ? काम और मत्सर क्या है ?'

युधिष्ठिर बोले—'धर्मज्ञ पण्डित, मूर्ख नास्तिक, वासना काम और हृदय की दाह ही मत्सर है।'

यक्ष ने पूछा—'अहंकार, दम्भ, दैव किसे कहते हैं और पैशुन्य किसका नाम है ?'

युधिष्ठिर बोले—'महा अज्ञान अहंकार, अपने को झूठे ही धर्मात्मा कहना दम्भ, दान का फल दैव और दूसरों पर मिथ्या दोषारोपण पैशुन्य (चुगली) है।'

यक्ष ने पूछा—'धर्म, अर्थ और काम एक-दूसरे के विरोधी हैं। इनका एक स्थान पर संयोग किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?'

युधिष्ठिर बोले—'जब धर्म और भार्या मनुष्य के वश रहते हैं, तब अर्थ और काम का साथ रहना भी सहज हो जाता है।'

यक्ष ने पूछा—'अक्षय नरक किसे प्राप्त होता है ?'

युधिष्ठिर बोले—'जो दीन याचक को बुलाकर नाहीं कह देता है, जो धर्मशास्त्र, ब्राह्मण, देवता और पितृधर्मों में मिथ्या-बुद्धि रखता है, जो धनी लोभ वश दान से रहित है, वह अक्षय नरक में जाता है।'

यक्ष ने पूछा—'कुल, स्वाध्याय, आचरण और शास्त्र-श्रवण इनमें किससे ब्रह्मणत्व सिद्ध होता है ?'

युधिष्ठिर बोले—'ब्राह्मणत्व का हेतु आचार है, जिसका आचार नष्ट हो गया वह स्वयं भी नष्ट हो जाता है। पण्डित वही है जो अपने कर्तव्य का पालन करता है, अन्य सब मूर्ख हैं। जो जितेन्द्रिय है वही ब्राह्मण है।'

यक्ष ने पूछा—'मधुरभाषी, सोच-विचार कर काम करने वाले, बहुत से मित्र बनाने वाले और धर्मनिष्ठ को क्या मिलता है ?'

युधिष्ठिर बोले—'मधुरभाषी को सबका स्नेह, सोच-विचार कर काम करने वाले को सफ़लता, बहुत से मित्र बनाने वाले को सुख और धर्मनिष्ठ को सद्गति प्राप्त होती है।'

यक्ष ने पूछा—'सुखी कौन है ? आश्चर्य, मार्ग और वार्ता क्या है ?'

युधिष्ठिर बोले—'जो उऋण है वह घर में आधा पेट भी शाक खाता हो वह सुखी है, संसार में मृत्यु नित्य प्राणियों को

प्राप्त होती है, इस पर भी जो अपने को अनश्वर मानता है, इससे बढ़कर आश्चर्य क्या है ? जिन नियमों का सत्पुरुष पालन करते हैं, वही मार्ग है । काल सब प्राणियों को मोह-रूपी कढ़ाई में सूर्य-रूपी अग्नि से दिन-रात दग्ध करता है, वही वार्ता है।'

यक्ष ने पूछा—'सबसे बड़ा धनी कौन है ?'

युधिष्ठिर बोले—'जिस मनुष्य की कीर्ति स्वर्ग और पृथ्वी पर व्याप्त रहती है, वही उत्तम पुरुष धनी है। द्वंद्वों से रहित, भूत, भविष्य और वर्तमान विषयों की ओर से निःस्पृह, शान्त-चित्त सुप्रसन्न और सदा योगयुक्त रहता है, वही धनी है।'

यक्ष ने पूछा—'तुमने मेरे प्रश्नों का उचित उत्तर दिया है अतः तुम्हारे एक भाई को मैं जीवित कर सकता हूँ ।'

युधिष्ठिर बोले—'मैं महाबाहु नकुल के जीवन की याचना करता हूँ, क्योंकि लोगों की दृष्टि में मैं धार्मिक हूँ, अतः धर्म का त्याग नहीं करूँगा, नहीं तो वह मुझे भी नष्ट कर देगा । नकुल के जीवित होने से मेरी दोनों माताओं के प्रति मेरा समभाव रह सकेगा ।'

यक्ष बोले—'तुमने अर्थ और काम से भी अधिक दया और समानता का आदर किया है, अतः तुम्हारे सभी भाई जीवित हो जायेंगे ।'

युधिष्ठिर ने पूछा—'प्रभो ! आप कौन हैं ?'

यक्ष बोले—'मैं तुम्हारा जन्मदाता धर्मराज हूँ। यश, सत्य, दम, शौच, सरलता, लज्जा, अचंचलता, दान, तप और ब्रह्मचर्य मेरे शरीर हैं । अहिंसा, समता, शान्ति, दया और अमत्सर मुझ तक पहुँचने के द्वार हैं। सौभाग्यवश तुम्हारा शम, दम, उपरति तितिक्षा और समाधान इन साधनों पर अनुराग है । तुमने द्वंद्वों को जीत लिया है। तुम्हारा मंगल हो । जो मनुष्य मेरे भक्त हैं उनकी दुर्गति नहीं होती । तुम्हें क्या वर चाहिये, कहो ?'

युधिष्ठिर ने कहा—'अज्ञातवास के समय हमें कोई पहचान न सके । मैं लोभ, मोह और क्रोध को जीत सकूँ तथा दान, तप

और सत्य में सदा मेरा मन लगा रहे।'

धर्मराज बोले—'तुम तो धर्म स्वरूप ही हो, तथापि तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।' इतना कह धर्मराज अंतर्धान हो गये। सभी पाण्डव आश्रम में लौट आये।

अज्ञात-वास

धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने आश्रम में आकर भाइयों से कहा—'अब बारह वर्ष बीत रहे हैं, तेरहवें वर्ष में गुप्त रूप से रहकर हमें कष्ट और कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, अत: हमें कोई उत्तम निवास स्थान चुनना चाहिये, जहाँ रहकर शत्रुओं को हमारा पता न चल सके।' पाण्डवों ने मिलकर निश्चय किया कि मत्स्य देश के राजा विराट बलवान, धर्मात्मा, वृद्ध, उदार एवं हमारे हितैषी हैं, इसलिए उनका कार्य करते हुए उन्हींके नगर में रहेंगें। अब सब अपने-अपने भावी कार्यों का निर्णय बताने लगे।

युधिष्ठिर बोले—'मैं पासा खेलने की विद्या जानता हूँ। राजा विराट को भी यह खेल प्रिय है। अत: मैं कंक नाम का ब्राह्मण बन उनका सभासद हो उनको मंत्रियों तथा बंधुओं सहित पासों के खेल से प्रसन्न रखूँगा। उनके पूछने पर मैं कहूँगा कि महाराजा युधिष्ठिर का मैं प्रिय सखा था।'

भीमसेन ने कहा—'मैं पाकशास्त्र का पारंगत विद्वान हूँ और मेरा नाम वल्लभ होगा। मैं उत्तम व्यंजनों से राजा को संतुष्ट कर दूँगा। इससे राजा के सेवक मेरा सम्मान करेंगे, अत: मैं इच्छानुसार खाद्य पदार्थों का उपभोग कर सकूँगा। राजा के पूछने पर मैं कहूँगा कि मैं राजा युधिष्ठिर के यहाँ हाथियों और वृषभों का भी नियंत्रण किया करता था।'

अर्जुन ने कहा—'मैं राजा को अपना परिचय नपुंसक के रूप में दूँगा। यद्यपि मेरी भुजाओं में धनुष की डोरी के चिह्न हैं

तथापि मैं आभूषणोंसे इन्हें ढक लूँगा। मैं कानों में कुण्डल, हाथों में चूड़ियाँ धारण कर चोटी गूंथ लूँगा और अपना परिचय बृहन्नला नाम से दूँगा। स्त्री स्वभाव से अपने वास्तविक स्वरूप को छिपा पूर्ववर्ती राजाओं के चरित्रों का गान कर राजा विराट तथा अंतःपुर की स्त्रियों का मनोरंजन करूँगा। मैं नगर की स्त्रियों को गीत, नृत्य तथा वाद्य की शिक्षा दूँगा। प्रजा के उत्तम आचार-विचार और सत्कर्मों का वर्णन करता हुआ अपने यथार्थ स्वरूप को छिपाये रखूँगा। राजा विराट के परिचय पूछने पर कहूँगा कि मैं पहले महारानी द्रौपदी की परिचारिका थी।'

नकुल ने कहा—'मेरा नाम ग्रंथिक होगा। मैंने राजा युधिष्ठिर के अश्वों की कुशलतापूर्वक देखभाल की है, अतः मैं राजा विराट के घोड़ों की देखभाल कर सकूँगा।'

सहदेव ने कहा—'मैं गौशालाध्यक्ष होकर रहूँगा। मैं गायों का दूध निकालने और उनकी पहिचान के काम में निपुण हूँ। मेरा नाम अरिष्टनेमि होगा।'

द्रौपदी बोली—'संसार में ऐसी बहुत-सी स्त्रियाँ हैं जो शिल्प कार्यों द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करती हैं, उन्हें सैरंध्री कहते हैं। मैं भी अपने को सैरंध्री कहूँगी। यदि राजा मुझसे मेरा परिचय पूछेगा तो कहूँगी कि मैं महारानी द्रौपदी की परिचारिका थी। मैं अपनी रक्षा स्वयं कर सकूँगी।' सब भाइयों

कंक—धर्मराज का पर्यायवाचक है, धर्म ही युधिष्ठिर के रूप में अवतीर्ण हुए थे।

परांगु-वायु—उसका पुत्र होने के कारण पैरांगव नाम सत्य एवं सार्थक है।

वल्लभ—रसोइया। षण्ढक—नपुंसक। बृहन्नल—नरश्रेष्ठ।

ग्रंथिक— नकुल और सहदेव देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमारों के पुत्र हैं, अतः वे चिकित्सक और वीरों के प्रधान हैं। सहदेव—अरिष्ट नेमि। तन्तिपाल—आज्ञा का पालन करने वाला, बैलों को बाँधने की रस्सी को सुरक्षित रखने वाला।

और द्रौपदी का कथन सुन युधिष्ठिर को बड़ी प्रसन्नता हुई ।

युधिष्ठिर बोले—'विराट के यहाँ रहकर जो-जो कार्य हमें करने हैं, वे सब हमने सुने हैं, किन्तु हमें सावधान रहकर सदा द्रौपदी की रक्षा करनी होगी। राजमहल में अज्ञात-वास के समय निवास करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि वहाँ अपमान या अनादर सहना पड़ेगा, इसलिये कुछ नियमों का हमें पालन करना होगा। जिन-जिन स्थानों पर बैठने से दुराचारी मनुष्य सन्देह करते हों, वहाँ कभी न बैठें, हम बिना पूछे राजा को कभी कर्तव्य का उपदेश न दें, मौन भाव से ही सबकी सेवा करें और उपयुक्त अवसर पर राजा की प्रशंसा करें। हमें रानियों से ज्यादा मेल-जोल नहीं करना चाहिये और जो राजा का अहित चाहने वाले हैं, उनसे मैत्री स्थापित न करें। राजा को अग्नि के समान दाहक मानकर उसके अत्यन्त निकट न रहें और उसे देवता के समान निग्रह तथा अनुग्रह में समर्थ जानकर उसकी कभी अवहेलना न करें। सभी विषयों में राजा के अनुकूल रहें और ऐसी बातें न कहें जो उसे अप्रिय एवं अहितकर प्रतीत होती हों। जो अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होने पर हर्षित नहीं होता अथवा अपमानित होने पर व्यथा का अनुभव नहीं करता और सदा मोह रहित हो, विवेक से काम लेता है, वही राजा के यहाँ सुखपूर्वक रह सकता है। जो सचिव सदा राजा अथवा राज-कुमार की प्रशंसा करता है, वही राजा के यहाँ दीर्घकाल तक टिक सकता है। अपने मन को वश में रखकर पूर्वोक्त नीति से इस तेरहवें वर्ष को हमें व्यतीत करना चाहिये।'

तदनन्तर पाण्डवों ने विराटनगर के निकट घनघोर जंगल में जो श्मशान भूमि के पास था, अपने शस्त्र एक विशाल वृक्ष के ऊपर रख दिये। युधिष्ठिर ने क्रमशः पाँचों भाइयों के जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल गुप्त नाम रखे।

राजा विराट के नगर में प्रवेश करते समय युधिष्ठिर ने मन ही मन त्रिभुवन अधीश्वरी दुर्गादेवी का स्तवन किया, 'हे

पुण्यमयी देवी ! तुम सबका कल्याण करने वाली हो। जो तुम्हारा स्मरण करते हैं, तुम उन्हें दुःख से उबार लेती हो। इच्छानुसार वर देने वाली ! तुम्हें मेरा नमस्कार है। हे ब्रह्म-स्वरूपा ! तुम तीनों लोकों को पवित्र करने वाली हो। हे देवेश्वरी ! मुझ पर प्रसन्न होओ और मुझे विजय प्रदान करो। हे जया, विजया, काली, महाकाली ! जो तुम्हारा अनुसरण करते हैं, तुम उन्हें मनोवांछित वर देती हो। हे दुर्गे ! तुम मनुष्यों के लिये परमगति और प्राणियों को संकट से मुक्त करने वाली हो। हे महादेवी ! मैं तुम्हारे चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम करता हूँ और तुम्हारी शरण में आया हूँ। मेरा तुमको बारंबार प्रणाम है।'

युधिष्ठिर की स्तुति करने पर देवी दुर्गा ने उन्हें दर्शन दिया और कहा—'युधिष्ठिर ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें संग्राम में विजय प्राप्त होगी। तुम्हें सुख और आरोग्य सुलभ होगा। पाण्डवों को कौरव और अन्य नहीं पहचान सकेंगे।' यह कह वरदायिनी-देवी दुर्गा अंतर्धान हो गयी। युधिष्ठिर अब कमण्डलु हाथ में ले पगड़ी धारण कर त्रिपुण्डधारी ब्राह्मण बन गये। इसी प्रकार अन्य पाण्डव और सती द्रौपदी ने भी अपनी इच्छा के अनुरूप वेष बना लिये। तदनन्तर चौसर की गोटियों सहित पासों को कपड़े में बाँध बगल में दबा राजा युधिष्ठिर विराट की राज्य-सभा में पहुँचे। पाण्डुनन्दन को आते देख राजा विराट की दृष्टि उन पर पड़ी।

राजा विराट के पास पहुँचकर युधिष्ठिर ने कहा—'महाराज ! मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया है अतः मैं जीवन-निर्वाह के लिए आपके पास आया हूँ। जैसी आपकी इच्छा होगी उसी प्रकार मैं कार्य करूँगा। मेरा नाम कंक है। मैं राजा युधिष्ठिर के साथ चौसर खेलता था।'

राजा विराट बोले—'ब्राह्मण ! मुझे द्यूत क्रीड़ा में निपुण मनुष्य प्रिय है, अतः आप मेरे पास सुखपूर्वक रहिये।'

युधिष्ठिर ने कहा—'नरनाथ ! मैं किसीसे विवाद नहीं

करूँगा और मुझसे पराजित होने वाला मनुष्य हारे हुए धन को मुझे दे देगा।' युधिष्ठिर की दोनों बातें राजा विराट ने स्वीकार कर लीं और वे आदर-सत्कार के साथ सुखपूर्वक वहाँ रहने लगे।

तदनन्तर भीमसेन राजा विराट के दरबार में पहुँचे उनके हाथ में मथानी, करघी और शाक काटने के लिये तेज धार वाला चाकू था। वे काले वस्त्र पहने थे। राजा विराट के परिचय पूछने पर उन्होंने कहा—'मुझे वल्लभ कहते हैं। मैं उत्तम व्यंजन बना सकता हूँ अतः मुझे इस कार्य के लिये रख लीजिये।'

विराट बोले—'अपनी रुचि के अनुसार तुम मेरी पाकशाला में अग्रणी होकर रहो।' तदनन्तर मलिन वस्त्र धारण कर सैरन्ध्री का वेश बनाये दीन-दुखियों की भाँति द्रौपदी को राजभवन के निकट भटकती देख विराट की रानी सुदेष्णा की दृष्टि द्रुपद-कुमारी पर पड़ी। रानी ने उसे अपने पास बुलाकर पूछा—'तुम कौन हो और क्या करना चाहती हो?'

द्रौपदी बोली—'मैं सैरन्ध्री हूँ और जीविका का साधन खोज रही हूँ।'

सुदेष्णा ने कहा—'तुम तो रानी जैसी जान पड़ती हो। क्या तुम नगर की अधिष्ठात्री देवी विद्याधरी या देव-पत्नी हो?'

द्रौपदी बोली—'रानीजी आपने जो कहा है वह मैं नहीं हूँ। मैं तो आपकी सेवा करने आई हूँ। मैं केशों का श्रृंगार करना, फूलों के सुन्दर हार गूँथना जानती हूँ। मेरा नाम मालिनी है।'

सुदेष्णा ने कहा—'सुन्दरी, मुझे भय है कि कहीं तुम्हारी सुन्दरता देख राजा तुम पर आसक्त न हो जायें और मुझे छोड़ दें। जैसे कोई मूर्ख आत्महत्या के लिये वृक्ष पर चढ़े, उसी प्रकार तुम्हें राजमहल में रखना मेरे लिये अनिष्टकारी हो सकता है।'

द्रौपदी बोली—'आप चिन्ता न करें। मुझे कोई भी नहीं

पा सकता। मेरे पाँच शक्तिशाली गंधर्व पति हैं, जो मेरी हर समय रक्षा करते हैं। मैं भी दुर्धर्ष हूँ। मैं जूठा अन्न नहीं खाती, न किसी के पैर ही धोती हूँ, जो मुझे बलात् प्राप्त करना चाहेगा, वह उसी रात्रि स्वर्ग-लोक चला जायेगा।'

सुदेष्णा ने कहा—'आनन्ददायिनी! तुम मेरे यहाँ सुखपूर्वक रहो। तेरा कोई अनिष्ट नहीं करेगा। तदनन्तर सहदेव भी ग्वालों का वेष बना राज-भवन की गौशाला के पास खड़े हो गये। राजा विराट ने उन्हें अपने पास बुलवाकर पूछा—'तुम कहाँ से आये हो? क्या करना चाहते हो?'

सहदेव ने कहा—'राजन्! मेरा नाम अरिष्टनेमि है। मैं गौओं की देखभाल और गणना में निपुण हूँ। मैं जीविका चलाने के उद्देश्य से यहाँ आया हूँ।'

विराट बोले—'आज से तुम मेरी पशुशाला के अध्यक्ष हुए।'

तदनन्तर रूप-सम्पदा में सम्पन्न एक स्त्री दिखाई दी जिसका डील-डौल ऊँचा था। उसने कानों में कुण्डल, हाथों में चूड़ियाँ और बाँहों में आभूषण धारण कर रखे थे। उसके लंबे-लंबे केश खुले थे और हथिनी की चाल से वह राज-सभा के निकट आकर खड़ी हो गयी।

विराट ने उसे बुलाकर कहा—'तुम शक्ति और धैर्य से युक्त देवपुरुष से प्रतीत होते हो, अतः हाथ में चूड़ियाँ और आभूषण क्यों पहन रखे हैं?

अर्जुन ने कहा—'मैं नपुंसक हूँ। मैं सुन्दर फूलों की वेणी, कुण्डल, हार और कपड़े की चादरें बनाना जानती हूँ। मैं नृत्य और संगीत की शिक्षा निपुणता से दे सकती हूँ। मुझे बृहन्नला कहते हैं।'

विराट बोले—'नपुंसक का भेष तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम क्लीव होने योग्य भी नहीं हो। तुम्हारा वेष भगवान भूतनाथ की भाँति अशुभ है। जैसे बादलों की घटाओं से आच्छा-

दित आकाश में अंशुमाली सूर्य मण्डल सुशोभित होता है, उसी प्रकार इस क्लीव भेष में भी तुम पौरुष से प्रकाशित हो रहे हो। तुम मेरे यहाँ रह मेरी पुत्री उत्तरा को नृत्य और संगीत की शिक्षा दो?'

तदनन्तर शक्तिशाली नकुल वेग से आये और राजा के घोड़ों को देखने लगे। राजा विराट ने उन्हें अपने पास बुलाकर पूछा—'तुम कौन हो? कहाँ से आये हो?' नकुल बोले—'मैं घोड़ों की शिक्षा देने में और सारथी के कार्य में निपुण हूँ। मैं घोड़ों की जाति पहचानता हूँ और उनकी चिकित्सा भी पूर्ण रूप से जानता हूँ। मुझे ग्रन्थिक कहते हैं।' विराट बोले—'ग्रन्थिक! आज से तुम मेरे घोड़ों की देख-भाल करो।'

इस प्रकार भगवान धर्मराज और माता दुर्गा के प्रसाद से पाण्डव विराट नगर में अज्ञातवास के दिन सुखपूर्वक व्यतीत करने लगे। महाराजा युधिष्ठिर प्रजा के प्रिय हो गये। वे राजा विराट को प्रसन्न रखते थे। अर्जुन अंत:पुर में नृत्य और संगीत की शिक्षा देकर सबका मनोरंजन करते थे। सहदेव गोओं और नकुल घोड़ों की बड़ी सावधानी से देखभाल करते थे। कुछ समय पश्चात मत्स्य देश में ब्रह्माजी की पूजा का उत्सव मनाया गया। हजारों विशालकाय बलशाली मल्ल राजधानी में आये। राजा विराट ने उन सबका स्वागत सत्कार किया। उन्होंने अपने रसोइये वल्लभ से एक अत्यन्त बलशाली प्रतियोगी के साथ मल्ल युद्ध करने को कहा। भीमसेन ने राजा का मान रखने के लिए रंगभूमि में प्रवेश किया। अब बलशाली जीमूत और भीमसेन में मल्लयुद्ध होने लगा। विपुल पराक्रमी भीमसेन ने गर्जना करते हुए जैसे सिंह हाथी पर झपटता है, उसी प्रकार जीमूत को पृथ्वी पर गिराकर मार डाला। इस पर महामनस्वी राजा विराट ने अत्यन्त हर्षित हो वल्लभ (भीमसेन) को बहुत धन दिया। जब अज्ञातवास का एक वर्ष पूरा होने में कुछ ही समय शेष रह गया, तब एक दिन राजा विराट के महाबली

सेनापति कीचक ने द्रुपद कुमारी को देखा।

देवकन्या के समान कान्तियुक्ता द्रौपदी को देखकर वह अपनी बहन रानी सुदेष्णा से बोला—'यह सुन्दरी कौन है और कहाँ से आयी है ? यह दासी का काम करने योग्य नहीं है। मैं चाहता हूँ कि यह मेरी गृस्वामिनी हो। वहाँ यह अत्यन्त सुख प्राप्त कर सकेगी।'

उन दोनों की वार्ता सुन द्रौपदी कीचक को डाँटती हुई बोली—'सूतपुत्र ! तुमने अपनी बहन से मेरी याचना की है, यह तुम्हारे योग्य नहीं है। मैं मलिन वेषधारी, हीन कुल की, केश सँवारने का काम करने वाली तुच्छ सैरन्ध्री हूँ। बुद्धिमान पुरुष अपनी स्त्री में अनुराग रख कल्याण का भागी होता है। मनुष्य को चाहिए कि वह पाप में लिप्त न हो और अपयश का पात्र न बने। लम्पट पुरुष का कभी कल्याण नहीं होता। मैं दूसरे की स्त्री हूँ, इस पर धर्मानुकूल विचार कर तुम्हें मुझमें मन नहीं लगाना चाहिए। अकरणीय कर्मों को त्यागना ही श्रेष्ठ है। विषयों में आसक्त पापात्मा मनुष्य को भयंकर कष्ट उठाना पड़ता है।' सैरन्ध्री के समझाने पर भी दुर्बुद्धि कीचक ने द्रौपदी को पाने का हठ नहीं छोड़ा।

कीचक बोला—'सैरन्ध्री! मेरी प्रार्थना को ठुकरा कर तुम्हें पश्चात्ताप करना होगा। मैं ही इस राज्य का सच्चा स्वामी हूँ। पृथ्वी पर मेरे समान रूप, यौवन, सौभाग्य, बल और पराक्रम वाला कोई नहीं है। कल्याणि ! जब सम्पूर्ण मनोरथों से सम्पन्न अनुपम भोग मेरे पास सुलभ हैं, तब तुम दासी का काम क्यों करती हो ?'

सैरन्ध्री बोली—'तू काल के मुँह में न जा। मेरे महाबली पाँच गंधर्व पति नित्य मेरी रक्षा करते हैं। तू इस पाप-बुद्धि को त्याग दे और अपना सर्वनाश न करा। तू मेरा अपमान कर रहा है, अतः बन्धु-बान्धवों सहित आज ही नष्ट हो जायेगा। जैसे कोई रोगी काल-रात्रि का आवाहन करे, उसी प्रकार मुझे

प्राप्त करने के लिये तू क्यों दुराग्रह कर रहा है ?' भावी कष्ट का अनुमान कर द्रौपदी ने सूर्य का मन ही मन स्मरण किया। इस पर उन्होंने एक देव को द्रौपदी की रक्षा हेतु नियुक्त कर दिया।

सुदेष्णा बोली—'भाई! यह सैरन्ध्री मेरी शरण में आयी है। मैंने इसे अभय दे रखा है, अतः इसे कोई पुरुष मन में दूषित भाव लेकर नहीं छू सकता। यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो इस सैरन्ध्री को अपने मन से हटा दो। तुम महा-पाप की बात कह रहे हो, अतः तुम्हारी आयु निश्चित ही समाप्त हो गयी है। तू तो यमलोक में जायेगा ही, किन्तु अपने निरपराध स्वजनों को भी साथ ले जायेगा।'

इतना कह सुदेष्णा शोक से अत्यन्त व्यथित हो रोने लगी। तदनन्तर कीचक ने द्रौपदी को बलपूर्वक पकड़ना चाहा किन्तु वह शीघ्रतापूर्वक राजसभा की ओर दौड़ी। कीचक ने भागती हुई द्रौपदी का पीछा किया और राजा के देखते-देखते उसके केश पकड़ पृथ्वी पर गिराकर लात मारी। कीचक के पद-प्रहार से द्रौपदी के मुख से रक्त बहने लगा। यह देख सद्गुण-सम्पन्न सभासद और ब्राह्मण हाहाकार करने लगे। युधिष्ठिर और भीमसेन भी सभा में बैठे थे। वे द्रौपदी पर हुए अत्याचार को सह न सके। इतने में भगवान सूर्य ने जिस देव को द्रौपदी की रक्षा हेतु नियुक्त किया था, उसने कीचक को पकड़कर बड़े वेग से पृथ्वी पर गिरा दिया।

द्रौपदी ने कहा—'राजन्! आप प्रजा की रक्षा तथा धर्म और सत्य में सदा स्थित रहते हैं, अतः आपको चाहिए कि आश्रित-जनों का पालन और संरक्षण धर्मपूर्वक करें। जो राजा धर्मासन पर बैठ प्रत्येक कार्य पर समभाव से विचार करते हैं, उन्हें पुण्य प्राप्त होता है। मुझ निरपराध अबला पर आपके देखते-देखते दुरात्मा कीचक ने लात मारी है, यह घोर पाप है। जो राजा अधर्मयुक्त कार्य देखता है या करता है, उस दुरात्मा

को शत्रु शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं। आप सत्यवादी धर्मपरायण राजा हैं, अतः नरेश्वर ! मैं आपकी शरण लेती हूँ। आप मुझे इस पापी कीचक से बचाइये। पुरुषाधम कीचक यहाँ मुझे असहाय जानकर मार रहा है और धर्म की ओर नहीं देखता। यहाँ के सभासदों को धिक्कार है, जिन्होंने यह अत्याचार देखकर भी कुछ नहीं किया। कीचक तो पापात्मा है ही, पर राजा और उसके सभासद भी धर्मज्ञ नहीं हैं।'

द्रौपदी के विलाप करने पर भी राजा विराट कीचक के भय से उस पर नियंत्रण करने में असमर्थ रहे और उसे उचित दण्ड नहीं दे सके। उन्होंने मीठे शब्दों द्वारा ही उसे समझा-बुझाकर सभा-भवन से विदा किया।

तदनन्तर सैरन्ध्री रोती हुई सुदेष्णा के समीप गई। सुदेष्णा बोली—'भद्रे ! तुम क्यों रोती हो, तुम्हें किसने मारा है ?'

द्रौपदी बोली—'आप सब कुछ जानते हुए भी मुझसे पूछ रही हैं। कीचक ने राजमभा में महाराज के देखते-देखते मुझ पर पद-प्रहार किया। अब शीघ्र ही अपने पापों के फलस्वरूप वह पापी निश्चय ही मारा जायेगा।' अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध करने के लिये रात्रि में वह भीमसेन के भवन में गयी और बोली—'आर्यपुत्र ! तुम जीते जी आज नींद कैसे ले रहे हो ? तुम्हारे जीवित रहते हुए महापापी कीचक ने मुझ पर पद से आघात किया।'

भीमसेन बोला—'जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वही मैं करूँगा। तुममुझे वह कार्य बताओ और शीघ्र अपने भवन में चली जाओ।'

द्रौपदी ने कहा—'राजा विराट का सेनापति कीचक उनका साला है। वह दुष्टात्मा प्रतिदिन आकर मुझे अपनी पत्नी बनने के लिये कहता है। वह पापी मार डालने योग्य है, अतः कीचक के मस्तक को कुचल डालो। यदि कीचक सूर्योदय

का दर्शन कर लेगा तो मैं जीवित नहीं रहूँगी।'

भीमसेन बोला—'कृष्णे ! जिस समय विराट की सभा में कीचक ने तुम्हें लात मारी थी, उसी समय मैं संहार मचा देता, किन्तु धर्मराज ने नेत्रों से संकेत कर मुझे ऐसा करने से रोका। शुभे ! तुम बड़ी बुद्धिमती हो, अतः धर्म को न छोड़ो और क्रोध को त्यागो। यदि राजा युधिष्ठिर तुम्हारी करुण-कथा सुन लेंगे तो प्राण त्याग देंगे। प्राचीन काल में भृगुनन्दन महर्षि च्यवन तपस्या करते-करते बांबी के समान हो गये थे तो भी उनकी कल्याणमयी पत्नी सुकन्या उनकी सेवा-सुश्रूषा में लगी रहती थी। नारायणी चंद्रसेना अपने सौन्दर्य के कारण विख्यात थी। उसने अपने वृद्ध पति मुद्गल ऋषि की निरंतर सेवा की। सीता ने वन में अपने पति श्री रामचन्द्रजी का अनुसरण किया। उसने दीर्घकाल तक राक्षसों के बंदीगृह में रहकर कष्ट उठाते हुए भी अपना धर्म नहीं छोड़ा। युवावस्था और अनुपम सौन्दर्य से सम्पन्न राजकुमारी लोपामुद्रा ने सम्पूर्ण अलौकिक सुखों पर लात मारकर अपने पति महर्षि अगस्त्य का ही अनुसरण किया। मनस्विनी सावित्री अकेली ही अपने मृत पति सत्यवान के पीछे-पीछे यमलोक गयी। कल्याणि ! इन पतिव्रता नारियों का जैसा आदर्श बताया गया है, उसी प्रकार तुम भी सभी सद्गुणों से सम्पन्न हो। अब तुम कुछ समय के लिये शान्त रहो, फिर सब कष्टों से मुक्त हो जाओगी। तुम्हें श्रेष्ठ स्त्रियों के समकक्ष अपना आदर्श उपस्थित करना चाहिये।'

द्रौपदी बोली—'प्राणनाथ भीम ! दुःखों को सहन करने में असमर्थ एवं आर्त होकर ही मैंने अश्रु बहाये हैं। मैं राजा युधिष्ठिर को उलाहना नहीं दूंगी।'

ऐसा कह द्रौपदी भीमसेन के वक्षस्थल पर मस्तक टेक फूट-फूटकर रोने लगी। भीमसेन ने उसे हृदय से लगा बहुविध सान्त्वना देकर कीचक को मारने के लिये प्रस्थान किया। कीचक उस समय नृत्यशाला में अकेला था। भीमसेन छिपकर कीचक

की इस प्रकार प्रतीक्षा करने लगे, जैसे सिंह अदृश्य रहकर मृग की घात में लगा रहता है। कीचक को देखते ही भीमसेन ने उसे पकड़ लिया। अब दोनों वीरों में भयंकर युद्ध होने लगा। भीमसेन ने दोनों हाथों से कीचक की छाती पर बड़े वेग से प्रहार किया, जिससे आहत हो वह अपनी शक्ति खो बैठा। उसे निर्बल एवं अचेत देख भीमसेन उसकी छाती पर बैठ गये और अपने पावों से उसके मस्तक को रौंदने लगे। कीचक फूटे नगारे के समान विकृत स्वर में पुकारने लगा। कुछ ही समय में उसकी चेतना-शक्ति लुप्त हो गयी और वह मर गया। कीचक को मार भीमसेन पुनः अपने स्थान पर चले गये। प्रातः-काल नृत्यशाला के रक्षकों ने जब कीचक को मृत देखा, तब उन्हें विश्वास हो गया कि गंधर्वों ने ही उसे मारा है। कीचक की मृत्यु का समाचार सुन उसके भाई-बंधु नृत्यशाला में आये और उसके शव को देख उन्हें भी विश्वास हो गया कि कीचक की मृत्यु गंधर्वों के हाथों ही हुई है। गंधर्वों के भय से वे दसों दिशाओं की ओर भाग गये। कीचक के मारे जाने पर राजा विराट महाराज युधिष्ठिर के प्रति आदर भाव रखने लगे।

(द्रौपदी) सैरन्ध्री ने रानी सुदेष्णा से कहा—'भद्रे! राजा विराट ने गंधर्वों का बड़ा उपकार किया है, अतः, वे सदा उनके प्रति कृतज्ञ बने रहते हैं। वे साधु स्वभाव के हैं, अतः किये हुए उपकार का प्रतिफल निश्चय ही देंगे।'

सुदेष्णा बोली—'जब तक तुम्हारी इच्छा हो यहाँ रहो, किन्तु मेरे पति और पुत्रों की रक्षा करना।'

पाण्डवों का पता लगाने कौरवों के गुप्तचर नगरों और देशों में घूमकर पुनः हस्तिनापुर लौट जाते थे, और खोज के प्रयास का वृतान्त दुर्योधन को सुना देते थे। जब गुप्तचरों द्वारा पाण्डवों का कहीं पता नहीं चला, तब दुर्योधन ने इस विषय में सभासदों से परामर्श किया।

द्रोणाचार्य ने कहा—'पाण्डव शूरवीर, विद्वान, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और अपने बड़े भाई की आज्ञा मानने वाले हैं। ऐसे महापुरुष न तो नष्ट हो सकते हैं न किसी से तिरस्कृत ही। उसमें धर्मराज तो नीति, धर्म और अर्थ को जानने वाले सत्य-परायण हैं। जो इस प्रकार विनयशील और महात्मा हैं, उनका भगवान भला क्यों नहीं करेगा ? मेरे विचार से तो पाण्डव अनुकूल समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे सभी तपस्या में आवृत हैं, अतः उन्हें पाना और पहचानना कठिन है।'

भीष्म पितामह ने कहा—'सब विषयों के तत्वज्ञआचार्य द्रोण ने ठीक ही कहा है। वास्तव में पाण्डव शुभ लक्षणों से सम्पन्न, साधु पुरुषों के नियमों और व्रतों में तत्पर, श्रुतियों के ज्ञाता और बड़े-बूढ़ों के आदेश का पालन करने वाले हैं। वे अज्ञातवास के नियत समय को जानते हैं। वे धर्म में नित्य अनुरक्त रहकर भगवान श्रीकृष्ण का अनुगमन करने वाले हैं। युधिष्ठिर नीतिज्ञ हैं, अतः जिस राष्ट्र में वे निवास करते होंगे, वहाँ के मनुष्य मधुर भाषी, जितेन्द्रिय और सत्यपरायण होंगे। वहाँ वेद-ध्वनि, यज्ञ, दान होते होंगे। इसलिये जहाँ ऐसे लक्षण हों, वहीं युधिष्ठिर का अज्ञात निवास-स्थान हो सकता है।'

कृपाचार्य ने कहा—'राजन् ! मैं वयोवृद्ध पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण के विचारों से सहमत हूँ। तुम्हें अपनी बुद्धि से अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लेना चाहिये।'

दुर्योधन बोले—'शास्त्रों के ज्ञानी, वीर और पुण्यात्मा पुरुषों के सिद्धान्तों के विषय में जो बातें मैंने सुनी हैं, उन पर दृष्टि डालने से मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि इस समय पृथ्वी पर आत्मबल-सम्पन्न, पराक्रमी और धैर्यवान चार ही पुरुष अग्रगण्य हैं—बलदेवजी, भीमसेन, मद्रराज शल्य और कीचक। इनमें कीचक का चौथा स्थान है। अतः मेरा विश्वास है कि पाण्डव अवश्य जीवित हैं। सैरन्ध्री को मैं द्रौपदी समझता हूँ और उसीके लिये विराटनगर में भीससेन ने कीचक का वध किया है।

पितामह ने युधिष्ठिर के निवास के प्रभाव से देश और जन समुदाय में जो गुण बताये हैं, उनमें से अनेक मत्स्य-राष्ट्र की जनता में विद्यमान हैं, अतः वहाँ की रण-यात्रा करनी चाहिये। हम विराटनगर को नष्ट-भ्रष्ट कर उनके गोधन को ले आयेंगे। ऐसी दशा में यदि पाण्डव वहाँ हैं, तो हमसे युद्ध करने को वे बाध्य हो जायेंगे और उन्हें बारह वर्ष पुनः वन में जाना पड़ेगा।'

त्रिगर्त देश के राजा महाबली सुशर्मा ने कहा—'मत्स्य तथा शाल्व देश के राजाओं ने चढ़ाई कर हमें अनेक कष्ट दिये हैं। अब मत्स्यराज का सेनापति कीचक मारा गया है, अतः हम राजा विराट को परास्त कर प्रतिशोध लेने में समर्थ हैं। राजा विराट के पास नाना प्रकार के रत्न और धन हैं। उनके ग्राम तथा सम्पत्ति को जीतकर हम परस्पर बाँट लेंगे।'

वीर कर्ण ने कहा—'सुशर्मा की नीति उत्तम है। पाण्डव छिपे हों या यमराज के घर पहुँच गये हों, हमें तो उद्वेग-शून्य होकर विराटनगर की यात्रा करनी ही चाहिये।' राजा दुर्योधन ने सूतपुत्र कर्ण की राय के अनुसार, कृष्ण पक्ष की सप्तमी को विराटनगर पर चढ़ाई की। छद्मवेशी पाण्डवों का तेरहवाँ वर्ष व्यतीत हो चुका था। सुशर्मा ने आक्रमण कर राजा विराट की बहुत-सी गौओं को अपने अधीन कर लिया।

जब राजा विराट और उनके साथी गौओं को छुड़ाने के लिये रणभूमि में जा रहे थे, तब महाराज युधिष्ठिर (कंक) ने कहा—'मैंने भी धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की है, अतः मैं भी कवच धारण कर आपके साथ युद्धभूमि में चलूँगा। आपका रसोइया वल्लभ भी बलवान एवं शूरवीर दिखाई देता है, उसे, गौशाला के अध्यक्ष और अश्वों की शिक्षा देने वाले गंथिक को भी अस्त्र देकर रथ पर बिठा दीजिये। वे गौओं के लिये युद्ध अवश्य करेंगे।' कंक के ऐसा कहने पर राजा के छोटे भाई शतानीक ने उन सबको अस्त्रों से सुसज्जित कर दिया। चारों पाण्डव यथार्थ स्वरूप को छिपाकर राजा विराट के पीछे-पीछे चले। नगर से

निकलकर सूर्य के ढलते-ढलते उन्होंने त्रिगर्तों को पकड़ लिया। दोनों सेनाओं के छोड़े हुए बाणों से ऐसा प्रतीत होता था, मानो अन्तरिक्ष चमचमाते हुए जुगनुओं से भर गया हो। सूर्यास्त के बाद अंधकार का निवारण करने चंद्रदेव उदित हुए, अतः युद्ध चलता ही रहा। त्रिगर्त देश के राजा सुशर्मा ने राजा विराट की सेना को मथ डाला और उन्हें पकड़ लिया। यह देख भीमसेन राजा सुशर्मा पर बाणों की वेगपूर्ण वर्षा करने लगे। त्रिगर्तराज अपनी सेना को पीड़ित देख युद्ध से पीठ दिखा भागा। भीमसेन रथ से कूद पड़े और सुशर्मा के केश पकड़ उसे पृथ्वी पर दे मारा। भीमसेन के आघात से राजा सुशर्मा मूर्छित हो गया और उन्होंने उसे बंदी बना लिया। यह देख त्रिगर्त-सेना भय से व्याकुल हो इधर-उधर भाग गयी। सुशर्मा को पशु सम बंधा देख महाराज युधिष्ठिर को उस पर दया आ गयी और उन्होंने उसे बंधन से मुक्त कर दिया। तत्पश्चात राजा विराट ने महा पराक्रमी कुन्ती-पुत्रों का धन और मान द्वारा सत्कार किया।

जिस समय गौओं को छुड़ाकर राजा विराट राजधानी की ओर लौट रहे थे, उसी समय कौरवों ने विराट देश पर चढ़ाई कर दी। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, शकुनि, दुःशासन अश्वत्थामा, विविंशति, विकर्ण, चित्रसेन, दुर्मुख और दुःशल दुर्योधन के साथ थे। इन सबने राजा विराट के गोधन को बलात् हस्तिनापुर की ओर हाँकना आरम्भ कर दिया। गौओं के रक्षकों ने भयभीत हो राजा विराट को इसकी सूचना दी। राजकुमार उत्तर वहीं बैठा था।

उसने कहा—'मैं युद्ध के लिये प्रस्थान करूँगा। मेरे लिये रथ और योग्य सारथी की व्यवस्था होनी चाहिये।'

राजकुमारी द्रौपदी बोली—'यह वृहन्नला पाण्डुनन्दन अर्जुन की प्रिय सारथी रह चुकी है, अतः तुम उसे सारथी बना लो। यह महाबली अर्जुन की शिष्या है, अतः धनुर्विद्या में भी

उनसे कम नहीं है। जिन दिनों अर्जुन की सहायता से अग्निदेव ने खाण्डव-वन को भस्म किया था, उस समय इसी ने वीर अर्जुन के श्रेष्ठ घोड़ों की बागडोर सम्भाली थी। इसीके सहयोग से कुन्ती पुत्र अर्जुन ने खाण्डव-प्रस्थ में विजय पायी थी। यदि यह सारथी का कार्य करने को स्वीकार कर ले तो निःसंदेह तुम कौरवों पर विजय प्राप्त कर लोगे।'

उत्तरा वृहन्नला के पास गई और बोली--'बृहन्नले! हमारे राष्ट्र की गौओं को कौरव लिये जा रहे हैं, अतः उन्हें परास्त करने के लिये मेरे भैया प्रस्तुत हैं। वे एक योग्य सारथी ढूँढ रहे हैं। सैरन्ध्री ने बताया है कि तुम अश्व-विद्या में निपुण हो और अर्जुन के प्रिय सारथी भी रह चुके हो। वृहन्नले! तुम प्रसन्न होकर मेरे भाई के सारथी का कार्य भली प्रकार करो। यदि आज तुम मेरी बात नहीं मानोगी तो मैं प्राण त्याग दूँगी।' अर्जुन उत्तरा की प्रार्थना स्वीकार कर सबको प्रसन्न करने के लिए उत्तर के समक्ष अनभिज्ञतापूर्वक कवच पहनने लगे, जिसे देख राजकुमारियाँ हँसने लगीं। उत्तर ने उन्हें कवच पहनाया और स्वयं भी सूर्य के समान कान्तिमान हो रथ पर बैठकर वृहन्नला को सारथी के कार्य में नियुक्त किया। तदनन्तर बहुत-से दिव्य धनुष और बाण ले उत्तर ने वृहन्नला के साथ युद्ध के लिये प्रस्थान किया। उस समय उत्तरा और उनकी सखियों ने विनोदपूर्वक कहा--'वृहन्नले! तुम युद्ध भूमि से कौरवों के सुन्दर वस्त्र हमारी गुड़ियों के लिये ले आना।'

वृहन्नला ने कहा--'यदि राजकुमार उत्तर रणभूमि में उन महारथियों को परास्त कर देंगे तो मैं अवश्य उनके वस्त्र ले आऊंगी।' ऐसा कहकर वीर अर्जुन ने कौरवों की ओर घोड़ों को शीघ्रता से हाँका। थोड़ी ही दूर जाने पर विराट्-पुत्र उत्तर ने कौरवों की विशाल सेना देखी। श्मशान भूमि के निकट पहुँचकर वे दोनों समी-वृक्ष के समीप खड़े हो गये। कौरव-वाहिनी समुद्र के समान जान पड़ती थी। उसके पैरों की धूल से

अन्तरिक्ष आच्छादित था। सभी महारथी उसकी रक्षा कर रहे थे।

उसे देख विराट पुत्र उत्तर भय से व्याकुल हो वृहन्नला से बोला—'मुझमें कौरवों के साथ युद्ध करने का साहस नहीं है। इस सेना में बड़े-बड़े योद्धा हैं, जिन्हें परास्त करना देवताओं के लिये भी अत्यन्त कठिन है। इस विशाल वाहिनी में प्रवेश करना तो दूर, मैं तो इसके सम्बन्ध में सोच भी नहीं सकता। यहाँ भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य इत्यादि सब के सब महान तेजस्वी धनुर्धर युद्ध-कला में प्रवीण हैं, ऐसे शूरवीर कौरवों को युद्ध में जीतने के लिये मैं दुर्बुद्धि बालक कहाँ आ गया?' मूर्ख उत्तर एक साधारण मनुष्य था और छद्मवेशधारी सव्यसाची अर्जुन अद्वितीय वीर थे। अर्जुन के प्रभाव को न जानने के कारण उत्तर विलाप कर रहा था।

वृहन्नला ने कहा—'तुम भय के कारण दीन हो रहे हो। अभी तक तो शत्रुओं ने युद्ध-भूमि में पराक्रम प्रकट भी नहीं किया है। तुम स्त्रियों के बीच कौरवों को हराने की प्रतिज्ञा कर युद्ध के लिये निकले थे, अतः उन आततायी कौरवों के समीप मैं तुम्हें ले चलती हूँ। मैं अब गौओं को लौटाये बिना नगर में प्रवेश नहीं करूँगी। सैरन्ध्री ने मेरी बहुत प्रशंसा की है, अतः मैं भी कौरवों के साथ युद्ध करूँगी।'

उत्तर बोला—'बृहन्नले! कौरव भले ही हमारा धन इच्छानुसार हर लें और मेरा उपहास करें, किन्तु मैं इनसे युद्ध नहीं करूँगा।'

ऐसा कह अभिमान को त्याग शस्त्रों को रथ पर छोड़ राजकुमार भयभीत हो भाग चला। धनंजय भी रथ से कूद पड़े और दौड़कर उसे पकड़ लिया। दौड़ने के कारण उनकी चोटी खुल गई। यह देख कौरव सैनिक हँसने लगे। वे कहते थे कि वीर अर्जुन के अतिरिक्त कौन इस पृथ्वी पर है, जो हम लोगों का सामना कर सके। विलाप करते हुए उत्तर को अर्जुन रथ

के पास ले आये और कहा—'यदि तुममें शत्रुओं के साथ युद्ध करने का उत्साह नहीं है, तो मैं शत्रुओं से युद्ध करूँगी, तुम घोड़ों की बागडोर सम्भालो।' तत्पश्चात अर्जुन ने युद्ध की कामनाओं से रहित भय से व्याकुल राजकुमार उत्तर को भली-भाँति समझा-बुझाकर सारथी के स्थान पर बिठा दिया और शमी बृक्ष पर चढ़कर वहाँ रखे हुए शस्त्र उतार लाने को कहा। उत्तर बृहन्नला के भय से बृक्ष पर चढ़ गया और एक विशाल गठरी, जो शस्त्रों से भरी थी, उतारकर बृहन्नला को दे दी।

उत्तर ने पूछा—'बृहन्नले ! ये किसके शस्त्र हैं ?'

अर्जुन ने कहा—'ये पाण्डवों के शस्त्र हैं। अज्ञातवास के पूर्व उन्होंने इन्हें यहाँ छिपा दिया था। मैं अर्जुन हूँ। अभी वार्ता का समय नहीं है, अतः शीघ्रता से रथ को कौरव सेना के पास ले चलो। तुम स्वस्थ चित्त हो जाओ और इस संग्राम-भूमि में मुझे शत्रुओं के साथ भयंकर युद्ध करने दो।'

उत्तर बोला—'मेरे मन में अब भय नहीं है। अब मैं आपकी सहायता से देवताओं का भी सामना कर सकता हूँ। नरपुंगव ! जैसे भगवान वासुदेव का सारथी दारुक है और इंद्र का मातलि, उसी प्रकार मुझे भी आप सारथी के कार्य में पूर्ण शिक्षित मानिये।'

तदनन्तर पराक्रमी अर्जुन ने हाथों से कड़े और चूड़ियाँ उतार दीं और हथेलियों में कवच धारण कर लिये। फिर उन्होंने अपने केशों को स्वेत वस्त्र से बाँध लिया और पूर्व की ओर मुख कर एकाग्रचित्त हो सम्पूर्ण अस्त्रों का ध्यान किया। उन्होंने बड़े वेग से गाण्डीव धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर टंकार की। उस टंकार-ध्वनि को सुन कौरवों ने समझा, कहीं बिजली टूट पड़ी है।

अर्जुन ने उत्तर से कहा—'अब तुम रथ पर अच्छी तरह से बैठ जाओ, घोड़े की रास दृढ़तापूर्वक पकड़े रहो क्योंकि युद्ध शीघ्र ही आरम्भ होगा।

द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा—'मेरा तो विश्वास है कि गाण्डीवधारी अर्जुन युद्धस्थल में हम लोगों पर आक्रमण करने आ रहा है। मुझे सब शकुन विपरीत दिखाई देते हैं; अतः अपनी पराजय अवश्यम्भावी है।'

दुर्योधन बोला—'यदि अज्ञातवास पूर्ण होने के पहले ही अर्जुन आ गया, तो पाण्डवों को पुनः बारह वर्ष वनवास में निवास करना होगा। इनके तेरहवें वर्ष की समाप्ति में कुछ कमी है या वह पूर्ण हो चुका, यह भीष्मजी ही जानते हैं। राजा विराट की सेना में से कोई महापराक्रमी योद्धा अगुआ बनकर हमें जीतने आया हो, यह भी संभव है। राजा विराट अथवा अर्जुन ही उनकी ओर से आया हो, तो भी हमें उससे युद्ध करना ही है। हमारे श्रेष्ठ महारथी भ्रान्त-चित्त हो क्यों चुपचाप बैठे हैं? युद्ध के अतिरिक्त हमारा कल्याण नहीं है। मैं आप सब आयुष्मानों को भयभीत एवं त्रस्त देखता हूँ। आप लोगों का मन युद्ध में नहीं लग रहा है, यह मुझे प्रत्यक्ष प्रतीत होता है।'

द्रोणाचार्य ने क्रोधपूर्वक कहा—'पाण्डवों ने अनेक वीरता-पूर्ण कार्य किये हैं, बताओ तुमने कितने किये? तुम क्रोध में भरे हुए विषधर सर्प के मुख में अपना दाहिना हाथ डालना और तर्जनी अंगुली से उसके दाँत उखाड़ना चाहते हो। तुम शरीर में घृत पोत कर प्रज्वलित अग्नि के भीतर से निकलना चाहते हो। तुमने अस्त्र-शस्त्र की पूर्ण शिक्षा प्राप्त नहीं की और कुन्ती-पुत्र अर्जुन जैसे बलवान वीर से युद्ध करना चाहते हो? अतः तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है। कौरवों ने पाण्डवों को तेरह वर्ष तक वन में रखकर इनके साथ कपट-पूर्ण व्यवहार किया है, अब वे प्रतिज्ञा के बंधन से मुक्त हो गये हैं। बंधन से छूटे हुए सिंह की भाँति क्या वे हमारा नाश न कर डालेंगे? अर्जुन के पास हम अज्ञानवश आ पहुँचे हैं, इसलिये भारी संकट में पड़ गये हैं।'

अश्वत्थामा बोला—'दुर्योधन! जैसे सूर्य मौन रहकर ही

प्रकाशित होते हैं, पृथ्वी चुप रहकर ही चराचर को धारण करती है, इसी प्रकार विद्वान पुरुष युद्ध में विजय तथा धन राशि पाकर भी अपनी बड़ाई नहीं करते। धृतराष्ट्र के पुत्रों का संहार करने के लिए ही धनंजय प्रकट हुए हैं और प्रतिशोध लेने के लिये हम लोगों का संहार कर डालेंगे। जैसे गरुड़ जिस-जिस बृक्ष पर पैर रखते हैं उसे अपने वेग से गिराकर चले जाते हैं, उसी प्रकार अर्जुन जिस-जिस महारथी पर आक्रमण करेंगे, उसे नष्ट करके ही आगे बढ़ेंगे।'

भीष्मजी बोले—'आचार्य द्रोण और अश्वत्थामा का कथन ठीक है। परस्पर विरोध का यह समय नहीं है, जबकि अर्जुन युद्ध के लिये उपस्थित है। मनीषी पुरुषों ने विनाश करने वाले जितने मार्ग बताये हैं, उनमें फूट ही सबसे प्रधान है। मेरी गणना के अनुसार पाण्डवों के वनवास को तेरह वर्ष पाँच महीने और बारह दिन हो चुके हैं।'

भीष्मजी के वचन सुन दुर्योधन ने आचार्य द्रोण से क्षमा-याचना की। उधर अर्जुन राजा दुर्योधन के पास पहुँच गये, जो हस्तिनापुर की ओर गौएँ लेकर जा रहा था। वे उस पर शीघ्रता से टिड्डी-दल की भाँति बाणों की वर्षा करने लगे। युद्ध में बाणों से आहत हो कौरव सेना धराशायी हो रही थी। अर्जुन ने गौओं को शत्रुओं से छुड़ा लिया और वे मत्स्य देश की राजधानी की ओर स्वतः भाग गयीं।

जब अर्जुन दुर्योधन से युद्ध कर रहा था तब कृपाचार्य ने अपने सेनापतियों से कहा—'हमें राजा दुर्योधन की रक्षा करनी चाहिये। राजा दुर्योधन पार्थ-रूपी जल में पुरानी नाव की भाँति डूब रहा है। कृपाचार्य का आदेश पाकर कर्ण, विकर्ण, चित्रसेन, संग्रामजित, शत्रुसह, शत्रुतप तथा जय आदि महारथी दुर्योधन की रक्षा के लिये पहुँचे। अर्जुन के बाणों से पीड़ित हो विकर्ण युद्ध-भूमि से भाग गया, किंतु राजा शत्रुतप मारा गया। अर्जुन ने कर्ण के छोटे भाई संग्रामजित का मस्तक

धड़ से अलग कर दिया। जैसे गरुड़ किसी नाग पर टूट पड़ता है वैसे ही वीर अर्जुन ने कर्ण पर आक्रमण किया। अब दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। कर्ण को अर्जुन का पराक्रम असह्य हो उठा और वह रणभूमि से भाग गया। जैसे सूर्य अनन्त किरणों द्वारा पृथ्वी को आच्छादित कर देते हैं, उसी प्रकार अर्जुन ने बाणों द्वारा कौरव-सेना को ढक दिया और प्रलयकालीन अग्नि के समान शत्रुओं को भस्म करने लगे। पार्थ का अद्वितीय पराक्रम देख कौरव मानने लगे कि अर्जुन के रूप में साक्षात काल ही सबका संहार कर रहा है। कृपाचार्य बल और पराक्रम से सम्पन्न थे उन्होंने पूर्ण बल का प्रयोग कर अर्जुन पर आक्रमण किया। अर्जुन ने उनके शस्त्रों का प्रतिकार कर उन पर साधारण बल से वाणों की वर्षा की, किंतु कृपाचार्य उनके आघात से पीड़ित हो रथ से पृथ्वी पर गिर पड़े। अर्जुन ने उनके गौरव की रक्षा करने के लिये उन पर और आघात नहीं किया। कौरव सैनिक कृपाचार्य को युद्धभूमि से हटा ले गये। अब द्रोणाचार्य ने अर्जुन पर आक्रमण किया। अर्जुन उन्हें प्रणाम कर युद्ध करने लगे। महापराक्रमी द्रोण ने अर्जुन के रथ को वाणों से आच्छादित कर दिया। पार्थ ने आचार्य के वाणों को नष्ट कर उन पर अपने शस्त्रों से कोमल आघात किया। वे दोनों दिव्यास्त्रों द्वारा धर्म-युद्ध कर रहे थे। कुछ ही समय में आचार्य के कवच और ध्वज छिन्न-भिन्न हो गये और वे स्वयं भी आहत हो गये, अतः युद्ध स्थल से भाग निकले। तदनन्तर अश्वत्थामा और दुःशासन अर्जुन से युद्ध करने लगे। किन्तु वे भी रणभूमि छोड़ भाग गये। शान्तनुनन्दन पितामह भीष्म अपने पक्ष के योद्धाओं का संहार होता देख अर्जुन से युद्ध करने लगे। भीष्म पितामह ने अनेक बाणों द्वारा अर्जुन पर आघात किया, किन्तु अर्जुन ने उन शस्त्रों का निवारण कर भीष्म की ध्वजा काट पृथ्वी पर गिरा दी। इस प्रकार कुछ समय तक सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता भीष्मजी और अर्जुन का युद्ध

चलता रहा। तदनन्तर अर्जुन ने तेजस्वी भीष्म का धनुष काट उन्हें निश्चेष्ट कर दिया। ऐसी दशा में भीष्मजी की प्राण-रक्षा के उद्देश्य से उनका सारथी उन्हें संग्राम भूमि से दूर ले गया। महारथी कुन्तीकुमार ने अपने अस्त्रों से जब सब योद्धाओं को एक-एक कर परास्त एवं तिरस्कृत कर दिया, तब वे सब मिलकर उससे युद्ध करने लगे। वीर अर्जुन ने सबको अपने अस्त्रों से मूर्च्छित कर दिया और उत्तर ने उन वीरों के शरीर से कुछ वस्त्र उतार लिये।

जब दुर्योधन को चेतना-शक्ति आई, तब वह भीष्म के पास जाकर बोला—'पितामह! पार्थ आपके हाथों से कैसे बच गया? आप इसे शीघ्र मार डालिये।'

भीष्मजी ने हँसकर कहा—'जब तुम अचेत पड़े थे, तब तुम्हारा पराक्रम और बुद्धि कहाँ चली गयी थी? वीर अर्जुनने हमसे पाप-पूर्ण एवं निर्दय व्यवहार नहीं किया है। वह त्रिलोकी के राज्य के लिये भी अपना धर्म नहीं छोड़ता। यही कारण है कि उसने हम सबके प्राण नहीं लिये हैं। तुम शीघ्र ही कुरु-देश को लौट जाओ, इसीमें सबका कल्याण है। पितामह के हितकर वचन सुन राजा दुर्योधन ने युद्ध की इच्छा त्याग दी और सब वीरों ने हस्तिनापुर लौटने का निश्चय किया। कौरव-वीरों को वहाँ से प्रस्थान करते देख प्रसन्न-मन अर्जुन ने भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण और अन्य गुरुजनों को प्रणाम किया। युद्ध में कौरवों को जीत वीर अर्जुन विराट का गोधन लौटा लाये। उन्होंने पूर्ववत् सिर पर वेणी धारण कर ली और घोड़ों की रास संभालकर प्रसन्नतापूर्वक राजधानी में प्रवेश किया। जब वीरवर विराट सिंहासन पर बैठे थे, उस समय कुन्ती-पुत्रों के साथ अन्य महारथी राजा की सेवा के लिये वहाँ उपस्थित थे। इसी समय ग्वालों ने उन्हें उत्तर के विजयी होने की सूचना दी।

युधिष्ठिर बोले—'महाराज! सौभाग्य की बात है कि कुमार उत्तर ने गौएँ जीत लीं और कौरवों को भगा दिया।

जिसका सारथी बृहन्नला हो, उसकी विजय तो निश्चित ही होनी चाहिये। बृहन्नला की समानता इंद्र का सारथी मातलि भी नहीं कर सकता।'

राजा विराट कुपित हो बोले—'अधम ब्राह्मण! तुम मेरे पुत्र के पराक्रम से अधिक बृहन्नला की प्रशंसा करते हो? तुम मित्र हो, अतः तुम्हारे अपराधों को मैं क्षमा करता हूँ।'

युधिष्ठिर ने कहा—'जहाँ द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण और दुर्योधन हों, उन संगठित वीरों का वृहन्नला के अतिरिक्त कौन सामना कर सकता है? वृहन्नला जैसा सहायक होने पर राजकुमार उत्तर विजयी क्यों न होगा?'

यह सुन राजा विराट पुनः कुपित हो उठे। उन्होंने एक पासा युधिष्ठिर के मुख पर दे मारा। पासे के आघात से युधिष्ठिर की नाक से रक्त की धारा बह चली। सती-साध्वी द्रौपदी ने युधिष्ठिर की नाक से जो रक्त बह रहा था, उसे स्वर्ण-पात्र में ले लिया। तदनन्तर राजकुमार उत्तर ने सभा-भवन में प्रवेश कर पिता विराट और कंक को प्रणाम किया। उत्तर ने देखा निरपराध कंक की नाक से रक्त बह रहा है और सैरन्ध्री उनकी सेवा कर रही है।

उत्तर ने पूछा—'पिताजी! इन्हें किसने मारा है?'

विराट बोले—'मैंने ही इस कुटिल को मारा है, क्योंकि जब मैं तुम्हारे शौर्य की प्रशंसा कर रहा था, तब यह उस हिजड़े की बड़ाई करने लगा।'

उत्तर बोला—'राजन्! आपने इन्हें मारकर बड़ा अनुचित कार्य किया है। शीघ्र ही इन्हें मनाइये, अन्यथा ब्राह्मण का भयंकर क्रोध-विष आपको जड़-मूल सहित भस्म कर देगा।'

पुत्र का यह हितकर वचन सुन राजा विराट ने युधिष्ठिर से क्षमा माँगी। जब युधिष्ठिर की नाक से रक्त बन्द हो गया, उस समय वृहन्नला ने राजसभा में प्रवेश कर राजा विराट

और कंक को प्रणाम किया।

उत्तर ने कहा—'पिताजी ! मैंने शत्रुओं पर विजय नहीं पायी है। यह सब कार्य तो किसी देव कुमार ने किया है। मैं तो डरकर भाग रहा था, किन्तु वह देव-पुत्र मुझे लौटाकर स्वयं ही रथी बन बैठा। उसने कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, भीष्म पितामह और दुर्योधन को अस्त्रों के द्वारा युद्ध-भूमि से भगा दिया।'

विराट बोले—'बेटा ! वह यशस्वी देवपुत्र अब कहाँ है ? मैं उस महापराक्रमी वीर को देखना और उसका सत्कार करना चाहता हूँ।'

उत्तर बोले—'वह महाबली देवपुत्र अंतर्धान हो गया है, किन्तु शीघ्र ही वह यहाँ प्रकट होगा।' इस प्रकार संकेतपूर्वक बताने पर भी राजा विराट अर्जुन को न पहचान सके। विराट की आज्ञा से बृहन्नला रूपी अर्जुन ने उत्तरा को वे वस्त्र जो महारथियों से उतारे थे, दे दिये। तदनन्तर तीसरे दिन महारथी पाण्डव आभूषणों से विभूषित प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशित हो राजसभा में पहुँचे।

वीर अर्जुन ने सर्वप्रथम कंक का परिचय देते हुए कहा—'ये ही कुरुवंश में सर्वश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर हैं। ये बुद्धिमान, तपस्या के परम आश्रय और मूर्तिमान धर्म हैं। महाराज ! ये जो वल्लभ नामधारी आपके रसोइये हैं, ये अत्यन्त बलशाली भीमसेन हैं। ये माद्री के पुत्र महारथी वीर नकुल और सहदेव हैं। यह विकसित कमल दल के समान विशाल नेत्रों वाली सैरन्ध्री महारानी द्रौपदी है, जिसके धर्म की रक्षा के लिये भीमसेन ने दुरात्मा कीचक का वध किया था। मैं भीम से छोटा भाई कुन्ती-पुत्र अर्जुन हूँ। राजन् ! हम लोगों ने बड़े सुख से आपके महल में अज्ञातवास का समय बिताया है।' पाण्डव वीरों के परिचय के पश्चात विराट कुमार उत्तर ने कहा—'ये ही वे

देव-पुत्र हैं, जिन्होंने शत्रु को पराजित किया है। पाण्डव महान पराक्रमी, सर्वश्रेष्ठ, पूजनीय और सम्मान के योग्य है।' राजा विराट ने सब पाण्डवों को हृदय से लगाया और धनंजय से अपनी कन्या उत्तरा को अपनी पत्नी रूप में स्वीकार करने के लिये आग्रह किया। वीर अर्जुन ने उत्तरा को अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करने की अनुमति दी। उन्होंने कहा—'यह कन्या मुझे पिता और आचार्य की भाँति मानती आयी है। मैं पुत्र-वधू और पुत्री में कोई भेद नहीं मानता, अतः हम दोनों की पवित्रता भी स्पष्ट हो जायेगी। मेरा पुत्र अभिमन्यु आपका सुयोग्य जमाता और उत्तरा का उपयुक्त पति होगा।' इस प्रस्ताव के अनुसार राजा विराट ने उत्तरा का विवाह बड़ी धूमधाम से सुभद्रा-कुमार वीर अभिमन्यु से कर दिया।

विवाह विधिपूर्वक सम्पन्न होने के पश्चात भगवान श्रीकृष्ण ने सभा में एकत्रित राजाओं से कहा—'शकुनि ने पाण्डवों का राज्य छल से हरण किया था और पाण्डवों ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वनवास में निवास किया है। पाण्डव सदा सत्य पर दृढ़ रहते हैं। इनमें पृथ्वी को जीतने की शक्ति है, किन्तु ये शान्तिप्रिय हैं। जिस उपाय से धर्मराज युधिष्ठिर और राजा दुर्योधन का हित हो, उस पर विचार कर आप लोग अपना निर्णय दें। धर्म के विरुद्ध देवताओं का राज्य भी पाण्डव नहीं चाहेंगे। कौरवों के लोभ और युधिष्ठिर के धर्म-ज्ञान को ध्यान में रखते हुए सब अपना-अपना मत प्रकट करें। मेरे विचार से कोई धर्मशील, कुलीन पुरुष दूत बनकर कौरवों के पास जाये और उन्हें युधिष्ठिर को आधा राज्य देने के लिये हम सबकी सम्मति सुनायें। भगवान श्रीकृष्ण के वचन सुन सभी आमंत्रित राजाओं ने उनका अनुमोदन किया और कहा—'यदि कौरव यह प्रस्ताव नहीं मानेंगे तो हम सब मिलकर पाण्डवों का पक्ष ले उनसे युद्ध करेंगे।'

तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण और अन्य राजा अपने-अपने राज्यों को चले गये। राजा द्रुपद ने सबकी सम्मति के अनुसार वयोवृद्ध विद्वान पुरोहित को कौरवों के पास भेजा। इधर पाण्डव धन और सेना का संग्रह करने लगे।

युद्ध

वैशम्पायनजी ने कहा—'जनमेजय ! पाण्डव युद्ध में उनके सहायक होने के लिये राजाओं को यत्र-तत्र निमन्त्रण भेजने लगे। कुन्तीपुत्र परमश्रेष्ठ धनंजय स्वयं ही द्वारिका में भगवान श्रीकृष्ण के पास गये। राजा दुर्योधन को अपने गुप्तचरों द्वारा पाण्डवों की सारी चेष्टाओं का पता रहता था। जब उसने सुना कि अर्जुन द्वारिका में भगवान श्रीकृष्ण से युद्ध के लिये सहायता माँगने जा रहा है, तब वह भी शीघ्रगामी रथ पर सवार हो द्वारिका की ओर चल दिया। द्वारिका के राजमहल में एक साथ दोनों ने प्रवेश किया। उस समय भगवान श्रीकृष्ण शयन कर रहे थे। अर्जुन भगवान के शयनागार में प्रथम प्रवेश कर बड़ी नम्रता के साथ हाथ जोड उनके चरणों की ओर खड़ा हो गया। इसके बाद दुर्योधन ने भी शयनागार में प्रवेश किया और एक सिंहासन पर जो भगवान के सिरहाने पर रखा हुआ था, बैठ गया। जगने पर भगवान ने पहले अर्जुन को देखा और उसके आगमन का कारण पूछा।

बीच में ही दुर्योधन ने कहा—'माधव! मैं आपके महल में पहले आया हूँ। श्रेष्ठ पुरुषो के सदाचार का अनुसरण करने वाले पहले आये प्रार्थी की ही सहायता करते हैं। जनार्दन! आप संसार के सत्पुरुषों में श्रेष्ठ हैं और सभी सर्वदा आपको सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, अतः आप सत्पुरुषों का आचार पालन कर मुझे ही सहायता प्रदान करें।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'राजन् ! इसमें संदेह नहीं कि आप ही मेरे यहाँ पहले आये हैं, परन्तु मैंने पहले अर्जुन को

देखा है। दुर्योधन! मैं दोनों की ही सहायता करूँगा। शास्त्र की आज्ञा है कि बालकों को पहले उनकी अभीष्ट वस्तु देनी चाहिये, अतः अर्जुन अवस्था में आपसे छोटा होने के कारण वस्तु पाने का प्रथम अधिकारी है।'

फिर उन्होंने अर्जुन से कहा—'हे अर्जुन! एक ओर मेरे पास अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित विशाल सेना है और दूसरी ओर मैं निःशस्त्र अकेला रहूँगा और युद्ध नहीं करूँगा। इन दोनों में कोई एक जो तुम्हें प्रिय जान पड़े उसे चुन लो।' यह सुन अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण को ही चुना। इस पर राजा दुर्योधन ने हर्ष सहित यादवों की विशाल सेना स्वीकार की और मन-ही-मन अर्जुन को अत्यंत मूर्ख समझा। तदनन्तर राजा दुर्योधन ने महाबली बलरामजी के पास जा युद्ध के लिये सहायता माँगी।

बलरामजी दुर्योधन से बोले—'राजन्! मैंने श्रीकृष्ण से कहा था कि हमारे लिए दोनों पक्ष ही समान रूप से संबंधित हैं, इसलिए किसी का भी पक्ष हमें नहीं लेना चाहिए, किन्तु श्रीकृष्ण ने मेरी राय नहीं मानी। मैं श्रीकृष्ण को छोड़ एक क्षण भी अन्यत्र नहीं ठहर सकता, अतः मैं न तो अर्जुन की सहायता करूँगा, न तुम्हारी ही।' तत्पश्चात राजा दुर्योधन हर्षित हो यादवों की विशाल सेना के साथ हस्तिनापुर लौट गया।

राजा दुर्योधन के चले जाने पर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा—'पार्थ! मैं तो युद्ध करूँगा नहीं, फिर क्या सोचकर तुमने मुझे चुना है?'

अर्जुन बोला—'भगवन्! आप निःशस्त्र भी सबको नष्ट करने में समर्थ हैं। आप जहाँ भी रहेंगे, यश आपका ही अनुसरण करेगा। आपकी कृपा से मैं सब शत्रुओं का संहार कर सकूँगा। मेरे मन में बहुत दिनों से अभिलाषा थी कि अपने जीवन-रथ की बागडोर आपके हाथ सौंप दूँ। मेरी इस चिरकालिक अभिलाषा को अब आप पूर्ण करें।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'अर्जुन ! मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करने के लिए तुम्हारा सारथ्य करूँगा।' यह सुन अर्जुन हर्षित हो भगवान श्रीकृष्ण से विदा ले राजा युधिष्टिर के पास आ पहुँचे और उन्हें सारा वृतान्त कह सुनाया।

पाण्डवों से उनके साथ सम्मिलित होकर युद्ध करने का निमंत्रण मिलने पर राजा शल्य विशाल सेना ले हस्तिनापुर की ओर चला। राजा दुर्योजन ने महारथी राजा शल्य का आगमन सुन स्वयं ही मार्ग में उनका सत्कार करना आरम्भ कर दिया। वहाँ उसने अलौकिक वस्तुएँ शल्य को भेंट कीं। उनसे अत्यन्त प्रसन्न हो, उसने सेवकों से पूछा—'मैं किसका आतिथ्य ग्रहण कर रहा हूँ ? मैं अपने सम्मान से उसका ऋणी हूँ, इसलिए मैं प्रसन्नतापूर्वक उसकी आशा पूर्ण करूँगा।'

फिर दुर्योधन मामा शल्य के पास गया और उससे अपनी सेना के अधिनायक होने की प्रार्थना की, 'राजन् ! आपके लिये जैसे पाण्डव हैं, वैसा ही मैं हूँ। प्रभो ! मैं आपका भक्त हूँ, अतः मुझे आप अपनाइये।'

शल्य बोले—'राजन् ! तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही मैं करूँगा। अब मैं युधिष्ठिर से मिलकर शीघ्र ही तुम्हारे पास आऊँगा।'

पाण्डु-पुत्रों से मिलकर महाबाहु शल्य ने उनके द्वारा दिये हुए पाद्य और अर्घ्य को ग्रहण किया। तत्पश्चात मद्रराज शल्य ने प्रसन्नता के साथ राजा युधिष्ठिर और अन्य पाण्डवों को हृदय से लगा आशीर्वाद दिये। द्रौपदी, सुभद्रा तथा अभिमन्यु ने राजा शल्य को प्रणाम किया।

राजा युधिष्ठिर ने दोनों हाथ जोड़कर शल्य से कहा—'राजन् ! आपका स्वागत है। आपका परिवार कुशल तो है?'

शल्य ने इन प्रश्नों का यथा-युक्ति उत्तर दिया और कहा—'नरेश ! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि वनवास के कष्टों से तुम्हारा छुटकारा हो गया। तुम लोगों ने निर्जन वन में अज्ञात

वास कर अत्यन्त दुष्कर कार्य सम्पन्न किया है। जो अपने राज्य से वंचित हो जाता है, उसे कष्ट ही उठाना पड़ता है। नरेश्वर! तुम्हें लोकतंत्र का सम्यक् ज्ञान है, इसलिये तुम सदा तपस्या, दान और सत्य में ही संलग्न रहते हो तथा लोभ-जनित कोई भी विचार मन में नहीं आने देते। राजन्! तुम में तो क्षमा, इंद्रिय-संयम, कोमलता, उदारता, ब्राह्मण-भक्ति और बहुत से धर्म प्रतिष्ठित हैं, इसलिए युद्ध में विजय प्राप्त करोगे।' तदनन्तर राजा शल्य ने दुर्योधन से मिलने, उससे सेवा-सुश्रूषा ग्रहण करने और उसे वरदान देने की सारी बातें पाण्डवों को कह सुनायीं।

युधिष्ठिर बोले—'महाराज! आपने प्रसन्नचित्त होकर दुर्योधन को सहायता देने का जो वचन दिया, वह अच्छा ही किया। किन्तु पृथ्वीपते! आप भगवान श्रीकृष्ण के समान संग्राम में सारथी का काम करने योग्य हैं, इसलिए कर्ण और अर्जुन के युद्ध में यदि आपको कर्ण के सारथी का कार्य करना पड़े तो अर्जुन की रक्षा करनी होगी। आपको कर्ण का उत्साह भंग करते रहना होगा, यही हमारी प्रार्थना है।'

शल्य ने कहा—'पाण्डुनंदन! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी इच्छा मैं यथाशक्ति अवश्य पूर्ण करूँगा। इसके अतिरिक्त और भी जो कुछ मुझसे हो सकेगा, वह प्रिय कार्य तुम्हारे लिये मैं अवश्य करूँगा। तुम्हारे सभी दुःख भविष्य में सुख के रूप में परिवर्तित हो जायेंगे। विधाता का विधान अति प्रबल है, इस-लिए महापुरुषों ने समय-समय पर कष्ट उठाया है। इस विषय में तुम्हें एक पूर्वकाल में घटित इतिहास सुनाता हूँ:

'पूर्वकाल में त्वष्टा नाम के एक प्रजापति थे। उस महान तपस्वी ने इन्द्र से द्रोह हो जाने के कारण, एक तीन सिर वाला पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम विश्वरूप था। विश्वरूप तपस्वी, जितेन्द्रिय और कोमल स्वभाव वाला था तथा धर्म और तप में संलग्न रहता था। उस तेजस्वी बालक का सत्य और तपोबल देख अपने आसन से च्युत होने के भय से इन्द्र चिंतित

रहने लगे। उन्होंने त्रिशिरा के वध का निश्चय कर उसे अपने वज्र से मार डाला। त्रिशिरा के मारे जाने पर भी वह अपने तेज से जीवित-सा दिखाई देता था। उस ऋषिकुमार की हत्या का क्रूर कर्म करने से इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप लग गया। इन्द्र ब्रह्महत्या से मुक्ति पाने के लिए कठिन व्रत तथा तपस्या में संलग्न हो गये। जब त्वष्टा प्रजापति ने सुना कि इन्द्र ने उनके पुत्र त्रिशिरा को मार डाला है तब उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। वे सोचते लगे कि मेरा पुत्र तो सदा क्षमाशील, संयमी और जितेन्द्रिय रहकर तपस्या में संलग्न रहता था, तथापि बिना किसी अपराध के इंद्र ने उसकी हत्या की ? अतः उसके विनाश के लिए मैं वृत्रासुर को उत्पन्न करूँगा। ऐसा कह तपस्वी और महायशस्वी त्वष्टा ने वृत्रासुर को उत्पन्न किया और उससे कहा—वत्स ! तुम इन्द्र को मार डालो ! त्वष्टा की आज्ञा से वृत्रासुर ने इंद्र को पकड़ लिया, तब इंद्र ने भगवान विष्णु की आराधना की।

'हे सुर श्रेष्ठ ! वृत्रासुर ने सम्पूर्ण जगत को आक्रान्त कर लिया है। उसे मारने का कोई उपाय बताइये ?'

भगवान विष्णु बोले—'देवराज इंद्र ! इस समय तुम ऋषियों और गंधर्वों को भेज वृत्रासुर से सन्धि कर लो। समय आने पर वृत्रासुर मारा जायेगा।'

इंद्र ने ऋषियों और गंधर्वों को वृत्रासुर के पास सन्धि का प्रस्ताव देकर भेजा। वृत्रासुर ने कहा—'यदि आप सब मुझे वरदान दें कि मैं देवताओं के द्वारा न सूखी, न गीली वस्तु से, न पत्थर से, न लड़की से, न शस्त्र-अस्त्र से, न दिन, न रात में ही मारा जाऊँ, तब तो मैं इंद्र के साथ सन्धि कर लूँगा।' वृत्रासुर की बात सुन, ऋषि-मुनि और गंधर्वों ने उसे वह वरदान दे दिया। इन्द्र और वृत्रासुर में संधि स्थापित होनेके पश्चात वे दोनों हर्षित हो परस्पर मिलने लगे, किन्तु इंद्र वृत्रासुर के वध की ही चिन्ता किया करते थे।

इंद्र ने संध्याकाल में सोचा कि अब न रात्रि है, न दिन, समुद्र का फेन न सूखा है, न गीला, न वह अस्त्र है न शस्त्र है, अतः विष्णु भगवान का स्मरण कर उसने समुद्र के फेन से वृत्रासुर का संहार कर दिया। वृत्रासुर के मारे जाने पर विश्वासघात के संताप से इंद्र मन-ही-मन बहुत दुखी हुए। अतः ब्रह्महत्या की आत्मग्लानि से वे अज्ञात स्थान में छिप गये। देवराज इंद्र के अदृश्य हो जाने पर, अराजकता के कारण भयभीत हो, ऋषि-मुनि और देवताओं ने राजा नहुष को इन्द्र-पद पर अभिषिक्त कर दिया, किन्तु राजा नहुष विषय-लोलुप निकला। एक दिन उसकी दृष्टि इन्द्राणी शची पर पड़ी। दुष्टात्मा नहुष ने इन्द्र की महारानी शची देवी को अपनी सेवा करने की आज्ञा दी। यह सुन वह दुखी हो महामुनि वृहस्पति से बोली—'ब्रह्मर्षे! मैं आपकी शरण में आ गयी हूँ, आप नहुष से मेरी रक्षा कीजिये।' जब राजा नहुष ने सुना कि इन्द्राणी महात्मा वृहस्पति की शरण में गई है, तब वह क्रोधित हो ऋषियों को आगे कर उनके स्थान पर पहुँचा और शची देवी को माँगा।

महात्मा वृहस्पति ने कहा—'राजन्! आप इस हठ को त्याग दीजिये। शची देवी दूसरे इन्द्र की पत्नी है। परायी स्त्री का स्पर्श पाप-कर्म है। अतः उससे मन को हटा लीजिये और प्रजा का पालन धर्मपूर्वक कीजिये।' राजा नहुष ने गुरुदेव वृहस्पति के वचन को अस्वीकार कर दिया और रुष्ट हो वहाँ से चला गया।

राजा नहुष के प्रस्थान के बाद महर्षि वृहस्पति ने शची को जो दुःख के सागर में गोते लगा रही थी, आश्वासन दिया—'इन्द्राणी! मैं शरणागत का त्याग नहीं करूँगा।'

जब देवता महर्षि वृहस्पति के पास शचीदेवी को पुनः माँगने आये, तब उन्होंने कहा—'तुम सब उस समय तक प्रतीक्षा करो, जबतक कि शचीदेवी नहुष को अपना पति स्वीकार करने पर राजी न हो जाय। देवता और ऋषियों से महर्षि वृहस्पति

का सन्देश सुन नहुष प्रसन्न हो गया। शचीदेवी ने ब्रह्मर्षि की आज्ञा से भगवान विष्णु की आराधना आरम्भ कर दी—'भगवन् ! आप ही हमारे आश्रय, सम्पूर्ण जगत के पूर्वज तथा प्रभु हैं। प्रभो ! यदि मैंने दान दिया हो, हवन किया हो, गुरुजन को संतुष्ट रखा हो तथा मुझ में सत्य विद्यमान हो, तो मेरा पतिव्रत-धर्म सुरक्षित रहे। मेरे स्वामी ब्रह्महत्या के भय से कहीं छिप गये हैं। भगवन् ! उन्हें इस पाप से मुक्त कर दीजिये और पुनः इन्द्र-पद पर स्थापित होने का वरदान दीजिये।' देवी शची की प्रार्थना से भगवान उस पर प्रसन्न हो गये। तदनन्तर श्रुति देवी मूर्तिमती हो साध्वी शची के पास गई और उसे इन्द्र का दर्शन कराया। शची ने इन्द्र की स्तुति करने के पश्चात नहुष की कुचेष्टा का वर्णन किया—'प्रभो ! यदि आप मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो वह पापी मुझे अपने वश में कर लेगा। इस पाप पूर्ण विचार वाले नहुष को आप शीघ्र ही मार डालिये।'

इन्द्र ने शची से कहा—'देवी ! अभी पराक्रम का समय नहीं है। ऋषियों ने हव्य और कव्य के द्वारा उसकी शक्ति को बहुत बढ़ा दिया है, अतः मैं नीति से काम लूँगा। तुम भी उसी नीति का पालन करो। तुम नहुष के पास एकान्त में संदेश भेजो कि आप दिव्य ऋषियान पर बैठकर मेरे पास आइये। ऐसा होने पर मैं प्रसन्नतापूर्वक आपके वश में हो जाऊँगी।' देवराज के आदेश से शची देवी ने यह प्रस्ताव नहुष को भेजा।

नहुष ने उत्तर दिया—'शची ने जो यह अपूर्व वाहन बताया है, वह मुझे भी अभीष्ट है। मैं तपस्वी, बलवान, भूत, भविष्य और वर्तमान कालों का स्वामी हूँ। मैं उसकी इच्छा का पालन करूँगा। सप्तर्षि और ब्रह्मर्षि मेरी पालकी ढोयेंगे।' ऐसा निश्चय कर नहुष ने ऋषि-मुनियों को अपनी पालकी ढोने की आज्ञा दी। देवर्षि वृहस्पति ने शची को आश्वासन देकर कहा कि यह दुष्टात्मा नहुष अब अपने पापों द्वारा शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा।

जो ऋषिगण नहुष की पालकी ढो रहे थे, बोले—'राजन् ! तुम अधर्म में प्रवृत्त हो रहे हो। किन्तु नहुष ऋषियों से विवाद करने लगा और उसने ऋषियों के मस्तक पर पैर से प्रहार किया। इससे नहुष का सारा तेज नष्ट हो गया। ऋषियों ने उसको शाप दिया—तुम तेजस्वी ऋषियों को वाहन बनाकर, उनसे अपनी पालकी ढुलवा रहे हो और उनके सिर पर लात भी मार रहे हो, अतः तुम स्वर्ग से भ्रष्ट होकर पृथ्वी पर गिरो।'

तदनन्तर इन्द्र शची को ढूँढ़ता हुआ ब्रह्मर्षि बृहस्पति के पास पहुँचा। बृहस्पति ने इन्द्र को सम्बोधित कर कहा—'शचीपते ! ब्रह्महत्या का पाप अब नष्ट हो गया है, अतः आप इन्द्र-पद पर पुनः बैठ तीनों लोकों की रक्षा करें।' तत्पश्चात इन्द्र स्वर्गलोक का पालन करने लगे। वहाँ उन्होंने मुख्य देवताओं और महर्षियों की पूजा की।

शल्य ने कहा—'हे युधिष्ठिर ! जिस प्रकार पापात्मा नहुष ऋषियों के शाप से नष्ट हो गया, उसी प्रकार तुम्हारे शत्रु दुर्योधन आदि शीघ्र ही विनाश के मुख में चले जायेंगे। दुर्योधन के पाप से, तथा भीमसेन और अर्जुन के बल से क्षत्रियों के संहार का अवसर उपस्थित हो गया है। शल्य की बात सुन महाबाहु युधिष्ठिर ने मद्रराज का विधिपूर्वक पूजन किया। तदनन्तर शल्य अपनी सेना के साथ दुर्योधन के यहाँ चले गये। उनके चले जाने के पश्चात युयुधान (सात्यकि), चेदिराज धृष्टकेतु, मगधवीर जयत्सेन, जरासंध का महाबली पुत्र सहदेव, द्रुपद तथा विराट विशाल सेना के साथ युधिष्ठिर के पास आये।

संजय का पाण्डवों के पास जाना

द्रुपद का पुरोहित राजा धृतराष्ट्र की सभा में पहुँचा और बोला—'राजन् आप तथा पाण्डु दोनों एक ही पिता के पुत्र हैं। पैतृक सम्पत्ति में दोनों का समान अधिकार है, इसलिए पाण्डवों को उनकी पैतृक सम्पत्ति क्यों न प्राप्त हो? यद्यपि दुर्योधन आदि कौरवों ने अनेक बार पाण्डवों को नष्ट करने का प्रयत्न किया है, पर उनकी आयु शेष थी, इसलिए वे इन्हें यमलोक न पहुँचा सके। फिर पाण्डवों ने अपने बाहुबल से नूतन राज्य की स्थापना की, परन्तु शकुनि और आपके पुत्रों ने उनका वह राज्य भी छल से हरण कर लिया। आपने भी उन सब कुचालों का अनुमोदन किया और पाण्डवों को तेरह वर्ष तक वनवास के लिये विवश किया। द्रौपदी को भरी सभा में क्रूरता से क्लेश पहुँचाया गया। इन सब अत्याचारों को भुलाकर भी पाण्डव कौरवों के साथ मेलजोल ही चाहते हैं। पाण्डवों के सुव्यवहार तथा दुर्योधन के अत्याचारों को देख सुहृदों का कर्तव्य है कि वे दुर्योधन को समझावें। दुर्योधन अपनी शक्ति को बहुत महत्व देता है, किन्तु उसे जान लेना चाहिये कि पाण्डव कौरवों से बलिष्ठ हैं, अतः प्रतिज्ञा के अनुसार पाण्डवों को आधा राज्य लौटा दीजिये, नहीं तो कौरव कुल का नाश निश्चित है।'

भीष्म पितामह ने कहा—'पाण्डव सन्धि की इच्छा रखते हैं, यह सौभाग्य की बात है। मैं पुरोहित से सहमत हूँ। पाण्डवों को उनकी सारी पैतृक-सम्पत्ति दे देनी चाहिये। पाण्डव सत्य-प्रतिज्ञ, धर्मात्मा और बली हैं और भगवान श्रीकृष्ण उनके साथी हैं, अतः युद्ध में उनकी ही विजय होगी।'

कर्ण ने राजा दुर्योधन की ओर देखकर क्रोधपूर्वक कहा—'राजा दुर्योधन भय से राज्य का कुछ भी भाग पाण्डवों को नहीं देंगे, पर निज-इच्छा से वे शत्रु को समूची पृथ्वी भी दे सकते हैं। कुरु-श्रेष्ठ वीरों से भिड़ने पर ही पाण्डवों को उनके बल का

पता चलेगा।'

तब भीष्म बोले—'राधानन्दन ! तुम पार्थ का वह पराक्रम भूल गये जब उसने विराट नगर के युद्ध में अकेले ही तुम सहित छः महारथियों को मार भगाया था। यदि हम ब्राह्मण-देवता के कथनानुसार पाण्डवों से संधि नहीं करेंगे तो हमें अर्जुन के हाथों से आहत हो धूल खानी पड़ेगी।'

धृतराष्ट्र ने कर्ण को डाँटते हुए कहा—'मैं इस विषय पर सोच-विचार करूँगा।' उन्होंने ब्राह्मण का सत्कार कर विदा किया और संजय को पाण्डवों के पास जाने के लिये बुलाया और कहा—'संजय ! पाण्डव सत्यवादी, परोपकारी तथा साधु-पुरुष हैं। वे धर्म का परित्याग नहीं करते। दुर्योधन मूर्ख है। वह कुकर्मों को भी सुकर्म ही मानता है। युद्ध होने के पूर्व ही पाण्डवों को उनका राज्य दे देने में हमारी भलाई है। मेरे पुत्रों ने पाण्डवों के साथ बैर ठान रखा है, क्योंकि वे सदा अमर्ष से भरे रहते हैं। हमारी सेना सब प्रकार से परिपूर्ण है, पर वह पाण्डवों का सामना नहीं कर सकती। मैं राजा युधिष्ठिर के रोष से सदा भयभीत रहता हूँ क्योंकि वह महान तपस्वी है। उसके मन में जो संकल्प होगा, वह सिद्ध होकर ही रहेगा। तात ! तुम पाण्डवों की कुशल-क्षेम पूछकर बताना कि धृतराष्ट्र उनसे सन्धि चाहता है।'

संजय राजा धृतराष्ट्र से विदा ले पाण्डवों के पास पहुँचा और उनसे कुशल-क्षेम पूछी।

युधिष्ठिर ने कहा—'संजय ! दीर्घकाल के वाद तुमसे अपने स्वजनों का कुशल समाचार सुन मैं अति प्रसन्न हूँ। मेरे चाचा धृतराष्ट्र और पूज्य पितामह जो मनस्वी, परमज्ञानी और समस्त धर्मों के ज्ञाता हैं, वे कुशल से तो हैं न ? हमारे पूज्य श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्य और कृपाचार्य स्वस्थ तो हैं न ? मूढ़ राजा दुर्योधन और उनके अधीन रहने वाले कर्ण कुशल तो हैं न ? पूज्य गुरु द्रोणाचार्य वीर कृपाचार्य और परम पूज्य पितामह

हम लोगों पर दोषारोपण तो नहीं करते ? कर्ण की कुमंत्रणा से धृतराष्ट्र के पुत्रों की द्वैतवन में पराजय, उनका बन्दी किया जाना तथा भीम और अर्जुन द्वारा उनकी मुक्ति क्या उन्हें स्मरण है ?'

संजय बोले—'पाण्डुनन्दन ! आपने जिन श्रेष्ठ कुरुवंशियों के कुशल समाचार पूछे हैं, वे सभी मनस्वी स्वस्थ और सानन्द हैं। राजन् ! राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रों को आपसे द्वेष रखने की आज्ञा नहीं देते, अपितु आपके प्रति उनके द्रोह की बात सुन कर अत्यंत संतप्त हो शोक किया करते हैं। मेरा यह विश्वास है कि मनुष्य का भविष्य जब तक सामने नहीं आता तब तक किसी को उसका ज्ञान नहीं होता, क्योंकि आप जैसे स्वधर्म-सम्पन्न पुरुष भी अत्यंत क्लेश में पड़ गये थे। आप ही इस संघर्ष की शान्ति का कोई सरल उपाय सोचिये, जिससे कि कौरव, पाण्डव और अन्य क्षत्रिय कल्याण के भागी हों। युद्ध से न धर्म की सिद्धि होने वाली है न अर्थ की, इसलिये आप लोग वही कार्य कीजिये जिससे सबका भला हो। संधि पूज्य भीष्म पितामह और राजा धृतराष्ट्र को भी अभीष्ट है। आपके उद्योग से वह उत्तम शांति प्राप्त हो सकती है।'

राजा युधिष्ठिर ने कहा—'संजय ! मैंने कभी युद्ध की इच्छा व्यक्त नहीं की। यदि कार्य किये बिना ही मनुष्य का संकल्प सिद्ध हो जाता है, तब उसे कार्य करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। युद्ध किये बिना ही यदि मुझे थोड़ा भी लाभ प्राप्त हो जाये, तो उसे मैं बहुत समझूँगा। हम लोग धर्म के विपरीत कार्य नहीं करना चाहते। हम वही सुख चाहते हैं, जो धर्म की प्राप्ति कराने वाला हो। जो पुण्यात्मा नहीं है, वह संग्राम में विजयी नहीं हो सकता। पुण्यात्मा कभी अपना यशोगान नहीं सुनते। मैं बहुत सोचने और विचार करने पर भी ऐसा कोई उपाय नहीं देखता, जिससे कौरवों और पाण्डवों का कल्याण हो। हमारे पैतृक राज्य पर कौरवों का जो ममत्व है, उसे हटाने

के लिये हमें युद्ध-भूमि में उतरना ही पड़ेगा। कौरवों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि पाण्डवों को उनका पैतृक-राज्य दिये बिना कुशल नहीं है। मैं तुम्हारे वचनों का आदर करते हुए कौरवों के अपराधों को क्षमा कर दूँगा, यदि वे मेरी बात स्वीकार कर लें और हमारा राज्य हमें लौटा दें।'

संजय बोले—'पाण्डुनन्दन ! आपकी प्रत्येक चेष्टा धर्म के अनुसार ही होती है। यद्यपि यह जीवन अनित्य है, तथापि इससे महान सुयश की प्राप्ति हो सकती है। आप जीवन की उस कीर्ति को नष्ट न होने दें। मनुष्य का जीवन दु:खमय और चंचल है, इसलिये आप युद्धरूपी पाप न कीजिये। धर्माचरण में विघ्न डालने वाली कामनाएँ प्रत्येक मनुष्य को अपनी ओर खींचती हैं, अत: जो बुद्धिमान पुरुष अपनी कामनाओं को नष्ट करता है वह जग में निर्मल कीर्ति का भागी होता है। संसार में धन की तृष्णा ही बंधन में डालने वाली है। जो उसमें फँस जाता है उसका धर्म भी नष्ट हो जाता है। धर्म, अर्थ और काम तीनों में धर्म को प्रधान मानने वाला ही पुण्यात्मा है। जो धर्म से हीन है, वह मनुष्य सारी पृथ्वी को पाकर भी असंतुष्ट ही रहता है। आपने योगाभ्यास, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, दान और यज्ञों का अनुष्ठान किया है, अत: आप पाप-कर्मों में आसक्त न हों।'

संसार में पुण्य और पाप कर्मों का नाश नहीं होता। पहले कर्ता के पुण्य और पाप परलोक में जाते हैं, तत्पश्चात् कर्ता जाता है। इस शरीर से ही सत्कर्म किया जा सकता है, मृत्यु के पश्चात् नहीं। स्वर्ग-लोक में जाकर मनुष्य मृत्यु, वृद्धावस्था तथा भय त्याग देता है, पर पुण्य क्षीण होने पर उसे पुन: पृथ्वी पर आना पड़ता है, इसलिये मोक्ष के लिये निष्काम-कर्म अथवा ज्ञान-योग का ही साधन करना चाहिये। पाण्डुकुमार ! अज्ञानी अथवा पापी मनुष्य भी युद्ध द्वारा संपत्ति प्राप्त कर लेते हैं और बुद्धिमान अथवा धर्मज्ञ पुरुष दैवी-बाधा के कारण

पराजित हो जाते हैं, अतः विजय संशयात्मक है। राज्य के लिये शान्तनुनन्दन भीष्म और आचार्य द्रोण की हत्या करना महापाप होगा। राजन्! सारी पृथ्वी को पाकर भी आप जरा-मृत्यु, सुख-दुख, प्रिय-अप्रिय से पिण्ड नहीं छुड़ा सकते, अतः मेरी प्रार्थना है कि आप युद्ध न करें और वानप्रस्थ ग्रहण करें। अपने कुटुम्ब का वध कर उत्तम मार्ग से भ्रष्ट न हों।'

युधिष्ठिर ने कहा—'संजय! सब प्रकार के कर्मों में धर्म ही श्रेष्ठ है, पर मैं धर्म पर हूँ या अधर्म पर इस पर विचार कर मेरी आलोचना करो। कहीं अधर्म ही धर्म का रूप धारण कर लेता है, कहीं पूर्णतया धर्म अधर्म का। विद्वान पुरुष ही अपनी बुद्धि से उसके सत्य रूप को देखते हैं। आपद्धर्म का क्या स्वरूप है, उसे भी तुम जानो। जीविका के साधन का सर्वथा लोप हो जाने पर जिस कर्म का आश्रय लेने से जीवन की रक्षा एवं सत्कर्मों का अनुष्ठान हो सके, जीविकाहीन मनुष्य उसे अवश्य अपनाने की इच्छा करेगा। जो स्वाभाविक स्थिति में रहकर आपद्धर्म का आश्रय लेता है, वह निन्दनीय है। जो विपत्तिग्रस्त होने पर जीविका नहीं चला सकता, वह कुटुम्ब की रक्षा न कर सकने के कारण पाप का भागी होता है। संजय! पृथ्वी, स्वर्ग और ब्रह्मलोक का धन और वैभव भी मैं अधर्म से नहीं लूँगा। यहाँ धर्म के स्वामी, कुशल नीतिज्ञ, ब्रह्मलोक का धन और वैभव भी मैं अधर्म से नहीं लूँगा। यहाँ धर्म के स्वामी, कुशल नीतिज्ञ, ब्राह्मण-भक्त और मनीषी भगवान श्रीकृष्ण बैठे हैं। यदि मैं संधि का परित्याग कर निन्दनीय मार्ग अपनाऊँ तो वसुदेव-नन्दन अपने विचार प्रकट करें, क्योंकि ये दोनों पक्षों का हित चाहने वाले हैं। भगवान श्रीकृष्ण प्रभावशाली और विद्वान हैं। ये प्रत्येक कर्म का अंतिम परिणाम जानते हैं, इसलिए मैं इनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता।'

युधिष्ठिर के नीति-वचन सुनकर भगवान श्रीकृष्ण बोले—'संजय! मैं पाण्डवों और कौरवों का अभ्युदय चाहता

हूँ। मेरी अभिलाषा है कि दोनों पक्षों में शान्ति बनी रहे। किन्तु, संजय, राज्य के प्रश्नों को लेकर दोनों पक्षों में शान्ति बनी रहेगी, यह अत्यंत दुष्कर जान पड़ता है। राजा युधिष्ठिर से धर्म का लोप होना असम्भव है। वे स्वधर्म का सर्वदा पालन करते हैं। तुमने उनके किस अपराध पर धर्म-लोप की चर्चा या आशंका की? जो विद्या कर्म का संपादन करती है, उसी का कर्म-फल दृष्टिगोचर होता है, विद्या का नहीं। इसी प्रकार प्यासा मनुष्य जल पीकर ही तृप्त होता है, जल को देखकर नहीं। ज्ञान का विधान भी कर्म को साथ लेकर ही है अतः ज्ञान में भी कर्म विद्यमान है। जो कर्म से कर्मों के त्याग को श्रेष्ठ मानता है वह अज्ञानी है। देवता कर्म के प्रभाव से ही स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित हैं। सूर्य देव कर्म द्वारा ही दिन-रात का विभाजन करते हुए प्रतिदिन उदित होते हैं। चंद्रमा कर्म द्वारा ही मास, पक्ष तथा नक्षत्रों का योग प्राप्त करते हैं। इन्द्र, कुबेर, यम आदित्य और वसुओं ने सत्कर्मों के बल से ही देवताओं में उच्च स्थान प्राप्त किया है। राजा युधिष्ठिर वेद-शास्त्रों के ज्ञाता हैं, इसलिए बिना युद्ध ही यदि अपने राज्य की प्राप्ति का कोई दूसरा उपाय जान लेंगे तो धर्म का ही सम्पादन करेंगे। पाण्डव अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए यदि दैववश मृत्यु को भी प्राप्त करेंगे तो इनकी वह मृत्यु उत्तम ही मानी जायेगी। कौरवों ने पाण्डवों के साथ जो अन्याय किये हैं, उन्हें भुलाकर क्या तुम पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर को धर्म का उपदेश देना चाहते हो? यदि मैं पाण्डवों का स्वार्थ नष्ट किये बिना ही कौरवों से संधि कराने में सफल हो सकूँ तो यह परम पवित्र कार्य होगा। मैं कौरवों के पास जाकर धर्म और अर्थ से युक्त बातें कहूँगा। क्या वे मेरी बातों पर विचार करेंगे? यदि ऐसा नहीं हुआ तो युद्ध अवश्यम्भावी है। संजय! धर्म का आचरण करने वाले पाण्डव शान्ति के लिये तैयार हैं और युद्ध के लिए भी समर्थ हैं। तुम दोनों अवस्थाओं को राजा धृतराष्ट्र से कह देना।'

तदनन्तर संजय पाण्डवों से विदा लेकर राजा धृतराष्ट्र के पास गये और उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण और पाण्डवों का संदेश उन्हें सुनाया--'राजन् ! पाण्डवों ने बड़ी प्रसन्नता एवं श्रद्धापूर्वक आप और सब गुरुजनों को प्रणाम कहलाया है और सबकी कुशल पूछी है। पाण्डव विशुद्ध भाव से धर्म और अर्थ का सेवन करने वाले, मनस्वी, विद्वान, दूरदर्शी और शीलवान हैं। वे दया को परम धर्म और धन-संग्रह की अपेक्षा धर्म-पालन को ही श्रेष्ठ मानते हैं। राजा युधिष्ठिर शान्तिपूर्वक अपना राज्य और धन लेना चाहते हैं। आपका कर्म अत्यन्त भयंकर, अवर्णनीय और भविष्य में दुःख की प्राप्ति कराने वाला है। धर्म और अर्थ से श्रेष्ठ पुरुष जो आचरण करते हैं, उससे सर्वथा विपरीत पथ पर आप चल रहे हैं। इसी के कारण इस लोक में आपकी निन्दा हो रही है और परलोक में आपको नरक का दुःख भोगना पड़ेगा। आप इस समय अपने पुत्रों के वश में होकर पाण्डवों की सारी संपत्ति रखना चाहते हैं, पर यह सम्भव नहीं है। आपको श्रेष्ठ मंत्रियों की सलाह उपलब्ध है और स्वयं भी बुद्धिमान हैं, तब आप धर्म और नीति के विरुद्ध कार्य क्यों करते हैं ? कर्ण, शकुनि आदि बुद्धिहीन नीच-कुल में उत्पन्न और क्रूर हैं और वे ही कौरवों के भावी विनाश के कारण होंगे। पाण्डव कुलीन, बलवान, यशस्वी, विद्वान और मन को वश में रखने वाले हैं। शौर्य, विद्या आदि गुण भी उनमें विद्यमान हैं। ये सब गुण पूर्व-कर्मों के अनुसार ही प्राप्त होते हैं। प्राणियों की उन्नति और अवनति भी काल के ही अधीन है। इस समय आपकी और आपके पुत्रों की बुद्धि काल ने विपरीत कर रखी है, इसलिए आप भरतवंश में विरोध फैलाना चाहते हैं जो कौरवों के विनाश का कारण होगा।'

संजय की बात सुनकर धृतराष्ट्र ने महात्मा विदुर को बुलाया और कहा—'तात ! मैं चिन्ता में जला जा रहा हूँ। तुम मेरे हितैषी, धर्म और अधर्म के ज्ञान में निपुण हो। तुमसे मैं

कल्याण की बात सुनना चाहता हूँ क्योंकि तुम विद्वानों में भी मान्य हो।'

विदुरजी बोले—'राजन् ! आप धर्मात्मा होते हुए भी पाण्डवों को पहचान नहीं सके। युधिष्ठिर में क्रूरता का अभाव, दया, धर्म, सत्य तथा पराक्रम है। वे आपमें पूज्य भाव रखते हैं। आप दुर्योधन, शकुनि, कर्ण तथा दुःशासन जैसे अयोग्य व्यक्तियों से कल्याण की आशा क्यों करते हैं? जिसे अपने स्वरूप का ज्ञान है, जिसमें उद्योग, दुःख सहने की शक्ति और धर्म की स्थिरता है, वही पंडित है। जो अच्छे कर्म करते हैं और बुरे कर्मों से दूर रहते हैं, आस्तिक और श्रद्धालु हैं, वे सद्गुणी हैं। क्रोध, गर्व, उद्दंडता तथा आत्मश्लाघा से जो दूर रहते हैं, वे पुरुषार्थ से भ्रष्ट नहीं होते। जो अपने कर्तव्य को जानते हैं, भोगों से अनासक्त हैं तथा धर्म-युक्त अर्थ का ही उपार्जन करते हैं, वे बुद्धिमान हैं। जिसके कार्य में सर्दी-गर्मी, भय-अनुराग तथा सम्पत्ति-विपत्ति विघ्न नहीं डालते, वह साधु-स्वभाव का व्यक्ति है। जो सोच विचार एवं निश्चय कर कार्य को आरम्भ करता है, मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता और समय को व्यर्थ नहीं जाने देता, वह पुरुष उत्तम है। जो अशिक्षित होकर भी विद्वान होने का गर्व करता है, बिना परिश्रम किये ही धन पाने की इच्छा रखता है, जो कर्तव्य को नहीं समझता, जो शत्रु को मित्र और मित्र को शत्रु समझता है, जो पितरों का श्राद्ध और देवताओं का पूजन नहीं करता, जो स्वयं दोषी है पर दूसरों पर दोष का आक्षेप करता है और असमर्थ होते हुए भी व्यर्थ का क्रोध करता है, वह मूर्ख है। जो अपने बल को न समझकर न पाने योग्य वस्तु की इच्छा करता है, जो अनधिकारी को उपदेश देता है और कृपण का आश्रय लेता है, वह मूर्ख है। विष पीने वाले को और शस्त्र आघात लगने वाले को ही मारते हैं, पर कुयोग्य शासक प्रजा और राज्य का विनाश कर देता है। काम, क्रोध और लोभ आत्मा का नाश करने वाले नरक के द्वार

हैं, अतः इन्हें त्यागना चाहिये। उपर्युक्त उत्तम लक्षण वालों को सिद्धि प्राप्त होती है और अधम को दुःख उठाना पड़ता है। जैसे वस्त्र जिस रंग में रंगा जाये वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार यदि सज्जन दुर्जन की संगति करता है, तो उस पर उसी का रंग चढ़ जाता है। आपने पाण्डवों के साथ कपटपूर्ण व्यवहार किया है, अतः वे युद्ध में आपके मूर्ख पुत्रों का नाश कर डालेंगे। क्रूरतापूर्वक उपार्जित लक्ष्मी नश्वर होती है, इसलिए तृष्णा को त्याग दीजिये। जो मोह वश बुरे कर्म करता है, वह जीवन से हाथ धो बैठता है, इसलिए निरर्थक कलह, बुद्धिमान मनुष्य को त्याग देना चाहिए। यदि देश का शासन जुआरी, क्रूर और पापियों के हाथ में हो तो उस देश का नाश हो जाता है। समय के विपरीत यदि विद्वान भी बोले तो वह मूर्ख कहलाता है। राजन्! दुर्योधन के जन्म लेते ही मैंने आपको उसे त्यागने के लिये कहा था, जिससे कि आपके सौ पुत्रों का नाश न हो। जो भविष्य में नाश का कारण बने, उसे त्यागना ही उचित है। जिसका अनावश्यक द्रोह करने का स्वभाव है, जो कामी, निर्लज्ज, शठ और पापी है, वह साथ रखने के अयोग्य और निंदित माना गया है। आप समर्थ हैं अतः वीर पाण्डवों पर कृपा और अपने दुष्ट पुत्रों पर नियन्त्रण रखिये। आप पाण्डवों अथवा अपने पुत्रों का वध सुनकर संताप करेंगे, अतः इस प्रश्न पर पहले ही विचार कर लीजिये। जो बीत गया सो बीत गया, वर्तमान पर विचार कर उचित कर्तव्य का अनुसरण बुद्धिमान मनुष्य को करना चाहिये। जो आने वाले दुःख को रोकने का प्रयत्न करता है, वह मनुष्य कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। उद्योग, संयम, दक्षता, सावधानी, धैर्य, सोच-विचार कर कार्य करना ही उन्नति का मूलमंत्र है। आपने पाण्डवों को बचपन से ही पाला और शिक्षा दी है। वे भी आपकी आज्ञा का पालन करते हैं, अतः उन्हें उनका न्यायोचित राज्य दे, आप अपने पुत्रों के साथ सुखपूर्वक जीवन निर्वाह कीजिये।'

दूसरे दिन कौरव-सभा में संजय ने धृतराष्ट्र से कहा—'महाराज ! धीर-वीर अर्जुन ने जो संदेश भेजा है, वह मैं आपसे कहता हूँ। यदि दुर्योधन महाराज युधिष्ठिर का राज्य लौटाना नहीं चाहता है तो निश्चित ही धृतराष्ट्र के पुत्रों के पूर्व-जन्मों का पाप प्रकट हुआ है। वे पाण्डवों से युद्ध करना चाहते हैं, इसलिये उन्हें कह देना कि तुम युद्ध भूमि में ही उतरो। युद्ध के परिणामरूप दुःखदायिनी और अनर्थंकारिणी मृत्यु की शय्या पर उन्हें सोना पड़ेगा। अन्यायपूर्ण व्यवहार करने वाले दुरात्मा दुर्योधन को उचित है कि ज्ञान, तपस्या, इंद्रिय-संयम, शील आदि गुणों से सम्पन्न हो महात्मा युधिष्ठिर पर सत्य से प्रभाव डाले। हमारे महाराजा युधिष्ठिर नम्रता, सरलता, तप, इंद्रिय-संयम, धर्म-रक्षा और बल सभी गुणों से सम्पन्न हैं। वे बहुत दिनों से अनेक प्रकार के क्लेश उठाते हुए भी सत्य ही बोलते हैं और कौरवों के कपट-पूर्ण व्यवहार को सहन करते रहते हैं। परन्तु महात्मा युधिष्ठिर के क्रोधित और उत्तेजित होने पर भयानक कौरव-पाण्डव युद्ध होगा। जैसे ग्रीष्म ऋतु में प्रज्वलित अग्नि धधक उठती है और जंगलों को भस्म कर देती है, उसी प्रकार क्रोधित होने पर महाराजा युधिष्ठिर कौरवों को दृष्टि-पात-मात्र से नष्ट कर देंगे। जिस समय दुर्बुद्धि दुर्योधन भीमसेन को गदा लिये कौरव-दल का नाश करते देखेगा, तब उसे अत्यधिक पश्चाताप होगा। जैसे घास-फूस के झोंपड़े आग से जलकर राख हो जाते हैं, उसी प्रकार धृतराष्ट्र के सभी पुत्र और उनकी सेना भीमसेन की क्रोधाग्नि में जलकर भस्म हो जायेगी। सुख भोगने योग्य वीर नकुल और सहदेव ने दीर्घकाल तक वन में रहकर दुःख शय्या पर शयन किया है। उस दुःख-मय जीवन का स्मरण कर वे क्रोध से भरे हुए हैं और विषैले सर्प की भाँति कौरवों को डसकर उन्हें यमलोक पहुँचा देंगे। धर्मराज से युद्ध का आदेश पाने पर हमारे सहायक तेजस्वी नरेश जब कौरव-सेना पर आक्रमण करेंगे तब दुर्योधन को युद्ध

के लिये अत्यन्त पश्चाताप करना पड़ेगा। अभिमन्यु साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण के समान पराक्रमी तथा अस्त्र-विद्या में निपुण है। जब वह शत्रु-पक्ष के वीरों का संहार करने लगेगा, तब दुर्योधन के मन में बहुत ही संताप होगा। सदा क्रोध के वश में रहने वाला अल्प-बुद्धि मूढ़ दुर्योधन जब भाई और सेना सहित आहत होकर काँपने लगेगा, उस समय उसका सारा घमण्ड चूर-चूर हो जायेगा। भगवान श्रीकृष्ण युद्ध न करके भी जिस पक्ष का विजय-अभिनन्दन करेंगे, वह पक्ष अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेगा। जो युद्ध में तेजस्वी भगवान श्रीकृष्ण को जीतने की इच्छा रखता है, वह मूर्ख है, उसकी इच्छा अपार समुद्रों को तैर कर पार करने वाले की सी है। वह अपने दोनों हाथों से प्रज्वलित अग्नि को बुझाना और चन्द्र-सूर्य की गति को रोकना चाहता है। शान्तनुनन्दन महाराज भीष्म, आचार्य द्रोण, गुरुभाई अश्वत्थामा और कृपाचार्य को प्रणाम कर मैं राज्य पाने की इच्छा से अवश्य युद्ध करूँगा। जो पाप-बुद्धि मनुष्य पाण्डवों से युद्ध करेगा उसकी मृत्यु निकट आ गयी है। हम दीर्घकाल से कष्ट भोग रहे हैं, ऐसी दशा में कौरव अपने पदों पर प्रतिष्ठित रहकर कैसे आनन्द भोगते रहेंगे ? यदि मनुष्य का किया हुआ पाप-कर्म निष्फल नहीं होता और पुण्य-कर्मों का फल मिले बिना नहीं रहता, तब मैं दुर्योधन के भूत और वर्तमान पाप-कर्मों पर विचार कर निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि कौरवों की पराजय अनिवार्य है। तथापि मैं चाहता हूँ कि पितामह भीष्म, गुरुदेव द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान चाचा विदुर सब मिलकर जैसा कहेंगे, उसी मार्ग पर हम चलेंगे।'

संजय के कथन के पश्चात् शान्तनुनन्दन भीष्म ने दुर्योधन से कहा—'राजन्! एक समय ब्रह्माजी ने देवताओं और गुरु बृहस्पति जी से कहा था—बृहस्पते! नर और नारायण अपने तेज से प्रज्वलित और कान्ति से प्रकाशित ब्रह्मलोक में आये हैं। इनका धैर्य

और पराक्रम महान है और ये अपनी तपस्या और सत्कर्मों से अत्यन्त प्रभावशाली हैं। एक समय नर ने हजारों दानवों का संहार किया था। इस जन्म में नर-स्वरूप श्रेष्ठ अर्जुन ने खाण्डव वन दाह के समय समस्त शत्रुओं को जीत अग्निदेवको पूर्णतः तृप्त किया है। इसी प्रकार नारायणस्वरूप भगवान श्रीकृष्ण भी महान पराक्रमी हैं। दुर्योधन! तुम अच्छी तरह समझ लो कि महारथी अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण नर और नारायण ही हैं। इन्हें सम्पूर्ण देवता और असुर भी नहीं जीत सकते। लोक-हित के लिये जब-जब और जहाँ-जहाँ अवसर आता है, ये अवतार ग्रहण कर दुष्टों का दमन और साधु-पुरुषों एवं धर्म का संरक्षण करते हैं। ये सारी बातें वेदों के ज्ञाता नारदजी के मुख से मैंने सुनी थी। यदि तुमने मेरी बात नहीं मानी तो कौरवों का विनाश अवश्य होगा। तुम्हारी बुद्धि धर्म और अर्थ से भ्रष्ट हो गयी है, तभी तो कर्ण, नीच शकुनि एवं पापात्मा दुःशासन के मत का अनुसरण करते हो। कर्ण, दुःशासन और अन्य वीर पाण्डवों के पराक्रम की समानता नहीं कर सकते। पाण्डवों ने जैसे दुष्कर पराक्रम किये हैं, वैसा कौन-सा पुरुषार्थ इन कौरव वीरों ने किया है? विराटनगर में जब धनंजय ने अकेले ही समस्त कौरवों पर आक्रमण किया था और उन्हें मूर्छित कर उनके वस्त्र छीन लिये थे, उस समय यह डींग मारने वाला कर्ण कहीं परदेश चला गया था क्या? घोष यात्रा के समय जब गंधर्व कौरवों को बंदी बनाकर ले जा रहे थे, तब पाण्डवों ने ही उन्हें छुड़ाया था, उस समय निज को धनुर्धरों में अग्रगण्य कहने वाला सूतपुत्र कहाँ था?'

भीष्मजी के वचनों की प्रशंसा करते हुए द्रोणाचार्य बोले—'राजन्! भीष्मजी कहते हैं, वही करिये। जो अर्थ और काम के लोभी हैं, उनकी बात आपको नहीं माननी चाहिये। मैं पाण्डवों से संधि करना ही अच्छा समझता हूँ। अर्जुन ने संजय के द्वारा जो संदेश भेजा है, उसे मैंने ध्यानपूर्वक सुना है। पांडु-

नन्दन अर्जुन ने जो कहा है वह वैसा ही करेगा, क्योंकि इस समय पृथ्वी पर उसके समान कोई धनुर्धर वीर नहीं है।' वीर भीष्म और द्रोणाचार्य के कथन सार्थक और सार गर्भित थे, किन्तु राजा धृतराष्ट्र ने उन पर ध्यान नहीं दिया, अतः समस्त कौरव अपने जीवन से निराश हो गये।

धृतराष्ट्र ने कहा—'संजय ! मुझे क्रोध से भरे हुए अमर्ष-शील भीमसेन से बड़ा डर लगता हैं। मैं उससे भयभीत हो रात-भर जागता रहता हूँ। महाबाहु भीम इन्द्रके समान तेजस्वी है। मैं अपनी सेना में किसी को भी नहीं देखता जो भीम का सामना कर सके। कुन्तीकुमार भीम असहनशील तथा बैर को दृढ़ता-पूर्वक पकड़ने वाले हैं। वह युद्ध में मेरे मंद-बुद्धि पुत्रों को यमराज की भाँति अवश्य मार डालेगा। जैसे बलवान सिंह मृगों के यूथों में निःशंक विचरता है, उसी प्रकार भीमसेन मेरी विशाल वाहिनी में निसंकोच विचरेगा। बाल्यकाल में भी मेरे सब पुत्रों से एकमात्र भीमसेन ही पराक्रमी, अधिक खाने वाला, कौरवों के प्रतिकूल चलने वाला तथा अत्यन्त वेगवान था। दुर्योधन आदि कौरव बचपन में जब उसके साथ खेलते थे, तब वह गज-राज की भाँति इन सबको कुचल देता था। कौरव सदा ही उसके बल-पराक्रम से पीड़ित रहते थे। वह अस्त्र-विद्या में द्रोणाचार्य तथा अर्जुन के समान है और वेग में वायु के सदृश। जब वह क्रोध करता है, तब मुझे वह महेश्वर के तुल्य जान पड़ता है, अतः युद्ध में उसको कौन परास्त कर सकता है ? मैंने भीम के बाल्यकाल में ही व्यासजी के मुख से उसके पराक्रम का वर्णन सुना था। भीमसेन योद्धाओं में सर्वश्रेष्ठ एवं दुर्गम अपार समुद्र है। मैं चीखता-चिल्लाता रह जाता हूँ किन्तु मेरे मूर्ख पुत्र मेरी बात नहीं सुनते। वे वृक्ष की ऊँची शाखा में शहद के छत्ते को ही देखते हैं, पर वहाँ से गिरने का जो भय है, उसकी ओर उनका ध्यान नहीं जाता। जैसे मृग सिंह से भिड़ जाय, उसी प्रकार जो योद्धा उस मनुष्य रूपी यमराज भीम से लड़ने के

लिये युद्ध-भूमि में उतरेगा, उसे विधाता मृत्यु के लिये प्रेरित करके ही भेजेगा। जब भीमसेन मेरी सेना में घुसकर उसे खदेड़ेगा, तब वहाँ प्रलय का-सा दृश्य उपस्थित कर देगा और मेरे पुत्र तथा सहायक नरेश विभिन्न दिशाओं में भाग जायेंगे। जैसे विषधर सर्प बहुत दिनों से संचित विष को किसी पर उगलता है, उसी प्रकार भीमसेन दीर्घकाल से संचित अपने क्रोध को रणभूमि में मेरे पुत्रों पर उतारेगा और उनका संहार कर डालेगा। मनुष्य का भाग्य बड़ा प्रबल है, इसलिये मैं पाण्डवों की विजय मानकर भी अपने पुत्रों को युद्ध से नहीं रोक सकता। मैं तो यह मानता हूँ कि ज्ञान दु:ख का नाश नहीं करता, अपितु प्रबल दु:ख ज्ञान का नाश कर देता है। इस महान संकट में पड़ा मैं क्या करूँ? मुझे तो कौरवों का विनाश ही दिखायी देता है। संजय! जिसके मुँह से कभी झूठी बात निकलती ही नहीं, उस धर्मराज युधिष्ठिर के पक्ष में भीम और धनंजय जैसे योद्धा हैं। उन्हें तीनों लोकों का राज्य भी प्राप्त हो सकता है। मुझे युद्ध में गाण्डीवधारी अर्जुन का सामना करने वाला वीर भी अपने पक्ष में नहीं दिखाई देता। बलवानों में श्रेष्ठ, अस्त्र-विद्या में पारंगत युद्ध में कभी पराजित न होने वाले, मनुष्यों में अग्रगण्य, वीर द्रोणाचार्य और कर्ण अर्जुन पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि कर्ण मिथ्याभिमानी और द्रोण वृद्ध एवं अर्जुन के गुरु हैं। अर्जुन आलस्यरहित, समर्थ और बलवान है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के साथी हैं, अत: उसकी विजय निश्चित है, किन्तु मेरे मूर्ख पुत्र इस बात को नहीं समझते। संजय! यदि युद्ध हुआ तो समस्त कुरुकुल का विनाश अवश्यम्भावी है, अत: पाण्डवों के साथ युद्ध न होना ही अच्छा है, इसी से मेरे मन को शान्ति मिलेगी। युधिष्ठिर हमें क्लेश में पड़े देख हमारी उपेक्षा नहीं करेगा।'

धृतराष्ट्र के वचन सुनकर दुर्योधन ने कहा—'महाराज! आपने जो पाण्डवों के बल-पराक्रम की चर्चा कर असमर्थ की

भाँति विलाप किया है वह सब व्यर्थ है। आप डरें नहीं। प्रभो! हम बलवान, पराक्रमी और समर-भूमि में शत्रुओं को जीतने की शक्ति रखते हैं। तात! श्रीकृष्ण हमारा सर्वनाश कर कौरवों का राज्य युधिष्ठिर को सौंपना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में हम उनके चरणों में गिरें या प्राणों का मोह छोड़ सामना करें। युद्ध होने पर हमारी पराजय संभव है, क्योंकि हमारे स्वजन भी हमसे घृणा करते हैं। यदि कर्तव्य समझकर आचार्य द्रोण, भीष्म पितामह, कृपाचार्य, अश्वत्थामा मन, वचन और कर्म द्वारा उत्साहपूर्वक युद्ध में उपस्थित हों तो पाण्डव हमें जीतने में असमर्थ होंगे। इनमें से एक-एक वीर भी समस्त शत्रु राजाओं को जीतने की शक्ति रखता है। यदि ये सब साथ मिल जायें, तो क्षण भर में पाण्डवों को यमलोक पहुँचा देंगे। युधिष्ठिर तो मेरे प्रभाव तथा मेरी सेना से इतने डर गये हैं कि आधा राज्य लेने की बात छोड़ अब पाँच गाँव माँगने लगे हैं। गदा-युद्ध में मेरी समता करने वाला इस पृथ्वी पर न तो कोई है, न भूत काल में कोई हुआ, न भविष्य में ही कोई होगा। युद्ध में मेरी गदा से आहत होकर भीमसेन प्राण-शून्य हो पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। भीष्म, द्रोण और कृप इन तीनों के समान पराक्रमी तो अकेला कर्ण ही है। इन्द्र ने कर्ण से अपनी स्त्री शची के लिये कुंडल माँग लिये किन्तु देवराज ने उनके बदले उसे एक भयंकर अमोघ शक्तिदी है। उस अमोघ शक्ति से सुरक्षित कर्ण अर्जुन का वध करने में समर्थ है। हम लोगों के पक्ष में जो विशिष्ट योद्धा हैं, उनकी संख्या पाण्डवों के सहायकों से अधिक है। हमारे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना है, जबकि शत्रु-पक्षके पास केवल सात। राजन्! शत्रुओं का बल हमारी अपेक्षा सब प्रकार से हीन है, ऐसी स्थिति में आप व्याकुल एवं अधीर न हों। हम अवश्य जीतेंगे।'

धृतराष्ट्र बोले—'दुर्योधन तुम युद्ध से निवृत्त हो जाओ। श्रेष्ठ पुरुष किसी भी दशा में युद्ध की प्रशंसा नहीं करते। वीर!

तुम पाण्डवों को उनका यथोचित राज्य दे दो। तुम्हारे जीवन-निर्वाह के लिये तो आधा राज्य ही पर्याप्त है। समस्त कौरव यही चाहते हैं कि तुम पाण्डवों के साथ शान्ति-स्थापन कर लो। न तो मैं युद्ध करना चाहता हूँ, न भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, संजय, सोमदत्त, शल्य तथा कृपाचार्य ही। तात! इनके इस विचार को तुम्हें भी स्वीकार करना चाहिये। मैं जानता हूँ कि तुम अपनी इच्छा से युद्ध नहीं करना चाहते हो, अपितु पापात्मा दुःशासन, कर्ण और शकुनि ही तुमसे यह कार्य करा रहे हैं, तुम ऐसे कार्य के लिये दुराग्रह करते हो, जो भूमंडल के क्षत्रियों के विनाश का कारण हो जायेगा। संसार में समस्त प्राणी अपने पुत्रों पर अत्यन्त स्नेह रख उनका हित-साधन करते हैं, इसी प्रकार साधु-पुरुष उपकारी मनुष्यों के उपकार से उऋण होने के लिये उनका बारंबार प्रिय कार्य करना चाहते हैं। यह युद्ध अधर्म-कारक तो है ही, अत्यन्त क्रूरतापूर्ण भी है। तात! तुम्हारा पाण्डवों के साथ युद्ध करना किसी प्रकार भी मुझे अच्छा नहीं लगता। मुझे इस प्रसंग पर सोचते-सोचते नींद नहीं आती और चिन्ता से मेरा सारा सुख चला गया है। मैं तुमसे पुनः अनुरोध करता हूँ कि तुम पाण्डवों से संधि कर लो, जिससे कि कौरव-कुल का विनाश न हो।'

दुर्योधन ने कहा—जो वीर मुझे युद्ध करने के विरुद्ध मंत्रणा दे रहे हैं, उनपर निर्भर होकर मैंने पाण्डवों को युद्ध के लिये आमंत्रित नहीं किया है। तात! मैंने तथा कर्ण ने युधिष्ठिर को रण-यज्ञ में बलि-पशु बनाने का निश्चय कर यज्ञ की दीक्षा ली है। हम दोनों समरांगण में अपने इस यज्ञ के द्वारा यमराज का यजन, शत्रुओं को मारकर करेंगे और विजयलक्ष्मी से शोभा पा पुनः राजधानी में लौटेंगे। महाराज! मैं जीवन, राज्य, धन सब कुछ छोड़ सकता हूँ, परन्तु पाण्डवों के साथ मेल नहीं कर सकता। तीक्ष्ण सूई के अग्रभाग से जितनी भूमि बिंध सकती है, उतनी भी मैं पाण्डवों को नहीं दूँगा। मैं अपने मित्र

और शत्रुओं के विषय में शुभ या अशुभ जैसा भी चिन्तन करता हूँ, वह निष्फल नहीं होता, इसलिये लोग मुझे सत्यवादी मानते हैं। जैसे नदियाँ समुद्र में मिलकर अपना अस्तित्व खो देती हैं, उसी प्रकार पाण्डव आदि योद्धा रण में परिवार सहित नष्ट हो जायेंगे।'

कर्ण बोले—'राजन् ! मैं पाण्डवों को जीतने में समर्थ हूँ, अतः रण का भार मुझ पर छोड़ दीजिये।'

धृतराष्ट्र ने कहा—'कौरवगण ! दुर्योधन को तो मैंने त्याग दिया है। यमलोक में जाने वाले इस मूर्ख का तुम लोग अनुसरण मत करो, क्योंकि पाण्डव युद्ध में कौरव वीरों का एक-एक कर वध कर डालेंगे। तुम पर बड़ा संकट आने वाला है। मैं नहीं चाहता कि पाण्डवों के साथ तुम्हारा युद्ध हो।

फिर उन्होंने संजय से पूछा कि तुम मुझे कल्याणमय पथ दिखाओ। पाण्डवों में दैवी, मानवी शक्ति तथा तेज से उत्कृष्टता प्रतीत होती है और कौरव पक्ष की शक्ति अल्प है। मैं इसको प्रत्यक्ष देखता हूँ, अतः इसी को सत्य मानता हूँ।'

संजय बोले—'भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन ये दोनों महात्मा जिस की आज्ञा पालन करने के लिये सदा उद्यत रहते हैं, उन धर्मराज युधिष्ठिर का मानसिक संकल्प अवश्य सिद्ध होगा। भगवान श्रीकृष्ण ने मुझे आपके लिए यह संदेश दिया है—कौरवो ! तुम सब नाना प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करो, ब्राह्मणों को दक्षिणा दो, पुत्रों और स्त्रियों से मिल-जुलकर आनन्द भोग लो, क्योंकि तुम्हारे ऊपर बड़ी विपत्ति आने वाली है। तुम लोग शीघ्र ही अपने प्रियजनों का कार्य सिद्ध कर लो, क्योंकि राजा युधिष्ठिर अब युद्ध आरम्भ करना चाहते हैं। जो अर्जुन को युद्ध में जीतने में समर्थ है, वह अपनी दोनों भुजाओं से पृथ्वी को उठा सकता है, और सम्पूर्ण देवताओं को स्वर्ग से नीचे गिरा सकता है। मुझे तो इस समय कोई ऐसा वीर दिखाई

नहीं देता, जो अर्जुन का सामना कर सके। विराटनगर में अकेले ही अर्जुन ने बहुत से कौरवों को पछाड़ा था, वह मेरे उपर्युक्त वचन की सत्यता का पर्याप्त प्रमाण है।'

कर्ण ने कहा—'राजन्! मैंने महर्षि परशुरामजी का कृपा प्रसाद प्राप्त किया है, इसलिये मैं अकेला ही कुन्तीकुमारों का पुत्रों सहित वध कर पुण्य-लोक में जाऊँगा। पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण और मुख्य-मुख्य भूपाल आपके समीप ही रहें।'

भीष्म बोले—'कर्ण! क्यों अपनी वीरता की डींग हाँक रहे हो, जान पड़ता है कि काल ने तुम्हारी बुद्धि को ग्रस लिया है। युद्ध में प्रधान वीरों के मारे जाने पर कौरव भी मृतसम हो जायेंगे।'

कर्ण ने कहा—'भीष्म! मैं अपने अस्त्र-शस्त्र यहाँ रख देता हूँ। अब कभी आप मुझे सभा और रणभूमि में नहीं देखेंगे। आपके शान्त होने पर ही मैं रणभूमि में अपना प्रभाव प्रकट करूँगा।' ऐसा कह महाधनुर्धर कर्ण सभा त्यागकर चला गया।

भीष्म बोले—'कर्ण ऐसा सत्य प्रतिज्ञ निकला, जो पहले पाण्डवों को जीतने की प्रतिज्ञा करता था, अब युद्ध से मुँह मोड़कर भाग गया!'

भगवान श्रीकृष्ण का सन्धि-प्रस्ताव

संजय के चले जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने अन्य पाण्डवों और राजाओं से कहा—'हम लोग भगवान श्रीकृष्ण से कौरव-सभा में जाने की प्रार्थना करें। वहाँ वे ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे हमें भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कुरुवंशियों के साथ युद्ध न करना पड़े। यही हमारा ध्येय है और यही हमारे लिये परम कल्याण का मार्ग है।'

ऐसी मंत्रणा कर, वे भगवान श्रीकृष्ण के पास गये और युधिष्ठिर ने कहा—'भगवन्! चाचा धृतराष्ट्र को राज्य का बड़ा

लोभ है। उनके मन में पाप बस रहा है। अतः हमें राज्य दिये विना ही वे कोई संधि का मार्ग ढूँढ रहे हैं। वे धर्म की ओर नहीं देखते और पुत्रों में आसक्त हैं, अतः उन्हीं का अनुसरण करते हैं। प्रभो ! यह सोचकर कि कौरव अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहेंगे, पाण्डव बारह वर्ष तक वन में और एक वर्ष अज्ञातवास में रहे। भरतवंशियों का विनाश न हो, इसलिये मैंने उनसे पाँच गाँव ही माँगे थे, किन्तु उन्होंने इस प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया। जनार्दन ! इस समय मैं कुटुम्ब का भी अच्छी तरह पालन-पोषण नहीं कर सकता। उत्तम कुल में जन्म लेकर मनुष्य यदि जीविका भी न चला सके तो कष्ट उसकी विचार-शक्ति को नष्ट कर देते हैं। विचार-शक्ति के नष्ट होने पर उसकी लज्जा चली जाती है और निर्लज्जता धर्म को नष्ट कर देती है। धर्मच्युत मनुष्य का धन नष्ट हो जाता है और धन का अभाव ही मनुष्य की मृत्यु है। प्रभो ! जो जन्म से ही निर्धन रहा हो, उसे उस दरिद्रता के कारण उतना कष्ट नहीं होता, जितना कि कल्याण-मयी सम्पति को पा फिर उस सम्पत्ति से वंचित होने पर होता है। निर्धन अवस्था में मनुष्य को केवल क्रोध आता है और वह विवेक खो बैठता है। तब वह मोह के वशीभूत हो क्रूर-कर्म करने लगता है। इस प्रकार पाप कर्मों में प्रवृत्त होने के कारण वह नरक में जाता है। धर्म में तत्पर रहने वाला मनुष्य निरंतर सत्कर्मों में ही लगा रहता है, अतः उसकी धन-सम्पत्ति बढ़ने लगती है। हम कष्ट के दिन व्यतीत कर रहे हैं, इसलिये न्याय से अपनी पैतृक-सम्पत्ति पाने के लिए प्रयत्न करेंगे। मैं युद्ध नहीं चाहता, क्योंकि उसका परिणाम भयंकर है, अतः हम लोग न तो राज्य त्यागना चाहते हैं, न कुल के नाश की ही इच्छा रखते हैं। यदि नम्रता दिखाने से ही शान्ति हो जाये तो वही सबसे उत्तम है। अब तक हम सब प्रकार से शान्ति रखने के उपायों में असफल रहे हैं, इसलिये युद्ध ही हमारा प्रधान कर्तव्य हो गया है। जब शान्ति के प्रयत्नों में बाधा आती है, तब युद्ध स्वतः

आरम्भ हो जाता है। माधव ! ऐसे समय में हमें क्या करना चाहिये ? हम तो आपकी ही शरण ग्रहण करते हैं, क्योंकि आप हमारे हितैषी, सुहृद और समस्त कर्मों के परिणाम को जानने वाले हैं।'

धर्मराज युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर भगवान श्रीकृष्ण बोले—'राजन् ! मैं दोनों पक्ष के हित के लिये कौरवों की सभा में जाऊँगा और धर्मानुसार सन्धि कराने का प्रयत्न करूँगा।'

युधिष्ठिर बोले—'आपका कौरवों की सभा में जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। यदि दुर्योधन ने आपके साथ अनुचिन व्यवहार किया, तो हम लोगों के लिये वह बहुत दुःखदायी होगा।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'राजन् ! दुर्योधन अत्यन्त पापी है, यह मैं जानता हूँ। तथापि वहाँ जाकर सन्धि के लिये प्रयत्न करने से हम लोग सम्पूर्ण राजाओं की दृष्टि में निन्दा के पात्र नहीं होंगे, अतः मेरा वहाँ जाना कदापि निरर्थक नहीं होगा। सम्भव है, वहाँ जाने से अपना अभीष्ट भी सिद्ध हो जाये। यदि मैं असफल रहा, तब भी हम निन्दा से तो वच ही जायेंगे।'

युधिष्ठिर बोले—'भगवन् ! आपका कल्याण हो। मैं आपको पुनः सकुशल देखना चाहता हूँ।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'राजन् ! मैंने संजय और आपकी बात सुनी है। कौरवों का क्या अभिप्राय है और आपका क्या विचार है, उससे भी मैं परिचित हूँ। महाराज ! श्रेष्ठ पुरुषों का कथन है कि क्षत्रियों को भीख नहीं माँगनी चाहिये। वे संग्राम में विजय प्राप्त करें या प्राण दें, यही उनका कर्तव्य और स्वधर्म है। दीनता का आश्रय लेने से क्षत्रियों की जीविका नहीं चलती, अतः अब आप पराक्रम दिखाइये और शत्रुओं का संहार कीजिये। मुझे तो ऐसा कोई उपाय नहीं दिखाई देता, जिससे वे आपको आधा राज्य दे दें। राजन् ! आप यह न समझें कि कौरव आप पर कृपा कर या आपको दीन मान अथवा धर्म के

विचार से आपका मनोरथ पूर्ण कर देंगे। वे आपकी हर ससय निन्दा करते हैं, यह आपका वध करने से भी भयंकर है। दुर्बुद्धि दुराचारी दुर्योधन सब प्रकार से वध करने योग्य है, इसलिये उसे आप अवश्य ही मार डालें। आप पिता-तुल्य धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म और द्रोणाचार्य के प्रति जो नम्रतापूर्ण व्यवहार करते हैं, वह सर्वथा आपके योग्य है। मैं कौरव राज्य सभा में जाकर आपके गुणों तथा दुर्योधन के दोषों और अपराधों का वर्णन करूँगा। मुझे तो शत्रुओं के साथ युद्ध होने की ही सम्भावना प्रतीत होती है, अतः आपके योद्धा युद्ध के लिये दृढ़ निश्चय कर सदा तैयार रहें। मैं शान्ति स्थापना का इच्छुक हूँ, किन्तु युद्ध अवश्य होगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

फिर उन्होंने अन्य पाण्डवों और योद्धाओं को अपने विचार प्रकट करने का आग्रह किया।

सहदेव ने कहा—'दुर्योधन ने हम लोगों को जो कष्ट दिये हैं और सती द्रौपदी का सभा में जो अपमान किया है, उसके परिणामस्वरूप मैं युद्ध ही चाहता हूँ।'

सात्यकि ने कहा—'प्रभो! शूरवीर सहदेव ने जो बात कही है, वही सब योद्धाओं का मत है।'

द्रौपदी ने राजा युधिष्ठिर के धर्म और अर्थ से युक्त वचन सुने तो शोक से कातर हो उठी। वह सात्यकि तथा सहदेव की प्रशंसा करती हुई भगवान श्रीकृष्ण से बोली—'महाबाहु मधुसूदन! भीमसेन को शान्त देख मेरे मन में बड़ा दुःख है। आपके वहाँ जाने पर यदि दुर्योधन राज्य दिये बिना ही संधि करना चाहे, तो आप इसे किसी तरह भी स्वीकार न करें। महाबाहो! पाण्डव अन्य वीरों के साथ दुर्योधन की सेना का सामना करने में समर्थ है। कौरवों के प्रति शान्ति के वचन कहने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि वे हम पर कभी कृपा नहीं करेंगे। हे अच्युत! आपको पापियों को शीघ्र ही दण्ड देना चाहिये। जैसे अवध्य का वध करने से पाप लगता है, वैसे ही

वध्य का वध न करने से दोषों की प्राप्ति होती है। हे केशव! पाण्डवों और यदुवंशियों के जीते-जी मैं पापी कौरवों की सभा में पूज्यजनों के सामने अपमानित हुई थी। पाण्डव यह सब देखते रहे, किन्तु न तो उस समय इनका क्रोध जागा और न इन्होंने मुझे छुड़ाने की ही चेष्टा की। उस समय मैंने आपका ही स्मरण किया और आपने ही मुझे भयंकर कष्ट से मुक्त किया। भगवन्! ऐसी दशा में यदि पापात्मा दुर्योधन एक क्षण भी जीवित रहता है, तो अर्जुन और भीमसेन के बल को धिक्कार है।'

द्रौपदी ने नेत्रों में आँसू भरकर पुनः भगवान से कहा—'हे श्रीकृष्ण! दुःशासन के हाथ से खींचे हुए मेरे इन केशों को आप याद रखियेगा। जब तक मैं दुःशासन की भुजाओं को पृथ्वी पर कटी न देखूँगी, तब तक मेरे हृदय को शान्ति नहीं मिलेगी।'

द्रौपदी की करुणा और क्रोध-भरी वाणी सुन भगवान ने उसे सान्त्वना दी और सात्यकि के साथ हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया। जब धृतराष्ट्र ने सुना कि श्रीकृष्ण कल हस्तिनापुर के लिये पहुँच जायेंगे, तब उसने दुर्योधन के अतिरिक्त सभी पुत्र और पौत्रों को वस्त्राभूषणों से विभूषित कर उनकी अगवानी के लिये भेजा। फिर उन्होने सेवकों को आज्ञा दी कि दुःशासन के महल, जो दुर्योधन के महल से भी श्रेष्ठ है, में श्रीकृष्ण को ठहराया जाये। उस महल में बहुमूल्य रत्न रख दिये जायें। यादव-श्रेष्ठ उनमें से जो-जो रत्न लेना चाहें, वे सब उन्हें निःसंकोच भेंट कर दिये जायें।

विदुरजी ने धृतराष्ट्र से कहा—'राजन्! आप सरलता को अपनाइये। मूर्खतावश कुटिलता का आश्रय ले सुहृदों का सर्वनाश न कीजिये। नरेश्वर! श्रीकृष्ण को अतिथि-रूप में पाकर आप उन्हें अनेक वस्तु भेंट करना चाहते हैं, यह आपकी बड़ी मूर्खता है। मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि आप धर्मपालन के उद्देश्य से या श्रीकृष्ण का हित करने के लिये उन्हें ये

सब वस्तुएँ नहीं देना चाहते हैं। यह सब तो आपकी माया और प्रपंच मात्र है। आपका जो वास्तविक अभिप्राय है, उसे मैं समझता हूँ। नरेन्द्र! आप समझते हैं कि महाबाहु श्रीकृष्ण को धन का लोभ दे, पाण्डवों से विमुख करने में सफल हो जायेंगे? परन्तु आप धन देकर या दूसरे किसी उद्योग से श्रीकृष्ण को अर्जुन से पृथक नहीं कर सकते। महाराज! भगवान केशव कल्याण की इच्छा ले, जिस प्रयोजन से कुरु-देश में आ रहे हैं, वही उपहार उन्हें दीजिये।'

दुर्योधन बोला—'पिताजी! अपनी मर्यादा से कभी न च्युत होने वाले श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में विदुरजी ने ठीक ही कहा है। श्रीकृष्ण का पाण्डवों के प्रति अटूट अनुराग है, अतः उन्हें विमुख नहीं किया जा सकता। आप जनार्दन को जो धन-रत्न भेंट करना चाहते हैं, वे कदापि न दें।

पितामह भीष्म ने कहा—'राजन्! श्रीकृष्ण का कोई सत्कार करे या न करे, इससे वे कुपित नहीं होंगे। परन्तु वे अवहेलना के योग्य नहीं है, अतः किसी को भी उनका अपमान नहीं करना चाहिये। महाबाहु श्रीकृष्ण जिस कार्य को करना चाहेंगे, वह निश्चित रूप से होगा ही। तुम श्रीकृष्ण को मध्यस्थ बनाकर पाण्डवों के साथ शीघ्र संधि कर लो। धर्मात्मा श्रीकृष्ण जो कुछ कहेंगे, वह निश्चय ही धर्म और अर्थ के अनुकूल होगा, अतः कौरवों को उनके साथ प्रिय वचन ही बोलने चाहिये।'

दुर्योधन बोला—'पितामह! मैं जीवन-भर पाण्डवों के साथ मिलकर इस सारी सम्पत्ति का उपभोग करूँ, यह सम्भव नहीं है। मैंने निश्चय किया है कि श्रीकृष्ण के यहाँ आने पर उन्हें बंदी बना लूँगा। उनके बंदी हो जाने पर पाण्डव और यदुवंशी मेरे अधीन हो जायेंगे।'

भीष्म क्रोधपूर्वक बोले—'धृतराष्ट्र! तुम्हारा यह मंद-बुद्धि पुत्र काल के वश में है। यह अपने हितैषियों के कहने-समझाने पर भी अनर्थ को ही अपनाता है। तुम भी सुहृदों की

बात न मानकर इस पापात्मा का ही अनुसरण करते हो। भगवान श्रीकृष्ण से भिड़कर तुम्हारा यह दुर्बुद्धि पुत्र मंत्रियों सहित क्षण भर में ही नष्ट हो जायेगा। इसने धर्म को सर्वथा त्याग दिया है। अब मैं इस पापी एवं क्रूर स्वभाव वाले दुर्योधन की अनर्थ भरी बातें नहीं सुनना चाहता।'

ऐसा कह सत्य-पराक्रमी भीष्म सभा-भवन से उठकर चले गये।

प्रातःकाल नित्य कर्म पूर्ण करके भगवान श्रीकृष्ण हस्तिनापुर की ओर चले। दुर्योधन के अतिरिक्त सभी कौरव, भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य भगवान श्रीकृष्ण की अगवानी के लिये गये। भीष्म और द्रोणाचार्य से भगवान श्रीकृष्ण मार्ग में ही मिले। तदनन्तर उन्होंने राज्य-भवन में प्रवेश किया। श्रीकृष्ण को आते देख, धृतराष्ट्र और अन्य सुहृदों ने अपने-अपने आसनों से उठकर सत्कार किया। भगवान श्रीकृष्ण ने भी प्रिय वचनों द्वारा भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और कौरवों सहित अन्य सभासदों का सम्मान किया। तत्पश्चात सभी अपने-अपने आसनों पर बैठ गये। राजा धृतराष्ट्र से पूजित एवं सम्मानित होने के पश्चात आज्ञा ले, श्रीकृष्ण ने विदुरजी के गृह में पदार्पण किया।

विदुरजी भगवान श्रीकृष्ण का मांगलिक द्रव्यों द्वारा पूजन करके बोले—'मधुसूदन! आपके दर्शन से मुझे जो प्रसन्नता मिली है, उसका मैं किस प्रकार वर्णन करूँ। आप अंतर्यामी, देहधारियों की आत्मा हैं, अतः आपसे क्या छिपा है?' तदनन्तर विदुरजी ने उनसे पाण्डवों का कुशल समाचार पूछा। भगवान श्रीकृष्ण विदुरजी से वार्तालाप करने के पश्चात अपनी बुआ कुन्ती देवी के पास गये।

तेजस्वी श्रीकृष्ण को अपने गृह में देख कुन्ती देवी उनसे गले मिलीं और अपने पुत्रों का स्मरण कर फूट-फूटकर रोने लगीं—'वत्स! मेरे सत्यवादी पुत्र पाण्डव बाल्यकाल से ही गुरु-

जनों की सेवा में तत्पर रहने के कारण सर्वत्र सम्मान पाते थे, किन्तु शत्रुओं की शठता के कारण राज्य से हाथ धो बैठे। वे हर्ष और क्रोध को जीत चुके थे! वे सुखों से वंचित हो निर्जन वन में रहने योग्य नहीं थे, तब उन्हें यह कष्ट कैसे प्राप्त हुआ? अब वे कैसे हैं? तात! आँखों की पलकें गिरने में जितना समय लगता है, उतनी देर भी उनसे अलग रहने पर मैं धैर्य खो बैठती थी, परन्तु अब इतने दिनों से उनको न देखकर भी जी रही हूँ, यह दैव का ही विधान है। कुलीन, अनुपम सुन्दरी और समस्त गुणों से सम्पन्न द्रौपदी मुझे अपने सभी पुत्रों से अधिक प्रिय है। वह कल्याणी अब कैसी दशा में है? शत्रुदमन! अब चौदहवाँ वर्ष बीत रहा है, पर मैंने प्राण-प्रिय पुत्रों और सत्यवादिनी द्रौपदी को अभी तक नहीं देखा। मेरे मन में पाण्डवों और कौरवों के प्रति कभी भेदभाव नहीं था, किन्तु पाण्डवों का कष्ट देख मैं चाहती हूँ कि भावी संग्राम में उनके शत्रु मारे जायें तथा राज्य-लक्ष्मी पाण्डवों का वरण करे। माधव! वैधव्य, धन का नाश और कौरवों का वैरभाव मुझे इतनी पीड़ा नहीं देते, जितना कि पुत्रों का विरह मुझे शोक-सागर में डुबा रहा है। जब तक मैं अपने पुत्रों और देवी द्रौपदी को नहीं देख लेती, तब तक मेरे हृदय को शान्ति नहीं मिलेगी। वासुदेव! जो स्त्री दूसरों के आश्रित हो जीवन निर्वाह करती है, उसका मर जाना ही उत्तम है। तुम मेरे पुत्रों से कहना—क्षत्राणी जिस उद्देश्य से पुत्रों को जन्म देती है, उसे पूर्ण करने का समय अब आ गया है। यदि इस समय भी तुम युद्ध नहीं करोगे, तो मैं तुम्हें त्याग दूँगी। पुत्रो! तुम्हें समय आने पर रणभूमि में अपने प्राणों को त्याग देने के लिये उद्यत रहना चाहिये।'

तदनन्तर शोक में डूबी हुई कुन्ती को सांत्वना देते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'बुआ! संसार में तुम जैसी सौभाग्यशालिनी नारी दूसरी कौन है? तुम वीर पत्नी, वीर जननी तथा समस्त सद्गुणों से सम्पन्न हो। द्रौपदी सहित पाण्डवों ने

तुम्हें प्रणाम कहलाया है। तुम शीघ्र ही उन्हें देखोगी। वे अनेक शत्रुओं का संहार कर साम्राज्य लक्ष्मी से संयुक्त हो राज्य-सिंहासन पर प्रतिष्ठित होंगे।'

कुन्ती ने कहा—'मधुसूदन ! जो पाण्डवों के लिए हितकर हो, वही कार्य करो।'

तदनन्तर देवकीनन्दन कुन्तीदेवी की परिक्रमा कर विदा ले, दुर्योधन के घर गये। वहाँ उन्होंने दुर्योधन को अनेक राजाओं और कौरवों से घिरा देखा। दुर्योधन के पास दुःशासन, कर्ण और शकुनि भी आसन पर बैठे थे। श्रीकृष्ण के आते ही दुर्योधन मंत्रियों सहित उठ खड़ा हुआ और भगवान को एक सुन्दर आसन पर बैठाया। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को भोजन के लिए निमंत्रण दिया, किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

दुर्योधन बोला—'जनार्दन ! आपके लिये जो वस्तुएँ प्रस्तुत की गई हैं, उन्हें आप ग्रहण क्यों नहीं करते ?'

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—'भारत ! दूत अपना प्रयोजन सिद्ध होने पर ही भोजन और सम्मान स्वीकार करते हैं, ऐसा नियम है। तुम भी मेरा उद्देश्य सिद्ध हो जाने पर मेरा और मेरे मंत्रियों का सत्कार करना।'

दुर्योधन ने कहा—'माधव ! आपको हमारे साथ ऐसा अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिये। मधुसूदन ! आपका उद्देश्य सफल हो या न हो, हम लोग आपके सम्मान का प्रयत्न करते ही है। हमें ऐसा कोई कारण नहीं जान पड़ता, जिससे आप हमारी प्रेमपूर्वक अर्पित की हुई पूजा अस्वीकार करें।'

श्रीकृष्ण बोले—'राजन् ! मैं काम, क्रोध, लोभ, द्वेष और स्वार्थवश धर्म त्याग नहीं कर सकता। किसी के घर भोजन या तो प्रेम के कारण किया जाता है या आपत्ति में पड़ने पर। राजन् ! प्रेम तो तुम रखते नहीं और किसी आपत्ति में हम नहीं पड़े हैं। तुम्हारे भाई पाण्डव अपने प्रियजनों के हितचिन्तक और सद्गुणों से सम्पन्न हैं, तथापि तुम जन्म से ही उनके साथ

अकारण द्वेष रखते हो। जो पाण्डवों से द्वेष रखता है, वह मुझसे भी द्वेष रखता है और जो उनके अनुकूल है, वह मेरा भी प्रिय है। तुम मुझे धर्मात्मा पाण्डवों के साथ सब प्रकार से समझो। जो द्वेष रखता है, उसका अन्न नहीं खाना चाहिये। तुम्हारा यह अन्न दुर्भावना से दूषित है, अतः मेरे योग्य नहीं।'

दुर्योधन से ऐसा कह भगवान श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के घर चले गये। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य ने भगवान श्रीकृष्ण से आतिथ्य स्वीकार करने का निवेदन किया, किन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें धन्यवाद देते हुए प्रेमपूर्वक उनके आग्रह को स्वीकार नहीं किया।

रात में जब भगवान श्रीकृष्ण भोजन करके विश्राम कर रहे थे, तब महात्मा विदुरजी ने कहा—'केशव ! मेरी समझ में आपका यहाँ आना अच्छा नहीं हुआ। जनार्दन ! मन्दमति दुर्योधन धर्म और अर्थ दोनों का उल्लंघन कर चुका है। वह क्रोधी, दूसरों का अपमान करने वाला और स्वयं सम्मान चाहने वाला है। उसने गुरुजनों के आदेशों को भी ठुकरा दिया है। वह धर्म शास्त्रों की भी आज्ञा नहीं मानता, अतः उस दुरात्मा को सन्मार्ग पर लाना असम्भव है। उसके मन में सन्धि करने का विचार नहीं है। कौरवों ने निश्चय कर रखा है कि वे पाण्डवों को उनका राज्य नहीं देंगे। आप जो संधि के लिये प्रयत्न करते हैं, वह सब व्यर्थ ही होगा, क्योंकि मूर्ख दुर्योधन आपकी बात नहीं मानेगा। कौरव पापपूर्ण विचार लेकर बैठे हैं, अतः उनके मध्य आपका जाना मुझे अच्छा नहीं लगता।'

विदुर के प्रेम और विनय से युक्त वचन सुन भगवान ने कहा—'विदुरजी ! आपने माता-पिता के समान स्नेहपूर्वक जो सत्य, धर्म और अर्थ से युक्त वचन कहे हैं, वे युक्ति-संगत हैं। मैं इन सब बातों को जानते हुए भी कौरवों के पास आया हूँ। मनुष्य अपनी शक्ति लगाकर यदि किसी धर्म कार्य को करते हैं, किन्तु उन्हें सफलता प्राप्त नहीं होती, तब भी उन्हें उसका

पुण्य तो अवश्य ही प्राप्त होता है। विदुरजी! मैं सन्धि कराने का प्रयत्न निष्कपट भाव से अवश्य ही करूँगा। भाई-बन्धुओं में परस्पर फूट उत्पन्न होने पर जो मित्र प्रयत्न करके उनमें मेल कराने के लिये मध्यस्थता नहीं करता, उसे विद्वान मित्र नहीं मानते।'

भगवान श्रीकृष्ण और महात्मा विदुर वार्ता में इतनेतन्मय थे कि रात्रि व्यतीत हो गयी। प्रातःकाल यदुवंश शिरोमणि शय्या से उठ नित्यकर्म से निवृत्त हुए।

इसी समय राजा दुर्योधन मंत्रियों सहित आये और बोले—'भगवन्! महाराजा धृतराष्ट्र, भीष्म और कौरव अन्य राजाओं और मंत्रियों सहित सभा में आ गये हैं।'

यह सुन भगवान श्रीकृष्ण धर्मों के ज्ञाता विदुरजी के साथ रथ पर बैठ, कौरव-सभा-भवन में पहुँचे। भीष्म, द्रोण आदि भगवान श्रीकृष्ण का सम्मान करने के लिये अपने आसनों से उठ राजा धृतराष्ट्र को आगे कर स्वागत के लिये बढ़े। भगवान श्रीकृष्ण ने भी राजा धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण सहित कौरवों और अन्य राजाओं का अभिनन्दन किया।

जब सब अपने-अपने आसनों पर बैठ गये, तब भगवान श्रीकृष्ण ने उठकर राजा धृतराष्ट्र से कहा—'राजन्! मैं आपसे यह प्रार्थना करने यहाँ आया हूँ कि क्षत्रिय वीरों का संहार हुए बिना ही कौरवों और पाण्डवों में शान्ति-स्थापन हो जाये। मुझे इसके अतिरिक्त कोई वार्ता आपसे नहीं करनी है। आप गुण सम्पन्न हैं, अतः आपसे कोई अनुचित कार्य हो, तो वह ठीक नहीं। इस समय कौरवों पर भयंकर विपत्ति आने वाली है, यदि उसकी उपेक्षा की गई, तो वह सबको विध्वंस कर डालेगी। यदि आप चाहें, तो अब भी इस विपत्ति का निवारण किया जा सकता है। मैं चाहता हूँ कि आप अपने पुत्रों को मर्यादा में रखें और मैं पाण्डवों को नियंत्रण में रखूँगा। राजन्! युद्ध छिड़ने पर तो महासंहार ही होगा और दोनों पक्षों का विनाश

होने के कारण आपको धर्म और सुख नहीं मिलेगा। आप अधर्म के द्वारा सत्य का गला मत घोटिये। आप पाण्डवों का राज्य उन्हें लौटा दीजिये। मैं तो आपका और पाण्डवों का कल्याण ही चाहता हूँ, किन्तु इस समय आप अर्थ को अनर्थ ही मान रहे हैं।'

भगवान श्रीकृष्ण के हितकर वचन सुन राजा धृतराष्ट्र बोले—'हे केशव! मेरे दुरात्मा पुत्र मेरी बात नहीं मानते। आपने जो बात कही है, वह हितकर, धर्म सम्मत और न्याय-संगत है अतः आप ही इन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न कीजिये।'

फिर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा—'तात! तुम्हारा उत्तम कुल में जन्म है। तुम स्वयं शास्त्रों के ज्ञाता एवं सद्‌व्यवहार के मर्मज्ञ हो, अतः तुम्हें क्रूर एवं निर्लज्ज कार्य नहीं करने चाहिये। तुम्हें अधर्म और अपयश का त्याग कर पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेनी चाहिये। भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य एवं अन्य बुद्धिमान नरेश भी यही चाहते हैं। संधि होने से सबका भला होगा। जो सत्पुरुषों की सम्मति का उल्लंघन कर दुष्टों के मत के अनुसार चलता है, वह विपत्ति में पड़ शोक का भागी होता है। जो अधम मनुष्य लोभ के वशीभूत हो धर्म का त्याग कर अयोग्य उपायों से अर्थ और काम को चाहता है वह नष्ट हो जाता है। ईर्ष्यालु एवं दुष्ट मनुष्यों का साथ करने की अपेक्षा तुम्हारे लिये पाण्डवों से मेल करना विशेष कल्याणकारी है। कौरव और उनके साथी सब मिलकर भी अर्जुन का सामना करने में असमर्थ हैं, अतः तुम युद्ध का विचार न करो।'

राजा धृतराष्ट्र के दुर्योधन को उपदेश देने के पश्चात पितामह भीष्म, द्रोण और विदुर ने उसे समझाना आरम्भ किया—'तात! तुम महात्मा केशव और राजा धृतराष्ट्र की बात न मानने से सुख और कल्याण नहीं पा सकते। वत्स! केशव के वचन सत्य और सार्थक हैं, अतः तुम उन्हें स्वीकार कर लो और प्रजा का विनाश न करो। तुम तुच्छ बुद्धि वाले लोगों की बातों पर आस्था न रखो।'

कौरव सभा में अप्रिय वचन सुन दुर्योधन ने वसुदेवनन्दन से कहा—'केशव ! आप तो मुझे दोषी ठहराकर मेरी ही निन्दा कर रहे हैं। मैं देखता हूँ कि विदुरजी, पिताजी, आचार्य और भीष्म पितामह मुझ पर ही दोषारोपण करते हैं, दूसरे किसी राजा पर नहीं। मैंने अपने पर लगाए हुए दोषों पर सब प्रकार से सोच-विचार किया है, पर मुझे मेरा कोई अपराध दृष्टिगोचर नहीं होता। हमने पाण्डवों का क्या बिगाड़ा है ? वे क्यों कौरवों का वध करना चाहते हैं ? माधव ! हम क्षत्रिय-धर्म से च्युत हो किसी के भी सामने भय से नतमस्तक नहीं होंगे। पाण्डवों में कोई ऐसा वीर नहीं है, जो हमें जीतने का साहस कर सके। केशव ! पूर्वकाल में पिताजी ने जो राज्य-भाग मेरे अधीन कर दिया है, उसे मेरे जीते जी कोई नहीं पा सकता।'

दुर्योधन की बातें सुन भगवान श्रीकृष्ण के नेत्र लाल हो गये। वे दुर्योधन से पुनः बोले—'अब बहुत बड़ा नरसंहार होने वाला है। तुम्हारी इच्छा के अनुसार तुम्हें रणभूमि में वीर-शय्या प्राप्त होगी। तुमने अपने बड़े भाई की पत्नी को सभा में लाकर उसके साथ जो अनुचित व्यवहार किया था, उसका फल शीघ्र ही तुम्हें चखना होगा। तुम याचना करने पर भी पाण्डवों को उनका राज्य-भाग नहीं देते हो, वही राज्य तुम्हें धराशायी होने पर देना पड़ेगा। माता, पिता, द्रोण और विदुर ने भी तुमसे बार-बार संधि के लिये आग्रह किया है, किन्तु तुम काल के वश हो सन्धि करना ही नहीं चाहते।' भगवान श्रीकृष्ण की यह बात सुन दुर्योधन गुरुजनों और केशव का अनादर कर वहाँ से चला गया। क्रोधित दुर्योधन को वहाँ से जाते देख उसके भाई भी उसके साथ चल दिये।

भीष्म पितामह ने कहा—'जो धर्म और अर्थ का परित्याग कर क्रोध का अनुसरण करता है, वह विपत्ति में ही पड़ता है। यह दुरात्मा दुर्योधन रक्षा-सिद्धि के विपरीत कार्य करने वाला, अत्यन्त लोभी है, अतः राजा होने के योग्य नहीं। जनार्दन ! मैं

समझता हूँ कि समस्त क्षत्रिय काल के मुँह में जाने वाले हैं, तभी तो दुर्योधन का अनुसरण करते हैं।'

भीष्म के वचन सुनकर कौरव-माता गांधारी ने भी उनका अनुमोदन किया और दुर्योधन को बहुविध नीति-युक्त वचन कहकर समझाया, किन्तु दुर्योधन ने माता का भी कहना नहीं माना। तदनन्तर दुर्योधन ने भगवान श्रीकृष्ण को सभा में बन्दी बनाने का निश्चय किया। विद्वान सात्यकि को इस कुचाल का पता चल गया और उन्होंने केशव को कौरवों का अभिप्राय बता दिया।

जब विदुर को इस मंत्रणा का पता चला तब उन्होंने धृतराष्ट्र को सम्बोधित किया—'नरेश! जान पड़ता है कि आपके सभी पुत्र काल के अधीन हो गये हैं। सुनने में आया है कि वे सब संगठित हो कमलनयन श्रीकृष्ण को पकड़ना चाहते हैं। भगवान कृष्ण दुर्धर्ष हैं। इनके पास आकर सभी विरोधी अग्नि में गिरने वाले पतंगों के समान नष्ट हो जायेंगे।'

धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा—'उस पापात्मा दुर्योधन और उसके मंत्रियों को मेरे पास लाओ।' जब दुर्योधन पुनः सभा में आया तब धृतराष्ट्र ने उसे डाँटते हुए कहा—'ओ मूढ़! इंद्र-सहित देवता भी जिन्हें बलपूर्वक अपने वश में नहीं कर सकते, उन्हें तू बंदी बनाना चाहता है? जरासंध, दंतवक्र, शिशुपाल और वाणासुर जिसके हाथों मारे गये, उन्हें तू बंदी बनाना चाहता है? वे अजेय हैं, तू क्यों अपना विनाश चाहता है।'

श्रीकृष्ण बोले—'दुर्योधन! तू मोहवश मुझे अकेला मान रहा है और पकड़ना चाहता है, यह तेरा अज्ञान है। तू देख, आदित्य, रुद्र, वसु, महर्षियों सहित सब पाण्डव यहीं हैं।' ऐसा कहकर भगवान श्रीकृष्ण ने अट्टहास किया। उनके ऐसा कहने पर उनके श्री अंगों में विद्युत के समान कान्ति वाले देवता अग्नि उगलते हुए दिखाई दिये। उनके ललाट में ब्रह्मा और वक्ष-स्थल में रुद्र विद्यमान थे। समस्त लोकपाल भुजाओं मेंऔर

मुख से अग्नि की लपटें निकल रही थीं। साध्य, दोनों अश्विनी कुमार, इन्द्र, रुद्रगण, विश्वदेव, यक्ष, गंधर्व और नाग भी उनके भिन्न-भिन्न अंगों में दिखाई दिये। उनकी दाहिनी भुजाओं में अर्जुन और बलरामजी का प्रादुर्भाव हुआ। भीमसेन, युधिष्ठिर नकुल और सहदेव उनके पृष्ठ भाग में प्रकट हुए। प्रद्युम्न आदि वृष्णिवंशी तथा अन्धकवंशी योद्धा हाथों में विशाल आयुध धारण किये भगवान के अग्रभाग में प्रकट हुए। शंख, चक्र, गदा, खड्ग भगवान श्रीकृष्ण की अनेक भुजाओं में देदीप्यमान दिखाई देते थे। उनके नेत्रों, नासिका और कानों से भयंकर अग्नि की लपटें निकल रही थीं। उनके रोम-कूपों से सूर्य के समान दिव्य किरणें प्रकाशित हो रही थीं। महात्मा श्रीकृष्ण के उस भयंकर स्वरूप को देखकर राजाओं के मन में भय समा गया और उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये। भीष्म, द्रोण, महात्मा विदुर, संजय और महर्षियों को भगवान जनार्दन ने दिव्य दृष्टि प्रदान की थी, अतः उन्हें भगवान के दर्शन हुए।

धृतराष्ट्र ने कहा—'यदुकुल तिलक श्रीकृष्ण ! आप ही सम्पूर्ण जगत के हितैषी हैं। मैं भी आपका दर्शन करना चाहता हूँ अतः मुझे दोनों नेत्र प्रदान कर दीजिये।'

श्रीकृष्ण बोले—'कुरुनन्दन ! आपको अदृश्य नेत्र प्राप्त हो जायेंगे। फिर पुरुषसिंह श्रीकृष्ण ने उस दिव्य स्वरूप और अद्भुत ऐश्वर्य को समेट लिया और सभा-भवन से उठकर बुआ कुन्ती से मिलने चले गये। उन्होंने सभा की घटनाओं को उन्हें कह सुनाया और उन्हें प्रणाम कर पाण्डवों के पास गये।

श्रीकृष्ण-कर्ण संवाद और सेनापतियों का चुनाव

भगवान श्रीकृष्ण जब हस्तिनापुर से चले, तब मार्ग में वे कर्ण से मिले और उससे उन्होंने कहा—'राधानन्दन ! तुम सनातन वैदिक सिद्धान्तों को जानते हो, तुम संयम-नियम और धर्म-शास्त्र का भी पालन करते हो, तुम सूक्ष्म विषयों के भी पारंगत विद्वान हो, इसलिये दुष्टों का संग तुम्हें त्याग देना चाहिए। तुम्हारा जन्म कुन्ती के गर्भ से हुआ है, अतः तुम भी धर्मानुसार पाण्डु के ही पुत्र हो। यदि पाण्डवों को यह पता चल जाये कि तुम उनके जेष्ठ भ्राता हो तो वे सब तुम्हारे चरणों में नमस्कार करेंगे और तुम्हें सम्राट के पद पर अभिषिक्त कर देंगे। कर्ण ! मैं चाहता हूँ कि आज से अपने भाई पाण्डवों के साथ तुम्हारा स्नेहपूर्ण व्यवहार हो।'

कर्ण ने कहा—'केशव ! आपने प्रेम, मैत्री और मेरे हित की इच्छा से जो कुछ कहा है, वह निःसन्देह ठीक है। मैं जानता हूँ कि मेरी माता कुन्ती है, अतः मैं पाण्डु का ही पुत्र हूँ, परन्तु कुन्ती देवी ने मुझे जिस प्रकार नदी में बहा दिया था, उस प्रकार मैं सकुशल नहीं रह सकता था! मधुसूदन! नदी के प्रवाह में पड़े हुए मुझको अधिरथ नामक सूत घर ले आये और बड़े स्नेह से अपनी पत्नी राधा को गोद में दे दिया। सूत मुझे अपना पुत्र समझते हैं और मैं उन्हें पिता ही मानता आया हूँ। ऐसी स्थिति में मुझ जैसा धर्मज्ञ पुरुष उन्हें कैसे त्याग सकता है ? गोविन्द ! मैंने दुर्योधन का सहारा पाकर तेरह वर्ष तक अकण्टक राज्य का उपभोग किया है। दुर्योधन ने मेरे ही भरोसे पाण्डवों के साथ विग्रह करने का साहस किया है और युद्ध में अर्जुन का सामना करने के लिये मुझे ही चुना है। जनार्दन ! इस समय मैं मृत्यु के

भय या लोभ से दुर्योधन के साथ मिथ्या व्यवहार नहीं करूँगा। माधव! इसमें संदेह नहीं कि मेरे हित के लिये आप जो भी पाण्डवों को कहेंगे, वे उसके अनुसार अवश्य ही कार्य करेंगे। किन्तु केशव! मेरे और आपके बीच में जो यह गुप्त परामर्श हुआ है, उसे आप यहीं तक सीमित रखें। यदि धर्मात्मा युधिष्ठिर यह जान लेंगे कि मैं कुन्ती का प्रथम पुत्र हूँ तो वे राज्य ग्रहण नहीं करेंगे। उस दशा में मैं इस विशाल राज्य को पाकर भी दुर्योधन को ही सौंप दूँगा। मैं चाहता हूँ कि जिनके साथी आप और योद्धा अर्जुन हैं, वे धर्मात्मा युधिष्ठिर सर्वदा राजा बने रहें। आपकी सहायता से पाण्डव शत्रुओं का विनाश कर डालेंगे। श्रीकृष्ण! मैंने दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिये पाण्डवों को बहुत से कटु वचन कहे हैं, उनके कारण आज मुझे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है। जब आप वीर अर्जुन के हाथों मुझे मरा देखेंगे, भीमसेन दुःशासन का रक्तपान करेगा और शिखण्डी भीष्म, द्रोण को मार गिरायेगा, तब ही सब पाण्डव प्रसन्न होंगे। माधव! जब महाबली भीमसेन दुर्योधन का वध करेगा, उस समय कौरवों का प्रारम्भ किया हुआ यह रण-यज्ञ समाप्त हो जायेगा। केशव! कुरुक्षेत्र परम पुण्य तीर्थ है। मैं चाहता हूँ कि क्षत्रिय समुदाय वहीं शस्त्रों के आघात से स्वर्ग को प्राप्त हो। आप भी इसकी सिद्धि के लिये ही प्रयत्न करें।'

श्रीकृष्ण बोले—'कर्ण! पाण्डवों की विजय अवश्यम्भावी है। तुम्हारे मन में जो अभिलाषा है, वह अवश्य पूर्ण होगी। कौरव और उनके साथी राजा उत्तम गति प्राप्त करेंगे।'

कर्ण ने कहा—'महाबाहो! आप जानते ही हैं कि योद्धाओं के विनाश के निमित्त मैं, शकुनि, दुःशासन और दुर्योधन हैं। मधुसूदन! मुझे बहुत से भयंकर स्वप्न तथा अपशकुन दृष्टिगोचर हुए हैं। ये सब युधिष्ठिर की विजय और दुर्योधन की पराजय घोषित करते हैं। महाबाहु श्रीकृष्ण! यदि मैं इस महायुद्ध से जीवित बच गया तो पुनः आपके दर्शन करूँगा।' ऐसा

कहकर कर्ण ने भगवान श्रीकृष्ण का प्रगाढ़ आलिंगन किया और उनसे विदा लेकर चला गया।

तदनन्तर कुन्ती ने सत्यपरायण पुत्र कर्ण के पास जाकर उससे पाण्डवों से मेल करने का अनुरोध किया, किन्तु वीर कर्ण ने माता का वह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उसने माता से प्रतिज्ञा की कि मैं अर्जुन के अतिरिक्त अन्य चारों भाइयों को युद्ध में नहीं मारूँगा।

भगवान श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को हस्तिनापुर की घटनाओं का सारा वृतान्त कह सुनाया। उन्होंने कहा—'कौरव और उनके साथी राजा कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान करने की तैयारी कर रहे हैं। वे बिना युद्ध किये तुम्हें तुम्हारा राज्य नहीं देंगे। अब तुम्हें जो भी उचित जान पड़े, वही करो।

भगवान श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर युधिष्ठिर ने सब योद्धाओं को संबोधित कर कहा—'वीरो! अब तुम लोग भी रण की तैयारियाँ करो। भगवान श्रीकृष्ण जिसका नाम बतावें, उसे ही हम सेनापति चुनेंगे।' भगवान श्रीकृष्ण ने धृष्टद्युम्न को पाण्डव सेना का प्रधान सेनापति चुना। अब पाण्डव सेना भीमसेन को आगे कर कुरुक्षेत्र की ओर बढ़ी। कौरवों ने भीष्म-पितामह को सेनापति के पद पर नियुक्त किया और फिर वे सब राजाओं और सेना के साथ कुरुक्षेत्र पहुँचे। जब बलरामजी को पता चला कि कौरव-पाण्डव युद्ध कुरुक्षेत्र में होना निश्चित हो गया है, तब वे पाण्डवों से मिलने के लिए उनके शिविर में पहुँचे। उन्हें देखते ही धर्मराज युधिष्ठिर, भगवान श्रीकृष्ण, भीम-सेन, अर्जुन और अन्य राजागण जो वहाँ विद्यमान थे, अपने-अपने आसनों से खड़े हो गये और सबने उन्हें प्रणाम किया।

जब सब अपने आसनों पर बैठ गये तब महामना बलरामजी बोले—'युधिष्ठिर! जान पड़ता है कि अब महादारुण और भयंकर नर-संहार होने वाला है। मैं इसे प्रारब्ध का ही विधान

मानता हूँ। आप सब सुहृदों को मैं युद्ध के पश्चात सकुशल देखूँगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इसमें सन्देह नहीं कि कुरुक्षेत्र में जो-जो क्षत्रिय एकत्रित हो रहे हैं, वे सब काल के आधीन हैं। मैंने श्रीकृष्ण से कहा था कि मुझे कौरव-पाण्डव संग्राम अच्छा नहीं लगता। युधिष्ठिर ! तुम्हारे और अर्जुन के लिये कृष्ण अपने आप को भी निछावर करने के लिये तत्पर रहता है। मेरा विश्वास है कि इस युद्ध में पाण्डवों की विजय होगी। भीमसेन और दुर्योधन दोनों ही वीर मेरे शिष्य एवं गदा-युद्ध में समान निपुण हैं, अतः मैं दोनों पर एक-सा ही स्नेह रखता हूँ। इसलिये मैं सरस्वती नदी के तटवर्ती तीर्थों का सेवन करूँगा, क्योंकि मैं कुरुवंशियों को नष्ट होते हुए देख उनकी उपेक्षा नहीं कर सकूँगा।' ऐसा कह सबसे बिदा लेकर महाबाहु बलरामजी तीर्थ-यात्रा के लिये चले गये।

दुर्योधन ने जब भीष्मपितामह को सेनापति के पद पर नियुक्त कर दिया, तब उन्होंने शत्रु पक्ष के युद्ध में निमंत्रित योद्धाओं के नाम दुर्योधन से सुने। उन्होंने दुर्योधन से कहा—'वीर ! मैं तुम्हारी ओर से रणभूमि में विजयाभिलाषी पाण्डव और उनके साथी वीरों के साथ अपनी विजय अथवा मृत्यु की आकांक्षा लेकर युद्ध करूँगा। मैं वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और अर्जुन का भी सामना करूँगा, पर पाण्डव-पुत्रों को मारूँगा नहीं। महाबाहो ! पांचाल राजकुमार शिखण्डी यदि युद्ध में मेरा सामना करेगा तो उसे भी मैं नहीं मारूँगा। मैं कभी किसी स्त्री को अथवा जो पहले स्त्री रहा हो, उस पुरुष को भी नहीं मार सकता। शिखण्डी पहले 'स्त्री रूप' में उत्पन्न हुआ था, फिर पुरुष हो गया है, अतः मैं उससे युद्ध नहीं करूँगा। मैंने अपने पिता को प्रिय करने की इच्छा से राज्य तो ठुकरा दिया और दृढ़तापूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया था। मैंने माता सत्यवती के ज्येष्ठ पुत्र चित्रांगद को कौरवों के राज्य पर और बालक विचित्रवीर्य को युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया

था। दुर्योधन ! चित्रांगद की असामयिक मृत्यु के पश्चात माता सत्यवती की इच्छानुसार मैंने विचित्रवीर्य को राज सिंहासन पर बैठाया। उन्हीं दिनों काशीराज की तीन सुन्दर कन्याओं, जिनके नाम अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका थे, का स्वयंवर होने वाला था। स्वयंवर का समाचार पाकर मैं काशीराज के नगर में गया। वहाँ तीनों कन्याओं और आमंत्रित राजाओं पर मेरी दृष्टि पड़ी। मैंने उन राजाओं को युद्ध में परास्त किया और तीनों कन्याओं को साथ ले हस्तिनापुर पहुँचा। उन्हें माता सत्यवती को सौंप दिया।

जब मैंने माता की अनुमति से विचित्रवीर्य के साथ उन कन्याओं का विवाह करना चाहा, तब अम्बा ने मुझसे कहा—'भीष्म ! तुम धर्म के ज्ञाता और सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञान में पूर्ण हो, अतः मेरी बात सुनकर तुम्हें मेरे साथ धर्मपूर्वक व्यवहार करना चाहिये। मैंने शाल्वराज को अपना पति चुना है और उसने भी मुझे वरण किया है, अतः मैं दूसरे की कामना करने वाली कन्या हूँ। तुम धर्म का उल्लंघन कर मुझे अपने घर में कैसे रखोगे ? शाल्वराज निश्चय ही मेरी प्रतीक्षा करते होंगे, अतः मुझे उनकी सेवा में जाने की आज्ञा दो। वीर ! मुझ पर कृपा करो, क्योंकि तुम सत्यव्रती महात्मा हो।' उसकी यह प्रार्थना सुन मैंने माता सत्यवती की आज्ञा से राजकुमारी अम्बा को मुक्त कर दिया।

राजकन्या अम्बा शाल्वराज के पास गई और बोली—'राजन् ! मैं तुम्हारी प्रिय और हित में तत्पर रहने वाली हूँ। मुझे धर्मानुसार ग्रहण कर अपने चरणों में स्थान दो। तुमने मुझसे विवाह करने की प्रतिज्ञा भी की थी।'

शाल्वराज ने कहा—'सुन्दरी ! तुम दूसरे की हो चुकी हो, अतः अब मैं तुमसे विवाह नहीं करूँगा। भद्रे ! तुम पुनः भीष्म के ही पास जाओ।'

अम्बा ने कहा—'राजन् ! तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। मैं भीष्म के साथ प्रसन्नतापूर्वक नहीं गयी थी। उसने

स्वयंवर में एकत्रित राजाओं को परास्त कर बलात् मेरा हरण किया था। मैं सत्य कहती हूँ कि मैंने तुम्हारे अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष को अपना पति बनाने की इच्छा नहीं की है, इसलिए मुझे न त्यागिये। अब उन्हीं की आज्ञा लेकर अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ मैं यहाँ आई हूँ। महाबाहु भीष्म मुझे अपने छोटे भाई के साथ विवाह करने ले गये थे। नरेश्वर! मेरी छोटी बहिनें उन्होंने अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य से ब्याह दी हैं।'

यद्यपि राजकन्या अम्बा का कथन सर्वथा सत्य था, किन्तु मंदबुद्धि शाल्व ने उसकी एक भी बात न मानी और उस करुण क्रन्दन करती हुई अबला को त्याग दिया। इस पर अम्बा ने निश्चय किया कि मुझ पर जो यह विपत्ति आई है, उसका मुख्य कारण शान्तनुनन्दन भीष्म है, अतः तपस्या या अन्य उपायों से मैं भीष्म से बदला लूँगी। ऐसा निश्चय कर वह भृगुनन्दन परशुरामजी की शरण में गयी और उन्हें सारा वृतान्त कह सुनाया। परशुरामजी ने इस अपराध का मुझे दण्ड देने के हेतु युद्ध के लिये विवश किया। मैंने यह सारी घटना माता सत्यवती को सुना दी। माता सत्यवती ने स्वस्तिवाचन कर मेरा अभिनन्दन किया। उनसे कल्याणकारी आशीर्वाद ले मैं कुरुक्षेत्र में परशुराम जी से युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हो गया। वहाँ परशुरामजी अकेले ही युद्ध के लिये खड़े थे। मैं रथ से उतरकर पैदल ही उनके पास गया। मैंने उन्हें विधिपूर्वक प्रणाम करने के पश्चात कहा—'भगवन् ! आप मेरे से अधिक शक्तिशाली, धर्मात्मा एवं गुरु हैं। मैं इस रण-क्षेत्र मैं आपके साथ युद्ध करूँगा, अतः आप मेरी विजय के लिये मुझे आशीर्वाद दें।'

परशुरामजी बोले—'कुरुश्रेष्ठ ! यदि तुम इस प्रकार मेरे समीप नहीं आते तो मैं तुम्हें शाप दे देता। अपनी उन्नति चाहने वाले प्रत्येक योद्धा को अपने गुरु के साथ ऐसा ही बर्ताव करना चाहिये। कुरुनन्दन ! तुम धैर्य धारण कर प्रसन्नतापूर्वक युद्ध करो।'

भीष्म ने कहा—'मैं उन्हें नमस्कार कर रथ पर जा बैठा और उनसे धर्मपूर्वक युद्ध करने लगा। मैंने कुपित हो परशुरामजी पर सैकड़ों बाणों से प्रहार किया। उनसे पीड़ित हो वे अचेत से हो गये। तब मैं दया से द्रवित हो स्वयं ही अपने आपको धिक्कारने लगा। जब वे मूर्छा से जागे तब उन्होंने मुझ पर बहुत से अस्त्र चलाये, जिनसे मैं अचेत होकर पृथ्वी पर गिरने लगा। गिरते समय मैंने देखा कि सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी आठ ब्राह्मण खड़े हैं और उन्होंने अपनी भुजाओं पर ही मेरे शरीर को धारण कर लिया है।

वे सब मुझसे एक साथ बोले—तुम्हारा कल्याण हो। तुम भयभीत न हो। परशुरामजी तुम्हें युद्ध में जीत नहीं सकेंगे। हम तुम्हारी रक्षा करते हैं, क्योंकि तुम हमारे ही स्वरूप हो। तुम्हारी विजय होगी। तुम्हारे रथ पर सारथी के स्थान पर श्रेष्ठ माता गंगा बैठी है और उसने घोड़ों की बागडोर पकड़ रखी है। तब मैंने माता के चरणों का स्पर्श किया और रथ पर जा बैठा। तदनन्तर गुरु परशुरामजी से पुनः मेरा युद्ध आरम्भ हो गया। वे मेरे बाणों से अत्यन्त पीड़ित हो मूर्छित हो गये। उनके पृथ्वी पर गिरते ही भयंकर अपशकुन होने लगे।

इससे मेरे मन में संताप हुआ किन्तु माता गंगा ने कहा—पुत्र ! तुम दुःख न करो। परशुरामजी की मृत्यु तुम्हारे द्वारा नहीं होगी।

इस प्रकार हम दोनों का भीषण युद्ध तेईस दिनों तक होता रहा।

अकस्मात् उस समय नारदजी रणभूमि में आये और उन्होंने मुझसे कहा—परशुरामजी तेजस्वी, ब्राह्मण भक्त और तुम्हारे गुरु हैं। तुम उनका अनादर न करो। यही जगत के लिये कल्याणकारी है। मैंने नारदजी का प्रस्ताव स्वीकार कर युद्ध बन्द कर दिया।

इस पर परशुरामजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—पुत्र

भीष्म ! तुमने मुझे जीत लिया है। तुम गंगा और शान्तनु के यशस्वी पुत्र साक्षात वसु हो, अतः तुम्हें मैं कैसे जीत सकता हूँ, वीर ! अब तुम युद्ध से निबृत हो जाओ।

तदनन्तर मैंने गुरु परशुरामजी को प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किये। परशुरामजी ने राजकुमारी अम्बा से कहा—ये उदारबुद्धि भीष्म युद्ध में देवताओं के लिये भी अजेय हैं। मैंने अपनी पूर्ण शक्ति द्वारा युद्ध में पराक्रम दिखाया, जिसे भीष्म के अतिरिक्त कोई सह नहीं सकता था। तुम भीष्म की ही शरण ग्रहण करो, किन्तु वह कन्या मेरे वध के उपाय का ही चिन्तन करती हुई तपस्या में संलग्न हो गई। शूलपाणि भगवान शिव ने प्रसन्न होकर उस तपस्विनी को दर्शन दिया और उसकी इच्छानुसार उसे मेरे वध का वरदान भी दे दिया। कुछ काल पश्चात् वही राजकन्या अम्बा द्रुपद कुल में उत्पन्न हुई और राजा द्रुपद ने उसका शिखण्डी नाम रखा। शिखण्डी की जीवनी सुन दुर्योधन ने भी उसका वध करना उचित न समझा।

कुरुक्षेत्र में प्रस्थान के पहले कौरवों और पाण्डव वीरों ने पवित्र जल से स्नान किया, श्वेत वस्त्र धारण किये, पुष्पों की माला पहनी, ब्राह्मणों से स्वस्ति-वाचन कराया और अग्नि में आहुतियाँ दीं। धर्म-भूमि कुरुक्षेत्र में पहुँचकर दोनों दल के महाधनुर्धर वीरों ने भाँति-भाँति के कवच और कुण्डल धारण किये। वे घी की आहुति से प्रज्वलित हुई अग्नि तथा आकाश में उज्ज्वल ग्रहों के समान शोभा पा रहे थे। दोनों दलों के योद्धा कुरुक्षेत्र में पहुँचने पर अपनी-अपनी सेना के अग्रभाग में खड़े हो गये।

पूर्व और पश्चिम दिशा में आमने-सामने खड़ी हुई दोनों पक्षों की सेनाओं को देख भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान रखने वाले सम्पूर्ण वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ महर्षि भगवान व्यास विचित्रवीर्यनन्दन राजा धृतराष्ट्र के पास गये और बोले—

'राजन् ! तुम्हारे पुत्रों तथा राजाओं का मृत्यु-काल आ पहुँचा है। जब वे नष्ट होने लगें तब इसे काल का चक्र समझकर शोक न करना। संग्राम-भूमि की घटनाओं को देखने के लिये मैं तुम्हें दिव्य नेत्र प्रदान करता हूँ, जिससे तुम यहाँ बैठे ही युद्ध का सारा दृश्य देख सकोगे।'

धृतराष्ट्र ने कहा—'भगवन् ! मुझे कुटुम्बियों का वध देखना अच्छा नहीं लगता, परन्तु मैं युद्ध का सारा वृतान्त सुनना चाहता हूँ।'

व्यासजी बोले—'राजन् ! संजय दिव्य दृष्टि से सम्पन्न हो सर्वज्ञ हो जायेगा और तुम्हें युद्ध की सारी घटनाएं सुनाएगा। मैं कौरव और पाण्डवों की कीर्ति का तीनों लोकों में विस्तार करूँगा। राजन् ! यह युद्ध दैव का विधान है। इसे कोई मिटा नहीं सकता। जहाँ धर्म है, उसी पक्ष की विजय होगी।'

राजा धृतराष्ट्र से ऐसा कह महर्षि व्यास चले गये।

भगवान व्यास के प्रस्थान के कुछ समय बाद संजय को कुरुक्षेत्र की घटनाएं विदित होने लगीं। उन्होंने राजा धृतराष्ट्र से कहा—'राजन् ! अब चन्द्रमा मघा नक्षत्र पर है। आकाश में सात महाग्रह अग्नि के समान उद्दीप्त दिखाई दे रहे हैं। कौरव और पाण्डव सेनापति व्यूह-रचना में लगे हुए हैं, अतः शीघ्र ही युद्ध आरम्भ होगा, ऐसा प्रतीत होता है। राजन् ! दुर्योधन ने दुःशासन को अपने सेनापतियों द्वारा शिखण्डी से भीष्म पितामह की रक्षा करने और उसे मार डालने की आज्ञा दी है।'

दुर्योधन की विशाल सेना को देख कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—'महाबाहो ! जिनके प्रधान योद्धा पितामह भीष्म हैं, उनके साथ हम युद्ध कैसे कर सकेंगे ?'

अर्जुन ने कहा—'राजन् ! विजय की इच्छा रखने वाले वीर अपने बल और पराक्रम से ही सर्वदा विजय नहीं पाते, अपितु सत्य, सज्जनता, धर्म, विनय तथा उत्साह से भी प्राप्त

करते हैं। जहाँ अधर्म, लोभ और मोह नहीं है, उसी पक्ष की विजय होती है। युद्ध में हमारी विजय अवश्यम्भावी है, क्योंकि जहाँ भगवान हैं, वहीं विजय है।'

श्रीकृष्ज अर्जुन से बोले--'महाबाहो ! शत्रुओं को युद्ध में पराजित करने के लिये तुम दुर्गादेवी की स्तुति करो।'

परम बुद्धिमान भगवान वासुदेव के कहने पर कुन्तीकुमार अर्जुन रथ से नीचे उतर दुर्गादेवी की स्तुति करने लगे—'हे सिद्धेश्वरी सेनानेत्री आर्ये ! तुम्हें मेरा बारंबार नमस्कार है। तुम्हीं कुमारी, काली, कपालिनी, कपिला, कृष्णा, पिंगला, भद्रकाली, चण्डी और महाकाली नामों से प्रसिद्ध हो। तुम भक्तों का संकट काटने वाली तारिणी हो। तुम्हें ही कात्यायनी, जया और विजया भी कहते हैं। तुम्हीं ने पापी महिषासुर का वध किया था। मैं तुम्हें बारंबार प्रणाम करता हूँ। तुम्हारे ही नाम उमा, शाकम्भरी, श्वेता, कैटभनाशिनी, हिरण्याक्षी, विश्वरूपा और सुधूम्राक्षी है। तुम वेदों की अत्यन्त पवित्र श्रुति हो। तुम कार्तिकेय की माता दुर्गा हो। सावित्री, स्वाहा, स्वधा, काष्ठा, सरवस्ती, वेदमाता ये सब तुम्हारे ही नाम हैं। महादेवी ! मैंने विशुद्ध हृदय एवं विजय की इच्छा से तुम्हारा स्तवन किया है, अतः तुम मुझ पर प्रसन्न होओ। तुम्हीं मोहिनी, माया, ह्री, श्री, संध्या, प्रभाती और जननी हो। तुम्हीं तुष्टि, पुष्टि, धृति और सम्पूर्ण विभूति हो। तुम्हें मेरा बारंबार प्रणाम है।

संजय ने कहा—'राजन् ! जो मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ करेगा, उसे कभी भय नहीं होगा।'

गीता-ज्ञान*

धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा—'कुरुक्षेत्र में जाने के बाद मेरे पुत्रों और कौरवों ने क्या किया, यह मुझे बताओ।'

संजय ने उत्तर दिया—'युद्ध के समय दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के समीप जाकर कहा, आचार्य हमारी विशाल सेना के सेनापति पितामह भीष्म हैं। हम सब मिलकर इनकी रक्षा करते रहे तो भीम से रक्षित पाँडवों की सेना को पराजित करने में अवश्य सफल होंगे।'

इतने में सेनापति भीष्म ने शंख बजाकर युद्धारम्भ की घोषणा कर दी। भगवान श्रीकृष्ण व अर्जुन ने भी अपने शंख बजाये। अर्जुन ने भगवान से कहा—'केशव! दोनों सेनाओं के मध्य रथ को ले चलिये, जिससे मैं दोनों पक्षों के वीरों को

---

* श्रीमद्‌भगवत गीता एक ऐसा अनुपम ग्रंथ है, जिसका सारे संसार में सम्मान है। देश और विदेश के लेखकों द्वारा इस पर जितना लिखा गया है, संसार की अन्य किसी पुस्तक पर नहीं लिखा जा सका। अपूर्व प्रतिभाशाली विद्वानों ने अपने-अपने विचारों के अनुसार इसकी व्याख्या की है। मैंने भी इस ग्रंथ को जिस प्रकार समझा है, उसके अनुसार कुछ लिखने का प्रयत्न किया है। हो सकता है, कुछ विद्वानों का मेरे विचारों के साथ मतभेद हो।

गीता के रचना-काल का ठीक-ठीक निर्धारण करना एक बहुत ही कठिन प्रसंग है, क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक पांडुलिपि उपलब्ध नहीं है। प्राचीन काल में ग्रंथ-निर्माण के समय-निर्देश को किंचित भी महत्व नहीं दिया जाता था। उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री भी इसके सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश नहीं डालती है। महाभारत का युद्ध, श्रीकृष्ण और अर्जुन आदि के सम्बन्ध में भी शंका समाधान होते रहते हैं, किन्तु इन विवादों का गीता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह एक दार्शनिक सिद्धान्त-ग्रंथ है, जिसके तत्व सदा ही नवीन रहते हैं तथा सभी समय के मानवों को एक उज्ज्वल और प्रशस्त मार्ग दिखाने के लिये निरंतर चिन्तामणि से चमकते रहते हैं।

देख सकूँ।' भगवान श्रीकृष्ण तत्काल ही रथ को दोनों सेनाओं के बीच ले गये। अर्जुन ने युद्ध के लिये तत्पर अपने भाई-बन्धुओं को देखा तो उसके मन में उद्विग्नता उत्पन्न हुई। उसने हाथ जोड़कर भगवान श्रीकृष्ण से कहा—'माधव! मैं चारों ओर अपने ही स्वजनों को परस्पर युद्ध के लिये उद्यत देख रहा हूँ। ज्ञात होता है कि इस युद्ध से हमारे वंश का पूर्ण विनाश हो जायेगा। इस परिणाम को सोचकर मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है। हाथ-पैर काँप रहे हैं। शरीर में स्वेद का उद्गम हो रहा है। स्वजनों को मारकर प्राप्त किया हुआ राज्य हमें क्या सुख पहुँचायेगा? अतः युद्ध की अपेक्षा मैं भिक्षा से जीवन-निर्वाह करना अधिक श्रेयस्कर मानता हूँ।'

समय-निर्धारण के प्रत्यक्ष प्रमाण न मिलने पर अनुमान के आधार पर जब अनुसंधान किया जाता है, तो गीता के नवम अध्याय के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गीता की रचना के समय तक तीन ही वेदों का अस्तित्व था।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च॥ ९/१७॥
त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्टवा स्वर्गति प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥९/२०॥
ते तंभुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते॥९/२१॥

उपर्युक्त पद्यों से ज्ञात होता है कि उस काल तक ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद ही थे। अतः स्वाभाविव रूप से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि गीता की रचना अथर्ववेद से प्राचीन है।

गीता में '**मासानां मार्गशीर्षोहम**' कहा गया है, जिससे प्रतीत होता है कि वर्ष का आरम्भ मार्गशीर्ष से होता था। श्री बालकृष्ण दीक्षित के अनुसार वेदांग ज्योतिष ईसा से १४०० वर्ष पूर्व का है। प्रो० मैक्समूलर के लिये प्रयास करने वाले विशप ग्रेट के अनुसार वेदांग ज्योतिष से पूर्व मार्गशीर्ष प्रथम मास माना जाता था। वह ईसा से १५०० वर्ष पूर्व भी मान लें तो गीता का रचनाकाल ३५००-४००० वर्ष का ही सिद्ध होता है।

यह कह अर्जुन धनुष-बाण छोड़ शोक से व्याकुल हो रथ से उतर एक ओर खड़ा हो गया। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन की ऐसी दशा देख उसे समझाते हुए कहा—'अर्जुन ! तुम यह क्या कह रहे हो ! इस प्रकार के कायरतापूर्ण वचन तुम्हारे मुँह से शोभा नहीं देते।' अर्जुन ने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन् ! मेरा मन विचलित हो रहा है, बुद्धि नष्ट हो रही है, कुछ भी समझ में नहीं आता कि मुझे क्या करना चाहिये ? मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ आपकी शरण में हूँ। मुझ शिष्य को आप ज्ञान देकर उचित मार्ग बताइये।'

अपने उद्देश्य-साधन के प्रधान निमित्तभूत अर्जुन को जब भगवान श्रीकृष्ण ने मोह और अज्ञान से व्याकुल देखा तो वे

इसी प्रकार श्री गुरुनाथ कौल, श्री काशीनाथ पंत, तेलंग शंकर, राय बहादुर चिन्तामणि राजवैद्य और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक आदि मूर्धन्य विद्वानों ने भी प्राच्य-पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन और गंभीर विवेचन के पश्चात यही निश्चय किया है कि गीता महाभारत का ही एक अंग है, तथा इसकी रचना ईसा से कम-से-कम १४०० वर्ष पूर्व की है।

शब्दों के अर्थ में भी समयानुसार कुछ परिवर्तन होता रहता है। गीता के कुछ शब्दों का अर्थ यदि आज के शब्दकोशों की भाषा में समझा जाये तो सम्भवतः ग्रंथकार का अभिप्राय स्पष्ट नहीं होता है। सामान्य-तया प्रत्येक भाषा के शब्द अनेक अर्थों के द्योतक होते हैं तथा प्रसंगा-नुसार उनका भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग होता है।

गीता में 'देव' शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया गया है। यथा :

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥३/११॥
यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥९/२५॥
येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥९/२३॥

एक स्थान पर कहा गया है कि जो देवताओं की पूजा करते हैं, उन्हें ईश्वर प्राप्त नहीं होता है। अन्यत्र कहा गया है कि जो देवताओं की पूजा

उसे समझाने लगे—'अर्जुन! संसार में प्राणी जो सुख-दुःख भोगता है, उसमें वह स्वतंत्र नहीं है, कर्मानुसार उसे वे भोगने ही पड़ते हैं। सुख-दुःख देने वाले उसके निमित्त मालूम देते हैं, पर वास्तव में कारण नहीं होते। सुख-दुःख भी केवल वेगमात्र है, इसमें न तो सुख स्थायी होता है और न दुःख ही, किन्तु उन्हें रोका नहीं जा सकता, सहन ही करना पड़ता है, इसलिए बुद्धिमान लोग इनसे विचलित नहीं होते। जिस प्रकार बचपन, युवावस्था और बुढ़ापे के उपभोग में प्राणी विवश होता है, वे स्वयं बिना प्रयत्न उसे प्राप्त होते रहते हैं और प्रयत्न करने पर भी रुक नहीं सकते, इसी प्रकार मृत्यु और दूसरे जन्म की प्राप्ति भी अपने आप होती रहती है, क्योंकि शरीर मरणशील है, अतः

करते हैं, वे भी परोक्ष रूप में मेरा ही पूजन करते हैं। अतः विभिन्न स्थानों पर 'देव' शब्द का एक ही अर्थ नहीं हो सकता है। इसी प्रकार नवम अध्याय के बीसवें श्लोक 'त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा' में यह उद्धृत है कि जो सोमरस को पीते हैं, वे स्वर्ग-लाभ करते हैं। वास्तव में सोमरस का सही अर्थ क्या है, यह सावधानीपूर्वक विचारणीय है। गीता एक दार्शनिक विचार-प्रधान पुस्तक है। इसमें मद्यपान की अभिशंसा स्वर्ग-प्राप्ति हेतु किये जाने की बात उचित प्रतीत नहीं होती। अतः सोम का अर्थ ज्ञानामृत के रूप में स्वीकार किया जाना अधिक श्रेयस्कर और तर्क-संगत लगता है। सम्पूर्ण गीता काव्य की तरह पद्यों में निर्मित है। इसमें अभिधात्मक अर्थ न लेकर व्यंजना का आश्रय लेना चाहिये।

बहुत से शब्दों का अर्थ ग्रहण करते समय गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ कर्म, अकर्म, देवजन मार्ग, पितृजन मार्ग, दिव्य-दृष्टि आदि अनेक शब्दों को लिया जा सकता है। हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि प्राचीन काल में कवि और दार्शनिक अपने आपको कुछ घुमा-फिराकर ही अभिव्यक्त करते रहे हैं, जिसका प्रचलन आधुनिक लेखकों में नहीं है, यथा तेरहवें अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ तथा पन्द्रहवें अध्याय में उर्ध्वमूल ईश्वर की सर्वशक्तिसत्ता को विशेष दार्शनिक शैली द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

मेरे विचार में गीता के दो प्रमुख पात्र दुर्योधन और अर्जुन रणभूमि

प्राणी की मृत्यु अनिवार्य है और मरे हुए का जन्म भी निश्चित है। किन्तु आत्मा जो चेतन तत्व है, कभी मरता नहीं, न कोई उसे मार सकता है। वह नित्य है, एक है और सर्व-व्यापक है। कपड़ा फट जाने पर जैसे मानव दूसरा बदल लेता है, उसी प्रकार आत्मा भी जीर्ण शरीर को छोड़कर नया प्राप्त कर लेती है, इसलिए बन्धु-बान्धवों की मृत्यु के भय से विचलित न होकर तुझे क्षत्रियोचित कर्तव्य-कर्म पर दृढ़ रहना चाहिए, क्योंकि स्थितप्रज्ञ मनुष्य दुःख में विचलित नहीं होता और सुख की इच्छा नहीं करता। वह शुभ-अशुभ, राग-द्वेष, भय-शोक आदि में समान भाव रखता हुआ कर्तव्य पर दृढ़ रहता है।'

'परम सत्य की प्राप्ति के लिए संसार में दो मार्ग हैं—

में आकर कुछ भयभीत हो गये हैं। दुर्योधन ने आचार्य के समीप जाकर पाण्डव सेना की व्यूह-रचना के विषय में उद्वेग-पूर्ण वाक्य कहे :

दृष्टवा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥१/२॥

यहाँ दुर्योधन का आचार्य के पास जाने का अभिप्राय यह था कि अब युद्ध आरम्भ होने वाला है और आचार्य कौरव महारथियों में बहुत-सों के गुरु हैं। अतः प्रमुख योद्धाओं को युद्ध की भयंकरता समझाकर उन्हें संगठित होकर तन्मयता से युद्ध करने का आदेश दें, अन्यथा परिणाम विनाशकारक होगा, क्योंकि कौरव सेना में कई महारथी एक-दूसरे के विरुद्ध थे। जैसे कर्ण भीष्म के सेनापतित्व में युद्ध करने से विरक्त थे। अश्वत्थामा कर्ण के नेतृत्व के विरुद्ध थे। इस मनोमालिन्य को दूर करने के लिये ही वह आचार्य का उपयोग करना चाहता था। यदि उसे केवल सेना की व्यूह-रचना के विषय में ही जिज्ञासा होती तो वह आचार्य के समीप न जाकर सेनापति भीष्मपितामह से परामर्श करता। वह अपनी सेना की परिस्थिति से चिन्तित होकर ही द्रोणाचार्य के निकट जाकर बोला :

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥१/३॥
अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि। इत्यादि।

भीम और अर्जुन के पराक्रम से भयभीत दुर्योधन को बहुत से वीर

प्रवृत्ति और निवृत्ति। इनमें निवृत्ति मार्ग बहुत ही कठिन है, जिसमें सफलता प्राप्ति के बहुत कम उदाहरण देखे जाते हैं, क्योंकि विषयों का त्याग मात्र करने से तो सिद्धि नहीं होती। जो व्यक्ति शरीर में से विषयों का त्याग करता है, पर मन में उनकी वासना बनी रहती है, उसे सफलता नहीं मिलती। मन से जो त्याग किया जाता है, वही सच्चा त्याग है। पर मन का वशीकरण अत्यन्त कठिन है, अतः विवेकी जन प्रवृत्ति मार्ग को ही अपनाते हैं, क्योंकि कर्म सभी के लिए अनिवार्य है। क्षण-भर भी कोई बिना कर्म किये नहीं रह सकता। संसार का पूरा चक्र कर्म पर निर्भर है। आप्तकाम महापुरुषों के लिए यद्यपि कर्म की आवश्यकता नहीं है, फिर भी वे लोकोपदेश के लिए कर्म में तत्पर रहते हैं।

'कर्म की गति बहुत गहन है। क्या कर्म है और क्या अकर्म,

भीम अर्जुन के समान दिखाई देते हैं। फिर अपनी सेना का वर्णन करने के पश्चात वह कहता है :

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१/१०॥
अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥१/११॥

दुर्योधन का अभिप्राय यह है कि पाण्डव सेना संख्या में कम होने पर भी युद्ध की शक्ति में हमसे अधिक है, क्योंकि उनके सैनिक संगठित, उत्साहपूर्ण और युद्ध के लिए तत्पर हैं, जबकि हमारे सैनिक परस्पर द्वेष से आक्रान्त होकर असंगठित हैं। इसलिए भीष्म-रक्षित हमारी सेना अपूर्ण है और भीमरक्षित पाण्डव सेना सम्पूर्ण है, पर्याप्त है। इससे हमारी पराजय का भय है। अतः आप सबको मिलकर भीष्म की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि हमारी सेना में मतभेद देखकर पाण्डव सेना भीष्मपितामह पर प्रबल आक्रमण करेगी। सेनापति भीष्म ने दुर्योधन को चिन्तित और उदास-मुख देखकर उसका उत्साह बढ़ाने के लिये शंखध्वनि की, इससे प्रतीत होता है कि युद्ध की घोषणा पहले कौरवों ने की। सेनापति की शंखध्वनि से कौरव सेना के महारथी और सैनिकों ने समझा कि युद्ध

इसको बड़े-बड़े विवेकी भी पहचानने में असमर्थ हैं। फल की इच्छा त्याग कर निष्काम भाव से जो कर्म किया जाता है, वही कर्तव्य है। उसीसे जीवन में सफलता मिलती है, क्योंकि आसक्ति के त्याग से शनैः-शनैः ज्ञान की प्राप्ति होती है और उससे वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। कामना और आसक्ति को त्याग कर अपने कर्तव्य-कर्म युद्ध को पहचानकर उस में प्रवृत्त होना तुम्हारे लिए परम आवश्यक है।'

यहाँ अर्जुन को शंका हुई कि प्रवृत्ति और निवृत्ति तथा कर्मयोग और संन्यास इन दोनों में श्रेष्ठ कौन-सा है ? भगवान श्रीकृष्ण ने फिर बतलाया—'ये दोनों ही मार्ग श्रेष्ठ एवं कल्याण-कारी हैं, किन्तु बिना मन को वश में किये संन्यास की साधना कठिन है, इसलिये कर्मयोग ही सरल और उपादेय है। कर्म-

---

आरम्भ हो गया है', अतः सबने अपने-अपने शंख और बाजे जोर-जोर से बजाये :

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥१/१२॥
ततः शाङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमूलोऽभवत् ॥१/१३॥

तब पाण्डव वीरों और सैनिकों ने भी युद्ध का आरम्भ समझकर अपने-अपने शंख जोर से फूंके। उनकी ध्वनि इतनी भयंकर थी कि उससे पृथ्वी और आकाश गूंजने लगे, कौरवों का हृदय विदीर्ण हो गया, इससे दुर्योधन का भय व्यक्त हो जाता है।

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१/१९॥

उधर वीर अर्जुन कौरवों की सेना के मतभेद और हीन मनोबल को पहचानता था और अपने को अद्वितीय धनुर्धर मानता था। उसका अनु-मान था कि कौरव सेना को अल्पकाल में ही पराजित कर दिया जायेगा। इसी गर्व से फूलकर उसने भगवान श्रीकृष्ण से अपने रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा करने को कहा :

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥१/२१॥

फल की आसक्ति छोड़कर किया हुआ कर्म ही कल्याण का पहला सोपान है। इसे प्राप्त कर मानव निरन्तर आगे बढ़ता रहता है और अनासक्त होने से कर्म-बन्धन से छूट जाता है। वस्तुतः कर्मयोग और संन्यास में कोई अन्तर नहीं है। दोनों का गन्तव्य एक ही है। एक की सिद्धि से दूसरे की सिद्धि होती है। केवल इतना ही रहस्य है कि आसक्ति-त्याग के बिना संन्यास की प्राप्ति कठिन है और आसक्ति-त्याग से वह सुलभ है, क्योंकि निष्काम भाव से कर्म करने वाला व्यक्ति मन को निर्मल करके सभी प्राणियों में आत्मा की एकता को देखता है। किसी भी फल में आसक्त नहीं रहता, अतः जल में कमल की तरह निर्लिप्त होता है, जिससे वह कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाता

तत्वदर्शी भगवान श्रीकृष्ण ने पहचान लिया कि जबतक अर्जुन का यह प्रबल गर्व गलित नहीं होगा तबतक विजय की सम्भावना नहीं है। इसलिए उन्होंने रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कर दिया और कहा—'युद्ध के लिए एकत्रित विजय आकांक्षी भीष्म, द्रोण आदि प्रमुख वीरों को देखो ?'

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥१/२५॥

यहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को पार्थ नाम से सम्बोधित किया है, जिसका अर्थ यद्यपि पृथा या कुन्ती का पुत्र है, पर इसका संकेत पार्थिव या मिट्टी के पुतले की ओर है। वस्तुतः गीता का उपदेश सत्य स्वरूप, परमगुरु अविनाशी भगवान के द्वारा मानव-समुदाय के प्रतीक प्रतिनिधि रूप अर्जुन को सुनाया गया है। इसमें प्रत्येक मानव को जीवन-संघर्ष में कर्तव्य के प्रति सचेत रहने के लिये उद्बोधित किया गया है।

अर्जुन ने जब कौरव सेना में बल और बुद्धि से परिपूर्ण भीष्म, द्रोण आदि अनेक योद्धाओं को सशस्त्र हो युद्ध के लिए उद्यत देखा, तो उसका हृदय भय से काँप उठा। उसका आत्म-विश्वास जाता रहा। निश्चयात्मक शक्ति नष्ट हो गई। अज्ञान विवश होने से भ्रांत निर्णय पर पहुँच गया। कायरता का प्रभाव होने से रण-भूमि से विमुख होने की सोचने लगा। इस विषम स्थिति में भगवान श्रीकृष्ण की अनुमति अपेक्षित थी। उसे

है। केवल अग्नि और कर्म को छोड़ने से ही कोई संन्यासी नहीं हो जाता। जब तक कर्मफल की इच्छा, वासना को कोई नहीं छोड़ता, तब तक संन्यास-धर्म की प्राप्ति नहीं होती, अतः अनासक्तिपूर्वक कर्म करना ही सर्वोत्तम है।'

अर्जुन फिर शंका करता है कि मन को वश में किये बिना आसक्ति छोड़ना भी संभव नहीं है और मन को वश में करना बहुत कठिन है, क्योंकि मन अत्यन्त चंचल है, किसी प्रकार भी वश में आता ही नहीं। तब भगवान श्रीकृष्ण ने फिर समझाया :

यद्यपि मन बहुत चंचल है, किन्तु अभ्यास और विषयों में विरक्ति होने से शनैः-शनैः मन को संयत किया जा सकता है, और इसका उपाय है भगवान की—मेरी भक्ति। भक्त अपने

विदित था कि भगवान श्रीकृष्ण का पाण्डवों पर असीम प्रभाव है। वे जो सम्मति देंगे, वह सभी को मान्य होगी। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण को अपने मत के अनुकूल करने के लिए उसने शकुन, उच्चकोटि के त्याग, कुलक्षय के दोष और अपनी आध्यात्मिक भावना की बहुत-सी बातें कहीं, पर भगवान श्रीकृष्ण कुछ नहीं बोले। भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन ने जो शब्द प्रयोग किये, उससे स्पष्ट प्रकट होता है कि अर्जुन रणभूमि से विमुख होना चाहता था। जैसे निमित्त शब्द के अर्थ पर विचार किया जाये तो यहाँ निमित्त का अर्थ शकुन, दैव ही उपयुक्त मालूम होता है, इसलिये अर्जुन उन्हें विपरीत कहता है :

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥१/३१॥

(क) इस नर हत्या के भयानक परिमाणों को सोचकर मैं पृथ्वी के राज्य की तो बात ही क्या, त्रैलोक्य के राज्य का भी त्याग कर दूँगा।

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥१/३२॥

(ख) कौरव तो शक्ति के मद और राज्य के लोभ में इतने अन्धे हो गये हैं, उनकी बुद्धि पर अज्ञान का आवरण छा गया है, उन्हें वंश-विध्वंस के परिणाम का कुछ भी ज्ञान नहीं है, ऐसी दशा में पाण्डवों को ही रण-का त्याग कर अपकीर्ति सहन करनी चाहिए :

सारे कर्म मेरे लिए करता है। किसी भी कर्म से अपना संबंध नहीं रखता है, तो अनासक्ति योग स्वयं-सिद्ध हो जाता है और कर्मफल की इच्छा नहीं रहती तो मन वश में होने लगता है।

भक्त जो कुछ भी सोचे, पीवे, चले, फिरे, बोले, गावे, नाचे, कूदे, सभी कर्म मेरे लिए करे। सब मुझे सौंप दे तो उसके योगक्षेम की चिन्ता मैं करता हूँ। मेरी उपासना-भक्ति के लिए किसी विशेष साधन-सामग्री की आवश्यकता नहीं है। जो केवल पत्र, पुष्प, फल या जल मात्र से मेरी उपासना करता है, उस पर मैं प्रसन्न हो जाता हूँ, किन्तु वह श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मन लगाकर करनी चाहिए, तभी सिद्धि मिलती है। जब मन तो कहीं और रहता है, केवल प्रदर्शन के लिए कोई पूजा-जप करता है, तो सफलता नहीं मिलती। मेरी भक्ति के लिए मन, वचन और

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥१/३८॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥१/३९॥

(ग) युद्ध में युवकों की मृत्यु होने से स्त्रियों पर अधर्म का प्रभाव हो जायेगा। परिणामस्वरूप वर्णसंकर सन्तान होने से पितरों को पानी भी नहीं मिलेगा, सामाजिक और धार्मिक परम्परा की सारी व्यवस्था नष्ट हो जावेगी और इसका कारण हम लोगों को माना जायेगा।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥१/४१॥
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥१/४२॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥१/४३॥

यह सुनकर भी भगवान श्रीकृष्ण ने कोई उत्तर नहीं दिया। अर्जुन ने सोचा, भगवान को सब प्रकार समझाने पर भी ये मौन होकर बैठे हैं। मालूम होता है, यह युद्ध तो हमारे गले आ पड़ा है। फिर भी भगवान को प्रभावित करने के लिए अन्त में वह बोला, मैं युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊँगा,

कर्म से शुद्ध आचरण करते हुए मेरी शरण में आना परम आवश्यक है। कोई भी आसुरी भाव सम्पन्न दुराचारी व्यक्ति मेरी शरण में नहीं आ सकता है अथवा वह आता है तो तत्काल उसकी दुर्भावना समाप्त हो जाती है, प्रत्युत दैवी भावना-परायण, सदाचारी श्रद्धालु व्यक्ति ही मेरी शरण में आते हैं। वे चार प्रकार के हैं: आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। ये चारों ही अनन्य भाव से मेरी उपासना करने वाले मुझे प्रिय हैं। इनमें ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है—जो सर्वत्र मुझे ही देखता है। प्राणी मात्र को मेरा ही रूप समझकर सम्मान करता है, क्योंकि वह जानता है कि इस संसार में मैं ही व्याप्त हूँ और यह सकल संसार मुझमें व्याप्त है।'

अर्जुन ने जब इसमें कुछ सन्देह व्यक्त किया तो श्रीकृष्ण

चाहे कौरव मुझ निःशस्त्र को मार डालें। यह मेरे लिये अधिक क्षेमकारक होगा।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥१/४६॥

यहाँ अर्जुन ने 'क्षेम' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ है प्राप्त की रक्षा करना अर्थात् शारीरिक कल्याण। मृत्यु के बाद के कल्याण को 'मोक्ष' कहते हैं। 'क्षेम' शब्द के प्रयोग से व्यक्त होता है कि अर्जुन युद्ध से भागकर अपने को बचाना चाहता है। यही स्थिति सांसारिक संघर्ष में घबराये हुए मानव की होती है। जब अर्जुन भय से आक्रान्त हो गया, सारे शरीर में पसीना आ गया, नेत्रों में जल भर आया और वह धनुष और बाण छोड़कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया, तब भगवान श्रीकृष्ण ने उसकी विषम दशा देखकर डाँटते हुए कहा, यह अनार्यों के योग्य, अपकीर्ति फैलाने वाले, स्वर्ग न प्राप्त करने योग्य दूषित विचार तुम्हें कैसे प्राप्त हुए:

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२/२॥

यह नपुंसक विचार तुम्हारे योग्य नहीं, हृदय की दुर्बलता को दूर करो और युद्ध करो।

भगवान ने उसे अपने विराट रूप का दर्शन कराया, जिसे देख कर अर्जुन चकित हुआ, गद्‌गद कण्ठ से भगवान की स्तुति करने लगा। तब उन्होंने पुनः संक्षिप्त रूप धारण किया और बताने लगे :

"अर्जुन, तुमने जो रूप मेरा देखा है, वह किसी प्रयत्न से देखा नहीं जा सकता है। तपस्या, दान, यज्ञ आदि से भी यह देखने को नहीं मिलता। केवल परम निष्ठा से जो मेरी भक्ति करता है, सब प्राणियों को मेरा रूप समझकर उनका उपकार करता है, उसे ही इसका दर्शन हो सकता है। जो मान-अपमान, सुख-दुःख, राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि द्वंद्वों में सदा समभाव रखता है, सभी प्राणियों से प्रेम करता है, किसी से ईर्ष्या नहीं करता हैं, किसी का बुरा नहीं चाहता है, वही मेरा भक्त है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।"

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ।।२/३।।

अर्जुन ने भगवान को फिर समझाने की चेष्टा की और कहा कि भीष्म, द्रोण, जो पूजा के योग्य हैं, उनसे मैं युद्ध कैसे कर सकता हूँ? अंत में अर्जुन स्वीकार करता है कि कायरता का प्रभाव मेरे मन पर आच्छादित है, इसलिए अब मैं आपका शिष्य और शरणागत हूँ। मुझे सतपथ दिखलाइये।

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ।।२/४
गुरूनहत्वा हि महानुभावन् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुन्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ।।२/५।।
कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां
त्वां प्रपन्नम् ।।२/७।।

भगवान श्रीकृष्ण ने उसे समझाया कि शरीर का मोह मत करो।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।।२/३७।।

इस भक्ति-योग के विवेचन में नवधा भक्ति का कोई वर्णन नहीं मिलता। प्रत्युत सन्तों के जो लक्षण अन्यत्र महापुरुषों ने बताये हैं, भगवान श्रीकृष्ण ने यहाँ भक्तों के वही लक्षण वर्णन किये हैं। यद्यपि इस वर्णन में नवधा भक्ति के भी सारे लक्षण आ जाते हैं, तथापि भक्ति के नवधा रूप में निरूपण का कहीं निर्देश नहीं है।

आगे ज्ञानयोग का विवेचन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने बताया :

"कर्म, भक्ति, ज्ञान का साधन यह शरीर ही क्षेत्र है और इसे जानने वाला क्षेत्रज्ञ होता है। पाँच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियां, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध एवं मन, बुद्धि, अहंकार

सुखदु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।२/३८।।

भगवान ने पुन: सोचा, कदाचित भीष्म, द्रोण, कर्ण और जयद्रथ की रण में तत्परता से अर्जुन का भय यदि नष्ट नहीं हुआ तो उन्होंने उसे एकादश अध्याय में स्पष्ट करके कहा :

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व, जित्वाशत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहता: पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।।११/३३।।
द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ।।११/३४।।

मैंने भीष्म, द्रोण, जयद्रथ और कर्ण को पहले से ही मार डाला है, इसलिए इससे भय करने की कोई आवश्यकता नहीं। तू तो केवल निमित्त मात्र ही होगा।

जब अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लिया और अपनी आँखों से भी देख लिया :

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्रा: सर्वे सहैवावनिपालसंघै:।
भीष्मो द्रोण: सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यै: ।।११/२६।।

तब वह अंत में बोला :

नष्टो मोह: स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देह: करिष्ये वचनं तव ।।१८/७३।।

और प्रकृति क्षेत्र है तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दु:ख आदि इसके विकार हैं। क्षेत्र अनेक हैं और क्षेत्रज्ञ मैं एक ही हूँ। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ—शरीर, आत्मा का ज्ञान ही सम्पूर्ण ज्ञान है। साधारणतः शरीर आदि विकारी क्षेत्र है और अविकार, अगुण आत्मा ही क्षेत्रज्ञ है, इनको ठीक प्रकार से जानना ही ज्ञान है। इस ज्ञान के साधन निम्न हैं :

"गर्व और पाखंड का अभाव, अहिंसा, क्षमा, मन की सरलता, श्रद्धाभक्ति सहित गुरु की उपासना, पवित्रता, अन्तःकरण की स्थिरता, मन का दमन, विषयों पे विरक्ति अहंकारहीनता, द्वंद्वों में समता, अनासक्ति, ममता का अभाव, इष्ट-अनिष्ट में समता, एकान्त-सेवन, भीड़-भाड़ में अरुचि और मुझ

मोह और संदेह किस कारण से था, यही विचारणीय विषय है। पहले अध्याय में अर्जुन ने 'क्षेम' शब्द का प्रयोग किया, इससे अब स्पष्ट प्रकट होता है कि उसका मोह शरीर में था और उसकी रक्षा के लिए ही वह युद्ध-भूमि से विरक्त होना चाहता था। उसे संदेह था कि भीष्म, द्रोण, कर्ण और जयद्रथ पर मैं युद्ध में विजय नहीं प्राप्त कर सकता। इन्हीं दोनों द्विविधाओं का निवारण भगवान श्रीकृष्ण ने एकादश अध्याय में कर दिया, इसलिए उसका शारीरिक रक्षा का मोह और युद्ध की सफलता का संदेह जाता रहा और वह पूर्ववत दृढ़ता से स्थित हो गया।

जब मनुष्य कठिनाइयों से भयभीत हो जाता है, तब उसे उनसे बचने के लिए संन्यास का स्मरण होने लगता है। अर्जुन के मन में संदेह होने लगा था, हम जीतेंगे या कौरव? वह भय के कारण बुद्धि की निश्चयात्मक शक्ति खो बैठा था। इस समय क्या उचित है और क्या अनुचित है, यह भी नहीं सोच पा रहा था, अतः सन्मार्ग दिखलाने के उद्देश्य से अब वह भगवान की शरण में गया। श्रीमद्भागवत में वर्णित गजेन्द्र उपाख्यान में जिस प्रकार गजेन्द्र जब तक अपने बल के आश्रय पर ग्राह से लड़ रहा था और गर्व से उसको तुच्छ समझता था, तब तक न तो उसे भगवान की स्मृति हुई और न भगवान ही आये। पर जब चारों ओर से असमर्थ हो गया; तब एकमात्र भगवान को ही अवलम्ब समझकर आर्त्त होकर पुकारा तो तत्काल उसका उद्धार हुआ।

परमेश्वर में अनन्य भक्ति, अध्यात्म ज्ञान में नित्य स्थित संसार के परमत्व परमात्मा को सर्वत्र देखना, ये ही ज्ञान के साधन हैं। इनसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। इनसे विपरीत मार्ग अज्ञान है। सत असत से परे, अव्यय, अनादि, अनन्त ब्रह्म मेरा ही स्वरूप है, जिसके ज्ञान से अमृतत्व की उपलब्धि होती है। यों तो प्रकृति पुरुष दोनों ही अनादि है, प्रकृति जड़ विकार-मयी है, पुरुष चेतन निर्गुण है; प्रकृति कर्मकर्त्री है, पुरुष अकर्ता है—किसी कर्म से लिप्त नहीं है, द्रष्टा है, प्रकाशक है, अविनाशी है। प्रकृति माता है, पुरुष पिता है। सत्व, रज, तम प्रकृति के गुण हैं, इनके द्वारा प्रकृति चेतन पुरुष के आश्रय से समस्त जीव-जगत् का निर्माण करती है। गुणों के प्रभाव से जीव

जब तक मानव अपने गर्व-अभिमान के कारण अपने बल से विपत्तियों का सामना करना चाहता है, तब तक उसे भगवान की स्मृति नहीं आती। पर जब विपत्तियाँ मानव को जकड़ लेती हैं और उन पर विजय पाने में वह अपने को असमर्थ पाता है, तब वह सारे दोषों को त्यागकर, क्रूर वासना और अहं-भाव से रहित शुद्ध,अंतःकरण से भगवान की शरण में जाता है। शरणागत को भगवान उबार लेते हैं और भक्त का उद्धार कर देते हैं। यही गीता का आध्यात्मिक अभिप्राय है। विपत्तिरूपी भव-सागर को भगवान की कृपा से मानव सहज ही पार कर लेता है।

भगवान श्रीकृष्ण स्वयं सच्चिदानन्द हैं, अतः सदा उपास्य हैं। श्री राम की तरह अनुकरणीय नहीं। श्रीकृष्ण का उदात्त चरित्र अलौकिक है, अनुपम है। महाभारत के युद्ध का उन्होंने यथेच्छ संचालन किया, किन्तु किसी भी शस्त्र को हाथ नहीं लगाया। साधु परित्राण, दुष्कृत विनाश और धर्म-संस्थापन उनका ध्येय था, अतः साधन को महत्व न देकर पूर्णतः अनासक्त रहते हुए उन्होंने साध्य को सिद्ध किया। प्रारम्भ में ही अर्जुन का मोहभंग, अज्ञान-निवारण करने के लिए गीता का उपदेश दिया, जिसमें कर्म, भक्ति, ज्ञान का विवेचन करते हुए उन्होंने अर्जुन को कर्तव्य की शिक्षा दे कर्म में प्रेरित किया। गीता में कुल अठारह अध्याय हैं, जिनमें छह-छह अध्यायों में क्रमशः कर्म, भक्ति, ज्ञान का विवेचन है। यद्यपि सम्पूर्ण गीता में ही तीनों विषयों का समन्वित उपदेश है, तथापि विद्वानों

विविध योनि-कर्मों को प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त आत्म-तत्व को जो जान लेता है, वह अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।

'यह संसार अश्वत्थ वृक्ष रूप है, जिसका मूल ऊपर और शाखा नीचे है, वेद इसके पत्ते हैं, तीनों गुणों से इसकी बृद्धि हुई है। अनासक्ति रूपी शस्त्र से इस दोषरूपी कारण को काटकर उस परम पद का अन्वेषण करना आवश्यक है, जहाँ जाकर जीव वापस नहीं आता।'

'क्षर नाशवान सब प्राणी हैं और अक्षर इनमें साक्षी रूप से स्थित आत्मा है। इन दो जनों से उत्कृष्ट परमात्मा है। वह मैं हूँ।'

फिर सत्व, रज, तम के विविध स्वभाव गुण कर्मों का

ने उपर्युक्त तीनों कांडों में इसे विभाजित किया है।

वस्तुतः गीता दैनिक जीवन के लिये भी अत्यन्त शिक्षाप्रद और उपयोगी है, क्योंकि यह हमें जीवन की सफलता के लिये, आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त करने के हेतु दैनिक जीवन को किस प्रकार ढाला जाये, स्पष्ट शब्दों में बताती है, आहार-विहार-सम्बन्धी आवश्यक निर्देश देती है तथा यह भी बताती है कि किस प्रकार दुर्व्यसनों से दूर रहा जाये, ताकि हम जीवन में सतोगुण का समावेश कर सकें। यथा :

युक्ताहारविहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥६/१७॥
आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥१७/८॥
अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४/४०॥
दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥१७/२०॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥१७/२१॥
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥१७/२२॥

शास्त्रीय विवेचन करते हुए अन्त में भगवान श्रीकृष्ण ने बताया है :

'मेरे आश्रय में जो रहता है, वह मेरी कृपा से शाश्वत पद प्राप्त करता है। इसलिए सबका आश्रय छोड़कर बुद्धियोग से मुझ में चित्त लगाओ, मेरे परायण हो जाओ, जिससे तुम सब संकटों को पार कर लोगे। यदि अहंकार से मेरा कथन नहीं मानोगे तो विनष्ट हो जाओगे।

'अन्त में मेरी यह परम रहस्यमयी वाणी सुनो—अन्तर्यामी, सर्वव्यापक ईश्वर मेरे अतिरिक्त कोई नहीं है, मैं ही हूँ, इसलिए मेरी भक्ति करो, मुझे प्रणाम करो, जिससे तुम मुझे प्राप्त हो सकोगे। सबको भूलकर केवल मेरी शरण में आओ, मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूंगा। किसी प्रकार का चिन्ता-शोक मत करो।'

यह सुनकर अर्जुन सर्वात्मना प्रणव होकर बोला—'देव, मेरा मोह-अज्ञान दूर हो गया, अब कोई संशय हृदय में नहीं है। पूर्ण बोध, स्मृति प्राप्त हो गई। अब आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।'

यों कहकर अर्जुन ने धनुष उठा लिया और युद्ध में तत्पर हो गया।

इस अद्वितीय धार्मिक ग्रंथ के पाठ मात्र से ही अथवा दार्शनिक पक्ष पर तार्किक विवेचन से जीवन में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता है, अपितु इस ग्रंथरत्न में वर्णित सिद्धान्तों का आचरण करने से ही यह सम्भव हो सकता है।

गीता जो पद्मनाभि भगवान की वाणी है। उसमें ही सारे शास्त्रों का सार भरा हुआ है, अतः उसी का श्रवण, पठन-पाठन और धारण करने से मनुष्य का कल्याण हो जाता है। गीता, गंगा, गायत्री और गोविन्द ये, 'ग'कार युक्त चारों नाम ही अत्यन्त पावन है, अतः इन्हें मनुष्य को हृदय में रखना चाहिये।

भीष्म

संजय ने कहा—'राजन् ! गीता ज्ञान सुन लेने के पश्चात वीर अर्जुन ने युद्ध करने के हेतु शस्त्र धारण कर लिये। अर्जुन को शस्त्रों से युक्त देखकर पाण्डव और उनके सहायक योद्धा बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर राजा युधिष्ठिर ने अपने कवच और आयुधों को नीचे डाल दिया और रथ से उतरकर वे शीघ्रता से पैदल ही हाथ जोड़े भीष्म पितामह के पास जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने पितामह के चरणों में प्रणाम किया और उनसे युद्ध करने की आज्ञा और आशीर्वाद माँगे।

पितामह बोले—'पुत्र ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ और तुम्हें युद्ध करने की आज्ञा देता हूँ। तुम विजयी होओगे और तुम्हारी सर्व अभिलाषा पूर्ण होगी। मेरा भरण-पोषण कौरवों ने किया है, अतः इच्छा न रहते हुए भी मैं युद्ध में उन्हीं की सहायता करूँगा।'

युधिष्ठिर ने कहा—'पितामह ! आप मेरा हित करने हेतु मुझे उचित आज्ञा दें। आप तो किसीसे पराजित होने वाले नहीं हैं, फिर मैं आपको युद्ध में कैसे जीत सकूँगा ?'

भीष्म पितामह बोले—'वत्स ! समर भूमि में मुझे जीतने वाला कोई भी शूर इस समय मैं नहीं देखता हूँ, किन्तु समय आने पर मैं तुम्हें कोई युक्ति बता दूँगा।'

तदनन्तर राजा युधिष्ठिर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और मामा शल्य के पास गये और उन्हें प्रणाम कर उनसे भी युद्ध करने की आज्ञा माँगी। उन सब ने भी युधिष्ठिर को अनेक आशीर्वाद दिये और कहा—'राजन् ! तुम्हारी विजय निश्चित है, क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण तुम्हारे साथी हैं। जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है।'

द्रोणाचार्य ने कहा—'कुन्तीकुमार ! जब तक मैं युद्ध करूँगा, तब तक तुम्हारी विजय नहीं हो सकती, अतः ऐसा यत्न करो,

जिससे शीघ्र मेरी मृत्यु हो जाये।'

संजय ने कहा—'युधिष्ठिर के पीछे-पीछे अन्य पाण्डव और भगवान श्रीकृष्ण भी चल रहे थे। उन सबने भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और शल्य को प्रणाम किया और उनसे अनेक आशीर्वाद प्राप्त किये।

गुरुजनों से युद्ध करने की आज्ञा और आशीर्वाद प्राप्त करने के पश्चात राजा युधिष्ठिर ने दोनों सेनाओं के मध्य खड़े होकर गम्भीर वाणी में कहा—'जो वीर हमारे पक्ष में आना चाहें, उन्हें मैं स्वीकार करूँगा। उसी समय आपका पुत्र युयुत्सु पाण्डवों के पक्ष में चला गया। वह सदा दुर्योधन के पाप-कर्मों की निन्दा किया करता था, अतः पाण्डवों से सम्मान पाकर उनके साथ मिल गया। जब युधिष्ठिर पुनः अपने रथ पर बैठे, तब कौरव-पाण्डव सेना ने भेरी, शंख, मृदंग और ढोल बजाने आरम्भ कर दिये और भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। कौरव सेना के अग्र-भाग में भीष्म थे और पाण्डवों की सेना में भीम। राजन्! कौरवों के कुटिल आचरणों का स्मरण कर पाण्डव रोष में भर गये और युद्ध में विजयी होने के लिये विशेष परिश्रम करने लगे। कुछ ही समय में भीष्म अर्जुन से, सात्यकि कृतवर्मा से, अभिमन्यु कौशल नरेश बृहद्वल से, दुर्योधन भीमसेन से, दुःशासन नकुल से, सहदेव दुर्मुख से, युधिष्ठिर शल्य से, धृष्टद्युम्न द्रोणा-चार्य से भिड़ गये। इसी प्रकार अन्य कौरव पाण्डव वीर एक-दूसरे से लड़ रहे थे।'

संजय ने कहा—'राजन्! जैसा देवासुर संग्राम हुआ था, उसी प्रकार कुरुक्षेत्र में कौरवों और पाण्डवों में भयंकर युद्ध होने लगा। यह भीषण युद्ध शुक्र और मंगल के संघर्ष की भाँति था। युद्ध में योद्धा इतने उन्मत्त हो गये थे कि कोई किसी को पहचानता ही नहीं था। कुछ ही समय पश्चात रणभूमि सैनिक-शवों से आच्छादित हो गई। मृतक हाथी, घोड़े, टूटे रथों से कुरुक्षेत्र की रणभूमि भयंकर दीखने लगी। कितने ही हाथी-

घोड़े अंग-विदीर्ण होने के कारण अत्यन्त पीड़ित हो घोर चीत्कार कर रहे थे। रणभूमि में जहाँ-तहाँ गिरे हुए अगणित घायल पुरुष अपने कुटुम्बीजनों को पुकार रहे थे। लहू-लुहान होकर कष्ट पाते हुए वे सैनिक युद्ध की निन्दा कर रहे थे। जब अत्यन्त भयंकर दिन का पूर्व भाग प्राय: व्यतीत हो गया, तब दुर्मुख, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य और विविंशति की सहायता से भीष्मजी ने पाण्डव सेना में प्रवेश किया। भीष्म रथ के मार्गों पर ताण्डव नृत्य-सा कर रहे थे। यह देख अभिमन्यु ने अत्यन्त कुपित हो भीष्म पितामह पर आक्रमण कर उन्हें और उनके सहायकों को घायल कर दिया। अर्जुन कुमार की इस सफलता से प्रभावित हो भीष्म आदि सभी योद्धाओं ने उन्हें अर्जुन के समान शक्तिशाली समझा। अभिमन्यु को कई योद्धाओं से घिरा देख विराट कुमार उत्तर ने राजा शल्य पर आक्रमण किया, किन्तु द्वंद्व-युद्ध में वह राजा शल्य से मारा गया। उत्तर के मारे जाने पर महारथी विराट ने शूरवीर श्वेत को आगे कर भीष्म पर धावा बोल दिया। इस युद्ध में शान्तनुनन्दन भीष्म ने बहुत से रथों को रथियों से शून्य कर दिया। इसी प्रकार विराट पुत्र श्वेत भी कौरवों का संहार कर रहे थे। श्वेत ने भीष्म को युद्ध में आगे बढ़ने से रोक दिया, किन्तु महाबली भीष्म ने ब्रह्मास्त्र द्वारा श्वेत को मार डाला। सेनापति श्वेत को भीष्म के हाथ से मरा देख शंख ने भीष्म पर धावा किया, किन्तु पाण्डव सेना के बहुत से सैनिक मारे गये। जब सूर्य अस्ताचल को चले गये, तब पाण्डवों ने अपनी सेना को युद्ध-क्षेत्र से पीछे हटा लिया।'

प्रथम दिन के युद्ध में भीष्मपितामह का पराक्रम देख धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ अत्यन्त शोक से संतप्त हो भगवान श्रीकृष्ण से बोले—'भगवन्! महान धनुर्धर और अत्यन्त पराक्रमी पितामह मेरी सेना को युद्ध में इस प्रकार दग्ध कर रहे हैं, जैसे ग्रीष्म ऋतु में आग सूखे घास-फूस को जला

डालती है। जैसे अग्नि देव प्रज्वलित होकर हविष्य की आहुति ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार भीष्म अपनी वाण रूपी जिह्वा से मेरी सेना को चाटते जा रहे हैं। महाबली पुरुषसिंह भीष्म को देख मेरी सेना भागने लगती है। यमराज, इन्द्र और कुबेर को भी युद्ध में जीतना सम्भव है पर पितामह को जीतना शक्य हो रहा है। केशव! ऐसी दशा में अपनी दुर्बलता के कारण, भीष्म रूपी अगाध जलराशि में मैं डूबा जा रहा हूँ। श्रीकृष्ण! पितामह दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता हैं, अतः वे मेरी सारी सेना का संहार कर डालेंगे। जैसे पतंगे मरने के लिये ही जलती आग में कूद पड़ते हैं, उसी प्रकार मेरे सैनिक अपने विनाश के लिये भीष्म के समीप जाते हैं। माधव! जीवन बच जाने पर मैं दुष्कर तपस्या करूँगा, परन्तु इन मित्रों की व्यर्थ हत्या नहीं चाहता हूँ।'

महामना युधिष्ठिर को शोक से व्याकुल देख गोविन्द ने कहा—'भरत श्रेष्ठ! आप शोक न करें। आपके भाई योग्य और विख्यात धनुर्धर हैं। आपके सहायक राजा भी बलिष्ठ और आपके भक्त हैं। महाबाहो! निश्चय ही शिखण्डी भीष्म का वध कर डालेगा।'

भगवान श्रीकृष्ण के हितकर वचन सुन पाण्डव सूर्योदय की प्रतीक्षा करते हुए युद्ध के लिये पुनः कवच आदि से सुसज्जित हो गये। दूसरे दिन कुरुक्षेत्र में पहुँच पाण्डवों ने भयंकर युद्ध आरम्भ कर दिया। कौरवों ने प्राणों का मोह छोड़ पाण्डवों पर आक्रमण किया। कुरुकुल के प्रभावशाली वृद्ध पितामह पर वीर अर्जुन ने धावा बोल दिया और दोनों में भयंकर युद्ध होने लगा। वीर अर्जुन ने भीष्म को वाणों से पीड़ित कर कौरव सेना में प्रवेश किया। भीष्म जब कुछ स्वस्थ हुए तब वे अश्वत्थामा, दुर्योधन और विकर्ण की सहायता से वीर अर्जुन से पुनः युद्ध करने लगे। वे दोनों ही शत्रुओं का दमन करने वाले तथा अत्यन्त बलवान थे। इसलिये वे दोनों वीर एक-दूसरे का वध करने के

लिये पूरा प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु घातक प्रहार करने में सफल न हो सके। जैसे धर्मनिष्ठ पुरुष में कोई पाप नहीं देखा जाता, उसी प्रकार रणक्षेत्र में उन दोनों योद्धाओं में रण करने की त्रुटि नहीं दिखायी देती थी। राजन्! जहाँ एक ओर इस प्रकार महाबली भीष्म और अजेय अर्जुन में युद्ध चल रहा था, वहीं दूसरी ओर द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न में भयंकर मुठभेड़ हो रही थी। दुर्योधन की आज्ञा पाकर सेनापति कलिंगराज भीम से युद्ध करने लगे। निषाद राजपुत्र केतुमान और श्रुतायु भी कलिंगराज की सहायता करने भीम से भिड़ गये। महाधनुर्धर कलिंगराज और उनका महारथी पुत्र शुकदेव भीमसेन पर वाणों से प्रहार करने लगे पर भीम ने शुकदेव, कलिंगराज, भानुमान, राजकुमार केतुमान को कुछ ही समय में धराशायी कर दिया।

जब अत्यधिक कौरव सेना और सेनापति भीम के हाथों मारे गये तब दुर्योधन ने भीष्म से कहा—'पितामह! यदि आप और गुरु द्रोणाचार्य पाण्डवों के साथ अपनी पूर्ण शक्ति लगा कर युद्ध नहीं करना चाहते हैं, तो युद्ध आरम्भ होने से पहले ही अपना निर्णय मुझे बता देना चाहिये था। मैं उस अवस्था में कर्ण के साथ अपने कर्तव्य का निश्चय कर लेता। यदि युद्ध में आप दोनों को मेरा परित्याग करना उचित नहीं लगता हो तो आप और गुरु द्रोणाचार्य अपने योग्य पराक्रम प्रकट कीजिये।'

भीष्म बोले—'राजन्! मैंने तुम्हें अनेक बार सत्य और हित की बात बतायी है कि पाण्डवों को इन्द्र भी जीत नहीं सकते। जो भी मुझ वृद्ध के द्वारा किया जा सकता है, उसे मैं अवश्य यथाशक्ति करूँगा।'

तीसरे दिन जब युद्ध आरम्भ हुआ तब भीष्म पितामह ने पाण्डव सेना पर धावा बोल दिया। उन्होंने अनेक आयुधों द्वारा पाण्डव वीरों को यम के घाट पहुँचा दिया। यह देख वीर अर्जुन उनसे युद्ध करने लगे। महाबली भीष्म ने अपने वाणों द्वारा अर्जुन के रथ को आच्छादित कर दिया, पर भगवान

श्रीकृष्ण ने घोड़ों को हाँकने की कला से अपने उत्तम कौशल का परिचय दिखाया। महाबाहु श्रीकृष्ण ने भीष्म का पराक्रम देख विचार किया कि अर्जुन तो संकोच से साधारण प्रहार कर रहा है और भीष्म भीषण युद्ध कर रहे हैं। वे पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर के वीरों को चुन-चुनकर मार रहे हैं। भीष्म ने युधिष्ठिर की सेना में प्रलय काल का-सा दृश्य उपस्थित कर दिया है। भगवान श्रीकृष्ण उसे सहन न कर सके। उन्होंने विचार किया कि यदि भीष्म को रोका न जायेगा तो वे कुछ ही समय में युधिष्ठिर की सेना का अस्तित्व मिटा देंगे। अर्जुन भीष्म के प्रति श्रद्धा भाव रखने के कारण कर्तव्य को नहीं समझ रहा है, अत: मैं स्वयं ही भीष्म को मार डालता हूँ। ऐसा निश्चय कर महानुभाव श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र का स्मरण किया और चक्र के आते ही वे भीष्म की ओर बड़े वेग से दौड़े, किन्तु शान्तनुनन्दन भीष्म तनिक भी विचलित नहीं हुए।'

उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण का आह्वान किया—'देवेश्वर ! आपको मेरा नमस्कार है। सबको शरण देने वाले लोकनाथ ! आज आप युद्ध भूमि में मुझे मार डालिये। श्रीकृष्ण ! आपके हाथ से यदि मैं मारा जाऊँगा तो इहलोक और परलोक में मेरा कल्याण और गौरव हो जायेगा। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि भगवान श्रीकृष्ण को युद्ध-भूमि में अस्त्र लेने पड़ेंगे, उसे सत्य करने के लिये ही आपने यह रूप धारण कर अपने भक्त की प्रतिज्ञा की रक्षा की है। मैं आपका भक्त हूँ।'

भगवान श्रीकृष्ण को रोष में भरे हुए पितामह की ओर जाते देख अर्जुन भी शीघ्रता से रथ से कूद पड़े और भगवान के निकट जा अपनी दोनों भुजाओं से उनके चरण पकड़ लिये। अर्जुन ने उन्हें प्रणाम कर कहा—'हे केशव ! आप अपना क्रोध रोकिये। प्रभो ! आप ही पाण्डवों के परम आश्रय हैं। हे माधव ! अब मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कर्तव्य का पालन करूँगा। हे जनार्दन ! आपकी आज्ञा मिलने पर मैं कौरवों का अंत कर

डालूँगा। अर्जुन की यह प्रतिज्ञा और कर्तव्य का पालन करने का निश्चय सुन भगवान श्रीकृष्ण मन ही मन प्रसन्न हो गये और पुनः रथ पर जा बैठे। अर्जुन के गाण्डीव धनुष का घोष मेघ की गर्जना के समान आकाश तथा दिशाओं में फैल गया। अब वे अपने तीक्ष्ण बाणों से कौरव सेना और उनके योद्धाओं का भयंकर संहार करने लगे। तदनन्तर शस्त्रों के आघात से रुधिरलिप्त भीष्म, द्रोण, दुर्योधन तथा अन्य कौरव वीरों ने सूर्यदेव को अपनी किरणों को समेटते देख अपनी सेना को युद्ध-भूमि से लौटने की आज्ञा दी।

पुनः प्रातःकाल होने पर भीष्म पितामह कौरव वीरों के साथ युद्ध-भूमि में पाण्डव सेना पर आक्रमण करने के लिये प्रस्तुत हो गये। वीर अर्जुन ने उनका सामना करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण से अपना रथ आगे बढ़ाने को कहा। अर्जुन के रथ को देखते ही भीष्म पितामह ने उस पर बड़े वेग से आकमण कर दिया। जैसे भगवान सूर्य अन्धकारराशि को नष्ट कर देते हैं, वैसे ही महाबाहु अर्जुन ने पितामह के अस्त्रों को विफल कर दिया। अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन और शल्य के पुत्र से सुभद्राकुमार अभिमन्यु अकेला ही युद्ध कर रहा था। लक्ष बेधने, शौर्य प्रकट करने, गति से अस्त्र-ज्ञान प्रदर्शन में कोई भी अभिमन्यु की समानता न कर सका। दुर्योधन से प्रेरित हो त्रिगर्त तथा केकयों सहित मद्र देश के योद्धाओं ने धनुर्धर अर्जुन और वीर अभिमन्यु को घेर लिया। वीर अर्जुन और अभिमन्यु को शत्रुओं से घिरा देख सेनापति धृष्टद्युम्न, भीम, नकुल और सहदेव वाहिनी के साथ उनके पास उपस्थित हो गये। उन्होंने पौरव के पुत्र दमन, शल्य-पुत्र तथा मद्र-देश के अनेक योद्धाओं को मार डाला। महापराक्रमी भीमसेन ने कौरव-सेना का बड़ा संहार किया। उसके भय से कौरव इधर-उधर भागने लगे। जैसे आँधी बादलों को छिन्न-भिन्न कर देती है, वैसे ही भीमसेन कौरव सेना का संहार कर रहे थे। उन्होंने दुर्योधन के

छोटे भाई सुषेण, सुलोचन, वीरबाहु, भीम और भीमरथ को धराशायी कर दिया। उनका पुत्र घटोत्कच भी अब भीमसेन के पास आ पहुँचा। वह अपनी माया द्वारा कौरव योद्धाओं का संहार करने लगा। सूर्यास्त होने पर कौरवों ने अपनी सेना युद्ध-स्थल से हटा ली। अपने भाइयों के मारे जाने से राजा दुर्योधन अत्यन्त दीन हो आँखों से आँसू बहाता हुआ शोक और चिन्ता में निमग्न हो गया।

धृतराष्ट्र युद्ध का सारा विवरण सुनकर बोले—'संजय ! पाण्डवों का दुष्कर पराक्रम सुन मुझे बड़ा भय हो रहा है। विदुरजी ने जैसा कहा था, दैवयोग से सब वैसा ही दिखायी देता है। पाण्डव किस कारण से अवध्य हैं ? वे कौन-सा ज्ञान जानते हैं ? जैसे मनुष्य तैरकर महासागर को पार नहीं कर सकता, वैसे ही मैं इस दुःख का अन्त नहीं देखता हूँ।'

संजय ने कहा—'महाराज ! पाण्डवों से अपनी पराजय निश्चित है। वे न्यायपूर्वक युद्ध और जीवन-निर्वाह के सभी कार्य धर्मपूर्वक करते हैं। धर्म बल से सम्पन्न और दैवी शक्ति से युक्त वे महाबली एवं अवध्य विजयी हो रहे हैं। आपके दुरात्मा पुत्र सदा पापों में तत्पर रहते हैं। वे निर्दयी हैं, इसलिये अब युद्धस्थल में उन्हें पाप-कर्मों का अत्यन्त भयंकर फल प्राप्त हो रहा है। मैंने, महात्मा विदुर, भीष्म और द्रोण ने आपको संधि के लिये बार-बार कहा था, किन्तु जैसे मरणासन्न मनुष्य हितकारी औषध को त्याग देता है, उसी प्रकार आपने हम लोगों के कल्याणकारी वचनों को ठुकरा दिया।

पाँचवें दिन जब दोनों सेनाएँ रण स्थल में उपस्थित हो आपस में युद्ध करने लगी, तब भीष्मपितामह ने भीमसेन और द्रोणाचार्य ने शिखण्डी पर आक्रमण किया। भीमसेन की सहायता के लिये वीर अर्जुन आ पहुँचे, पर शिखण्डी द्रोणाचार्य से प्राण बचाकर भाग गया। कुछ ही समय में अन्य कौरव और पाण्डव वीरों में भी युद्ध होने लगा। भूरिश्रवा ने सात्यकि के

दस पुत्रों का वध कर डाला। इसी समय सूर्य अस्ताचल को चले गये तब पाण्डवों और कौरवों ने अपनी सेना को युद्ध-भूमि से हटा लिया। जब रात बीत गयी तब कौरव और पाण्डव पुनः युद्ध के लिये निकले। पाण्डवों ने कौरव सेना पर भयंकर आक्रमण किया। अब भीमसेन और दुर्योधन का घमासान युद्ध होने लगा। भीमसेन ने अपने बाणों द्वारा दुर्योधन का धनुष काट घोड़ों को यमलोक भेज उसे भी मूर्छित कर दिया। यह देख जयद्रथ और कृपाचार्य दुर्योधन को अपने रथ पर चढ़ा भीमसेन के सामने से हटाकर ले गये। विकर्ण ने अभिमन्यु पर आक्रमण किया, किन्तु थोड़ी ही देर में वह अभिमन्यु के हाथों घायल हो गया। नकुलपुत्र शतानी ने दुष्कर्ण को अपने बाणों से आहत कर पृथ्वी पर गिरा दिया, किन्तु कौरव दुष्कर्ण को अपने रथ पर बैठाकर युद्ध-स्थल से ले गये। पुनः सूर्यास्त होने पर कौरवों और पाण्डवों ने अपनी-अपनी सेना रणभूमि से हटा ली।

रात्रि में चिन्तामग्न दुर्योधन भीष्म के पास जाकर बोला—'पितामह! शूरवीर पाण्डव मेरी सेना को मारते और पीड़ा देते हैं। भीमसेन को कुपित देख मैं भय से व्याकुल हो जाता हूँ। मैं आपकी कृपा से पाण्डवों को मारना और उन पर विजय पाना चाहता हूँ।'

भीष्म पितामह ने कहा—'राजन्! पाण्डव और उनके साथी बल-पराक्रम में प्रचण्ड हैं। इन्हें शीघ्र पराजित नहीं किया जा सकता। हमारे साथी द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, विकर्ण, भगदत्त, शकुनि और अन्य शूरवीर तुम्हारे लिये युद्ध करने को तत्पर रहते हैं। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि ये सब मिलकर देवताओं को भी जीतने में समर्थ हैं, किन्तु सत्य तो यह है कि इन्द्र सहित देवता भी पाण्डवों को युद्ध में नहीं जीत सकते। एक तो पाण्डव देवराज इन्द्र के समान पराक्रमी है, दूसरे भगवान श्रीकृष्ण उनके सहायक हैं। इसलिये

विजय उनकी ही होगी। मैं अपने प्राणों की भी चिन्ता न कर पाण्डवों के साथ युद्ध करता हूँ। मेरे भयंकर पराक्रम को देवता और दैत्य भी सहन नहीं कर सकते, किन्तु पाण्डवों के साथ धर्म है, इसलिये उन्हें परास्त नहीं किया जा सकता। फिर भी तुम्हारे कार्य की सिद्धि के लिये अब मैं अपनी पूर्ण शक्ति से भीषण युद्ध करूँगा। या तो मैं प्राण निछावर कर दूँगा या पाण्डवों को परास्त करूँगा। सूर्योदय के पश्चात कौरव पाण्डव महारथी रणभूमि में उपस्थित हो गये। द्रोणाचार्य ने विराट और अश्वत्थामा ने शिखण्डी पर धावा बोल दिया। शक्तिशाली अर्जुनकुमार अभिमन्यु धृतराष्ट्र पुत्र चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मुख के साथ युद्ध करने लगे। भगदत्त घटोत्कच से भिड़ गया। द्रोणाचार्य ने जब कुपित होकर महाराज विराट पर बाण बरसाये तब राजा विराट का पुत्र शंख उनकी सहायता के लिये वहाँ आ पहुँचा। द्रोणाचार्य ने शंख को अपने तीक्ष्ण बाणों से मार गिराया तब महाराज विराट युद्ध-स्थल से भाग गये। जब सूर्य अस्ताचल को चले गये, तब दोनों सेनाओं ने युद्ध-स्थल से अपने-अपने शिविरों में प्रवेश किया। तदनन्तर युद्ध के आठवें दिन दोनों सेनाएं प्रभात होने पर संग्राम-भूमि में पहुँच गयीं। कौरव और पाण्डव वीर समरांगण में एक-दूसरे पर आक्रमण करने लगे। जब भीष्म पितामह और भीमसेन का युद्ध होने लगा, तब दुर्योधन अपने भाइयों सहित उनकी रक्षा करने वहाँ उपस्थित हो गया। भीमसेन ने आपके पुत्र सुनाम, अपराजित, कुण्डधार, पण्डितक, विशालाक्ष, महोदर, आदित्यकेतु और वह्लवाशी को यमलोक पहुँचा दिया।

राजा दुर्योधन भीष्म पितामह के पास जाकर अत्यन्त शोक-मग्न हो विलाप करने लगा—'पितामह! भीमसेन ने युद्ध में मेरे शूरवीर बन्धुओं और अनेक योद्धाओं को मार डाला है। आप मध्यस्थ बने रहने के कारण सदा हम लोगों की उपेक्षा

करते हैं। मैं बड़े बुरे मार्ग पर चल रहा हूँ। मेरे इस दुर्भाग्य को देखिये।'

भीष्म पितामह बोले—'तात ! मैंने, द्रोणाचार्य, विदुर और यशस्विनी गांधारी देवी ने तुम्हारे हित की जो बात कही थी, उस पर तुमने ध्यान नहीं दिया। मैंने तुम्हें कहा था कि मुझे और द्रोणाचार्य को तुम्हें युद्ध में किसी प्रकार नहीं लगाना चाहिये।' मैंने यह भी सत्य कहा था कि भीमसेन तुम्हारे भाइयों को देखते ही युद्ध में मार डालेगा। भारत ! इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता भी पाण्डवों को युद्ध में जीत नहीं सकते, अतः युद्ध के लिये अपनी बुद्धि स्थिर कर युद्ध करो।'

उस भयंकर संग्राम में शकुनि ने पाण्डवों पर आक्रमण कर दिया। श्रीमान् इरावन नागराज केटव्य की पुत्री से वीर अर्जुन का पुत्र था। उसने शकुनि के छहों पुत्रों को युद्ध-भूमि में मार डाला, किन्तु वह भी अलम्वुष के द्वारा मारा गया। यह देख घटोत्कच ने दुर्योधन पर आक्रमण कर दिया। उसने कौरव सेना का भाँति-भाँति के अस्त्रों से संहार कर उनके मुख्य योद्धाओं को यमलोक पहुँचा दिया। दुर्योधन को घटोत्कच द्वारा पीड़ित देख भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य उसकी सहायता के लिये वहाँ उपस्थित हुए। घटोत्कच ने द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, चित्रसेन, विकर्ण, भूरिश्रवा और सोमदत्त को अपने अस्त्रों से बेध विविंशति, जयद्रथ और राजा शल्य को भी घायल कर दिया। उसे अनेक वीरों से अकेला ही लड़ते देख भीमसेन उसकी सहायता के लिये पहुँचे। भीमसेन के भय से कौरव-योद्धा और सैनिक शीघ्रता से भाग गये। अधिकांश सेना मारी या भाग गयी देख दुर्योधन ने भीमसेन पर धावा बोल दिया। यह देख वीर अर्जुन और अभिमन्यु आदि पाण्डव-योद्धा वहाँ आ पहुँचे। द्रोणाचार्य ने अपने महारथियों को दुर्योधन की, जिसके प्राण संकट में पड़े थे, रक्षा करने को कहा। इतने में ही भीमसेन ने दुर्योधन के भाई व्यूढोरस्क, अनाधृष्ठि, कुण्डमेदि, वैराट, दीर्घ-

लोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु तथा कनकध्वज को मार गिराया। जब रात्रि का आरम्भ हुआ, तब दोनों सेनाएं अपने-अपने शिविर में चली गयीं।

रात्रि में राजा दुर्योधन ने कर्ण, शकुनि और दुःशासन से युद्ध के विषय में मंत्रणा की—'मित्रो ! द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कृपाचार्य, शल्य तथा भूरिश्रवा पाण्डवों को बाधा नहीं पहुँचाते, यद्यपि वे मेरी सेना का संहार कर रहे हैं। राधानन्दन ! तुम युद्ध से मुँह मोड़कर बैठे हो। इसलिये पाण्डव मुझे परास्त करते जा रहे हैं। द्रोणाचार्य के सामने ही भीमसेन ने मेरे भाइयों को मार डाला है। ऐसी दशा में मैं कैसे युद्ध करूँगा ?'

कर्ण ने कहा—'राजन् ! शोक न करो। मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा, परन्तु भीष्म के युद्ध से हट जाने पर ही। मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं पाण्डवों को उनके साथियों सहित युद्ध में मार डालूँगा। भीष्म पितामह सदा ही युद्ध में पाण्डवों पर दया करते हैं, अतः उनको जीतने में सर्वथा असमर्थ हैं। तुम पितामह को राजी कर उनसे हथियार रखवा दो।'

कर्ण के ऐसा कहने पर दुर्योधन भीष्म पितामह के शिविर में गया और नेत्रों में आँसू भर कर गद्‌गद कण्ठ से बोला—शत्रुसूदन ! आपको वीर पाण्डवों को मार डालना चाहिये। यदि पाण्डवों के प्रति दयाभाव और मेरी उपेक्षा के कारण आप उनकी रक्षा करते हैं, तब वीर कर्ण को युद्ध के लिये आज्ञा दे दीजिये।'

दुर्योधन के वचनों से भीष्म पितामह को महान दुःख हुआ और वे क्रोध से आक्रान्त हो बोले—'राजन् ! तुम वाग्वाणों से मुझे क्यों वेध रहे हो ? मैं तो यथाशक्ति शत्रुओं पर विजय पाने की चेष्टा करता हूँ। तुम्हारा प्रिय करने की इच्छा से अपने प्राणों को भी होम देने के लिये मैं तैयार हूँ। तुम्हें याद होगा कि पाण्डुनन्दन अर्जुन ने युद्ध में अनेक वीरों को परास्त

कर खाण्डव वन से अग्नि को तृप्त किया था। जब गंधर्वों ने तुम्हें बलपूर्वक पकड़ लिया था, उस समय भी अर्जुन ने ही तुम्हें छुड़ाया था। उस अवसर पर तुम्हारे शूरवीर भाई और कर्ण तो मैदान छोड़कर भाग गये थे। विराटनगर के युद्ध में भी अकेले अर्जुन ने ही हम सबको मार भगाया था और सबके वस्त्र छीन लिये थे। वीर अर्जुन की अलौकिक शक्ति के प्रमाण-स्वरूप ये सब दृष्टान्त पर्याप्त हैं। भगवान वासुदेव जिसकी रक्षा करते हैं उस वीर अर्जुन को युद्ध में कौन जीत सकता है? जैसे मरणासन्न मनुष्य सभी वृक्षों को सुनहरे रंग का देखता है, उसी प्रकार तुम भी विपरीत ही सोचते हो। तुमने स्वयं पाण्डवों से बैर ठाना है, अतः अब तुम ही युद्ध करो और अपने पुरुषत्व का परिचय दो।'

दुर्योधन के विलाप को सुन भीष्म पितामह ने समझ लिया कि अब यह मुझे युद्ध से हटाना चाहता है, अतः इस अपमान से तो मेरी मृत्यु ही अच्छी है। दुर्योधन-भीष्म की वार्ता गुप्तचरों से पाण्डवों को मिल गयी। सूर्योदय के होते ही कौरव और पाण्डव सेना रणभूमि में उपस्थित हो गयी। अर्जुन ने शिखण्डी को आगे करके भीष्म पितामह से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। तेजस्वी अभिमन्यु कौरवों की विशाल सेना पर टूट पड़ा। जैसे वराह रूपधारी विष्णु भगवान ने महासागर में प्रवेश किया था, उसी प्रकार वीर सुभद्राकुमार शत्रु-पक्ष के योद्धाओं को यमलोक में भेजता हुआ कौरवों के सैन्य-समुद्र में प्रवेश कर गया।

दुर्योधन ने राक्षस अलम्बुष से कहा—'महाबाहो! यह अर्जुन का पुत्र अर्जुन के समान पराक्रमी है। तुम शीघ्र सुभद्रा-कुमार का वध करो।'

वह राक्षस दुर्योधन के आदेश से रणभूमि में पहुँचा और अभिमन्यु से युद्ध करने लगा। राक्षस ने अपनी तामसी माया द्वारा वहाँ अंधकार फैला दिया किन्तु अभिमन्यु के भास्करास्त्र

प्रयोग से वहाँ पुनः प्रकाश हो गया। अभिमन्यु के बाणों से पीड़ित हो वह राक्षस रणस्थल से भाग गया। दूसरी ओर वीर अर्जुन तथा सात्यकि के साथ भीष्म पितामह, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, सुशर्मा और अश्वत्थामा घमासान युद्ध कर रहे थे। अब रक्तमयी नदी रणभूमि में बहने लगी। जैसे युगान्त में साक्षात काल के द्वारा सारे जीव मारे जाते हैं, उसी प्रकार वीर अर्जुन के द्वारा कौरव सेना मारी जाने लगी। यह देख भीष्म कुपित हो पाण्डव-सेना का भीषण ध्वंस करने लगे।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'पार्थ ! तुम्हें जिस अवसर की अभिलाषा और प्रतीक्षा थी, वह अब आ पहुँचा है। पुरुषसिंह तुम भीष्म पितामह पर प्रहार करो।'

भगवान श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर महाबाहु अर्जुन ने मुँह नीचा कर लिया और अनिच्छुक की भाँति उनसे बोला—'प्रभो ! अवध्य महापुरुषों का वध कर निन्दनीय राज्य प्राप्त करूँ, क्या यह उचित होगा ? भगवन् ! यदि आपकी ऐसी ही आज्ञा है तो मैं भीष्मपितामह से अपनी पूर्ण शक्ति द्वारा युद्ध करूँगा।'

भगवान श्रीकृष्ण ने देखा कि प्रतिज्ञा करने पर भी अर्जुन भीष्म पितामह के साथ संकोच से युद्ध कर रहे हैं। महाबाहु माधव को यह सहन नहीं हुआ। वे रथ से कूद पड़े और भीष्म पितामह की ओर बढ़ने ही वाले थे कि वीर अर्जुन ने अपनी दोनों भुजाओं में उनके चरण पकड़ लिये।

कुन्तीपुत्र अर्जुन ने आर्त्त भाव से विनयपूर्वक उनसे कहा—'प्रभो ! अपनी प्रतिज्ञा को झूठी न कीजिये, अन्यथा लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे। केशव ! मैं अपने अस्त्र, शस्त्र, सत्य और सुकृत की शपथ खाकर कहता हूँ कि पितामह का वध करूँगा। महामना अर्जुन का यह वचन सुन भगवान श्रीकृष्ण मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुनः रथ पर जा बैठे। उनको रथ पर बैठे देख भीष्म पितामह ने पुनः घोर युद्ध

आरम्भ कर दिया। उसी समय सूर्यास्त हो गया और संध्या छा गई। नौवें दिन के अन्त में दोनों सेनाएं शिविर में लौट गईं।

प्रतिदिन के नियमों के अनुसार जब सब महारथी राजा युधिष्ठिर के शिविर में एकत्रित हुए तब महाराजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से बोले—'माधव ! हमें भीष्म पितामह के साथ युद्ध करना अच्छा नहीं लगता है, उधर वीर पितामह हमारी सेना का भयंकर संहार करते चले जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में मैं अपनी बुद्धि की दुर्बलता के कारण शोक-समुद्र में डूबा जा रहा हूँ। जैसे पतंग प्रज्वलित आग की ओर दौड़कर मृत्यु को ही प्राप्त होता है उसी प्रकार हमने भी भीष्म पितामह पर आक्रमण कर मृत्यु का ही वरण किया है। हे केशव ! मुझे स्वधर्म के अनुकूल कोई हितकर निर्देश दीजिये।'

भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हुए कहा—'धर्मपुत्र ! विषाद न करो। हम भीष्म पितामह से उनके वध का उपाय पूछने चलें। दृढ़तापूर्वक व्रत का पालन करने वाले भीष्मजी हमारी विजय और हितकर सम्मति के दाता होंगे। वे पुण्यात्मा पुरुष हैं। वे दृष्टिपात मात्र से सबको दग्ध कर सकते हैं। विशेषत: आपके पूछने पर वे अवश्य ही सच्ची बात बतायेंगे।'

भगवान के हितकर वचन सुन सभी पाण्डव माधव के साथ पितामह के शिविर में गये और उन्होंने उन्हें प्रणाम किया।

पितामह ने उन सबका स्वागत किया और कहा—'पुत्रो ! मैं तुम्हें प्रसन्न करने के लिये कौन-सा कार्य करूँ ? तुम बिना संकोच मुझसे अपने आने का प्रयोजन कहो। यदि वह दुष्कर होगा तो भी मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

युधिष्ठिर ने दीन हृदय से श्रद्धापूर्वक कहा—'सर्वज्ञ ! युद्ध में हमारी विजय कैसे हो ? हम किस प्रकार राज्य प्राप्त करें ?'

शान्तनुकुमार भीष्म बोले—'कुन्तीनन्दन ! मेरे जीते जी युद्ध में किसी प्रकार तुम्हारी विजय नहीं हो सकती। यदि तुम

विजय चाहते हो तो मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम मुझ पर प्रहार करो। मेरे मारे जाने पर सारी कौरव-सेना मृतप्राय: हो जाएगी। जब तक मेरे हाथ में शस्त्र रहेंगे, तब तक मैं युद्ध के लिये प्रयत्नशील रहूँगा। मैं अस्त्र-शस्त्र डाल दूँ, उसी अवस्था में महारथी मुझे मार सकते हैं। राजन्! तुम्हारी सेना में जो द्रुपद-पुत्र शिखण्डी है, वह पहले स्त्री था, इसलिए उस पर मैं प्रहार नहीं करूँगा। शूरवीर अर्जुन शिखण्डी को आगे कर मुझे मार डालने का प्रयत्न करे तो निश्चित रूप से तुम्हारी विजय हो सकेगी। धनंजय के अतिरिक्त ऐसा कोई वीर तुम्हारी सेना में नहीं दिखाई देता जो मुझे मार सके।' भीष्म पितामह की यह आज्ञा पाकर पाण्डव अपने-अपने शिविर में चले गये।

सूर्योदय होने पर पाण्डव शिखण्डी को आगे कर युद्ध के लिये शिविर से बाहर निकले और कौरवों की सेना पर धावा बोल दिया। कौरवों ने भीष्मपितामह को अपनी सेना के आगे कर पाण्डवों पर चढ़ाई कर दी। रणक्षेत्र में शत्रुओं द्वारा अपनी सेना का संहार महाधनुर्धर भीष्म सहन नहीं कर सके। उन्होंने अपने जीवन का मोह छोड़ अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा द्वारा पाण्डवों के पाँच महारथियों को मार डाला। तब शिखण्डी ने तीन बाणों से भीष्म पर प्रहार किया।

भीष्म ने हँसते हुए शिखण्डी से कहा—'तू इच्छानुसार मुझ पर प्रहार कर। मैं तेरे साथ युद्ध नहीं करूँगा।'

शिखण्डी बोला—'मैं आपके सामने सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि आज आपको निश्चय ही मार डालूँगा।'

अर्जुन ने शिखण्डी से कहा—'महाबली वीर! इस युद्ध में मैं तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा, तुम पितामह को मारने का कार्य सिद्ध करो। वीर! तुम पितामह का सामना करने के लिये आगे बढ़ो। मैं अपने बाणों द्वारा इनको मार गिराऊँगा।'

पार्थ का यह कथन सुनकर शिखण्डी ने भीष्म पर धावा बोल दिया। कौरव सेनापति पूर्ण शक्ति लगाकर वीर अर्जुन

को भीष्म पितामह के पास आने से रोकने लगे। पाण्डव वीरों ने वीर अर्जुन को सहायता देने के लिये कौरव योद्धाओं पर आक्रमण कर दिया। अब दोनों पक्ष के वीरों में भयंकर युद्ध होने लगा। भीष्मजी की रक्षा के हेतु कौरव योद्धा अपने जीवन की अभिलाषा छोड़कर लड़ रहे थे। बार-बार रोके जाने पर भी वीर अर्जुन कौरव वीरों को रौंदता हुआ आगे बढ़ता चला गया। कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर को विशाल सेना के साथ भीष्म पितामह के सम्मुख आते देख द्रोणाचार्य उनसे भयंकर युद्ध करने लगे। उस संग्राम में कौरव सेना पाण्डवों और उनके योद्धाओं के द्वारा मथ डाली गयी।

द्रोणाचार्य ने अश्वत्थामा से कहा—'तात! यही वह दिन है जबकि महाबली अर्जुन समर भूमि में भीष्मजी को मार डालने का प्रयत्न करेंगे। मेरे बाण तरकश से उछल रहे हैं, धनुष काँप रहा है और मेरे मन में अत्यन्त चिन्ता हो रही है। सम्पूर्ण दिशाओं में पशु-पक्षी अशान्तिपूर्ण भयंकर बोली बोल रहे हैं। सूर्य की प्रभा मंद-सी पड़ रही है। सूर्य-मण्डल के मध्य-भाग में बड़ी-बड़ी उल्काएँ गिर रही है। सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर घेरा पड़ने लगा है जो घोर भय की सूचना दे रहा है। राजा धृतराष्ट्र के देवालय की देवमूर्तियाँ रोती-सी जान पड़ती हैं। राजाओं के शरीर को मैं श्रीहीन देख रहा हूँ। महाबाहो! भीष्मजी और वीर अर्जुन के युद्ध का विचार कर मेरे रौंगटे खड़े हो रहे हैं। आज वीर अर्जुन ने पूरी तैयारी के साथ पुरुष-सिंह भीष्म पर आक्रमण किया है, इसलिये तुम शीघ्र भीष्मजी की रक्षा के लिये जाओ। पुत्र! आश्रित रह कर जीविका चलाने वाले पुरुषों के लिये, यह अपने प्राण बचाने का अवसर नहीं है। तुम स्वर्ग को सामने रखकर भीष्मजी के पास जाओ। अपना प्रिय नित्य, निरंतर जीवित रहे यह कौन नहीं चाहता तथापि धर्म पर दृष्टि रख मैं तुम्हें इस कार्य के लिये नियुक्त कर रहा हूँ। यहाँ केवल कुन्तीकुमार युधिष्ठिर में ही ब्राह्मणों

के प्रति भक्ति, इन्द्रिय संयम, दान, तप और श्रेष्ठ सदाचार आदि सद्‌गुण दिखाई देते हैं, जिनके फलस्वरूप इन्हें धर्म-परायण भाई और भगवान श्रीकृष्ण मिले हैं। इस दुर्बुद्धि दुर्योधन का शरीर उन्हीं की तपस्या से प्रायः दग्ध हो गया है और इसकी सेना भी उन्हीं की क्रोधाग्नि से जलकर भस्म हो रही है।' अपने पुत्र को इस प्रकार आदेश दे द्रोणाचार्य पुनः राजा युधिष्ठिर से युद्ध करने लगे।

भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, विन्द, अनुविन्द, जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण तथा दुर्मर्षण भीमसेन के साथ युद्ध कर रहे थे। कौरव योद्धा भीष्मजी की रक्षा करना चाहते थे, अतः भीमसेन को पितामह के पास जाने से रोक रहे थे। भीमसेन ने अकेले ही बहुतों के रथों को तोड़ डाला और सारथियों को घोड़ों सहित यमलोक पहुँचा दिया। धर्मात्मा भीष्म दस दिनों तक पाण्डव सेना का संहार कर जीवन से ऊब गये थे। वे सोचने लगे कि संग्राम में अब मैं श्रेष्ठ मानवों का वध और नहीं करूँगा। शिखण्डी ने रणक्षेत्र में पुरुष-रत्न भीष्म के पास पहुँच कर उन्हें अपने अस्त्रों से पीड़ित करना आरम्भ कर दिया, किन्तु भीष्मजी ने उसके स्त्रीत्व को विचार कर कोई प्रतिकार नहीं किया। दुःशासन पितामह की रक्षा के हेतु वहाँ आ पहुँचा और वीर अर्जुन से युद्ध करने लगा। विजयी अर्जुन ने समरभूमि में दुःशासन को परास्त कर भीष्मजी को मूर्छित कर दिया। पितामह की ऐसी दशा देख कौरव-योद्धा सेना के साथ स्वर्ग को अपना लक्ष्य बनाकर वहाँ आये और वीर अर्जुन से युद्ध करने लगे, किन्तु सब असफल रहे। वीर अर्जुन ने बाणों से भीष्मजी के कवच को छिन्न-भिन्न कर दिया। उसी अवस्था में महाधनुर्धर अर्जुन से सुरक्षित शिखण्डी ने पितामह के सारथी और घोड़ों को यमलोक पहुँचा दिया और उनके रथ की ध्वजा भी काट डाली। जब भीष्मजी मूर्छा से जगे तब पुनः पाण्डव-सेना का प्रबल संहार करने लगे। वीर अर्जुन ने उनकी यह

चेष्टा विफल कर दी। वीर शिरोमणि भीष्मजी ने विचार किया कि यदि भगवान श्रीकृष्ण पाण्डवों की रक्षा नहीं करते तो मैं इन सबको अकेला ही परास्त कर सकता था। भगवान श्रीकृष्ण अजेय हैं। अब मैं पाण्डवों से युद्ध नहीं करूँगा। ये अविच्छिन्न रूप से छूटने वाले वाण शिखण्डी के नहीं हो सकते। इन्हें गाण्डीवधारी अर्जुन ने ही छोड़े हैं, जो वज्र और विद्युत के समान असह्य हैं। वीर भीष्म के शरीर में ऐसा स्थान नहीं रह गया था जो अस्त्रों से बिंध न गया हो। जब दिन थोड़ा ही शेष रह गया, तब उसी अवस्था में सबके देखते-देखते पूर्व दिशा की ओर मस्तक किये वे रथ से नीचे गिर पड़े। उनके सारे अंगों में बाण बिंधे हुए थे, इसलिये गिरने पर भी उनका शरीर पृथ्वी का स्पर्श नहीं कर सका। बाण-शय्या पर सोये हुए पुरुष-श्रेष्ठ भीष्मजी ने निश्चय किया कि जब सूर्य उत्तरायण में होगा तभी मैं इस लोक से यात्रा करूँगा। महातेजस्वी शान्तनु-पुत्र भीष्म यद्यपि अवध्य थे, तो भी वे पृथ्वी पर गिर पड़े, इससे लोगों ने अनुमान किया कि दुर्योधन का विनाश अवश्यम्भावी है। भीष्म पितामह के गिरने पर पाण्डव-पक्ष के योद्धाओं के हर्ष की सीमा नहीं रही पर दोनों सेनाओं के योद्धाओं ने अपने अस्त्र-शस्त्र पृथ्वी पर डाल दिये और वे चिन्तामग्न हो गये। भीष्म पितामह को उस अवस्था में देख कौरव पाण्डव योद्धाओं ने उन्हें प्रणाम किया और वे उन्हें घेरकर खड़े हो गये। जब द्रोणाचार्य ने यह अप्रिय समाचार सुना तब वे मूर्छित हो गये।

भीष्म पितामह ने कौरव पाण्डव वीरों से कहा—'महाभाग नरेशगण! आप लोगों का स्वागत है। मैं आप लोगों के दर्शन से बहुत संतुष्ट हूँ। पुत्रो! मेरा सिर बहुत लटक रहा है, इसलिए आप लोग मुझे तकिया दें।' तब कौरव-पक्ष के लोग तत्काल कोमल और अत्यन्त सुन्दर बहुत से तकिये लाये, किन्तु पितामह ने उन्हें स्वीकार नहीं किया।

उन्होंने कहा—"भूपालो! ये तकिये वीर शय्या के अनुरूप

नहीं है। फिर पाण्डु-पुत्र धनंजय ने अपने आँसू भरे नेत्रों से देख उन्हें प्रणाम किया और तीन अभिमंत्रित बाणों को गाण्डीव धनुष द्वारा चलाकर उनके मस्तक को ऊँचा कर दिया। धर्मात्मा भीष्म उन पर बहुत संतुष्ट हुए और अनेक आशीर्वाद दिये। दूसरे दिन सूर्योदय होने पर कौरव-पाण्डव पितामह भीष्म की सेवा में पुनः उपस्थित हुए। भीष्मजी बाणों से संतप्त होकर मूर्छित से हो रहे थे। उनकी वाणी धीमी पड़ गई थी, इसलिए वे 'पानी' शब्द क्षीण स्वर से ही बोल पाये। यह सुन क्षत्रिय नरेश शीतल जल से भरे हुए घड़े ले आये, किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने वीर अर्जुन की ओर देखा। वीर अर्जुन उनका अभिप्राय समझ गये और भीष्म पितामह की परिक्रमा करके एक तेजस्वी बाण को, जो मन्त्रोच्चारण से पूर्ण था, पितामह के दाहिने पार्श्व में पृथ्वी पर चलाया। उसके प्रयोग से शीतल अमृत के समान मधुर जल की स्वच्छ धारा भीष्मजी के मुख में पड़ने लगी। उस जल से तृप्त हो शान्तनु-नन्दन ने अर्जुन की बड़ी प्रशंसा की और अनेक आशीर्वाद दिये।

वे दुर्योधन से बोले, "कौरव श्रेष्ठ! वीर अर्जुन के समान कोई पराक्रमी योद्धा इस समय पृथ्वी पर नहीं है। यह जैसा अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग जानता है वैसा कोई भी योद्धा इस रण-भूमि में नहीं जानता, इसलिये इसे युद्ध में जीतना असम्भव है। तुमने इसका पराक्रम देख भी लिया है। भगवान श्रीकृष्ण इसकी रक्षा करते हैं, अतः यह अजेय है। तुम श्रीकृष्ण को मध्यस्थ कर पाण्डवों से सन्धि कर लो। मैं सन्धि को कौरवों और उनके सहायकों के लिये कल्याणकारी मानता हूँ। ऐसा करने से तुम नीच नहीं कहलाओगे और तुम्हें पापपूर्ण अपयश भी नहीं होगा। यदि अपनी मूर्खता के कारण मेरे हितकर वचनों को अब भी नहीं मानोगे, तो अन्त में तुम्हें पछताना पड़ेगा और तुम्हारा विनाश हो जायेगा। इतना कह भीष्मपितामह मौन हो

गये और उन्होंने अपने मन को परमात्मा के चिन्तन में लगा दिया।

जब कर्ण को पता चला कि पितामह शरशय्या पर सोये हुए हैं, तब वह उनके दर्शन हेतु उनके पास गया और अश्रु से पूर्ण गद्‌गद कण्ठ से बोला, 'पितामह आपको मेरा प्रणाम है। मैं सूतपुत्र कर्ण हूँ। मेरा अपराध क्षमा करें।'

उसकी यह बात सुन कुरुवृद्ध पितामह ने अपने नेत्र खोले और कर्ण को स्नेहपूर्वक सम्बोधित किया, "कर्ण! तुम कुन्ती-पुत्र हो। तुम्हारा पिता सूर्यदेव है। तुम्हारा पूर्ण परिचय मैंने नारदजी द्वारा प्राप्त किया है। तुम्हारे प्रति मेरे मन में क्रोध नहीं हैं, उत्तम व्रत का पालन करने वाले वीर! मैं कभी-कभी तुमसे कठोर वचन बोलता था, उसका उद्देश्य तुम्हारे तेज और उत्साह को नष्ट करना था, क्योंकि तुम दुर्योधन के उकसाने से अकारण ही पाण्डवों पर आक्षेप किया करते थे। मैं जानता हूँ कि तुम पराक्रमी, ब्राह्मण-भक्त, दानी और शूरवीर हो। प्रारब्ध के विधान को कोई टाल नहीं सकता। शत्रुसूदन! वीर पाण्डव तुम्हारे सगे भाई हैं, अतः यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो, तो उनसे मिल जाओ और यह नर-संहार बन्द करवा दो।'

कर्ण ने कहा, 'प्रभो! मैं दुर्योधन का ऐश्वर्य भोगकर उसे निष्फल नहीं कर सकता। जैसे वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण पांडुपुत्रों की सहायता के लिये दृढ़-प्रतिज्ञ हैं, उसी प्रकार मैं भी दुर्योधन के लिये सर्वस्व निछावर कर दूँगा। मैंने दुर्योधन का पाण्डवों पर इसलिये क्रोध बढ़ाया है कि क्षत्रिय समुदाय युद्ध-स्थल में वीरगति को प्राप्त करें। यह विधाता का विधान है। इसे कोई टाल नहीं सकता। आप मेरे अपराधों को कृपापूर्वक क्षमा करें।'

वीर भीष्म बोले, 'कर्ण! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि स्वर्ग प्राप्ति के लिये अभिमान शून्य हो धर्मानुकूल कल्याणकारी

युद्ध करो।' भीष्म पितामह से अनेक आशीर्वाद पाकर कर्ण अपने शिविर में चला गया।

अनुपम सत्व, ओज, बल और पराक्रम से सम्पन्न देवव्रत भीष्म को शिखण्डी के हाथ से मारे गये सुनकर धृतराष्ट्र का हृदय शोक से व्याकुल हो उठा। वे निरंतर उस दुःखदायी घटना का ही चिन्तन करते थे और उनका मन सर्वथा अप्रसन्न एवं उत्साहहीन हो गया। वे आर्त्त हो विलाप कर रहे थे।

उन्होंने संजय से पूछा—'मुझे ग्यारहवें दिन की घटना सुनाओ।'

संजय ने कहा—'राजन्! कौरव और पाण्डवों ने परस्पर वार्तालाप कर भीष्मजी की रक्षा की व्यवस्था कर दी। पितामह की परिक्रमा कर वे काल-प्रेरित क्रोध से लाल आँखें किये पुनः युद्ध के लिए निकले। भीष्म पितामह का पतन हो जाने पर राजाओं सहित सम्पूर्ण कुरुवंशी मृत्यु के अधीन हो गये। जैसे हिंसक जन्तुओं से भरे हुए वन में भेड़-बकरी बिना रक्षा के उद्विग्न रहती हैं, उसी प्रकार आपके पुत्र और अन्य योद्धा देवव्रत से रहित हो मन ही मन अत्यन्त भयभीत रहने लगे। वे नक्षत्र रहित आकाश, वायुशून्य अंतरिक्ष, नष्ट हुई खेती, नायक विहीन सेना के समान असमर्थ और श्रीहीन हो गये। उस समय कौरवों ने कर्ण को स्मरण किया, क्योंकि वही भीष्म के समान पराक्रमी समझा जाता था।'

राधानन्दन कौरवों की विनय सुन दुर्योधन के समीप गया और उससे बोला—'ब्राह्मणों के शत्रुओं का विनाश करने वाले तथा अपने ऊपर किये हुए उपकारों का आभार मानने वाले, जिन वीर शिरोमणि भीष्मजी में सदा धृति, बुद्धि, पराक्रम, ओज, सत्य, स्मृति, विनय, लज्जा, प्रिय वाणी और अनसूया ये सभी गुण तथा दिव्यास्त्र शोभा पाते थे, वे शान्त हो गये तो भी चिन्ता की आश्यकता नहीं। संसार में कर्मों के अनित्य संबंध से कभी कोई वस्तु स्थिर नहीं रहती है। महारथी भीष्म को रण-

भूमि में गिराया जाना सूर्य को पृथ्वी पर गिराने के समान है ! इस समय संग्राम-भूमि में मुझे कौरव सेना की उसी प्रकार रक्षा करनी है जैसे महात्मा भीष्म किया करते थे। मैंने यह भार अपने ऊपर ले लिया है। जब सारा जगत अनित्य है तब मैं भय किसलिये करूँ ? यद्यपि युधिष्ठिर धैर्य, बुद्धि, सत्य और सत्वगुणों से सम्पन्न हैं तथा अर्जुन, देवराज इंद्र जैसे और नकुल सहदेव यम के समान पराक्रमी उनके भाई हैं, तब भी मैं उन्हें यमलोक में पहुँचा दूंगा। जिनके सहायक सात्यकि और देवकी-नन्दन श्रीकृष्ण हैं उन्हें मैं शीघ्र ही नष्ट कर दूंगा। या तो मैं इस श्रेष्ठ कार्य को सम्पन्न करूँगा अथवा प्राणों का परित्याग कर भीष्मजी के ही पथ पर चला जाऊँगा।

इसके पश्चात कर्ण भीष्म पितामह के पास जा अंजली बाँध अभिवादनपूर्वक प्रणाम कर आँसुओं से युक्त नेत्रों से गद्गद् वाणी में बोला—'भारत ! मैं कर्ण हूं। आप अपनी पवित्र एवं मंगलमयी वाणी द्वारा मुझे उपदेश देकर कल्याणमयी दृष्टि से आशीर्वाद दें। पुरुषसिंह ! प्रज्वलित अग्नि के समान वीर अर्जुन, और श्रीकृष्ण वायु के समान हैं। इसलिये वे क्षण में सबको दग्ध कर देंगे। आप अशीर्वाद दें कि मैं रण में अर्जुन को अपने शस्त्रों से मार सकूं।'

भीष्म पितामह ने कहा—'कर्ण ! दुर्योधन की भाँति तुम भी मेरे पौत्र के समान हो। जैसे मैं उसका हितैषी हूँ उसी प्रकार तुम्हारा भी। संसार में संबंधियों की अपेक्षा साधु-पुरुषों के साथ की हुई मैत्री श्रेष्ठ है। तुम सच्चे मित्र होकर कौरव-दल की रक्षा करो।' कर्ण ने भीष्मजी का यह कथन सुना और उनके चरणों में प्रणाम कर दुर्योधन के पास चला गया।

द्रोण

दुर्योधन ने कर्ण से कहा—'कर्ण ! पहले बल, पराक्रम और सर्व विद्याओं में निपुण पितामह भीष्म हमारे सेनापति थे, अब हमें किसे सेनापति बनाना चाहिए ?'

कर्ण ने उत्तर दिया—'राजन् ! सम्पूर्ण शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, योद्धाओं के आचार्य दुर्जयवीर द्रोणाचार्य को ही सेनापति वनाना चाहिये। गुरुदेव परम बुद्धिमान हैं।'

कर्ण का यह कथन सुन दुर्योधन आचार्य द्रोण से बोला—'द्विज-श्रेष्ठ ! आप हम लोगों की रक्षा करें। आपके नेतृत्व में रहकर हम शत्रुओं पर विजय पाना चाहते हैं।'

इस पर द्रोणाचार्य ने कहा—'राजन् ! तुम्हारा प्रस्ताव मुझे स्वीकार हे। मैं वेद, अर्थ-शास्त्र, भगवान शंकर की दी हुई वाण विद्या और अस्त्र-शस्त्र का ज्ञाता हूं। तुम्हारे हित के लिए मैं पाण्डवों के साथ युद्ध करूँगा, पर द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न को युद्ध में नहीं मारूँगा क्योंकि वह मेरे ही वध के लिए उत्पन्न हुआ है। मैं पाण्डव सेना के साथ युद्ध करूँगा किन्तु पाण्डव प्रसन्नता से मेरा सामना नहीं करेंगे। तुमने कौरवश्रेष्ठ भीष्मजी के पश्चात् जो आज मुझे सेनापति बनाया है, इससे संतुष्ठ हो मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय-कार्य करूँ ?'

दुर्योधन ने कहा—'आचार्य ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो श्रेष्ठ युधिष्ठिर को जीवित पकड़कर यहाँ ले आइये।'

आचार्य बोले—'राजन् ! कुन्तीकुमार युधिष्ठिर धन्य हैं, जिन्हें तुम जीवित पकड़ना चाहते हो। उस दुर्धर्षवीर के बध के लिए तुमने मुझसे याचना नहीं की, इससे निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि धर्मराज युधिष्ठिर से द्वेष रखने वाला इस संसार में कोई नहीं है। तुम उन्हें जीवित देखना और अपने कुल की रक्षा करना चाहते हो।'

दुर्योधन ने कहा—'आचार्य ! युद्ध में कुन्तीपुत्र को मारने

से मेरी विजय नहीं हो सकती, क्योंकि युधिष्ठिर का वध होने पर अन्य पाण्डव अवश्य ही हमें मार डालेंगे। सत्य-प्रतिज्ञ राजा युधिष्ठिर को यदि जुए में जीत लिया जाय तब उनमें भक्ति रखने वाले पाण्डव पुनः वन में चले जायेंगे।'

द्रोणाचार्य बोले—'राजन्! यदि वीर अर्जुन युद्ध में युधिष्ठिर की रक्षा नहीं करेंगे तो मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध कर दूंगा। रण-क्षेत्र में इंद्र भी वीर अर्जुन का सामना नहीं कर सकते। यद्यपि कुन्तीपुत्र अर्जुन मेरा शिष्य है पर वह तरुण और अनेक प्रकार के पुण्यकर्मों से युक्त है। उसने इंद्र और रुद्र आदि देवताओं से दिव्यास्त्र प्राप्त किये हैं। वह मुझमें श्रद्धा रखता है, अतः उससे लड़ने का उत्साह मुझमें नहीं है।'

द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने अर्जुन कहा—'आर्य! आज तुम मेरे समीप ही रहना, जिससे दुर्योधन द्रोणाचार्य द्वारा अपना मनोरथ पूर्ण न करा सके।'

अर्जुन ने कहा—'राजन्! जिस प्रकार मेरे लिये आचार्य का वध न करना कर्तव्य है, उसी प्रकार आपकी रक्षा करना मेरा संकल्प है। मेरे जीते-जी वे आपको पकड़ नहीं सकेंगे, अतः आचार्य से आपको भयभीत नहीं होना चाहिये।'

तदनन्तर कौरवों और पाण्डवों में भयंकर युद्ध होने लगा। सत्यपरायण परम बुद्धिमान तथा धर्म में तत्पर रहने वाले वीर द्रोणाचार्य रणक्षेत्र में पाण्डव-सेना पर अपने अस्त्रों से प्रहार करने लगे और प्रलय काल के समान अत्यन्त भयंकर रक्त की नदी प्रवाहित कर दी। अभिमन्यु ने अपने पैने बाणों से कौरव वीर जयद्रथ और शल्य के सारथी तथा घोड़ों को मार डाला। तब राजा शल्य कुपित हो गदा उठाकर रथ से कूद पड़े। उन्हें प्रलयकाल की प्रज्वलित अग्नि तथा दण्डधारी यम के समान अभिमन्यु पर आक्रमण करते देख भीमसेन राजा शल्य से भयंकर युद्ध करने लगे। भीमसेन के गदा-प्रहारों से राजा शल्य पीड़ित हो गये। यह देख महारथी कृतवर्मा शल्य को अपने

रथ में बिठाकर रणभूमि से बाहर ले गये। उधर द्रोणाचार्य ने चक्ररक्षक कुमार और युगन्ध को परास्त कर दिया। उन्होंने सिंहसेन और व्याध दत्त के मस्तक काट डाले। उसी समय वीर अर्जुन वहाँ आ गये और शीघ्रतापूर्वक द्रोणाचार्य की सेना पर आक्रमण करने लगे। जब सूर्य अस्ताचल को चले गये तब कौरवों और पाण्डवों ने अपनी-अपनी सेना को युद्ध-स्थल से हटा लिया।

युद्ध के बारहवें दिन जब सूर्योदय हुआ तब त्रिगर्तराज सुशर्मा अपने भाइयों के साथ जिनके नाम सत्यव्रत, सत्यरथ, सत्येषु, सत्यवर्मा तथा सत्यकर्मा थे, वीर अर्जुन से युद्ध करने लगे। कुन्तीनन्दन अर्जुन ने सुधन्वा के मस्तक को काट गिराया। विराट के अनुज शूरवीर सत्यजीत, वृक, तातानी, पंचाल देश के राजकुमार क्षेम तथा वसुधाम राजा युधिष्ठिर की रक्षा में नियुक्त किये गये। उन्हें वीर द्रोणाचार्य ने मार डाला। भूरिश्रवा ने राजा मणिमान को धराशायी कर दिया। यह देख युधिष्ठिर रणभूमि से भाग गये। तदनन्तर भीम ने सारथी सहित शाद्यव और अंग को यमलोक पहुँचा दिया। वीर अर्जुन ने त्रिगर्तराज के भाई भगदत्त और उसके परिवार को मार डाला।

तेजस्वी नरेश भगदत्त के मारे जाने पर गान्धार राज सुबल के दो पुत्र वृषक और अचल अपने योद्धाओं की सहायता से वीर अर्जुन से युद्ध करने लगे, किन्तु वे दोनों वीर भी कुछ ही समय में योद्धाओं के साथ धनंजय द्वारा मारे गये। यह देख कौरव-सेना में भगदड़ मच गई। वीर अर्जुन उनकी बची सेना का संहार करने दक्षिण की ओर बढ़े। इसी बीच प्रतापी द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा कौरव-सेना के संरक्षण के लिये वहाँ आया और पाण्डवों के सहायक राजा नील पर आक्रमण कर दिया। दोनों योद्धाओं में अब घोर युद्ध होने लगा, किन्तु युद्ध में नील अश्वत्थामा के द्वारा मारा गया। यह देख भीमसेन अश्वत्थामा

से युद्ध करने लगा। अश्वत्थामा की सहायता के लिये आचार्य द्रोण और कर्ण भी उसी युद्ध स्थल पर जा पहुँचे। भीमसेन की सहायता के लिये नकुल और सहदेव भी वहाँ आये। अब दोनों पक्षों में भयानक युद्ध होने लगा। पाण्डव-वीरों ने जब आचार्य द्रोण पर आक्रमण किया, तब कृपाचार्य, राजा जयद्रथ, विन्द और अनुविन्द उनकी सहायता के लिये आये। उसी समय वीर अर्जुन गान्धार सेना का संहार कर दक्षिण दिशा से वहाँ लौटे और प्रलयकालीन अग्नि के समान अपने अस्त्रों से कौरव सेना को दग्ध करने लगे। यह देख भरतवंशियों और अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ महारथी कर्ण और राधा के छोटे पुत्रों ने वीर अर्जुन से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। इतने में ही धृष्टद्युम्न और सात्यकि पाण्डुनन्दन अर्जुन की सहायता के लिये वहाँ पहुँच गये। तत्पश्चात कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने राधा के तीन छोटे पुत्रों को मार डाला। भीमसेन ने भी कर्ण के पक्ष के अनेक योद्धाओं को यमलोक पहुँचा दिया। धृष्टद्युम्न ने चन्द्रवर्मा तथा निषाध-राज बृहत्क्षत्र का काम तमाम कर दिया। सूर्यदेव के अस्ताचल में चले जाने पर दोनों पक्षों की सेना अपने-अपने शिविर में लौट गयी।

जब अमित तेजस्वी अर्जुन ने आचार्य द्रोण का राजा युधिष्ठिर को पकड़ने का संकल्प व्यर्थ कर दिया, तब दुर्योधन उस रात्रि में अत्यन्त दुःखित हो क्रोधपूर्ण वचनों से उनके पास जाकर बोला—'द्विज श्रेष्ठ ! निश्चय ही हम आपकी दृष्टि में शत्रुवर्ग के अन्तर्गत हैं, इसीलिये आज आपने अत्यन्त निकट आने पर भी राजा युधिष्ठिर को नहीं पकड़ा। यदि रणक्षेत्र में शत्रु आपके नेत्रों के समक्ष आ जाय तो सम्पूर्ण देवता और पाण्डव भी उसकी रक्षा नहीं कर सकते। पुरुषश्रेष्ठ ! आपने प्रसन्न होकर पहले तो मुझे राजा युधिष्ठिर को पकड़ने का आश्वासन दिया, अब उन्हीं वचनों को आप असत्य कर रहे हैं, यह आपके योग्य नहीं है।'

दुर्योधन के इस प्रकार कटु वाक्य सुन द्रोणाचार्य ने दुःखी मन से कहा—'राजन् ! तुमको मुझे प्रतिज्ञा भंग करने वाला नहीं समझना चाहिये। मैं अपनी पूरी शक्ति लगाकर तुम्हारा प्रिय करने की चेष्टा कर रहा हूँ, परन्तु जिसकी रक्षा वीर अर्जुन करते हैं, उसे समस्त देवता भी नहीं जीत सकते। जिस पक्ष में भगवान श्रीकृष्ण तथा वीर अर्जुन हों, वहाँ किसका बल-पौरुष चल सकता है ? तात ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज मैं पाण्डव पक्ष के किसी श्रेष्ठ महारथी को अवश्य मारूँगा, किन्तु तुम्हें महाबाहु अर्जुन को युद्ध-भूमि से दूर ले जाना होगा। युद्ध के सम्बन्ध में कोई ऐसी बात नहीं है जो कुन्तीपुत्र अर्जुन के लिये अज्ञात या असाध्य हो।'

दूसरे दिन सुबह संशप्तकगण धनुर्धर अर्जुन से युद्ध करते-करते उसे युद्ध-स्थल से दूर ले गये। तब द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की, जो अनेक योद्धाओं द्वारा रक्षित था। उस व्यूह के अग्रभाग में द्रोणाचार्य थे, मध्य में दुर्योधन, कृपाचार्य, दुःशासन, जयद्रथ और कर्ण थे, पार्श्व भाग में अश्वत्थामा था। शकुनि, शल्य और भूरिश्रवा जयद्रथ की रक्षा कर रहे थे। द्रोणाचार्य द्वारा सुरक्षित उस दुर्धर्ष सेना का भीमसेन आदि वीरों ने डटकर सामना किया। सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुन्तीभोज, द्रुपद, क्षत्रधर्मा, युधामन्यु, नकुल और सहदेव द्रोणाचार्य से युद्ध करने लगे। द्रोणाचार्य ने अद्वितीय बाण-वर्षा से पाण्डव वीरों को आगे बढ़ने से रोक दिया। दूसरे वीरों को द्रोणाचार्य का सामना करने में असमर्थ मानकर वह दुःसह एवं महान भार सुभद्राकुमार अभिमन्यु ने अपने ऊपर ले लिया। उसने सारथी को अपना रथ द्रोणाचार्य के रथ के सामने रखने का आदेश दिया। अब उन दोनों शूरवीरों में भयंकर संघर्ष होने लगा। कुछ ही समय में अर्जुनकुमार अभिमन्यु व्यूह-भेदन कर उसके भीतर घुस गया और शत्रु-समूह का विनाश करने लगा। यह देख अनेक योद्धाओं ने अर्जुनकुमार को घेर लिया

और सब उस पर एक साथ टूट पड़े। जैसे महान तेजस्वी त्रिनेत्रधारी भगवान रुद्र असुरों की सेना को मथ डालते हैं, वैसे ही अभिमन्यु ने कौरवों की विशाल सेना को रौंद डाला। अब दुर्योधन स्वयं ही उससे युद्ध करने लगा। दुर्योधन की सहायता करने के लिए कृपाचार्य, कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि, शल्य और भूरिश्रवा अभिमन्यु से युद्ध करने लगे। इतने में अभिमन्यु ने अश्मक के पुत्र और शल्य के भाई को मार गिराया।

वीर अभिमन्यु का पराक्रम देख द्रोणाचार्य के नेत्र हर्ष से खिल उठे। उन्होंने कृपाचार्य से कहा—'मित्र! पाण्डव-कुल के प्रसिद्ध तरुण वीर सुभद्राकुमार अभिमन्यु के समान मैं किसी धनुर्धर को इस युद्ध भूमि में नहीं मानता। इसमें अकेले ही कौरव सेना का संहार करने की शक्ति है।'

अभिमन्यु के सम्बन्ध में द्रोणाचार्य का यह प्रीतियुक्त वचन सुन दुर्योधन क्रोध में भर गया और कर्ण, दुःशासन, शल्य और अन्य महारथियों से बोला—'मैं इस दुर्बुद्धि बालक को अभी मार डालता हूँ। इसकी मृत्यु सुन अत्यन्त अभिमानी श्रीकृष्ण और अर्जुन इस जीवलोक से प्रेतलोक को चले जायेंगे। उन दोनों को मरा हुआ सुन अन्य चार पाण्डव कायरतावश अपने सुदृढ़ वर्ग के साथ एक ही दिन में प्राण त्याग देंगे और अपने सारे शत्रु स्वतः नष्ट हो जायेंगे।' दुर्योधन के ऐसे वचन सुन दुःशासन वीर अभिमन्यु से युद्ध करने लगा।

अभिमन्यु ने उससे कहा—'अधम! बड़े सौभाग्य की बात है कि आज मैं युद्ध में अभिमानी, निष्ठुर, धर्मत्यागी और दूसरों की निन्दा में तत्पर रहने वाले शत्रु को प्रत्यक्ष सामने देखता हूँ। ओ मूर्ख! तूने द्यूत क्रीड़ा में विजयी हो पाण्डवों और माता द्रौपदी को जो अप्रिय वचन कहे थे, उनका फल मैं आज तुम्हें चखा दूंगा। दूसरों के धन का अपहरण, क्रोध, लोभ, द्रोह और निंदनीय व्यवहार के फलस्वरूप तुम्हें आज बुरा दिन प्राप्त होगा। आज मैं माता कृष्णा और भीमसेन का अभीष्ट मनोरथ

पूर्ण करूँगा।' ऐसा कह अभिमन्यु ने एक तीक्ष्ण बाण का दुःशासन पर संधान किया जो काल, अग्नि और वायु के समान था। वह बाण उसके वक्षस्थल को विदीर्ण कर गले की हँसली में घुस गया। वीर अभिमन्यु के बाणों से पीड़ित एवं अचेत दुःशासन को उसका सारथी युद्ध-स्थल से शीघ्रतापूर्वक बाहर ले गया। अब कर्ण अत्यन्त क्रोध में भर वीर अभिमन्यु पर बाणों की वर्षा करने लगा। अभिमन्यु ने अपने बाणों से कर्ण को भी घायल कर दिया एवं उसकी ध्वजा और धनुष को काट गिराया। यह देख राधा का छोटा पुत्र कर्ण की सहायता के लिये आया, किन्तु वह अभिमन्यु के द्वारा मारा गया। यद्यपि अत्यन्त सुख में पला हुआ, युद्धविद्या में कुशल और अपने शरीर को निछावर करने वाला वीर अभिमन्यु अनेक महारथियों से अकेला ही युद्ध कर रहा था, परन्तु उसने सब वीरों को एक-एक करके परास्त कर दिया। जब पाण्डव-योद्धाओं ने अभिमन्यु की सहायता के लिये व्यूह पर आक्रमण किया, तब जयद्रथ ने अपने दिव्य बाणों का प्रयोग कर उन्हें रोक दिया।

संजय ने कहा—'महाराज! द्रौपदी हरण के समय जयद्रथ को भीमसेन से पराजित होना पड़ा था। उसी अपमान का बदला लेने के लिये उसने भगवान शंकर की बड़ी तपस्या की। भगवान शंकर ने उस पर प्रसन्न होकर उसे स्वप्न में दर्शन दिया ?'

जयद्रथ ने उन्हें प्रणाम कर कहा—'भगवन् ! मैं अकेला ही युद्ध में पाण्डवों को परास्त करना चाहता हूँ।'

भगवान शंकर बोले—'सौम्य ! तुम अर्जुन को छोड़कर एक दिन अन्य पाण्डवों को युद्ध में आगे बढ़ने से रोक सकोगे।' उसी वरदान के प्रभाव से जयद्रथ ने उस दिन चारों पाण्डवों को चक्रव्यूह में प्रवेश करने से रोक दिया। यद्यपि पाण्डव और उनके सहायक योद्धा बार-बार व्यूह में प्रवेश करने का प्रयत्न

करते थे, किन्तु वे सब असफल रहे। व्यूह में अभिमन्यु ने वसातीय और रुधारथ के प्राण हर लिये। मृत्यु-काल उपस्थित होने पर जैसे यमराज प्राणियों के प्राण हर लेते हैं, उसी प्रकार वीर अभिमन्यु भी शत्रु योद्धाओं की आयु अपहरण कर रहा था। जैसे उन्मत्त व्याघ्र हरिण को दबोच लेता है, उसी प्रकार अभिमन्यु ने सत्यश्रवा को यमपुर पहुँचा दिया। जो शूरवीर उस समय अभिमन्यु के पास गये, वे फिर जीवित नहीं लौटे। जैसे छोटी नौका बड़े ग्राह के द्वारा पकड़े जाने पर डगमगाने लगती है, वैसे ही कौरव-सेना अभिमन्यु के भय से अस्थिर हो रही थी। अभिमन्यु के अस्त्रों की मार से कौरव महारथियों के सारे अंग पसीने-पसीने हो रहे थे और उनका युद्ध करने का उत्साह क्षीण होता जा रहा था। उस समय दुर्योधन का एकमात्र पुत्र लक्ष्मण बाल-स्वभाव तथा अभिमान के कारण निर्भय हो अभिमन्यु के सामने आया। अभिमन्यु ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। फिर उसने क्राथ-पुत्र को मार गिराया। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, वृहद्वल, बृन्दारक (दुर्योधन का छोटा भाई) और कृतवर्मा ने अभिमन्यु को चारों ओर से घेर लिया। अभिमन्यु ने बृदारक को धराशायी कर दिया और दूसरे योद्धाओं से अकेले ही युद्ध करने लगा। कौशल नरेश बृहद्वल ने अभिमन्यु के सारथी और घोड़ों को घायल कर दिया और उसे भी अपने तीखे बाणों द्वारा गहरी चोट पहुँचायी। किन्तु वीर अभिमन्यु ने कर्ण के छह मंत्रियों और मगधराज के पुत्र अश्वकेतु को मार डाला। तत्पश्चात् अभिमन्यु ने शत्रुंजय, चंद्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा और सूर्यभास इन पाँच वीरों को यमलोक भेज दिया। तब कर्ण ने वीर अभिमन्यु का धनुष काट डाला और कृपाचार्य ने उसका रथ तोड़ दिया। अब छह निर्दयी महारथी रथहीन बालक पर एकसाथ बाणों की बौछार करने लगे। धनुष कट जाने पर वीर बालक ढाल और तलवार लेकर रथ से कूद पड़ा, किन्तु कर्ण ने उसके ढाल और तलवार के भी

अपने बाणों द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर उसने गदा द्वारा सुबल पुत्र कालिकेय को मार गिराया। तदनन्तर दुःशासन-पुत्र ने अपनी गदा द्वारा छह वीरों के अस्त्रों से आहत एकाकी अभिमन्यु को मार डाला। उस समय अन्तरिक्ष के प्राणी आकाश से गिरे हुए चन्द्रमा के समान वीर अभिमन्यु को रण-भूमि में पड़ा देख कौरव और उनके महारथियों की निन्दा करने लगे। वे धिक्कार रहे थे कि द्रोण और कर्ण आदि छह महारथियों द्वारा असहाय अवस्था में यह बालक अधर्मपूर्वक मारा गया है। इतने में सूर्यास्त हो गया और दोनों पक्ष की सेना अपने-अपने शिविर में लौट गयी।

महापराक्रमी यूथपति सुभद्राकुमार अभिमन्यु के मारे जाने पर पाण्डव रथ, कवच और अस्त्र-शस्त्र को त्याग महाराजा युधिष्ठिर के निकट बैठ गये, जो अभिमन्यु के लिये अत्यन्त विलाप कर रहे थे। उन्होंने पाण्डवों और मित्रों से कहा—'मैंने ही अपने प्रिय कार्य की इच्छा और विजय की अभिलाषा से लोभ और मोह के वशीभूत हो वीर सुभद्राकुमार को चक्रव्यूह तोड़ने की आज्ञा दी थी। वह तरुण बालक बुद्धिमान, लज्जा-शील, क्षमावान, सत्यपराक्रमी था, इसीलिये उसके कार्यों की सर्व दिशाओं में प्रशंसा थी। नीच दुर्योधन ने अधर्मपूर्वक उस निःशस्त्र वीर बालक का अपने छह महान योद्धाओं द्वारा वध कराया है, जिसका पाप कौरवों और उनके सहायकों को दग्ध कर देगा।'

इतने में भगवान व्यास वहाँ आ पहुँचे। बोले—'राजन्! तुम्हें शूरवीर अभिमन्यु के लिये शोक नहीं करना चाहिये। विधाता के विधान का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। मृत्यु तो निमित्त से ही होती है। अभिमन्यु को जो उत्तम गति प्राप्त हुई है, वह दूसरों को सम्भव नहीं है। इस विषय में मैं तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ:

राजन् !

'राजा शैव्य के संजय नामक एक प्रसिद्ध पुत्र था। पर्वत और नारद उसके दो ऋषि मित्र थे। राजा संजय के कोई सन्तान नहीं थी। पुत्र-प्राप्ति के लिये उसने श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा यजन करवाया। उसके फलस्वरूप उसे एक सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ किन्तु वह डाकुओं द्वारा मारा गया। यह देख राजा संजय दुःख से पीड़ित हो विलाप करने लगा।'

नारद ने कहा—'बुद्धिमान नरेश! शोक को त्यागो। शोक करने से मृत मनुष्य जीवित नहीं हो सकता। भोगों से अतृप्त रहकर तुम भी एक दिन मर जाओगे। धर्म, ज्ञान और वैराग्य का आश्रय लो। राजा मरुत्त, राजा सुहोत्र, राजा पौरव, राजा दिलीप, राजा मान्धाता, राजा शिवि और राजा भगीरथ सब परम दानी, सत्यवादी और महात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब दूसरों की तो बात ही क्या? मृत्यु सम्पूर्ण प्राणियों को समभाव से प्राप्त होती है।'

भगवान व्यास बोले—'शूरवीर अभिमन्यु तो कृतार्थ हो चुका है। पुण्यात्मा पुरुष ब्रह्मचर्य-पालन, उत्तम ज्ञान, वेद-शास्त्रों का स्वाध्याय, ध्यान, निष्काम भाव तथा यज्ञों के अनुष्ठान से जहाँ जाते हैं, वहीं तुम्हारा पुत्र अभिमन्यु भी गया है। अतः उसके लिये तुम शोक न करो।' भगवान व्यास का उपदेश सुन युधिष्ठिर को सांत्वना मिली। जब भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन अत्यन्त दुष्कर कर्म करके लौटे, तब उन्हें पाण्डव-शिविर श्रीहीन दिखायी दिया।

वीर अर्जुन के पूछने पर युधिष्ठिर बोले—'महाबाहो! जब तुम संशप्तक सेना के साथ युद्ध के लिये चले गये, तब आचार्य द्रोण ने चक्रव्यूह की रचना की। हमारी आज्ञा पाकर अनुपम पराक्रमी अभिमन्यु ने उस व्यूह में प्रवेश किया। हम भी अभिमन्यु के बनाये हुए मार्ग द्वारा उसके पीछे-पीछे उस व्यूह में घुसना चाहते थे, किन्तु नीच जयद्रथ ने भगवान शंकर के वरदान से हम सब

लोगों को व्यूह में प्रवेश करने से रोक दिया। तदनन्तर द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, वृहद्बल और कृतवर्मा ने सुभद्राकुमार को चारों ओर से घेर लिया। यद्यपि वीर अभिमन्यु पूरी शक्ति लगाकर उनसे युद्ध करता रहा, तथापि शत्रु संख्या में अधिक थे, इसलिये शस्त्रों से आहत, रथहीन और निःशस्त्र बालक को दुःशासन-पुत्र ने गदा के प्रहार द्वारा मार डाला।'

धर्मराज युधिष्ठिर की बात सुनकर शोक-व्यथा से पीड़ित वीर अर्जुन पृथ्वी पर अचेत होकर गिर पड़े। जब वीर अर्जुन की मूर्च्छा टूटी, उन्होंने कहा—'महाराज! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल जयद्रथ को अवश्य ही मार डालूँगा। यदि संग्राम-भूमि में ऐसा न कर सका तो मैं प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।' वीर अर्जन, सुभद्रा और उत्तरा को शोक-सागर में डूबा देख भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें सान्त्वना दी।

संजय ने कहा—'राजन्! सिंधुराज जयद्रथ को जब अर्जुन की इस प्रतिज्ञा का पता चला, तब वह डर के मारे दुःख और शोक से युक्त हो, द्रोणाचार्य, दुर्योधन, कृपाचार्य, कर्ण, शल्य तथा दुःशासन के पास गया।'

भय से व्याकुल और विलाप करते हुए जयद्रथ से राजा दुर्योधन बोले—'पुरुषसिंह! तुम्हें अर्जुन से भयभीत नहीं होना चाहिये। तुम्हारी रक्षा के लिये हमारे पक्ष के सभी महारथी तत्पर रहेंगे।'

द्रोणाचार्य ने भी उसकी रक्षा करने का आश्वासन दिया।

जब वीर अर्जुन ने जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की, तब भगवान श्रीकृष्ण ने कुन्तीपुत्र अर्जुन से कहा—'धनंजय! तुमने अपने भाइयों का और मेरा मत जाने बिना ही यह दुःसाहस पूर्ण प्रतिज्ञा क्यों कर ली? यदि यह पूर्ण नहीं हुई तो सम्पूर्ण लोकों में हम सब उपहास के पात्र बनेंगे।'

पाण्डुपुत्र अर्जुन बोले—'भगवन्! जहाँ आप हैं, वहाँ विजय अवश्य होगी। इस युद्धस्थल में कौरवों के पास कौन-सी ऐसी

शक्ति है, जो आपकी कृपा से मेरे लिये अजित हो ?'

श्रीकृष्ण ने कहा—'धनंजय ! जो कार्य करना है, उसे प्रयत्नपूर्वक करो। उद्योगहीन पुरुष का शोक उसके लिये शत्रु के समान है। पार्थ ! पाशुपत नामक एक परम उत्तम अस्त्र है, जिसका प्रयोग कर युद्ध में भगवान महेश्वर ने दैत्यों का संहार किया था। यदि वह अस्त्र आज तुम्हें विदित हो, तो तुम अवश्य ही कल जयद्रथ को मार सकते हो। यदि तुम्हें इसका ज्ञान नहीं है, तो भगवान शिव की शीघ्र आराधना करो। उनके दया-प्रसाद से तुम उस महान अस्त्र को प्राप्त कर लोगे।'

भगवान श्रीकृष्ण का यह वचन सुनकर वीर अर्जुन महादेवजी का चिन्तन करने लगे। महाबाहु अर्जुन को तपस्या के प्रभाव से भगवान वृषभध्वज का दर्शन हुआ। अर्जुन ने ब्रह्मस्वरूप शिव को प्रणाम कर इस प्रकार स्तुति की—'हे देवाधिदेव ! आप जगत के आदि कारण, लोकस्रष्टा, अजन्मा, ईश्वर, अविनाशी, मन की उत्पत्ति के प्रधान कारण, पंचभूतों के आश्रय, ब्रह्मवेत्ताओं की प्रत्यक्ष निधि, चराचर विश्व की सृष्टि और संहार करने वाले परमात्मा हैं। सूक्ष्म अध्यात्म पद की अभिलाषा रखने वाले विद्वान जिनकी शरण लेते हैं, उन्हीं कारण स्वरूप अजन्मा भगवान की मैं शरण लेता हूँ। भव, शर्व, रुद्र, पशुपति नामों से प्रसिद्ध आप शिव को मेरा प्रणाम है। आप तीन नेत्र धारण करने वाले, शान्ति-स्वरूप और अंधकार का विनाश करने वाले को मेरा प्रणाम है। प्रभो ! मैं आपसे दिव्य-अस्त्र प्राप्त करना चाहता हूँ।' तब भगवान शिव ने प्रसन्न हो अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान किया।

रात्रि के समाप्त होने पर राजा युधिष्ठिर भगवान श्रीकृष्ण से बोले—'प्रभो ! जैसे देवता इंद्र का आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार हम लोग आपका सहारा लेकर युद्ध में विजय पाना चाहते हैं। हम सबका जीवन आपके ही अधीन है, अतः जिस प्रकार अर्जुन की प्रतिज्ञा पूर्ण हो, उसी प्रकार के कार्य का आदेश हमें दें।

जैसे आप यादवों के संरक्षक हैं, वैसे ही इस संकट से आप हमारा उद्धार कीजिये।'

श्रीकृष्ण ने कहा—'राजन्! वीर अर्जुन महापराक्रमी, अस्त्रज्ञान-सम्पन्न और तेजस्वी है, अत: यह आपके शत्रुओं को अवश्य मार डालेगा। आज विजयशील अर्जुन जयद्रथ को मारकर ही आपके पास आयेगा। तदनन्तर वीर अर्जुन ने महाराजा युधिष्ठिर को प्रणाम किया और उन्होंने भी उसका आलिंगन कर उसे उत्तम आशीर्वाद दिये।

सूर्योदय के पश्चात गुरु द्रोणाचार्य ने कौरव-सेना का चक्र-गर्भ शकट व्यूह बनाकर जयद्रथ से कहा—'तुम, कृतवर्मा, जलसंध, दुर्योधन, भूरिश्रवा, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन तथा कृपाचार्य यहाँ से दूर व्यूह में डटे रहो। मैं व्यूह के अग्र-भाग में रहूँगा।'

जयद्रथ-वध

पाण्डुपुत्र अर्जुन ने युद्ध-स्थल में जाकर जहाँ दुर्योधन का छोटा भाई दुर्भर्षण खड़ा था, वहाँ व्यूह का छेदन कर डाला। यह देख दु:शासन उनसे युद्ध करने लगा, पर वीर अर्जुन ने अपने तेज बाणों द्वारा उसे व्यथित और परास्त कर दिया, अत: वह रणभूमि से भाग गया।

तदनन्तर वीर अर्जुन आचार्य को दूर से प्रणाम कर सामने गया और बोला—'गुरुश्रेष्ठ! आप मेरे कल्याण के लिए मुझे आशीर्वाद दीजिये। मैं आपकी कृपा से ही इस दुर्भेद्य व्यूह में प्रवेश करना चाहता हूँ। आप मेरे लिए पिता पाण्डु, भ्राता युधिष्ठिर, सखा श्रीकृष्ण के समान हैं। जैसे अश्वत्थामा आपके लिये रक्षणीय है, उसी प्रकार मैं भी सदैव आपसे संरक्षण पाने का अधिकारी हूँ। मैं आपकी कृपा-प्रसाद से जयद्रथ को मारना चाहता हूँ, अत: आप मेरी इस प्रतिज्ञा की रक्षा कीजिये।'

महाबाहु अर्जुन के ऐसा कहने पर द्रोणाचार्य ने हँसते-हँसते कहा—'वीर अर्जुन ! मुझे पराजित किये बिना जयद्रथ को जीतना असंभव है।' फिर दोनों वीरों में युद्ध होने लगा। उस युद्ध में अधिक समय बीतता देख भगवान श्रीकृष्ण ने दोणाचार्य के सामने से अपने रथ को दूसरी ओर आगे बढ़ाया। यह देख कौरव वीर जय, कृतवर्मा, काम्बोज नरेश तथा श्रुतायु ने उनसे युद्ध करना आरम्भ कर दिया। श्रुतायु को एक अजेय गदा वरुण देवता ने उसकी आराधना से प्रसन्न हो प्रदान की थी और उससे कहा था कि इसका प्रयोग, जो युद्ध नहीं करता हो उस पर न करना, नहीं तो यह तुम्हारा ही नाश कर डालेगी। इस आज्ञा का उल्लंघन कर उसने उस गदा के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण पर प्रहार किया, अतः स्वयं ही उसके द्वारा मारा गया। तत्पश्चात सुदक्षिण वीर अर्जुन से युद्ध करने लगा, पर वह भी उनके हाथों से मारा गया। यह देख अच्युतायु, नियुतायु, दीर्घायु और अम्बष्ठ, पाण्डु पुत्र अर्जुन के साथ युद्ध करने लगे, किन्तु उन्हें भी वीर अर्जुन ने यमलोक भेज दिया। जब युद्ध में द्रोणाचार्य ने दुर्योधन को अत्यन्त दुःखित देखा तब उन्होंने उसे मंत्रों द्वारा विभूषित एक कवच पहिनाकर अर्जुन से युद्ध के लिए भेजा। यह देख धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य पर धावा बोल दिया। जैसे ग्रीष्म ऋतु के अंत में भयंकर वायु महासागर में क्षोभ उत्पन्न कर देती है उसी प्रकार दोनों वीरों में युद्ध होने लगा। जैसे वर्षाकालीन नदी प्रखर प्रवाह से किसी महान सेतु को तोड़ डालना चाहती हो परन्तु उस असीम जलराशि को पर्वत रोक देता है, वैसे ही द्रोणाचार्य ने पाण्डवों के आक्रमण को रोक दिया। द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न से पीडित हुए पाण्डव-कौरव योद्धा प्राणों का मोह छोड़ पूरी शक्ति लगा कर युद्ध कर रहे थे। विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण, विन्द, अनुविन्द और क्षेमधूर्ति भीमसेन से युद्ध करने लगे। वाह्लीकराज द्रौपदी के पुत्रों से संग्राम कर रहे थे। काशीराज ने अभिभू के

पराक्रमी पुत्रों का सामना किया। राजा युधिष्ठिर से राजा शल्य भिड़ गए और दु:शासन ने सात्यकि पर आक्रमण कर दिया। माद्रीपुत्र नकुल ने शकुनि का सामना किया। क्रूरवर्मा घटोत्कच से युद्ध करने लगे और जलम्बुष कुन्तीभोज से। इस प्रकार वह भयंकर जन-संहार आरम्भ हो गया।

धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को मारने के लिये अपनी तलवार से हमला किया, किन्तु उन्होंने अपने पैने बाणों से उसकी तलवार और ढाल के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। वीर सात्यकि उसी स्थल पर आ पहुँचा और उसने उसे द्रोणाचार्य के हाथ से बचा लिया। जब द्रोणाचार्य का पाण्डवों के योद्धाओं से युद्ध हो रहा था तब सूर्य भगवान अस्ताचल के शिखर की ओर ढल चुके थे। जब विजयाकांक्षी योद्धा युद्ध में अनुरक्त थे तब वीर अर्जुन और श्रीकृष्ण जयद्रथ को प्राप्त करने को आगे बढ़ते जा रहे थे। व्यूह के मध्य भाग में पहुँच कर भूख-प्यास से पीड़ित उनके उत्तम घोड़े परिश्रम से थक गये, अत: मंदगति से चलने लगे। इसी समय अवन्ती के वीर राजकुमार विंद और अनुविंद दुर्धर्ष अर्जुन से युद्ध करने लगे, किन्तु वीर अर्जुन के द्वारा दोनों भाई मारे गये। रथ के उत्तम अश्वों की थकावट मिटाने के लिए कुन्तीपुत्र अर्जुन रथ से उतर पड़े और गाण्डीव धनुष हाथ में लेकर पर्वत के समान अविचल भाव से खड़े हो गये। भगवान श्रीकृष्ण के आदेश से वीर अर्जुन ने पृथ्वी पर आघात करके जल से भरा हुआ सरोवर उत्पन्न कर दिया और घोड़ों की रक्षा करने लगे। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण ने घोड़ों को रथ से खोला, पानी पिलाया और उनकी चिकित्सा की, जिससे वे कष्टमुक्त हो गये। भगवान श्रीकृष्ण ने अश्वों को पुन: रथ में जोड़ दिया और वीर अर्जुन सहित वे रथ पर आरूढ़ हो गये। तदनन्तर वीर अर्जुन जयद्रथ की खोज में बड़े वेग से आगे बढ़े, परन्तु सूर्यदेव अस्ताचल की ओर ढलने लगे। उसी समय दुर्योधन की सेना ने उन्हें घेर लिया। कौरवों की सेना को लांघ कर

भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन राहु के मुख से छूटे हुए सूर्य और चन्द्रमा के समान दिखाई दिये। जब उन्होंने जयद्रथ को देखा, तब वे हर्ष से उल्लसित हो उठे। वे उस पर सहसा कुपित हो उसी प्रकार टूट पड़े जैसे दो बाज माँस पर झपट रहे हों। द्रोणाचार्य से मंत्रित कवच को धारण कर दुर्योधन जयद्रथ को बचाने हेतु शीघ्रता से वहाँ आया और वीर अर्जुन से युद्ध करने लगा।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'पार्थ ! दुर्योधन ही पाण्डवों के सारे अनर्थों की जड़ है। आज यह तुम्हारे बाणों की मार में आ पहुँचा है। तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे इसका विनाश हो जाए। भगवान श्रीकृष्ण का आदेश पाकर वीर अर्जुन ने दुर्योधन पर अपने बाणों से प्रहार किया, किन्तु उसके बाण दुर्योधन के कवच में लगकर फिसल गये। कुंतीनन्दन अर्जुन को विदित हो गया कि दुर्योधन आचार्य द्रोण द्वारा मंत्रित कवच पहिने हुए है, इसलिये उसने उसके सारथी, घोड़ों और रक्षकों को मार गिराया। फिर उसने दुर्योधन का धनुष काट दिया और उसकी हथेली को बाणों से छेद डाला। दुर्योधन वेदना से व्याकुल हो युद्ध-भूमि से भाग गया। जयद्रथ की रक्षा में नियुक्त भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृषसेन, कृपाचार्य, मंद्रराज शल्य, महारथी अर्जुन की गति को रोकने के लिये उनसे युद्ध करने लगे। दूसरी ओर पाण्डवों और कौरवों में महायुद्ध हो रहा था। द्रोणाचार्य ने राजा युधिष्ठिर को रथहीन कर दिया, इसलिये वे सहदेव के रथ पर चढ़कर युद्ध-स्थल से भाग गये। कैकयराज ने कौरव-पक्ष के योद्धा क्षेमधूर्ति को मार गिराया। धृष्टकेतु ने वीरधन्वा को यमलोक भेज दिया। सहदेव ने त्रिगर्त राजा के पुत्र निरमित्र को धराशायी कर दिया। सात्यकि ने मगध-नरेश के राजकुमार व्याघ्रदत्त का सिर धड़ से अलग कर दिया। सहदेवकुमार ने सोमदत्तकुमार शल का वध कर डाला। हिडिम्ब कुमार वीर घटोत्कच ने अद्भुत पराक्रम दिखाकर अलम्बुष को रथ से

पकड़कर पृथ्वी पर पटक दिया, जिससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। द्रोणाचार्य ने जब कौरव-सेना को सात्यकि के द्वारा पीड़ित देखा, तब उन्होंने उस पर आक्रमण कर दिया। शूरवीर द्रोणाचार्य चुन-चुनकर पाण्डवों के योद्धाओं को मार रहे थे। सहसा राजा युधिष्ठिर ने कौरव-सेना का हर्षनाद और शंखराज पांचजन्य की ध्वनि सुनी। इससे कुन्तीकुमार युधिष्ठिर का हृदय व्याकुल हो उठा।

वे सात्यकि से बोले--'शैनेय ! साधु-पुरुषों ने विपत्ति के समय में सुहृद के कर्तव्यों के विषय में जिस धर्म का वर्णन किया है, आज उसीके पालन का अवसर उपस्थित हुआ है। इस दृष्टि से विचार करने पर मैं समस्त योद्धाओं में किसीको तुमसे बढ़कर सुहृत नहीं समझता हूँ। तुम नित्य निरंतर पाण्डवों के प्रति अनुराग रखते हो, इसलिये महत्वपूर्ण कार्य के सम्पादन करने में उपयुक्त हो। नरश्रेष्ठ ! वीर अर्जुन तुम्हारा भाई, मित्र एवं गुरु है। वह युद्ध-भूमि में संकट में पड़ा हुआ है। तुम सत्यव्रती, शूरवीर तथा मित्रों को अभय देने वाले हो, इसलिये वीर अर्जुन की रक्षा करो।'

धर्मराज का यह प्रेमपूर्ण, मधुर वाणी से युक्त, सामयिक तथा न्यायसंगत वचन सुन सात्यकि ने कहा--'आपकी आज्ञा पाकर मैं देवताओं से भी युद्ध कर सकता हूँ। मैं सकुशल वीर अर्जुन की रक्षा करूँगा और जयद्रथ के मारे जाने पर उनके साथ ही आपके पास लौट आऊँगा। परन्तु नरेश्वर ! भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन ने मुझे आपकी रक्षा का भार दिया है। यदि द्रोणाचार्य ने आपको बंदी बना लिया तो जयद्रथ का वध न हो सकेगा। महामते ! मैं अपने आचार्य के आदेश का न तो उल्लंघन कर सकता हूँ, न आपकी आज्ञा को ही त्याग सकता हूँ। आपके मन में वीर अर्जुन के लिये भय नहीं होना चाहिये, क्योंकि इस पृथ्वी पर उनका सामना करने वाला वीर है ही नहीं।'

राजा युधिष्ठिर बोले---'महाबाहो ! भीमसेन मेरी रक्षा कर लेंगे। तुम मेरी आज्ञा से वीर अर्जुन के पास जाओ।'

सात्यकि ने कहा---'राजन् ! आपका कल्याण हो।' तत्पश्चात सात्यकि राजा युधिष्ठिर की आज्ञा शिरोधार्य कर वीर अर्जुन के पास चला गया। सात्यकि को व्यूह में प्रवेश करते देख कौरव-योद्धाओं ने उस पर आक्रमण कर दिया। सात्यकि ने भी अपने तीक्ष्ण बाणों से अनेक योद्धाओं को यमलोक पहुँचा दिया और व्यूह के भीतर घुस गया। जब भीमसेन आदि योद्धाओं ने कौरव सेना पर आक्रमण किया, तब द्रोणाचार्य और कृतवर्मा ने उनके प्रयास को विफल कर दिया। उस महासमर में कौरव योद्धाओं का सिंहनाद सुन वीर सात्यकि ने कृतवर्मा को रथहीन कर तुरन्त आगे बढ़ गया। यह देख जलसंध उनसे युद्ध करने लगा, किन्तु सात्यकि ने उसके विशाल मस्तक को काट गिराया। जलसंध की मृत्यु के पश्चात कृतवर्मा, दुर्योधन, चित्रसेन, दु:शासन, दुर्भर्षण, दु:सह और विकर्ण सात्यकि से युद्ध करने लगे। उन वीरों को पराजित कर सात्यकि वीर अर्जुन की सहायता करने आगे बढ़ा। सात्यकि के द्वारा कौरवों की यह पराजय द्रोणाचार्य से सहन नहीं हुई। वे रोष में भरकर सात्यकि से युद्ध करने लगे। तत्पश्चात सात्यकि ने द्रोणाचार्य के सारथी और घोड़ों को मार गिराया। द्रोणाचार्य सात्यकि को रोकने का प्रयत्न छोड़ पुन: व्यूह के द्वार पर खड़े हो गये और सात्यकि व्यूह में आगे बढ़ा। नृपश्रेष्ठ सुदर्शन ने सात्यकि को व्यूह में शीघ्रता से जाते देख उस पर आक्रमण कर दिया। तदनन्तर शनिवंश के प्रमुख वीर सात्यकि ने सुदर्शन के मस्तक को अपने तीक्ष्ण बाणों से काट डाला और आगे बढ़ गया।

सात्यकि के बाणों से पीड़ित हो दु:शासन जब द्रोणाचार्य के निकट गया, तब द्रोणाचार्य ने उसे क्रोधपूर्वक डाँटते हुए कहा---'दु:शासन ! ये सारे रथी यहाँ क्यों भागे आ रहे हैं ?

राजा दुर्योधन कुशल तो हैं न ? क्या जयद्रथ अभी तक जीवित है ? तुम तो राजा के बेटे, राजा के भाई, महारथी वीर हो और युवराज के पद पर हो, फिर युद्ध-स्थल से क्यों भाग रहे हो ? दु:शासन ! तुमने द्रौपदी से कहा था—तू जुए में जीती हुई दासी के समान है, अतः हमारी इच्छा के अनुसार आचरण कर और दूसरा पति कर ले। अब तुम्हारे पाँचों पति छोटे तिलों के समान भी नहीं हैं। पहले ऐसी बातें कहकर तुमने पाण्डवों से स्वयं ही भारी बैर ठाना है, अब उसका परिणाम देखो। युद्ध-स्थल में अकेला सात्यकि तुम्हारे पक्ष के अनेक योद्धाओं से युद्ध कर रहा था, फिर तुम क्यों प्राण बचाने के लिये भयभीत हुए ? क्या तुम जुए में पासे उठाते समय नहीं जानते थे कि ये एक दिन भयंकर विषधर सर्प के समान विनाशकारी बन जायेंगे ? पूर्वकाल में पाण्डवों और द्रौपदी को जो कष्ट पहुँचाया था, उसकी जड़ तुम ही हो ? कहाँ गया तुम्हारा वह दर्प और अभिमान ? कहाँ है तुम्हारा पराक्रम ? जब तुम्हें वीर अर्जुन और भीमसेन से युद्ध करना पड़ेगा, तब तुम कहाँ भागोगे ? वीर! अब तुम शीघ्र अपनी माता गान्धारी की गोद में छिप जाओ, अन्यथा मुझे तुम्हारे जीवन की रक्षा दिखायी नहीं देती। ओ मूर्ख ! क्या तुम भीमसेन के पराक्रम को नहीं जानते ? क्या वह तुम्हारा रण में वध किये बिना शान्त होगा ?'

द्रोणाचार्य के ऐसा कहने पर दु:शासन वहाँ से चला गया और द्रोणाचार्य ने पाण्डव-सेना पर पुनः आक्रमण कर दिया। अब वे सोमकों, सृंजयों तथा केकयों का पुनः संहार करने लगे। केकय महारथी वृहत्क्षेत्र आचार्य द्रोण से भिड़ गये, किन्तु कुछ ही समय में वे उनके द्वारा मारे गये। यह देख अत्यन्त बल-सम्पन्न चेदिराज धृष्टकेतु द्रोणाचार्य का वध करने के लिये उसी प्रकार दौड़ा, जैसे पतंगा आग पर टूट पड़ता है। पर द्रोणाचार्य ने कुछ ही समय में धृष्टकेतु को धराशायी कर

दिया। धृष्टकेतु के मारे जाने पर उसका पुत्र अमर्ष आचार्य से युद्ध करने लगा, किन्तु उन्होंने उसे भी यमलोक पहुँचा दिया। उन पाण्डव योद्धाओं के इस प्रकार नष्ट होने पर जरासंध के वीर पुत्र सहदेव ने आचार्य पर धावा किया, किन्तु उन्होंने उसे भी काल के गाल में डाल दिया। अब धृष्टद्युम्न कुमार क्षेत्रधर्मा आचार्य से युद्ध करने लगा, किन्तु वह भी वीरगति को प्राप्त हो गया। जैसे काल आने पर यमराज प्राणियों को ग्रस लेता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्य ने जो-जो वीर उनके सामने आये, उन्हें मौत के घाट उतार दिया।

तदनन्तर युधिष्ठिर सव्यसाची अर्जुन और सात्यकि को देखने के लिये व्यथित हो उठे। उन्होंने भीमसेन से कहा--'महाबाहो भीम! तुम्हारा कल्याण हो। मैं वीर अर्जुन और सात्यकि के लिये चिन्ताग्नि में जल रहा हूँ। परंतप! महाबाहु अर्जुन और सात्यकि के जीवन के विषय में जो मेरे मन में संशय हो रहा है, वह दूर करो। धर्मज्ञ! सात्यकि ने मेरा प्रिय करने की इच्छा से अर्जुन के उस दुर्गम एवं भयंकर मार्ग का अनुसरण किया है, जो शूरवीर पुरुषों के लिये भी अगम्य है। तुम भगवान श्रीकृष्ण, अर्जुन और सात्वतवंशी सात्यकि को सकुशल देखकर उच्च स्वर से सिंहनाद करना, जिससे मुझे उनकी सूचना मिल सके।'

भीमसेन ने कहा—'महाराज! भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन के लिये आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर उनके पास जा रहा हूँ।'

भीमसेन राजा युधिष्ठिर को धृष्टद्युम्न के संरक्षण में सौंप और बड़े भाई को प्रणाम कर जिस मार्ग पर अर्जुन गये थे, उसी दिशा में चल दिये। धर्मराज युधिष्ठिर ने उन्हें अनेक आशीर्वाद दिये। जब भीमसेन कौरव सेना में प्रविष्ट हुए, उस समय पांचजन्य शंख की भयंकर ध्वनि उन्होंने सुनी। उस ध्वनि से आनन्दित हो उन्होंने शत्रुओं पर धावा बोल दिया। इस पर

कौरवों ने भीमसेन का सामना किया। राजन् ! आपके पुत्रों कुण्डभेदी, सुषेण और दीर्घलोचन को भीमसेन ने यमलोक भेज दिया तथा अभय, रौद्रकर्मा तथा दुर्विमोचन को भी धराशायी कर दिया। भीमसेन ने हँसते-हँसते विंद, अनुविंद और सुवर्मा को मृत्यु के घाट उतार दिया। पाण्डुनन्दन भीमसेन को रोकने की इच्छा से आचार्य ने उन पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। यह देख कौरव योद्धाओं ने भीमसेन को सब ओर से घेर लिया। भीमसेन ने अपनी अत्यन्त भयंकर गदा योद्धाओं पर दे मारी। भीमसेन से भयभीत हो कौरव सैनिक इधर-उधर भाग गये। यह देख द्रोणाचार्य ने भीमसेन का सामना किया। तब भीमसेन पैदल ही द्रोणाचार्य की ओर दौड़े। उन्होंने द्रोणाचार्य के रथ को हाथ से पकड़कर दूर फेंक दिया। द्रोणाचार्य दूसरे रथ पर आरूढ़ होकर भीमसेन से पुन: लड़ने लगे, किन्तु इस रथ को भी भीमसेन ने दूर फेंक दिया। इस प्रकार द्रोणाचार्य के आठ रथ युद्ध-भूमि में भीमसेन के द्वारा फेंके गये। द्रोणाचार्य को युद्ध-भूमि में छोड़ भीमसेन सात्यकि के पास पहुँच गये। फिर उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन को देख भीषण सिंह-नाद किया। भीमसेन की गर्जना सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुये। यह देख बलवान कर्ण ने महाबली भीमसेन पर आक्रमण किया। वीर भीमसेन भी कर्ण के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। भीमसेन ने कर्ण के सारथी और घोड़ों के प्राण हर लिये। कर्ण भीमसेन के भय से वृषसेन के रथ पर जा बैठा। कौरव दु:शल, दुर्जय और दुर्मुख कर्ण की सहायता के लिये वहाँ आये, किन्तु भीमसेन के द्वारा शीघ्र ही मारे गये।

जब कौरव-दल के अनेक महारथी पाण्डवों द्वारा मारे गये, तब दुर्योधन द्रोणाचार्य के पास जाकर घबराहट के स्वर में बोला—'आचार्य ! अर्जुन, भीम और सात्यकि मेरी विशाल सेना को पराजित कर जयद्रथ के निकट पहुँच गये हैं। सारे योद्धा यह कह रहे हैं कि धनुर्वेद के पारंगत आचार्य द्रोण इनसे

'कैसे पराजित हो गये ? आप अपने कर्तव्य से च्युत न हों। वास्तव में मेरा भाग्य ही बुरा है, इसलिये इस युद्ध में मेरा विनाश अवश्यम्भावी है।'

द्रोणाचार्य ने कहा—'तात! मैं अपने कर्तव्य को अच्छी तरह जानता हूँ। जहाँ वीर अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं, वहाँ मुझे भय की आशंका है। वीर सात्यकि और भीमसेन, जयद्रथ को ही लक्ष्य करके वहाँ गये हैं। इस समय हमें जयद्रथ की रक्षा करनी चाहिये। तुम शीघ्र यहाँ से चले जाओ और जयद्रथ की रक्षा करो।'

धृतराष्ट्र,भीम के द्वारा अपने पुत्रों का वध सुन दुःखित हो संजय से बोले—'संजय ! पुरुषार्थ तो व्यर्थ है। मैं दैव को ही बड़ा मानता हूँ। मूर्ख दुर्योधन ने मुझसे कहा था कि कर्ण बलवान, शूरवीर और धनुर्धर है। कर्ण को देवता भी पराजित नहीं कर सकते। परन्तु रणक्षेत्र में विषहीन सर्प के समान कर्ण को भीम ने पराजित कर दिया। दुर्योधन ने मेरे अनेक पुत्रों को जो युद्ध की कला से अनभिज्ञ थे और जो पाण्डवों के सामने पतंगों के समान थे, भीम रूपी भीषण अग्नि में झोंक दिया, जबकि अश्वत्थामा, महाराज शल्य, कृपाचार्य और कर्ण सब मिलकर भी भीम के सामने नहीं ठहर सके। वे भी वायु के तुल्य तेजस्वी भीमसेन के अत्यन्त घोर बल को जानकर उससे भयभीत रहते हैं। ऐसी दशा में मेरे कुबुद्धि पुत्रों ने यम, काल और अंतक समान भीमसेन से क्यों बैर बाँधा। मनुष्य यमलोक में जाकर लौट सकता है, परंतु भीमसेन के सामने जाकर कदापि जीवित नहीं लौटता। कुबुद्धि दुर्योधन ने सभा में बार-बार कहा था कि मैं, कर्ण तथा दुःशासन पाण्डवों को युद्ध में जीत लेंगे। अब उनका गर्व कहाँ गया ? मेरे पुत्रों का जीवन भारी विपत्ति में पड़ गया है, ऐसी मेरी मान्यता है।'

संजय ने कहा—'राजन् ! यह महान भय जब सिर पर आ गया है, तब आप शोक करने बैठे हैं। आप ही तो कौरवों के

विनाश के कारण हैं। कालकूट विष को पीकर अब उसके सारे परिणाम आप ही भोगिये। अब युद्ध के समाचार सुनिये। कर्ण को भीमसेन से पराजित देख दुर्योधन के भाई दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मद, दुर्धर और जय भीमसेन से युद्ध करने लगे, किन्तु कुछ ही समय में वे उनके द्वारा मारे गये। अपने भाइयों को भीमसेन के हाथ मरा देखकर चित्र, विचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन और चित्रवर्मा भीमसेन से घोर युद्ध करने लगे। महापराक्रमी भीमसेन ने शीघ्रतापूर्वक उन सभी को अपने तीक्ष्ण बाणों से धराशायी कर दिया। कौरव-पुत्रों को मरा देख आँसुओं की धारा बहाता हुआ वीर कर्ण फिर भीमसेन से युद्ध करने लगा। तत्पश्चात कर्ण की रक्षा करने के लिये दुर्योधन की आज्ञा पाकर उसके सात भाइयों ने भीमसेन पर धावा बोल दिया। भीमसेन ने तीखे बाणों द्वारा शत्रुंजय, शत्रुसह, चित्र-वाण, चित्रायुध, दृढ़वर्मा, चित्रसेन और विकर्ण को मार गिराया। राधानन्दन कर्ण के देखते-देखते उन सातों भाइयों को मारकर पाण्डुनन्दन महाबाहु भीम ने भयंकर सिंहनाद किया। भीमसेन के उस महानाद को सुन बुद्धिमान धर्मराज युधिष्ठिर को बड़ी प्रसन्नता हुई।'

व्यूह-भूमि में राजा अलम्बुष ने सात्यकि पर हमला कर दिया पर कुछ ही समय में सात्यकि राजा अलम्बुष को पुत्र और पौत्र सहित मारकर अर्जुन की ओर बढ़े।

सात्यकि को आते देख भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'पार्थ! देखो, तुम्हारे चरणों का अनुगामी शिनि पुत्र सात्यकि अनेक योद्धाओं को परास्त कर अपनी ओर आ रहा है। प्रतीत होता है, इसने बाणों द्वारा द्रोणाचार्य और कृतवर्मा का भी तिरस्कार किया है और अब धर्मराज युधिष्ठिर को हमारी सूचना देगा।' भगवान श्रीकृष्ण के वचन सुन वीर अर्जुन हर्षित नहीं हुए। उनके मन में महाराज युधिष्ठिर की कुशलता के बारे में तरह-तरह के संकल्प-विकल्प होने लगे। सात्यकि

को वीर अर्जुन के निकट जाता देख भूरिश्रवा ने उन पर आक्रमण कर दिया। सात्यकि अन्य वीरों से युद्ध करते-करते श्रमित हो गया था, इसलिये भूरिश्रवा से परास्त होने लगा। यह देख वीर अर्जुन ने भूरिश्रवा की दाहिनी भुजा अपने तीक्ष्ण बाणों से काट दी।

भूरिश्रवा ने अर्जुन से कहा—'पार्थ ! मनस्वी पुरुष, असावधान, डरे हुए, रथहीन, प्राणों की भिक्षा मांगने वाले तथा संकट में पड़े हुए मनुष्य पर प्रहार नहीं करते। श्रेष्ठ पुरुष के लिये नीच कर्म अत्यन्त पापमय होता है। तुम कुरुकुल में उत्पन्न होकर क्षत्रिय धर्म के ज्ञाता हो। तुममें तो उत्तम शील विद्यमान है, और तुम श्रेष्ठ व्रतों का पालन करते हो। इसलिये तुमने अस्त्र-धर्म को क्यों त्यागा ?'

अर्जुन बोले—'राजन् ! मैं संग्राम के धर्मों को और वेद-शास्त्र के अर्थज्ञान को जानता हूँ, इसलिये अनर्थ नहीं करता। क्षत्रिय भाई, पिता, पुत्र, सम्बन्धी और मित्रों को साथ लेकर शत्रुओं से युद्ध करते हैं। वे सब प्रधान योद्धाओं के आश्रित रहते हैं। सात्यकि मेरा शिष्य और सम्बन्धी है। यह मेरे ही लिये अपने दुस्त्यज प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध कर रहा है। उसे तुम्हारे द्वारा कष्ट पाते देख मैं कैसे उसकी उपेक्षा कर सकता था। रणभूमि में केवल अपनी रक्षा करना उतना ही उचित और आवश्यक है जितना कि अपने आश्रित की। यदि मैं युद्ध में अपने सामने सात्यकि को मरते देखता, तो भयंकर पाप का भागी होता। धर्म के स्वरूप को जाने बिना आपको मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये। बालक अभिमन्यु शस्त्र, कवच और रथहीन हो चुका था, उस दशा में आपके महारथियों द्वारा उसका वध किया गया। वह कहाँ का धर्म था ? आप उस समय कहाँ चले गये थे ?'

वीर अर्जुन के ऐसा कहने पर महायशस्वी भूरिश्रवा रण-भूमि में आमरण अनशन लेकर बैठ गया। पर सोमदत्तकुमार

भूरिश्रवा का सात्यकि ने अपनी पैनी तलवार से वध कर डाला।

अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा--'भगवन्! जिस ओर जयद्रथ खड़ा है, उसी ओर मेरे रथ को शीघ्रतापूर्वक ले चलिये और मेरी प्रतिज्ञा सफल करवाइये।' अश्वविद्या में निपुण महाबाहु श्रीकृष्ण ने रथ को शीघ्रता से जयद्रथ की ओर बढ़ाया। यह देख दुर्योधन, कर्ण, महाराजा शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और स्वयं जयद्रथ उनसे युद्ध करने लगे।

दुर्योधन कर्ण से बोले—'नरवीर! अब दिन का थोड़ा ही भाग रह गया है। तुम शत्रु को घायल कर उसके कार्य में बाधा डालो। सूर्यास्त होने तक यदि सिंधुराज जयद्रथ सुरक्षित रह गया, तो अर्जुन अग्नि में प्रवेश कर जायेगा। अर्जुन के बिना उसके भाई दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकते। पाण्डवों के नष्ट हो जाने पर हम लोग वसुधा का निष्कण्टक राज्य भोगेंगे। दैव के कारण अर्जुन की बुद्धि विपरीत हो गई थी, इसलिये बिना विचारे उसने जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की है, जिसकी रक्षा मैं, दु:शासन, अश्वत्थामा और तुम जैसे दुर्धर्ष वीर कर रहे हैं। हमारे जीते जी अर्जुन सिंधुराज को सूर्यास्त के पहले कैसे मार सकेगा?'

कर्ण ने कहा—'आर्य! धनुर्धर भीमसेन ने संग्राम में मेरे शरीर को अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया है। यद्यपि मैं उसके बाणों के आघात से संतप्त हूँ, तथापि ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे धनंजय सिंधुराज को नहीं पा सके। विजय की प्राप्ति तो दैव के ही अधीन है।' जब रणक्षेत्र में कर्ण और दुर्योधन इस तरह वार्तालाप कर रहे थे, उस समय अर्जुन ने महाबाहु भीम और सात्यकि की सहायता से कौरव सेना का संहार पुनः आरम्भ कर दिया। कौरव योद्धा दुर्योधन, कर्ण, बृषसेन, महाराजा शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा स्वयं जयद्रथ ने अर्जुन को सब ओर से घेर लिया। वे सब सूर्यास्त की प्रतीक्षा कर रहे

थे। वीर अर्जुन ने सब योद्धाओं के देखते-देखते कर्ण के घोड़े और सारथी को यमलोक पहुँचा दिया। तब कर्ण शीघ्रता से अश्वत्थामा के रथ पर आरूढ़ हो गया। कुन्तीकुमार अर्जुन शत्रुओं के जीवन और यश को मिट्टी में मिलाते हुए मूर्तिमान मृत्यु के समान संग्राम कर रहे थे। वीर अर्जुन के बाणों से आहत हो जयद्रथ का ध्वजदण्ड कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

जब सूर्यदेव लाल हो तीव्र गति से अस्ताचल की ओर जा रहे थे, तब भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'नरश्रेष्ठ अर्जुन ! रणभूमि में इन छः महारथियों को परास्त किये बिना सिंधुराज को जीता नहीं जा सकता। शीघ्र ही अज्ञानवश अकेला सिंधुराज सूर्य को स्पष्ट रूप से अस्त हुआ समझेगा। यह दुराचारी हर्षपूर्वक तुम्हारे विनाश के लिये उतावला होकर अपने आपको योद्धाओं के पृष्ठ भाग में न रख सकेगा। ऐसा अवसर आने पर तुम उस पर अवश्य प्रहार करना।'

वीर अर्जुन बोला—'प्रभो ! ऐसा ही होगा।'

श्रीकृष्ण ने कहा—'भरतश्रेष्ठ ! सिंधुराज अब तुम्हारा भय छोड़कर सूर्यदेव की ओर दृष्टिपात कर रहा है। इस दुरात्मा के वध का यही अवसर है। तुम शीघ्र इसका मस्तक काट डालो और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो। धनंजय ! जयद्रथ-वध के विषय में मेरी बात को ध्यान से सुनो। सिंधुराज के पिता वृद्धक्षत्र ने दीर्घकाल के पश्चात जयद्रथ को पुत्र-रूप में पाया था। इसके जन्म पर ज्योतिष शास्त्र के विद्वानों ने उनसे कहा था—नरेन्द्र ! तुम्हारा यह पुत्र शील और संयम आदि सद्‌गुणों से क्षत्रियों में श्रेष्ठ माना जायेगा। परन्तु संग्राम-भूमि में युद्ध करते समय कोई क्षत्रिय शिरोमणि इसका मस्तक काट डालेगा। यह सुनकर सिंधुराज वृद्धक्षत्र ने कहा था कि जो मेरे इस पुत्र के मस्तक को पृथ्वी पर गिरा देगा, उसके सिर के भी टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। ऐसा कहकर राजा वृद्धक्षत्र ने जयद्रथ को राज्य सिंहासन पर बैठा दिया और स्वयं वन में जाकर घोर तपस्या

करने लगे। तुम दिव्य-अस्त्र के द्वारा जयद्रथ का मस्तक काट-कर उसे बृद्धक्षत्र की गोद में गिरा दो।'

भगवान श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर वीर अर्जुन ने एक दिव्य अस्त्र को धनुष पर चढ़ाया, जिसकी नित्य पूजा की जाती थी। फिर उसने मंत्रों द्वारा उसे अभिषिक्त कर जयद्रथ का मस्तक काट डाला। गाण्डीव धनुष से छूटा हुआ वह शीघ्रगामी बाण जयद्रथ का मस्तक ले राजा बृद्धक्षत्र की गोद में जा गिरा। यह देख वृद्धक्षत्र सहसा उठ खड़े हुए। तब उनके पुत्र जयद्रथ का मस्तक पृथ्वी पर गिर पड़ा। मस्तक के पृथ्वी पर गिरते ही राजा बृद्धक्षत्र के सिर के भी टुकड़े-टुकड़े हो गये। वीर अर्जुन द्वारा जयद्रथ के मारे जाने पर कौरव योद्धाओं ने सूर्य देव की ओर दृष्टि डाली, जो अभी पूर्ण रूप से अस्ताचल में नहीं गये थे। जब कुन्तीकुमार अर्जुन द्वारा जयद्रथ मारा गया तब भग-वान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन ने अपना-अपना शंख बजाया। तत्पश्चात भीमसेन और सात्यकि ने पृथक-पृथक शंख बजाये। उस महान सिंहनाद को सुन महाराज युधिष्ठिर को निश्चय हो गया कि अर्जुन ने जयद्रथ को मार डाला है। इससे उनके हर्ष और प्रसन्नता का पारावार न रहा।

अब कृपाचार्य और अश्वत्थामा ने वीर अर्जुन पर धावा कर दिया। वीर अर्जुन अपने अस्त्रों द्वारा अश्वत्थामा और कृपाचार्य के अस्त्रों का निवारण कर उनके ऊपर मन्द वेग से बाण चलाने लगे, किन्तु उनसे भी उन्हें भारी चोट पहुँची। कृपाचार्य अर्जुन के बाणों से पीड़ित हो मूर्छित हो गये। यह देख दयावश अर्जुन की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली और वे अपने कार्य के लिये पश्चाताप करने लगे। राधापुत्र कर्ण को वीर अर्जुन के रथ की ओर आते देख युद्धामन्यु, उत्तमोजा और सात्यकि ने उन पर धावा कर दिया। कर्ण ने भूरिश्रवा और जलसंध के वध को याद कर सात्यकि को मथ डाला। सात्यकि ने भी कर्ण के रथ को ध्वंस कर दिया। सूर्यास्त होने पर सब

कौरव अपने शिविर में चले गये। भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर के शिविर में गये।

वहाँ दोनों ने हर्षपूर्ण हृदय से उन्हें प्रणाम किया और भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'राजन्! सौभाग्य से आपका शत्रु जयद्रथ मारा गया है और वीर अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली है।'

महाराजा युधिष्ठिर ने उन दोनों को आनन्द के आँसू बहाते हुए हृदय से लगाया और बोले—'कमलनयन कृष्ण! जैसे तैरने की इच्छा रखने वाला समुद्र का पार नहीं पाता, उसी प्रकार आपके मुख से यह प्रिय समाचार सुन मेरे हर्ष की सीमा नहीं है। जिनके आप आश्रय हैं, उनके लिये विजय और सौभाग्य निश्चित है। मधुसूदन! आप जिनके रक्षक हैं, उनके लिये कुछ भी कार्य दुष्कर नहीं है। गोविन्द! आपकी कृपा से हम शत्रुओं पर निश्चय ही विजय पायेंगे। उपेन्द्र! आप सदा सब प्रकार से हमारे प्रिय और हित साधन में लगे रहते हैं। आपकी ही बुद्धि, बल और पराकम से अर्जुन ने यह असम्भव कार्य कर दिखाया है।'

फिर उन्होंने वीर अर्जुन को आलिंगन कर कहा—'भरत श्रेष्ठ! आज तुमने बड़ा भारी कार्य कर दिखाया है।' तदनन्तर बाणों से क्षत-विक्षत हुए महाबाहु भीमसेन और महारथी सात्यकि महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम कर भूमि पर खड़े हो गये। कुन्तीकुमार युधिष्ठिर ने उन दोनों का प्रेमपूर्वक अभिनन्दन किया और उनसे कहा—'महाभागो! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम दोनों ने संग्राम-भूमि में शत्रुओं पर विजय पायी है। ये सब भगवान श्रीकृष्ण की ही कृपा से सम्भव हो सका है।

सिंधुराज जयद्रथ के मारे जाने पर दुर्योधन अश्रु बहाता हुआ बहुत दुःखी हो गया। उसे निश्चय हो गया कि इस युद्ध-भूमि में अर्जुन के समान कोई दूसरा योद्धा नहीं है। जिसका भरोसा करके मैंने युद्ध के लिये शस्त्र-संग्रह किया था, वह कर्ण

युद्ध-स्थल में पाण्डवों से परास्त हो गया और जयद्रथ अर्जुन के द्वारा मारा गया।

द्रोणाचार्य

इस प्रकार सोचते-सोचते दुर्योधन आचार्य के पास जाकर बोला—'गुरुदेव ! मेरे अनेक शूरवीर मारे गये हैं। सव्यसाची अर्जुन ने मेरी सात अक्षौहिणी सेना का संहार कर जयद्रथ को भी मार डाला है। मैं अपने मित्रों का संहार कराकर अनेक यज्ञों से भी अपने आपको पवित्र नहीं कर सकता। मुझ लोभी तथा धर्मनाशक पापी के मित्र यमलोक चले गये हैं। दुर्धष वीर भीष्म और अपने कुटुम्बियों को पड़ा देख मेरे जीवित रहने का क्या प्रयोजन है ? सत्यप्रतिज्ञ भीष्म ने स्वयं ही अपनी मृत्यु स्वीकार कर ली और आप भी हमारी उपेक्षा करते हैं, क्योंकि अर्जुन आपका प्रिय शिष्य है। हमारी विजय चाहने वाले सभी योद्धा मारे गये, अब तो केवल कर्ण ही सच्चे हृदय से मेरी विजय चाहता है।'

पूर्वोक्त वचन सुन द्रोणाचार्य दुःखी हो गये। उन्होंने अत्यन्त आर्तभाव से कहा—'दुर्योधन ! मैं तो सदा से ही कहता आया हूँ कि सव्यसाची अर्जुन अजेय है। जो भीष्म अवध्य थे, उन्हें युद्ध में मारा गया देखकर मैंने उसी समय यह जान लिया था कि कौरव सेना का विनाश अवश्यम्भावी है। दुर्योधन ! विदुरजी धीर और महात्मा पुरुष हैं। उन्होंने तुम्हारे कल्याण के लिये जो मंगलकारक वचन कहे थे, उन वचनों का अनादर करने से ही यह घोर संहार हुआ है। तुम और कर्ण तो कहीं मर नहीं गये थे ? कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा जीवित थे, फिर तुम सबके रहते सिंधुराज की मृत्यु क्यों हुई ? जब अर्जुन से उसकी रक्षा इतने वीरों द्वारा भी नहीं की जा सकी, तब तुम्हारी रक्षा के लिये भी मुझे कोई स्थान

नहीं दिखाई देता। दैव के विधान में उलट-फेर नहीं हो सकता। मनुष्य को सदा उद्योगशील होकर निशंक भाव से अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये, परन्तु उसकी सिद्धि दैव के ही अधीन है। यह दैव का ही प्रभाव है, जिसने तुम्हारा पुरुषार्थ नष्ट कर दिया है। दुर्योधन ! मैं समरांगण में वही कार्य करूँगा, जिससे तुम्हारा हित हो। राजन् ! तुम मेरे पुत्र अश्वत्थामा से कहना कि जीवन की रक्षा करते हुए दया, दम, सत्य और सरलता आदि सद्गुणों में स्थिर रहो।' दुर्योधन द्रोणाचार्य के वचन सुन वहाँ से चला गया। वह सिंधुराज के वध से बहुत दु:खी हो गया था, अत: मरने का ही निश्चय कर युद्ध करने लगा। अब रात्रि के समय भी कौरवों और पाण्डवों में युद्ध होने लगा। आचार्य द्रोण ने पाण्डव-सेना का बहुत संहार किया। उन्होंने धृष्टद्युम्न के पुत्रों और राजा शिवि को यमलोक भेज दिया। कलिंग राजकुमार को भीमसेन ने मृत्यु के घाट उतार दिया। तदनन्तर भीमसेन ने ध्रुव, जयरात, दुर्मद और दुष्कर्म को मार डाला। यह देख अश्वत्थामा वहीं युद्ध-स्थल में आ पहुँचा। उसे भीमसेन पर आक्रमण करते देख घटोत्कच और उसके पुत्र अंजनपर्वा ने अश्वत्थामा पर धावा बोल दिया। अब इन दोनों में घमासान युद्ध होने लगा, किन्तु कुछ ही समय में अंजनपर्वा अश्वत्थामा के द्वारा मारा गया। इस पर घटोत्कच ने अपने बाणों द्वारा अश्वत्थामा को बड़ी पीड़ा पहुँचायी। घटोत्कच की सहायता के लिये भीमसेन, धृष्टद्युम्न और द्रुपद पुत्र अश्वत्थामा से युद्ध करने लगे, किन्तु अश्वत्थामा ने शीघ्र ही सुरथ, शत्रुजय, बलानीक, जयानीक और जयाश्व द्रुपद-पुत्रों को यमलोक पहुँचा दिया। फिर द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न ने राजा श्रुताहव पृषध्र और चन्द्रसेन का वध कर दिया। अश्वत्थामा ने अपने एक तीखे बाण द्वारा घटोत्कच के पुत्र को यमलोक भेज दिया। अश्वत्थामा से अब युधिष्ठिर, भीमसेन, धृष्टद्युम्न और सात्यकि युद्ध करने लगे। अश्वत्थामा की सहायता के लिये रणभूमि में सोमदत्त,

वाह्लीक आ पहुँचे। भीमसेन ने अपने तीखे बाणों से वाह्लीक का सिर धड़ से अलग कर दिया। वाह्लीक के मारे जाने पर उसके दस पुत्र भीमसेन से युद्ध करने लगे, किन्तु वे भी कुछ ही समय में भीमसेन द्वारा मारे गये। तदनन्तर कर्ण का पुत्र बृषसेन भीमसेन से युद्ध करने लगा। भीमसेन ने शकुनि के सात भाई और शतचन्द्र को काल के गाल में भेज दिया। यह देख सोमदत्त ने सात्यकि पर आक्रमण किया, किन्तु वह सात्यकि द्वारा मारा गया।

अब भूरि ने सात्यकि पर आक्रमण कर दिया। सात्यकि ने भूरि को एक अत्यन्त वेगशाली शक्ति द्वारा यमलोक पहुँचा दिया। मद्रराज शल्य से राजा विराट और उसका भाई शतानीक युद्ध कर रहे थे। मद्रराज शल्य ने राजा विराट के सारथी और घोड़ों को मारकर शतानी को यमलोक पहुँचा दिया। यह देख बलशाली नकुल कौरव सेना का भयंकर संहार करने लगा। उसका सामना करने के लिये सुबल-पुत्र शकुनि आया। पर नकुल के बाणों के आघात से अत्यन्त घायल हो जाने पर उसका सारथी उसे रणभूमि से दूर ले गया। तदनन्तर नकुल द्रोणाचार्य से युद्ध करने लगा। इसी समय शिखण्डी कृपाचार्य से वहीं युद्ध कर रहा था। दोनों पाण्डव-वीर आचार्य के बाण की मार से पीड़ित हो रणभूमि से भाग गये। तब धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य से युद्ध करने लगा। द्रोणाचार्य की सहायता करने द्रुमसेन, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कर्ण और धृष्टद्युम्न की रक्षा हेतु सात्यकि युद्ध-स्थल पर आ पहुँचे। अब वहाँ भीषण संग्राम होने लगा। कुछ ही समय में धृष्टद्युम्न ने द्रुमसेन को यमलोक पहुँचा दिया। जब बड़े-बड़े वीरों का संग्राम चल रहा था तब दुर्योधन ने सात्यकि पर धावा बोल दिया। सात्यकि ने दुर्योधन के सारथी और घोड़े को मार गिराया। तब दुर्योधन कृतवर्मा के रथ पर आरूढ़ हो युद्ध-भूमि से भाग गया। यह देख आचार्य द्रोण और वीर कर्ण पाण्डव-सेना का भीषण संहार करने लगे।

कुन्तीनन्दन अर्जुन और भीमसेन अब उनसे युद्ध करने लगे। कर्ण ने धृष्टद्युम्न को अपने बाणों से घायल कर दिया। भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा से घटोत्कच ने कर्ण पर आक्रमण किया। जटासुर को पूर्वकाल में कुन्तीकुमार अर्जुन ने मार डाला था। अब उसका पुत्र अलम्बुष उनसे बदला लेने घटोत्कच से युद्ध करने लगा। अमित पराक्रमी घटोत्कच अपनी पैनी तलवार से महाबली अलम्बुष का सिर धड़ से अलग करने के पश्चात पुनः कर्ण से युद्ध करने लगा। उस अत्यन्त भयंकर और उग्र संग्राम को देखकर कौरव योद्धा भयभीत हो युद्ध-स्थल से भागने लगे। इस प्रकार कर्ण और घटोत्कच का युद्ध चल ही रहा था कि पराक्रमी राक्षसराज अलायुध घटोत्कच से युद्ध करने आया, क्योंकि उसका कुटुम्बी बकासुर भीमसेन द्वारा मारा गया था। भीमसेन घटोत्कच की रक्षा हेतु अलायुध से युद्ध करने लगा। तदनन्तर हिडिम्बा कुमार घटोत्कच ने अलायुध को अपनी तीक्ष्ण तलवार से मार डाला और भयंकर सिंहनाद किया, जिसे सुन कौरव योद्धाओं के मन में अत्यन्त दारुण भय समा गया। यह देख वीर कर्ण ने घटोत्कच, युधामन्यु, उत्तमौजा और महारथी सात्यकि को अपने बाणों से घायल कर दिया। घटोत्कच ने भी कर्ण को अपने बाणों से विदीर्ण कर दिया। कर्ण के मन में अब भय होने लगा कि कहीं घटोत्कच मुझे भी नहीं मार डाले, अतः उसने इंद्र द्वारा दी हुई शक्ति से उसका वध कर डाला। घटोत्कच को मरा गया देख पाण्डवों के नेत्रों से आँसू बहने लगे, परन्तु वासुदेव भगवान ने बड़े हर्ष से सिंहनाद किया। उन्होंने अर्जुन को अपनी छाती से लगा लिया।

अर्जुन ने कहा—'मधुसूदन ! घटोत्कच के वध से हम शोक सागर में डूबे हुए हैं, किन्तु आप तो हर्षित हो रहे हैं, इसका क्या कारण है ? जैसे समुद्र का सूखना और मेरु पर्वत का विचलित होना असम्भव-सा जान पड़ता है उसी प्रकार आज मैं आपके हर्ष को आश्चर्यजनक मानता हूँ।'

श्रीकृष्ण ने कहा—'धनंजय ! आज वास्तव में मुझे अत्यन्त हर्ष का अवसर प्राप्त हुआ है। वीर अर्जुन । कर्ण ने इंद्र की दी हुई शक्ति का प्रयोग घटोत्कच पर कर दिया है, अतः अब कर्ण की मृत्यु निश्चित ही समझो। इस समय युद्ध-स्थल में कोई ऐसा योद्धा नहीं है, जो शक्तिशाली कर्ण से युद्ध कर सके। यदि कर्ण कवच और कुण्डल से युक्त होता, तो वह अकेला ही रणभूमि में पाण्डवों को परास्त कर सकता था। कर्ण ने कवच और कुण्डल स्वयं ही अपने शरीर से कतर कर इंद्र को दे दिये थे, इसलिए यह वैकर्तन कहलाया। जब तक कर्ण के पास इंद्र की दी हुई शक्ति थी, तब तक मैं तुम्हें उसके द्वारा मरा ही मानता था। कर्ण ब्राह्मण-भक्त, सत्यवादी, तपस्वी, व्रत और नियम का पालन करने वाला है, इसलिये उसे बपु (धर्मात्मा) कहा गया है। महाबाहु कर्ण युद्ध में कुशल सिंह के समान पराक्रमी तथा महारथियों का घमंड चूर करने वाला है। तुम्हारे महामनस्वी श्रेष्ठ योद्धा उसे दोपहर के सूर्य की भाँति देख भी नहीं सकते। पाण्डवनन्दन ! कर्ण अब कवच और कुण्डल-हीन तथा इन्द्र की दी हुई शक्ति से शून्य, साधारण मनुष्य के समान हो गया है। सूतपुत्र कर्ण, जरासंध, शिशुपाल और निषादनन्दन एकलव्य यदि दुर्योधन का पक्ष लेते तो पृथ्वी को अवश्य ही जीत लेते। तुम लोगों का हित करने के लिए मैंने उनका एक-एक करके वध कराया है।'

घटोत्कचं की मृत्यु पर राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दीन और दुःखी हो गये। यह देख भगवान श्रीकृष्ण बोले—'भरत श्रेष्ठ ! आपको वीर घटोत्कच की मृत्यु के लिये व्याकुल नहीं होना चाहिये।'

राजा युधिष्ठिर ने कहा—'महाबाहो ! मुझे धर्म की श्रेष्ठ गति विदित है। जो मनुष्य किसी के उपकार को याद नहीं रखता, उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है। जब हम लोग वन में थे, तब हिडिम्बाकुमार बालक होने पर भी हमारी बड़ी

सहायता करता था। प्रभो ! युद्ध के आरम्भ से ही इसने दुष्कर कर्म कर मेरी सहायता की है। वह मेरा भक्त था, इसलिये उस पर मेरा स्वाभाविक प्रेम भी रहता था।'

उसी समय महर्षि व्यास राजा युधिष्ठिर के पास आये और बोले—'राजन् ! कर्ण के साथ अर्जुन युद्ध करने नहीं गये, यह बहुत अच्छा हुआ। यदि वीर अर्जुन कर्ण पर दिव्य-अस्त्रों का प्रयोग करता, तो कर्ण उन्हें इन्द्र से प्राप्त की हुई शक्ति से मार गिराता। वास्तव में इन्द्र की शक्ति को निमित्त बनाकर काल ने वीर घटोत्कच का वध किया है। तुम्हारे हित के लिये ही यह राक्षस युद्ध में मारा गया है, ऐसा समझकर तुम न तो किसी पर क्रोध करो न शोक ही। तुम प्रसन्नतापूर्वक कौरवों से युद्ध करो। तुम्हें सदा धर्म का चिन्तन तथा दया, तपस्या, दान, क्षमा और सत्य आदि सद्गुणों का ही सेवन करना चाहिये। जिसके पक्ष में धर्म है उसीकी विजय होती है।'

व्यासजी के ऐसा कहने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने धृष्ट-द्युम्न से कहा—'वीर ! तुम द्रोणाचार्य से युद्ध करो। तुम्हारा जन्म आचार्य के विनाश के लिये ही हुआ है।' यह सुन उसने पाण्डव-योद्धाओं की सहायता से द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया।'

तब दुर्योधन द्रोणाचार्य के पास जाकर बोला—'युद्ध में आपकी समानता कोई भी धनुर्धर नहीं कर सकता। आप सम्पूर्ण अस्त्रों के ज्ञाता हैं। आप युद्ध में पाण्डवों को क्षमा करते हैं, क्योंकि आपके वे शिष्य हैं, यही मेरा दुर्भाग्य है।'

द्रोणाचार्य कुपित होकर बोले—'दुर्योधन ! यद्यपि मैं बूढ़ा हो गया हूँ, तथापि तुम्हारी विजय के लिये पूर्ण शक्ति लगाकर युद्ध करता हूँ। वीर अर्जुन अजेय है, उसे कोई भी जीत नहीं सकता।'

दुर्योधन ने कहा—'आचार्य मैं, दुःशासन, कर्ण और मामा शकुनि युद्ध में अर्जुन को मार डालेंगे।'

द्रोणाचार्य बोले—'अरे मूर्ख ! क्षत्रिय शिरोमणि गाण्डीव-धारी अजेय अर्जुन को युद्ध में कौन क्षत्रिय मार सकता है ? जब भगवान श्रीकृष्ण उसकी सहायता करते हैं, भला युद्ध में अर्जुन का सामना करके कौन सकुशल घर लौट सकता है ? तुम निष्ठुर और पापपूर्ण विचार मन में रखते हो, अतः श्रेष्ठ पुरुषों पर भी सर्वदा संदेह करते हो। तुम्हारे मामा शकुनि तो पासा फेंकने में कुशल हैं। इनमें कुटिलता, शठता, छल, विद्या और धूर्त्तता ही कूट-कूटकर भरी हुई है। तुमने भरी सभा में राजा धृतराष्ट्र से कहा था कि मैं, कर्ण और भाई दुःशासन तीनों मिल-कर समर-भूमि में पाण्डवों का विनाश कर डालेंगे। अपनी उस प्रतिज्ञा को अब पूर्ण क्यों नहीं करते ? तुमने जीवन में दान, भोग, स्वाध्याय कर लिया है और ऐश्वर्य भी पा लिया है। तुम देवता, ऋषि और पितरों के ऋण से भी मुक्त हो गये हो, अतः वीर अर्जुन के साथ युद्ध करो।' दुर्योधन से ऐसा कह द्रोणाचार्य पाण्डवों से पुनः युद्ध करने लगे। तदनन्तर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि वीर अर्जुन से जा भिड़े।

संग्राम में विचरते हुए रण-दुर्जेय द्रोणाचार्य पर राजा विराट, द्रुपद और उनके तीनों पौत्रों ने आक्रमण किया, किन्तु आचार्य ने अपने तीखे बाणों द्वारा द्रुपद के पौत्रों के प्राण हर लिये। फिर उन्होंने राजा द्रुपद और विराट को भी यमलोक भेज दिया। यह देख धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य पर चढ़ाई कर दी। उसकी सहायता के लिये भीमसेन युद्धभूमि में पहुँच गये। सूर्योदय होने पर फिर दोनों दलों में घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। द्रोणाचार्य ने वसुदान को यमलोक भेज दिया। द्रोणा-चार्य के बाणों से आच्छादित पाण्डव-सेना में चारों ओर से भयंकर आर्त्तनाद होने लगा, इससे पाण्डवों के मन से विजय की आशा जाती रही। वे सोचने लगे कि इस समय युद्ध-भूमि में कोई भी योद्धा आचार्य की ओर देखने में समर्थ नहीं है, और धर्मज्ञ अर्जुन उनके साथ युद्ध करते नहीं।

भगवान श्रीकृष्ण ने वीर अर्जुन से कहा—'पार्थ ! द्रोणाचार्य सम्पूर्ण धनुर्धरों में श्रेष्ठ हैं। जब तक इनके हाथ में धनुष रहेगा, तब तक इन्हें देवता भी जीत नहीं सकते। जब ये संग्राम में हथियार डाल देंगे, तभी मारे जा सकते हैं। पार्थ ! गुरु का वध करना उचित नहीं है। इस धर्म-भावना का त्याग कर उन पर विजय पाने का कोई प्रयत्न करो। ऐसा न हो कि आचार्य तुम लोगों का वध कर डालें। मेरा विश्वास है कि अश्वत्थामा के मारे जाने पर वे युद्ध नहीं करेंगे। किसी को उनसे कहना होगा कि युद्ध में अश्वत्थामा मारा गया।' कुन्ती पुत्र अर्जुन को यह बात अच्छी नहीं लगी। महाराजा युधिष्ठिर भी इस मंत्रणा पर बड़ी कठिनाई से राजी हुए। तद्पश्चात भीमसेन ने अपनी ही सेना में एक विशाल हाथी को मार डाला, जिसका नाम अश्वत्थामा था। उसे मारकर भीमसेन लजाते-लजाते द्रोणाचार्य के पास गये और बड़े जोर से बोले—'अश्वत्थामा मारा गया।' भीमसेन का यह अप्रिय वचन सुन द्रोणाचार्य शोक से व्याकुल हो गये। उनका सारा शरीर शिथिल हो गया। उनके मन में संदेह उत्पन्न हुआ कि यह बात कहीं झूठी हो, क्योंकि वे अपने पुत्र के पराक्रम को जानते थे।

अवध्य क्षत्रियों का और विनाश न हो, यह निश्चय कर बहुत से ऋषि उनके पास आये और बोले—'द्रोण अब तुम्हारी मृत्यु का समय आ गया है, इसलिये यह क्रूरतापूर्ण कर्म न करो। तुम वेदों के विद्वान, सत्य और धर्म में रहने वाले हो, अतः क्रूर कर्म तुम्हें शोभा नहीं देता, इसलिये अस्त्र-शस्त्र को त्याग दो।'

तद्पश्चात द्रोणाचार्य ने राजा युधिष्ठिर से अपने पुत्र के बारे में पूछा। आचार्य का यह कथन भगवान श्रीकृष्ण ने सुना। वे जानते थे कि आचार्य पाण्डवों को मारना चाहते हैं, इसलिये उन्होंने राजा युधिष्ठिर से कहा—'इस समय असत्य भाषण का महत्व सत्य से भी बढ़कर है। प्राण-रक्षा के लिये

यदि असत्य बोलना पड़े तो उससे आपको पाप नहीं लगेगा। आप द्रोणाचार्य से कह दीजिये कि अश्वत्थामा मारा गया।' राजा युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण की बात मन में ग्लानि होने पर भी मान ली। उन्होंने आचार्य को उच्च स्वर से कहा—'अश्वत्थामा मारा गया' परन्तु मध्यम स्वर में यह भी कहा कि 'वह हाथी था।' इस असत्य भाषण को कहने से पहले राजा युधिष्ठिर का रथ पृथ्वी से चार अंगुल ऊंचा चलता था, किन्तु अब वह पृथ्वी पर आ टिका। युधिष्ठिर के मुँह से यह अप्रिय बात सुन महारथी द्रोणाचार्य की चेतना-शक्ति लुप्त हो गयी। उन्होंने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये, समाधि लगाकर ज्ञान स्वरूप में स्थित हो गये। द्रोणाचार्य के ब्रह्मलोक में चले जाने पर धृष्टद्युम्न ने अपनी तलवार से उनके सिर को धड़ से अलग कर दिया। द्रोणाचार्य के मारे जाने पर पर कौरव निष्प्राण से हो गये। उनकी मृत्यु का समाचार सुन शकुनि और अनेक योद्धा भय के मारे युद्ध-भूमि से भाग गये।

जब अश्वत्थामा को पता चला कि धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को छल से मार डाला है, तब वह नेत्रों में आँसू भर क्रोध से जल उठा और दुर्योधन से बोला—'धर्म का ढोंग रखने वाले युधिष्ठिर ने जो पाप और नीचतापूर्ण कर्म किया है उसका मुझे ज्ञान है। काम, क्रोध, अज्ञान और हर्ष के कारण धर्म के विरुद्ध जो मनुष्य कार्य करते हैं, वे श्रेष्ठ-पुरुष का अपमान कर बैठते हैं। क्रूर और दुरात्मा द्रुपद-पुत्र ने यह पाप कर्म किया है, अतः उस धृष्टद्युम्न और युधिष्ठिर को इस पाप का अत्यन्त भयंकर परिणाम भोगना होगा।' यह कह अश्वत्थामा ने जोर से सिंहनाद किया।

राजा युधिष्ठिर ने वीर अर्जुन से पूछा—'यह सिंहनाद किस वीर ने किया है?

धनंजय ने कहा—'महाराज! यह सिंहनाद अश्वत्थामा का है। उस वीर ने जन्मते ही उच्चैःश्रवा अश्व के समान हिन-

हिनाकर नाद किया था, अतः ऋषियों ने उसका अश्वत्थामा नाम रखा है। द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न ने अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कर्म के द्वारा आचार्य को मारा है, इसलिये उसे अश्वत्थामा क्षमा नहीं करेगा। आपने धर्मज्ञ होते हुए भी राज्य के लोभ से झूठ बोलकर अपने गुरु को जो धोखा दिया है, वह महान पाप है, अतः आपकी अपकीर्ति चिरस्थायी हो जायेगी। मैं आचार्य के प्राणों की रक्षा चाहता हुआ चिल्लाता ही रह गया, किन्तु शिष्य होकर भी धृष्टद्युम्न ने धर्म की अवहेलना कर गुरु की हत्या कर ही डाली। आचार्य कौरवों से जीविका वृत्ति पाकर भी मुझे पुत्र से भी बढ़कर मानते थे। उन्होंने आपका और मेरा हित करने के लिये युद्ध-भूमि में अस्त्र डाल दिये। यदि वे युद्ध करते तो उन्हें देवता भी पराजित नहीं कर सकते थे। बुद्धि लोभ से ग्रस्त होने के कारण हमने वृद्ध आचार्य के प्रति नीच और पाप कर्म किया है, अतः मैं जीने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा समझता हूँ।'

वीर अर्जुन का कथन सुन भीमसेन क्रोधपूर्वक अर्जुन से बोले—'भरत श्रेष्ठ! जो संकट में अपना या दूसरे का त्राण करता है, युद्ध में शत्रुओं को क्षति पहुँचाता है, साधु और स्त्रियों पर क्षमा भाव रखता है, वही श्रेष्ठ मनुष्य है। उसे ही राज्य, धर्म, यश और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। तुम सर्व गुणों से सम्पन्न होकर भी हमारी निंदा कर रहे हो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता। सौभाग्य की बात है कि तेरह वर्ष के संचित कष्ट को भूलकर तुम धर्म का ही अनुसरण करते हो और तुम्हारी बुद्धि क्रूरता की ओर न जाकर दया भाव में ही रम रही है, परन्तु हम सबके धर्म में तत्पर रहने पर भी शत्रुओं ने हमारा राज्य अधर्म से छीन लिया, द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित किया, हमें तेरह वर्ष के लिये वन में निर्वासित किया, यह सब दुःखद एवं अप्रिय घटनाएँ मैंने चुपचाप सह लीं। परन्तु अब उनके उन नीचतापूर्ण पाप-कर्मों को याद कर मैं तुम्हारे साथ

उन शत्रुओं को मार डालूँगा। तुमने ही पहले युद्ध करने के लिये कहा था, अब उसीके अनुसार हम यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु तुम हमारी निन्दा कर रहे हो? तुम्हें अपने क्षत्रिय-धर्म को जानना चाहिये। एक तो हम भय से पीड़ित हैं, इस पर तुम वाग्बाणों द्वारा हमारे मर्म-स्थान को भेद उन पर नमक बरसा रहे हो।'

धृष्टद्युम्न ने कहा—'वीर श्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञ करना और करवाना, वेद पढ़ना और पढ़ाना, दान देना और प्रतिग्रह स्वीकार करना, ये छः कर्म ही ब्राह्मणों के लिये प्रसिद्ध हैं। इसमें से किस कर्म में द्रोणाचार्य प्रतिष्ठित थे? उन्होंने तो क्षत्रिय धर्म का ही आश्रय ले रखा था। वे दिव्य-अस्त्रों द्वारा हम लोगों का संहार करते थे। ऐसी अवस्था में यदि मैंने आचार्य का वध किया, तो तुम मेरी निन्दा क्यों करते हो? तुम धर्म के तत्व को जानकर भी मुझे गुरु की हत्या करने वाला बताते हो, यह उचित नहीं। युद्ध करते समय जो कर्तव्य और अकर्तव्य को समान समझता है, उसे तुम ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय ही कैसे कह सकते हो? जो क्रोध से उत्तेजित होकर ब्रह्मास्त्र न जानने वालों पर भी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करे, उसका सभी उपायों से वध करना उचित है। जिसने मेरे बन्धुओं का इस युद्ध-भूमि में वध किया, उसे मारकर भी मेरा क्रोध और संताप शान्त नहीं हुआ है। शत्रुओं का रणभूमि में वध न करना अधर्म है और वध करना ही धर्म है। द्रोणाचार्य मेरे शत्रु थे, अतः मैंने युद्ध में धर्म के अनुसार ही उनका वध किया है। तुमने युद्ध में पितामह को मारकर भी अपने लिये धर्म माना, किन्तु मेरे द्वारा शत्रु के मारे जाने पर इस कार्य को धर्म नहीं समझते। धनंजय! तुम्हारे बड़े भाई युधिष्ठिर असत्यवादी नहीं हैं और न मैं ही अधर्मी हूँ।'

धृष्टद्युम्न के वचन सुन सात्यकि क्रोधित हो उठा। भगवान श्रीकृष्ण ने उसे शान्त किया।

कर्ण

तद्पश्चात अश्वत्थामा ने पाण्डव सेना पर नारायण-अस्त्र का प्रयोग किया। यह देख भय से पीड़ित हो युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न और अन्य योद्धाओं से अपनी सेना लेकर भाग जाने को कहा।

श्रीकृष्ण बोले—'योद्धाओ! तुम सब अपने अस्त्र-शस्त्र डाल दो और वाहनों से उतर जाओ। परमात्मा नारायण ने इस अस्त्र के निवारण के लिये यही उपाय निश्चित किया है। जो वीर हाथ जोड़कर इस अस्त्र को नमस्कार करेंगे, उन्हें यह अस्त्र नहीं मारेगा।'

भगवान वासुदेव का यह कथन सुन योद्धाओं ने अपने वाहनों से उतरकर सब अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये और नारायण-अस्त्र को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। ऐसा करने पर अश्वत्थामा दूसरी बार उस अस्त्र का प्रयोग नहीं कर सका। नारायण-अस्त्र विफल हुआ मान अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न पर तीक्ष्ण बाणों से आक्रमण किया। सात्यकि, मालवराज सुदर्शन, अर्जुन, भीमसेन, वृद्धक्षत्र, चेदिदेश के युवराज उसकी रक्षा हेतु अश्वत्थामा से युद्ध करने लगे। अश्वत्थामा को सात्यकि द्वारा घायल देख दुर्योधन, कृतवर्मा, वृषसेन, कृपाचार्य और कर्ण उसकी सहायता करने वहाँ आये। अब दोनों पक्षों में घमासान युद्ध होने लगा। अश्वत्थामा ने अपने तेज बाणों द्वारा मालवराज सुदर्शन और वृद्धक्षत्र को धराशायी कर दिया। फिर अश्वत्थामा ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया, जिससे पाण्डव सेना का भयानक संहार होने लगा, किन्तु वीर अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण पर इस अस्त्र का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। इस पर अश्वत्थामा दुःखित हो गये।

उसी समय वेदव्यास उसके पास आये और कहने लगे—'हमारे पूर्वजों के पूर्वज भगवान नारायण हैं। वे अपनी मर्यादा

से कभी च्युत नहीं होते, इसलिये उन्हें अच्युत कहा गया है। उन्हें ही आदिदेव, जगन्नाथ, लोककर्ता, आदि कारण और आदि अनन्त से रहित कहा गया है। श्रुतियां उन्हीं के तत्व का विवेचन करती हैं। वे सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान से भी परम महान हैं। उनका हृदय विशाल है। वे सारे क्लेशों को हरने वाले हैं। जल, दिशा, आकाश, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि तथा काल उन्हीं के स्वरूप हैं। वे अजन्मा, अव्यक्त और कारण स्वरूप हैं। मुक्ति पाने हेतु उन्हीं देव की उपासना की जाती है। भगवान नारायण अवतार लेकर इस समय श्रीकृष्ण के ही रूप में संसार में विचरण कर रहे हैं। तू अर्जुन को भगवान नर का अवतार समझ। ये दोनों धर्म की मर्यादा रखने के लिये युग-युग में अवतार लेते हैं।' व्यासजी की यह बात सुन अश्वत्थामा ने उन्हें प्रणाम कर भगवान श्रीकृष्ण की महत्ता को स्वीकार कर लिया।

तदनन्तर व्यासजी वीर अर्जुन के पास पहुँचे और कहा—'तुम भगवान शंकर को नित्य प्रणाम किया करो। वे अपने भक्तों को मनोवांछित फल देने वाले हैं। वे ही तुम्हारी विजय के कारण हैं। उन्होंने ही कौरव सेना का संहार किया है, तुम तो निमित्त मात्र हो।'

द्रोणाचार्य की मृत्यु के बाद दुर्योधन आदि और सहायक राजाओं का मन उत्साह-हीन हो गया। दुर्योधन ने सांत्वनापूर्ण मधुरवाणी में राजाओं से कहा—'बुद्धिमान नरेशो ! हम लोगों को क्या करना चाहिये ? हमारा क्या कर्तव्य है ?'

राजा दुर्योधन के ऐसा कहने पर युद्ध की इच्छा वाले नरेशों और अश्वत्थामा ने कहा—'राजन् ! विद्वानों ने अभीष्ट अर्थ की सिद्धि कराने वाले ये चार उपाय बताये हैं: राग (राजा के प्रति सैनिकों की श्रद्धा), योग (साधन-सम्पत्ति), दक्षता (उत्साह, बल एवं कौशल) तथा नीति, परन्तु ये सभी दैव के अधीन हैं। यदि सारे कार्य उत्तम नीति द्वारा किये जायें, तो

दैव भी अनुकूल हो सकता है, अतः हम सर्वगुण सम्पन्न नरश्रेष्ठ कर्ण का ही सेनापति के पद पर अभिषेक करेंगे। वीर कर्ण अत्यन्त बलवान, शूरवीर, अस्त्रों के ज्ञाता एवं यमराज के समान हैं, इसलिये रणभूमि में शत्रुओं पर विजय पा सकते हैं।' सबका ऐसा आग्रह देख दुर्योधन ने वीर कर्ण को सेनापति के पद पर नियुक्त कर दिया।

सेनापति पद पाने पर वीर कर्ण दुर्योधन से बोला—'राजन् ! मैं पांडवों और श्रीकृष्ण को परास्त कर दूँगा।' वीर कर्ण के ऐसा कहने पर दुर्योधन उत्साह से पूर्ण हो गया। उसने शास्त्रोक्त विधि से कर्ण का अभिषेक किया। सूर्योदय होने पर वीर कर्ण ने योद्धाओं के साथ रणभूमि में प्रवेश किया। उसने अपनी सेना का मकराकार व्यूह बनाया और उसके मुख्य भाग में स्वयं खड़ा हो गया। तदनन्तर दोनों सेनाओं में भीषण संग्राम होने लगा। शत्रुओं द्वारा मारे गये वीर उसी प्रकार गिर रहे थे, जैसे स्वर्गवासी पुण्य क्षीण होने पर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। अब भीमसेन ने कौरव सेना पर आक्रमण कर दिया। वे मध्याह्न काल के सूर्य के समान अपने तेज से शत्रुओं को दग्ध करने लगे। यह देख क्षेमधूर्ति ने उनका सामना किया, किन्तु कुछ ही समय में वह भीमसेन द्वारा मारा गया। वीर कर्ण के द्वारा जब पाण्डव सेना का संहार होने लगा, तब पाण्डुनन्दन नकुल ने उसका सामना किया। अब भीमसेन अश्वत्थामा से और सात्यकि केकय देश के विंद और अनुविंद से भिड़ गये। दुर्योधन ने धर्मराज युधिष्ठिर पर और वीर अर्जुन ने संसप्तक-गणों पर धावा कर दिया। सेनापति धृष्टद्युम्न कृपाचार्य से भिड़ गये। अब दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध होने लगा। सात्यकि ने कुछ ही समय में विंद और अनुविंद को धराशायी कर दिया। द्रौपदी पुत्र श्रुतवर्मा और प्रतिविन्ध्य युद्धभूमि में उपस्थित हो गये। उन्हें वहाँ आया देखकर अभिसार के राजा चित्रसेन ने उन पर धावा कर दिया। तदनन्तर श्रुतवर्मा ने

महामना चित्रसेन के शिरस्त्राण सहित मस्तक को काट गिराया। प्रतिविन्ध्य के राजा चित्र को धराशायी कर दिया।

शत्रुनाशक अर्जुन ने समुद्र के समान अपार संसप्तक सेना में प्रवेश कर उसे उसी प्रकार मथ डाला, जैसे प्रचण्ड वायु शान्त सागर में विशाल तरंगें पैदा कर देती है। यह देख अश्वत्थामा ने वीर अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। उसने अपने तीखे बाणों से भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन को पीड़ा पहुँचाई।

श्रीकृष्ण ने कहा—'पार्थ ! मैं इस युद्ध में तुम्हारे अन्दर अत्यन्त अद्भुत परिवर्तन देखता हूँ। क्या तुम्हारे हाथ में गाण्डीव धनुष है ? क्या तुममें पहले के समान बल और पराक्रम है ? क्यों इस समय संग्राम में अश्वत्थामा तुमसे बढ़ा-चढ़ा है ? यह मेरा गुरुपुत्र है, ऐसा मानकर तुम इसकी उपेक्षा न करो। तुम क्यों प्रमाद कर रहे हो ? यदि इसकी उपेक्षा की जायेगी, तो यह और भी विनाश करेगा। जिस रोग की चिकित्सा न की जाय, वह अधिक कष्टदायक हो जाता है।'

भगवान श्रीकृष्ण का यह कथन सुन वीर अर्जुन ने अश्वत्थामा के बाणों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। अर्जुनरूपी प्रलयकालिक सूर्य ने संसप्तक सैन्यरूपी महासागर को अपनी बाणरूपी प्रचण्ड किरणों से सोख लिया और अश्वत्थामा को भी बेध डाला। इसलिये अश्वत्थामा ने वीर अर्जुन से युद्ध करने की इच्छा त्याग दी। जब वीर अर्जुन ने उसके घोड़ों की बागडोर काट दी, तब वे अश्वत्थामा के रथ को युद्धभूमि से दूर ले भागे। यह देख वीर दण्डधार पाण्डुनन्दन अर्जुन से युद्ध करने लगा। वह पराक्रम में भगदत्त के समान था। उसने वीर अर्जुन को अपने बाणों से बड़ी पीड़ा दी, किन्तु वीर अर्जुन ने कुछ ही समय में उसके मस्तक को अपने बाणों से काट गिराया। अपने भाई दण्डधार के मारे जाने पर दण्ड वीर अर्जुन से युद्ध करने लगा, पर वह भी उसके द्वारा धराशायी हो गया। वीर अश्वत्थामा ने

पुनः युद्धभूमि में प्रवेश किया और राजा पाण्ड्य के साथ युद्ध करने लगा। मलयध्वज पाण्ड्य नरेश ने अश्वत्थामा को अपने अस्त्रों से बींध डाला, किन्तु वह द्रोण-पुत्र द्वारा मारा गया। दूसरी ओर वीर कर्ण पाण्डव-सेना का भीषण संहार कर रहा था। उसकी बाण-वर्षा से पाण्डव सेना भयभीत हो इधर-उधर भागने लगी।

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं राजा युधिष्ठिर को नहीं देख रहा हूँ। युद्धस्थल में मुझे अन्य पाण्डव भी नहीं दिखायी दे रहे हैं। मेरी धारणा है कि अश्वत्थामा के संकल्पों के अनुसार वीर कर्ण ने सृंजयों का भयंकर संहार कर डाला है, अतः हमें वहीं चलना चाहिए। जब वीर अर्जुन के धनुष की प्रत्यंचा की टंकार और रथ के पहियों की घरघराहट कौरवों ने सुनी, तब वे युद्ध से निराश हो गये। पंचाल राजा धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, सात्यकि और द्रौपदी के पुत्र मिलकर वीर कर्ण से लड़ रहे थे। दुर्योधन की आज्ञा पाकर बहुत से योद्धाओं ने अपने हाथियों द्वारा धृष्टद्युम्न पर आक्रमण कर दिया। जब घोर संग्राम हो रहा था तब पाण्डुकुमार नकुल ने अंगराज का अपने पैने बाणों से सिर धड़ से अलग कर दिया। वीर सहदेव क्रोध से भर कौरव सेना को जब दग्ध करने लगा, तब दुःशासन ने उस पर आक्रमण कर दिया। वीर सहदेव ने दुःशासन के धनुष और ध्वजा को काट गिराया तथा अपने पैने बाणों से उसे मूर्छित कर दिया। यह देख उसका सारथी उसे रणभूमि से दूर ले गया। वीर कर्ण माद्रीनन्दन नकुल से युद्ध करने लगा। यद्यपि वीर नकुल ने कर्ण को अपने अस्त्रों द्वारा बींध डाला, किन्तु उसने नकुल को अपने अस्त्रों से मूर्छित कर दिया। यह देख नकुल का सारथी उसे युद्धभूमि से दूर ले गया। भीषण युद्ध द्वारा कृपाचार्य ने धृष्टद्युम्न को और कृतवर्मा ने शिखण्डी को युद्धभूमि से भगा दिया। वीर अर्जुन दूसरी ओर कौरव सेना को वैसे ही छिन्न-भिन्न कर रहे थे, जैसे तेज वायु रुई के ढेर को बिखेर

देती है। धनंजय का सामना करने के लिये त्रिगंत, शिवि, कौरवों सहित शल्व, संसप्तकगण तथा नारायणी सेना के योद्धा आगे बढ़े। सत्यसेन, चंद्रदेव, मित्रदेव, श्रुतंजय, सोश्रति, चित्र-सेन और मित्रवर्मा—इन सात भाइयों से रक्षित त्रिगर्तराज सुशर्मा ने वीर अर्जुन पर आक्रमण किया। जैसे गरुड़ को देख सर्प अपने प्राण खो देता है, उसी प्रकार शत्रु योद्धा वीर अर्जुन के पास जाते ही काल के गाल में चले जाते थे। जैसे पतंगा आग पर टूट पड़ता है, उसी प्रकार युद्ध करते समय योद्धा अर्जुन पर आक्रमण करते-करते मृत्युलोक में पहुँच जाते थे। कुछ ही समय में पाण्डुनन्दन अर्जुन ने राजा श्रुतंजय, सोश्रुति और चंद्र-देव को यमलोक पहुँचा दिया। जब सत्यसेन ने महात्मा श्रीकृष्ण पर अस्त्र चलाया, तब उनके हाथ से चाबुक और बागडोर गिर पड़ी। भगवान श्रीकृष्ण के शरीर में घाव देख वीर अर्जुन को अत्यन्त क्रोध आ गया। उसने अपने तीक्ष्ण बाणों से सत्यसेन, मित्रदेव और मित्रवर्मा को धराशायी कर दिया। धनुर्धर पाण्डुकुमार के अस्त्रों की मार खाकर शत्रु सेना क्षण भर के लिये भी युद्धभूमि में न ठहर सकी। अब दुर्योधन ने राजा युधिष्ठिर का सामना किया। कुंतीनन्दन युधिष्ठिर ने दुर्योधन के सारथी एवं घोड़ों को मार गिराया। यह देख कर्ण और अश्वत्थामा उसकी सहायता के लिये वहाँ आ पहुँचे। राजा युधिष्ठिर की सहायता करने पाण्डव योद्धा भी आ गये। अब दोनों दलों में घमासान युद्ध होने लगा। कौरव सैनिक बाणों से घायल हो गये। उनके कवच, आयुध और वाहन नष्ट हो गये। उनके स्वरों में दीनता थी। वे शत्रुओं से पराजित होने के कारण दुःखी थे। उनकी दशा उस सर्प की-सी थी, जिसके दाँत तोड़-कर विष नष्ट कर दिया गया हो।

रात्रि में जब कौरव पक्ष के योद्धाओं ने दुर्योधन के शिविर में एकत्रित होकर मंत्रणा की, तब कर्ण ने उनसे कहा—'शूर-वीरो! अर्जुन सावधान, दृढ़, चतुर और धैर्यवान है। समय-

समय पर श्रीकृष्ण उसे कर्तव्य का ज्ञान कराते रहते हैं, इसलिये उसने अनेक अस्त्रों का प्रयोग कर हमें दीन कर दिया है। कल मैं उनके सारे मनोरथ असफल कर दूँगा। या तो मैं वीर अर्जुन को मार डालूँगा या वह मेरा वध कर देगा। शारीरिक बल, शौर्य और अस्त्र-विज्ञान में सव्यसाची अर्जुन मेरी समानता नहीं कर सकता। मेरे धनुष का नाम 'विजय' है। इसे विश्वकर्मा ने इन्द्र के लिये बनाया था। इसी दिव्य धनुष को देवराज इन्द्र ने परशुरामजी को दिया और उन्ही से मुझे यह प्राप्त हुआ है। यह 'विजय' धनुष गाण्डीव से श्रेष्ठ है। यह वही धनुष है, जिसके द्वारा परशुरामज़ी ने पृथ्वी पर इक्कीस बार विजय पाई थी। जैसे वृक्ष अग्नि का आक्रमण सह नहीं सकता, उसी प्रकार अर्जुन में कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो मुझसे युद्ध कर सके। किन्तु उसके धनुष की प्रत्यंचा और तरकस दिव्य है, जो कभी खाली नहीं होते एवं अग्नि का दिया हुआ दिव्य रथ है। उसके सारथी श्रीकृष्ण हैं, जो अश्व विद्या में निपुण हैं। उसकी ध्वजा पर आश्चर्य में डालने वाला वानर बैठा रहता है। श्रीकृष्ण जगत के स्रष्टा हैं। वे अर्जुन के उस रथ की रक्षा करते हैं। राजा शल्य श्रीकृष्ण के समान अश्व विद्या में निपुण है, यदि वह मेरे सारथी का कार्य करे तो तुम्हारी विजय निश्चित है। ऐसी व्यवस्था होने पर मैं गुणों में पार्थ से बढ़ जाऊँगा और उसे अवश्य युद्धभूमि में मार डालूँगा। इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता भी मेरा सामना नहीं कर सकेंगे।' वीर कर्ण के ऐसा कहने पर दुर्योधन ने योद्धाओं को अपने-अपने शिविर में जाकर विश्राम करने को कहा।

दुर्योधन मद्रराज शल्य के पास जाकर विनीत भाव से बोला—'सत्यव्रत! आपने कर्ण की बात सुनी है। मैं मस्तक झुकाकर आपसे याचना करता हूँ कि आप अर्जुन के विनाश और मेरे हित के लिये प्रेमपूर्वक कर्ण का सारथ्य करना स्वीकार कीजिये। आपके सारथी होने पर राधापुत्र कर्ण मेरे शत्रुओं को

जीत लेगा। इस समय अश्व विद्या के ज्ञान में आपके समान कोई श्रेष्ठ व्यक्ति नहीं है। जैसे ब्राह्माजी ने सारथी बनकर महादेवजी की सहायता की थी और श्रीकृष्ण अर्जुन की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार कर्ण की रक्षा कीजिये। महाराज! आज आप राधापुत्र का प्रतिपालन कीजिये। भूपाल! कुन्तीकुमार, मेरी शेष सेना को नष्ट न कर सके, ऐसा उपाय कीजिये। आज कर्ण अर्जुन से युद्ध करना चाहता है, किन्तु उसके घोड़ों को अच्छी प्रकार से चलाने वाला आपके समान दूसरा कोई इस भूतल पर नहीं है। जैसे संग्राम भूमि में अर्जुन के श्रेष्ठ सारथी श्रीकृष्ण हैं उसी प्रकार आप भी कर्ण के सारथी बन जाइये। जैसे अरुण के साथ सूर्य अंधकार का नाश करते हैं, उसी प्रकार आप महासमर में कर्ण के साथ रहकर अर्जुन का वध कीजिये। कर्ण रथियों में श्रेष्ठ है और आप सारथियों के शिरोमणि हैं। यह दोनों का संयोग न तो कभी हुआ था, न कभी आगे होगा।'

दुर्योधन की बात सुन महाराजा शल्य क्रोधित हो गये। उन्हें अपने कुल, ऐश्वर्य, शास्त्रज्ञान और बल का बड़ा अभिमान था। वे बोले—'गांधारी पुत्र! तुम मेरा अपमान और कर्ण को मुझसे श्रेष्ठ मानकर उसकी प्रशंसा कर रहे हो। परन्तु युद्ध-स्थल में राधापुत्र कर्ण को मैं अपने समान नहीं मानता। आज मैं अकेला युद्ध करूँगा। तुम मेरे पराक्रम को देखना। मैं शत्रुओं का दमन करने में पूर्णतया समर्थ हूँ, अतः इस नीच सूतपुत्र का सारथी नहीं बनूँगा। मैं श्रेष्ठ होकर इस नीच और अत्यन्त पापी पुरुष की दासता नहीं करूँगा। जो श्रेष्ठ पुरुष को नीच के अधीन कर देता है, उसे महान पाप लगता है। सूत जाति के लोग क्षत्रियों के सेवक होते हैं। मेरा उच्च कुल में जन्म है, तथा मैं विख्यात महारथी हूँ, इसलिये सूतों द्वारा सेव्य और बंदीजनों द्वारा स्तुति के योग्य हूँ। ऐसा प्रतिष्ठित और शत्रु सेना का संहार करने में समर्थ होकर मैं युद्धस्थल में एक सूतपुत्र के सारथी का कार्य कदापि नहीं करूँगा और आज ही अपने घर

लौट जाऊँगा ।' ऐसा कह महाराज शल्य अमर्ष से भर सभा से उठकर जाने को उद्यत हो गये ।

इस पर दुर्योधन ने उन्हें प्रेम और आदर से सान्त्वनापूर्ण वचन कहे—'महाराज शल्य ! आप अपने विषय में जैसा कहते हैं, वह अक्षरशः सत्य है । भूपाल ! न तो कर्ण आपसे श्रेष्ठ है, न आपके प्रति मैं संदेह ही करता हूँ । मुझे विदित है कि आप कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकते, जो आपकी सत्यप्रतिज्ञा के विपरीत हो ।'

दुर्योधन के बहुत अनुनय-विनय करने पर महाराजा शल्य ने कर्ण का सारथ्य स्वीकार कर लिया । उन्होंने कहा—'मैं कर्ण के प्रति अपनी इच्छानुसार भाव प्रकट करने में स्वतंत्र रहूँगा ।' दुर्योधन इस पर राजी हो गया और उसने कर्ण को भी मना लिया । महाराज शल्य ने कहा, 'यदि सूतपुत्र कर्ण कुन्तीपुत्र अर्जुन को मार डालेंगे तो श्रीकृष्ण स्वयं युद्ध करेंगे और तुम सबको जलाकर भस्म कर देंगे ।'

प्रातःकाल होने पर वीर कर्ण ने रथ की विधिपूर्वक पूजा और परिक्रमा की । तत्पश्चात उसने सूर्यदेव की उपासना कर मद्रराज शल्य से रथ पर सारथी के स्थान पर विराजमान होने को कहा । राजा शल्य को रथ पर सारथी के पद पर देख हर्ष सहित कर्ण भी रथ पर आरूढ़ हो गया । जैसे आकाश में एक साथ बैठे हुए सूर्य और अग्नि प्रकाशित हो रहे हों, उसी प्रकार वीर कर्ण और महाराज शल्य रथ पर आरूढ़ हो शोभा पा रहे थे ।

युद्ध-कुशल राजा शल्य से वीर कर्ण ने कहा—'महाबाहो ! आज मैं पाण्डवों का वध करना चाहता हूँ, इसलिये मेरे रथ को शीघ्रता से उनके सामने बढ़ाइये ।' वीर कर्ण ने अपने मन में निश्चय कर रखा था कि अब मृत्यु ही उसे युद्ध से निवृत्त कर सकेगी । भीष्म और द्रोण तो अवध्य थे, जब शत्रुओं ने उन्हें भी मार डाला, तब उसकी क्या गिनती है । इस संसार में सब

वस्तुएं अनित्य हैं, तब आगामी सूर्योदय तक जीवित रहने का भी कौन दृढ़ विश्वास कर सकता है ? अस्त्र, बल, पराक्रम, किसी मनुष्य को सफल बनाने में समर्थ नहीं है, क्योंकि दैव ही सबकी गति का विधान करता है। विद्वान हो या मूर्ख, आयु समाप्त होने पर सभी को यमलोक जाना पड़ता है, अतः आज दुर्योधन के मनोरथ की सिद्धि के लिये मैं अपने जीवन को भी त्याग दूँगा ।'

महाराज शल्य बोले—'सूतपुत्र ! तुम पाण्डवों की अवहेलना क्यों करते हो ? वे सबके सब सम्पूर्ण अस्त्र के ज्ञाता, महाधनुर्धर अजेय और सत्य-पराक्रमी हैं। तुम आवेश में हो अपनी शक्ति से अधिक बड़ी बात कह गये। कहाँ श्रेष्ठ अर्जुन और कहाँ तुम ? वीर अर्जुन ने यदुवंशियों द्वारा सुरक्षित द्वारकापुरी से सुभद्रा का अपहरण किया और भगवान शंकर को युद्ध में प्रसन्न किया था। यदि युद्ध-भूमि से नहीं भागे तो अवश्य ही वीर अर्जुन द्वारा मारे जाओगे। तुम अज्ञानवश महामना श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन को मार डालना चाहते हो, यह तुम्हारा गर्व व्यर्थ ही है। यह उसी प्रकार है, जैसे गीदड़ युद्ध में सिंह को मार डालना चाहे। जान पड़ता है तुम्हारे कोई सुहृद नहीं है, जो तुम्हें जलती आग में गिरने से रोक सके। निःसंदेह तुम काल के वश में हो, अतः तुम्हें कर्तव्य और अकर्तव्य का ज्ञान नहीं है। जो जीवित रहना चाहता है, वह असत्य बातें नहीं कहता। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो व्यूह रचकर सैनिकों से सुरक्षित हो जाओ और फिर अर्जुन से युद्ध करो।'

कर्ण ने कहा—'शल्य ! तुम तो ऊपर से मित्र के वस्त्र पहने हुए हो, किन्तु वास्तव में शत्रु हो। मैं अपने बाहुबल का भरोसा करके अर्जुन को मारूँगा। मेरे इस निश्चय से मुझे आज कोई पीछे हटा नहीं सकता।'

महाराजा शल्य बोले—'सूतपुत्र ! जैसे अपनी माँ की गोद में सोया हुआ बालक चन्द्रमा को पकड़ना चाहता है, उसी

प्रकार तुम अर्जुन को परास्त करना चाहते हो। जैसे मृग सिंह के पास जाकर मारा जाता है, उसी प्रकार तुम भी वीर अर्जुन के पास जाकर नष्ट हो जाओगे। जैसे कोई सर्प वैनतेय (गरुड़) का आह्वान करता है, उसी प्रकार तुम भी वीर अर्जुन को बुला रहे हो। जैसे झूठ और सत्य तथा विष और अमृत अपना अलग-अलग प्रभाव रखते हैं, उसी प्रकार तुम अर्जुन अपने-अपने कार्यों के लिये विख्यात हो।'

कर्ण ने क्रोधित होकर कहा—'शल्य ! गुणवान पुरुष के गुणों को गुणवान ही जानता है, गुणहीन नहीं। तुम तो समस्त गुणों से शून्य हो, फिर गुण-अवगुण को क्या समझो ? तुमने मेरे प्रति जो कटु वचन कहे हैं, उन्हें मैं अपनी प्रतिज्ञा को याद कर तुम्हें क्षमा करता हूँ। मित्र-द्रोह महापाप है, इसलिये तुम अब तक जीवित हो।'

जब दुर्योधन ने कर्ण और शल्य को क्रोधित देखा, तब उसने मित्रभाव से हाथ जोड़कर दोनों को शान्त किया। तदनन्तर कौरवों और पाण्डवों ने अपनी-अपनी सेना द्वारा व्यूह रचना की। अब दोनों दल के योद्धा परस्पर युद्ध करने लगे। वीर अर्जुन ने संसप्तकों पर आक्रमण कर दिया। उनका भयंकर संहार कर वह दूसरी दिशा में जा युद्ध करने लगा। राधापुत्र कर्ण ने धृष्टद्युम्न और पाण्डव वीरों पर धावा कर दिया। उसने शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाकर पाण्डव सेना के योद्धा भानुदेव, चित्रसेन, सेनाविंद, तपन और सूरसेन का संहार कर डाला। कुछ ही समय में भीमसेन ने कर्ण के पुत्र भानुसेन को यमलोक पहुँचा दिया। वीर कर्ण ने कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर पर आक्रमण कर दिया, किन्तु उनके बाणों द्वारा वह घायल हो गया। कर्ण ने क्रोधित हो युधिष्ठिर के सारथी तथा घोड़ों को मार डाला। तब पाण्डुनन्दन रणभूमि से दूर चले गये। यह देख वीर कर्ण भीमसेन से युद्ध करने लगा। बलवान भीमसेन के हाथों से छूटे वज्र और विद्युत के समान बाणों ने वीर कर्ण को घायल कर

दिया, जिससे वह अचेत हो गया। तब शल्य भीमसेन से बोले—'पाण्डुनन्दन ! पराक्रमी अर्जुन ने कर्ण के वध की प्रतिज्ञा की है। तुम कर्ण को न मारो और वीर अर्जुन की प्रतिज्ञा को सफल होने दो।'

भीमसेन ने कहा—'नृपश्रेष्ठ! मैं अर्जुन की प्रतिज्ञा को जानता हूँ। इसने राजा युधिष्ठिर का तिरस्कार किया है, अतः इसकी जीभ खींच लेना ही चाहता हूँ। मामाजी ! आपने जो युक्ति-युक्त बात मुझसे कही है, उसे कड़वी दवा के समान मैंने ग्रहण कर लिया है। यदि अर्जुन की प्रतिज्ञा भंग हो गयी तो वह जीवित नहीं रहेंगे। और उसके नष्ट होने पर श्रीकृष्ण सहित हम सब यमलोक चले जायेंगे।' तदनन्तर मद्रराज शल्य अचेत सूतपुत्र कर्ण को युद्ध-स्थल से दूर ले गये। वीर कर्ण को भीमसेन द्वारा अचेत देख दुर्योधन ने अपने भाइयों को कर्ण की रक्षा करने का आदेश दिया। दुर्योधन की आज्ञा पाकर श्रुतर्वा, दुर्धर, विपित्सु, विकटाग्नन, सम, निषंगी, कवची, पाशी, नंद, उपनद, दुषप्रधर्ष, सुबाहु, बातबेग, सुवर्चा, धनुग्राह, दुर्मद, जलसंध, शल और सह ने भीमसेन पर आक्रमण कर दिया। भीमसेन ने विवित्सु, विकटानन, सम, क्राथ नंद और उपनंद को यमलोक पहुँचा दिया। तदनन्तर शेष कौरव कुमार काल, अंतक और यम के समान भयानक भीमसेन को देख भय से व्याकुल हो वहाँ से भाग गये। कौरव-पुत्रों को मरा देख सूत-पुत्र कर्ण के मन में बड़ा दुःख हुआ और उसने भीमसेन पर पुनः आक्रमण किया। भीमसेन ने कर्ण की गज-सेना का भीषण संहार किया। भीमसेन की सहायता करने के लिये सात्यकि कर्ण से युद्ध करने लगा। जब दोनों सेनाओं का संहार करने वाला यह भयानक युद्ध चल रहा था, उसी समय दूसरी ओर जोर-जोर से गाण्डीव धनुष की टंकार सुनायी दी। वहाँ पाण्डुनन्दन अर्जुन संसप्तकों, कौशल देशीय योद्धाओं और नारायणी सेना का संहार कर रहे थे। वीर अर्जुन को कौरव सेना का

संहार करते देख कृतवर्मा, कृपाचार्य, शकुनि और दुर्योधन उनकी रक्षा के लिये वहाँ उपस्थित हुए। यह देख शिखण्डी, चित्रकेतु का महाबली पुत्र सुकेतु वीर अर्जुन की सहायता के लिये पहुँच गये। अब शिखण्डी और सुकेतु से कृपाचार्य युद्ध करने लगे। कृपाचार्य ने शिखण्डी का रथ विध्वंस कर दिया, पर वह रणभूमि से भाग गया। तदनन्तर कृपाचार्य ने सुकेतु को यमलोक पहुँचा दिया। यह देख धृष्टद्युम्न शीघ्रता से वहाँ आ पहुँचा और कृतवर्मा से युद्ध करने लगा। कृतवर्मा धृष्टद्युम्न के अस्त्रों से आहत हो पृथ्वी पर गिर पड़ा और श्रुतर्वा उसे अपने रथ पर बैठाकर रणभूमि से दूर ले गया। राजा युधिष्ठिर को सात्यकि और द्रौपदी के पुत्रों द्वारा ही सुरक्षित देख अश्वत्थामा ने उन पर आक्रमण कर दिया। धर्मराज युधिष्ठिर, द्रौपदी-पुत्र तथा सात्यकि अश्वत्थामा पर अपना पराक्रम न दिखा सके। अश्वत्थामा ने सात्यकि को रथहीन कर दिया। तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर अश्वत्थामा के अस्त्रों से पीड़ित होकर रणभूमि से भाग गये।

दूसरी ओर जब दुर्योधन ने युद्धभूमि में नकुल और सहदेव को अपने अस्त्रों से घायल कर दिया तब धृष्टद्युम्न दुर्योधन से युद्ध करने लगा। कुछ ही समय में धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन के रथ को विध्वंस कर उसका कवच और सब आयुध काट दिये। यह देख उसके भाई उसे रथ पर बैठाकर रणभूमि से दूर ले गये। अब अश्वत्थामा अर्जुन के पास जाकर उससे युद्ध करने लगा, किन्तु कुछ ही समय में वीर अर्जुन के अस्त्रों से वह आहत हो गया। उसी अवस्था में अश्वत्थामा का सारथी उसे युद्धभूमि से दूर ले गया।

अश्वत्थामा वीर अर्जुन से पराजित हो दुर्योधन, कर्ण और मद्रराज शल्य के पास जाकर बोला—'योद्धाओ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि धृष्टद्युम्न को मारकर ही अपना कवच शरीर से उतारूँगा। यदि अर्जुन और भीम उसकी रक्षा करेंगे तो उन्हें

भी मैं युद्धभूमि में मार डालूँगा।' अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अश्वत्थामा युद्धभूमि में आकर धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगा, जो पहले से ही कर्ण से युद्ध कर रहा था। धृष्टद्युम्न को दो वीरों से घिरा देख वीर अर्जुन उसकी सहायता के लिये वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने अश्वत्थामा को अपने अस्त्रों से अत्यन्त घायल कर दिया। द्रोणकुमार को विह्वल देख उसका सारथी उसे समरांगण से दूर ले गया।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'कुन्तीनन्दन ! दुर्योधन की आज्ञा से कर्ण और अन्य वीर महाराजा युधिष्ठिर को युद्ध में पीड़ा दे रहे हैं। दुर्योधन भी धर्मपुत्र युधिष्ठिर को मार डालने की इच्छा से अपने दिव्य अस्त्र ले उनका पीछा कर रहा है। मुझे तो भय है कि कौरव-योद्धा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को यमलोक पहुँचा देंगे। भरतकुल शिरोमणि राजा युधिष्ठिर उपवास करने से अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। यद्यपि वे ब्रह्मबल में स्थित हैं, पर बल प्रकट करने में असमर्थ हैं। कर्ण महाराजा युधिष्ठिर का वध करे, उसके पहले ही तुम सूतपुत्र कर्ण को मार डालो। महाबाहो ! कर्ण दुर्योधन के साथ अपने विशाल धनुष से विषधर सर्प के समान विषैले बाणों की वृष्टि करता हुआ तुम्हारे साथ द्वैरथ युद्ध करने इधर आ रहा है। तुम यश, राज्य और सुख की अभिलाषा पूर्ण करने के लिये दुष्टात्मा कर्ण का वध कर डालो। भरतभूषण ! तुम उसको धर्मात्मा युधिष्ठिर का अपराधी समझ समयोचित कर्तव्य का पालन करो। क्रोध में भरा हुआ सूत-पुत्र यमराज के समान युद्ध कर रहा है। पार्थ ! कर्ण ने राजा युधिष्ठिर को अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया है। उनसे मिलकर उन्हें धीरज बँधाओ।' ऐसा निश्चय कर वे दोनों पुरुष शिरोमणि राजा युधिष्ठिर के पास गये और उन्होंने उनके चरणों में प्रणाम किया। अपने समीप आये हुए वीरों का युधिष्ठिर ने अभिनन्दन किया। महान् शक्तिशाली श्रीकृष्ण और अर्जुन को देख उन्हें विश्वास हो गया कि वीर अर्जुन ने युद्ध

स्थल में कर्ण को मार डाला है। उन्होंने कहा—'अर्जुन! कर्ण ने युद्ध में मेरा पीछा कर मुझे कटु वचनों से अपमानित किया है। मैं इस समय भीमसेन के प्रभाव से ही जीवित हूँ। मैं कर्ण द्वारा किये हुए अपमान को सह नहीं सकता। मुझे इस जीवन और राज्य से क्या प्रयोजन? आज जिस प्रकार से तुमने कर्ण को मारा है, उसका पूर्ण रूप से वर्णन करो।'

क्रोध से भरे हुए महात्मा युधिष्ठिर की यह बात सुन विजयशील अर्जुन ने कहा—'महाराज! मैं युद्ध में कर्ण को अवश्य मार डालूँगा। यदि मैं ऐसा न कर सका तो मुझे अधम गति प्राप्त होगी।'

तपस्वी युधिष्ठिर दु:खी होकर बोले—'पार्थ! क्या तुम कर्ण से भयभीत हो भीमसेन को अकेले रणभूमि में छोड़ यहाँ आये हो? यदि तुम यह कह देते कि मैं कर्ण से युद्ध नहीं करूँगा, तो मैं समयोचित कर्तव्य का निश्चय कर उसके अनुसार कार्य करता। तुमने मुझसे कर्ण के वध की प्रतिज्ञा की थी, किन्तु तुमने अभी तक उसे पूर्ण नहीं किया है, इसका मुझे खेद है। वीर अर्जुन! मैंने बहुत से मंगलमय अभीष्ट पदार्थ प्राप्त करने की अभिलाषा की थी, किन्तु उनसे मुझे अब निराश होना पड़ रहा है।'

श्रीकृष्ण ने कहा—'पार्थ! धर्मात्मा युधिष्ठिर अस्वस्थ हैं, इसलिए हमें रणभूमि से चलना चाहिये। जो करने योग्य होने पर भी असाध्य हो और जो साध्य होने पर भी निषिद्ध हो, ऐसे कर्मों को जो करता है, वह पुरुष अज्ञानी माना जाता है। इस निर्णय को न जानने वाला मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्य का हितकर निश्चय न कर सकने के कारण विवेक-शून्य माना जाता है। जो अज्ञानवश अपने को धर्मज्ञ मानकर धर्म की रक्षा करता है, किन्तु प्राणी की हिंसा पाप न समझकर करता है, वह यथार्थ धर्म को नहीं समझता। सत्य बोलना उत्तम है। सत्य से बढ़कर दूसरा कुछ है ही नहीं, परन्तु सत्पुरुषों द्वारा

आचरण में लाये सत्य के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान अत्यन्त कठिन है। जहाँ मिथ्या बोलने का परिणाम सत्य बोलने के समान मंगलकारक हो, अथवा जहाँ सत्य बोलने का परिणाम असत्य भाषण के समान अनिष्टकारी हो, वहाँ सत्य न बोलकर असत्य ही बोलना उचित है।'

भगवान श्रीकृष्ण के शिक्षाप्रद वचन सुन वीर अर्जुन महाराज युधिष्ठिर से बोला—'भगवन्! आपको मेरा प्रणाम है। आप मेरे अपराधों को क्षमा करें। महाराज! अब कर्ण के वध में विलम्ब नहीं होगा। मैं अभी भीमसेन को संग्राम से छुटकारा दिलाने और सूतपुत्र का वध करने जा रहा हूँ। मेरा जीवन आपका प्रिय करने के लिये ही है।'

महाराज युधिष्ठिर ने कहा—'कुन्तीनन्दन अर्जुन! अवश्य ही मैंने अच्छा कर्म नहीं किया, जिससे तुम लोगों पर संकट आ पड़ा है। अब मैं वन में चला जाऊँगा, तो तुम लोगों को कष्ट नहीं होगा।'

भगवान श्रीकृष्ण ने उनके चरणों में प्रणाम कर कहा—'राजन्! वीर अर्जुन सत्य-प्रतिज्ञ है। अब सूतपुत्र कर्ण शीघ्र ही मारा जायेगा। आप जिसका वध चाहते हैं, उसका जीवन समाप्त ही समझिये।'

युधिष्ठिर हृषिकेश से हाथ जोड़कर बोले—'गोविन्द! आज आपके द्वारा हम लोग घोर विपत्ति से बच गये हैं।' तदनन्तर वीर अर्जुन ने भक्तिभाव से राजा युधिष्ठिर को प्रणाम किया। धर्मराज युधिष्ठिर ने धनंजय को अपने चरणों में गिरा देख बड़े स्नेह से उठा हृदय से लगाया और अनेक आशीर्वाद दिये। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन ने युद्धभूमि की ओर प्रस्थान किया।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'पार्थ! संग्राम करते समय कर्ण की उपेक्षा न करना। वह महारथी, बलवान, अभिमानी, अस्त्र-विद्या का विद्वान, युद्ध-कुशल, अद्भुत रीति से युद्ध करने

वाला तथा देश-काल को समझने वाला है। कर्ण तेज में अग्नि के सदृश, वेग में वायु के समान, दण्ड में यमराज के तुल्य और दुर्योधन के हित में तत्पर रहने वाला है। आज तुम पाण्डवों के प्रति दुर्भावना रखने वाले कर्ण का वध कर धर्मराज को प्रसन्न करो। यह तुम्हारे लिये पुण्य कर्म होगा। आज युद्ध का सत्रहवाँ दिन है। दोनों पक्ष की सेना प्रायः नष्ट हो गयी है। जैसे चन्द्र और नक्षत्रों से रहित आकाश श्रीहीन-सा जान पड़ता है, वैसी ही दशा कौरव सेना की है। कर्ण की मृत्यु के पश्चात कौरव-सेना की वह शक्ति भी नष्ट हो जायेगी, अतः कर्ण को मारना अति आवश्यक है।' भगवान श्रीकृष्ण का आदेश सुन वीर अर्जुन हर्ष और उत्साह से सम्पन्न हो गया।

अर्जुन बोला—'गोविन्द ! जब आप मेरे स्वामी और संरक्षक हैं, तब कर्ण पर युद्ध में मेरी विजय निश्चित है। आज मैं अपने पैने बाणों से कर्ण को मारकर धर्मराज युधिष्ठिर को चिन्तामुक्त कर दूँगा और वे संतुष्ट एवं सुखी हो जायेंगे।'

संजय ने धृतराष्ट्र से कहा—महाराज ! ग्रीष्म ऋतु बीत जाने पर जैसे मेघ गर्जना करते हैं, उसी प्रकार दोनों पक्ष की सेना युद्धभूमि में एकत्र हो गर्जना करने लगी। क्रूरतापूर्ण युद्ध में बिना ऋतु की अनिष्टकारी वर्षा के समान दोनों सेनाओं का संहार होने लगा। रथी रथी को और पैदल पैदल सैनिक को यमलोक पहुँचाने लगे। कृपाचार्य शिखण्डी से, सात्यकि दुर्योधन से, श्रुतश्रवा अश्वत्थामा से, युधामन्यु चित्रसेन से, सहदेव शकुनि से और उत्तमौजा कर्ण-पुत्र सुषण से युद्ध करने लगे। नकुल-पुत्र शतानी ने कर्ण-पुत्र बृषसेन को अपने अस्त्रों से घायल कर दिया। अब नकुल ने कृतवर्मा पर और धृष्टद्युम्न ने कर्ण पर आक्रमण कर दिया। भीमसेन दुःशासन से घोर युद्ध करने लगे। कुछ ही समय में उत्तमौजा ने कर्णपुत्र सुषेण को यमपुर भेज दिया। युद्ध-स्थल में वीर अर्जुन के रथ को आया देख अनेक कौरव-योद्धा उनसे युद्ध करने लगे, किन्तु जैसे आँधी बादलों

को छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार वीर अर्जुन ने बाणों की वर्षा द्वारा उन आक्रमण करने वाले योद्धाओं का संहार कर डाला। जैसे टूटी हुई नौका वाले नाविक किसी द्वीप की शरण लेकर आश्वस्त होते हैं, उसी प्रकार कौरव-योद्धा वीर अर्जुन से पीड़ित हो कर्ण के पास पहुँच निर्भय हो गये। फिर मृत्यु को ही युद्ध से निवृत्त होने की निश्चित सीमा समझ वे कर्ण को आगे कर पुनः युद्ध करने लगे। जैसे ग्रीष्म ऋतु में अत्यन्त प्रज्वलित आग सूखे काठ एवं घासफूस को जला देती है, उसी प्रकार वीर कर्ण पाण्डव सेना को दग्ध करने लगा। दुर्योधन, दुःशासन, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा और शकुनि कर्ण की सहायता करने वहीं युद्ध-स्थल में आ पहुँचे।

यह देख वीर अर्जुन श्रीकृष्ण से बोले—'हृषीकेश ! मेरे रथ को कर्ण के सामने खड़ा कर दीजिये। मैं उससे द्वैरथ युद्ध करूँगा।'

भगवान श्रीकृष्ण ने रथ को कर्ण की ओर बढ़ाया।

महाराज शल्य ने कर्ण से कहा—'मान्यवर कर्ण ! पाण्डु-पुत्र अर्जुन के रथ का यह घरघर घोष इन्द्र के बज्र की गड़गड़ाहट तथा मेघ के समूहों की गर्जना के समान प्रतीत होता है। सत्य पराक्रमी अर्जुन अप्रमेय, आत्मबल से सम्पन्न है। वह कौरव-सेना का संहार करता हुआ इधर ही आ रहा है। यदि तुम उसे आज मार डालोगे, तो वह हम लोगों के लिये श्रेयस्कर होगा। तुम दया और प्रमाद को छोड़ परशुरामजी से प्राप्त दिव्य-अस्त्रों का स्मरण कर महारथी अर्जुन का सामना करो। तुमने धर्मराज युधिष्ठिर को रथहीन एवं घायल कर दिया था। यह देख अर्जुन के नेत्र रक्तवर्ण हो गये हैं। वे राजाओं का संहार करते हुए तुम्हारे ऊपर चढ़े आ रहे हैं। रणभूमि में तुम्हीं कृष्ण और वीर अर्जुन को परास्त करने की शक्ति रखते हो, अतः सव्यसाची अर्जुन से युद्ध करो। जीभ लपलपाते हुए सर्प, गरजते हुए साँड़ एवं भयंकर व्याघ्र के समान वीर अर्जुन का

तुम वध करो।'

कर्ण ने कहा—'शल्य ! आज तुम मेरी इन दोनों भुजाओं का बल देखोगे। मैं अकेला ही पाण्डवों की विशाल सेना का संहार कर डालूँगा। मैं वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन का वध किये बिना पीछे नहीं हटूँगा। यद्यपि संसार में अर्जुन के समान श्रेष्ठ कोई महारथी उत्पन्न नहीं हुआ है, फिर भी मैं उससे युद्ध करूँगा। यदि मैं उसके द्वारा मारा गया, तो कौरव योद्धाओं का विनाश निश्चित है। श्रीकृष्ण और अर्जुन को देखकर मुझे बड़ा भय लगता है, क्योंकि अर्जुन युद्ध में समस्त धनुर्धारियों में श्रेष्ठ हैं, और नारायणस्वरूप वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण अपनी मर्यादा से कभी विचलित नहीं होते। ये दोनों वीर शौर्यसम्पन्न, बलवान और समृद्ध आयुधों वाले महारथी हैं। शल्य ! ऐसे अर्जुन और श्रीकृष्ण का सामना करने के लिये मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन समर्थ है ? वीर अर्जुन से युद्ध करने में जो मेरा मनोरथ है, वह आज सफल होगा।'

कर्ण की आज्ञा से कौरव-योद्धा वीर अर्जुन पर आक्रमण करने लगे। जैसे विशाल दावानल वन को भस्म कर डालती है, उसी प्रकार वीर अर्जुन के बाणों द्वारा कौरव-सेना दग्ध होने लगी। सव्यसाची अर्जुन को इस प्रकार पराक्रम प्रकट करते देख कौरव सैनिक जीवन से निराश हो सम्पूर्ण दिशाओं में भागने लगे। जैसे जीव मृत्यु से डरकर धर्म की शरण लेते हैं, उसी प्रकार कौरव वीर अर्जुन के भय से महाधनुर्धर कर्ण की ओट में छिपने लगे, अतः उसने अर्जुन के वध का निश्चय किया। कुछ ही क्षण में सूतपुत्र कर्ण ने अपने तीक्ष्ण अस्त्रों द्वारा केकय राजकुमार विशोक, उसके सेनापति उग्रकर्मा और वीर सात्यकि ने कर्ण के पुत्र प्रसेन को यमपुर पहुँचा दिया। तदनन्तर राधापुत्र कर्ण ने क्रोधित हो धृष्टद्युम्न के पुत्र को यमलोक भेज दिया। यह देख दुःशासन उत्साहपूर्वक भीमसेन से युद्ध करने लगा। भीमसेन ने अपने पुराने वैर, दुःख और अपमानों का

स्मरण कर दुःशासन के सारथी को मार डाला। दुःशासन दूसरे रथ पर बैठकर पुनः भीमसेन से भयंकर युद्ध करने लगा। भीमसेन ने गदा के प्रहार से उस रथ को भी चूर-चूर कर उसे घायल कर दिया। फिर भीमसेन रथ से उतरकर शीघ्रता-पूर्वक अर्धमृत दुःशासन की ओर दौड़े। भीमसेन ने दुर्योधन, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा के देखते-देखते अपने तीखे अस्त्रों द्वारा दुःशासन का सिर धड़ से अलग कर दिया और उसका रक्त पीने लगे। भीमसेन का प्रलयकालीन स्वरूप देख अनेक योद्धा भय से मूर्छित हो गये।

भीमसेन ने भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन से कहा—'वीरो! मैंने दुःशासन के रक्त का पान करने की प्रतिज्ञा आज सत्य कर दी है। जब दूसरा यज्ञ-पशु दुरात्मा दुर्योधन मेरे द्वारा मारा जायेगा, तब मुझे शान्ति प्राप्त होगी।' दुःशासन की मृत्यु से दुःखित हो उसके दस भाई निषंगी, कवची, पाशी, दण्ड-धर, धनुर्ग्रह, अलोलुप, शल, सन्ध, वातवेग और सुवर्चा भीम-सेन से युद्ध करने लगे, किन्तु कुछ ही समय में वीर भीमसेन ने उन्हें यमलोक पहुँचा दिया। शूरवीर युधामन्यु ने अवसर पाकर चित्रसेन का मस्तक काट डाला। अपने छोटे भाई की मृत्यु से दुःखित हो राजा दुर्योधन किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। सब कौरव शोकसागर में डूबे हुए दुर्योधन को घेर कर खड़े हो गये।

अश्वत्थामा ने दुर्योधन को सान्त्वना देते हुए कहा—'राजन्! पाण्डवों से संधि कर लो। विरोध से कोई लाभ नहीं है। मेरे पिता और भीष्म पितामह अस्त्र विद्या के महान ज्ञाता थे। जब वे दोनों युद्ध में मारे गये, तब दूसरों की तो बात ही क्या? संधि होने पर पाण्डवों के साथ मिलकर तुम चिरकाल तक राज्य करना। वीर अर्जुन मेरे कहने से शान्त हो जायेगा। श्रीकृष्ण भी तुम लोगों से विरोध नहीं चाहते। युधिष्ठिर तो सभी प्राणियों के हित में ही लगे रहते हैं, अतः वे भी मेरा कथन स्वीकार कर लेंगे। भीम, नकुल और सहदेव धर्मराज के अधीन

हैं, इसलिये वे भी मान जायेंगे। पांडवों के साथ संधि होने पर ही प्रजा का कल्याण होगा, अतः प्रसन्न हो जाओ। यदि मेरी बात नहीं सुनोगे तो निश्चय ही युद्ध में शत्रुओं के हाथ से तुम भी मारे जाओगे। धर्मराज युधिष्ठिर दयालु, सामर्थ्यशाली, बुद्धिमान, धैर्यवान और सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता हैं, अतः तुम्हें तुम्हारा उचित राज्य, भाग दे देंगे। धर्मात्मा युधिष्ठिर आपस के वैर को भूल जायेंगे, क्योंकि वे आत्मीय जन की भूल को अक्षम्य अपराध नहीं मानते, अतः निश्चित ही वे युद्ध से निवृत्त हो जायेंगे। यदि तुम जीवित रहे, तो तुम्हें राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति पुनः हो सकती है। मैं तुम्हारा हितैषी और मित्र हूँ, अतः मेरी बात मान लो। मेरी यह निश्चित धारणा है कि कर्ण नरश्रेष्ठ अर्जुन को कदापि जीत नहीं सकता, अतः भयंकर विनाश होगा।'

दुर्योधन ने कहा—'सखे! भीमसेन ने जिस प्रकार दुःशासन का वध किया है, वह भीषण दृश्य इस समय भी मेरे हृदय में स्थित होकर पीड़ा दे रहा है। जैसे भयंकर वायु महापर्वत मेरु का सामना नहीं कर सकती, उसी प्रकार अर्जुन रणभूमि में वीर कर्ण का वेग नहीं सह सकता। इस समय अर्जुन अत्यधिक परिश्रम से थक गया है, अतः कर्ण उसे मार डालेगा, इसलिये संधि असंभव है।'

जैसे जीव को यमराज का भय रहता है, उसी प्रकार भीमसेन का पराक्रम देख कर्ण के मन में अत्यन्त भय समा गया। महाराजा शल्य कर्ण के मुख की आकृति देख उसके मन का भाव समझ गये। वे शत्रुदमन कर्ण से बोले—'राधानन्दन! तुम खेद न करो और पुरुषार्थ का भरोसा कर वीर अर्जुन पर आक्रमण कर दो। यदि विजय हुई, तो तुम्हारी बहुत बड़ी कीर्ति संसार में फैलेगी, और पराजय होने पर अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति निश्चित है।' अमित तेजस्वी शल्य की यह बात सुन वीर कर्ण ने अर्जुन से युद्ध करने का दृढ़ निश्चय किया। उसने

भीमसेन पर आक्रमण कर दिया जो दण्डधारी काल के समान गदा लिये कौरवों का वध कर रहे थे। कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शकुनि पुत्र उलूक, वृक, क्राथ और देवावृध ने वीर कर्ण की सहायता करने के लिए पाण्डव वीरों पर आक्रमण किया। कृपाचार्य ने कुलिन्द राजा के पुत्रों को यमलोक पहुँचा दिया। सहदेव के पुत्र ने वृक और देवावृध को धराशायी कर दिया। यह देख कर्ण पुत्र वृषसेन ने वीर अर्जुन पर आक्रमण किया, परन्तु धनुर्धर अर्जुन ने उसे मृत्यु के घाट उतार दिया। तदनन्तर वीर कर्ण ने भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। महामना अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण को प्रणाम कर कर्ण से युद्ध करने लगे। पुरुषसिंह कर्ण और वीर धनंजय को युद्ध करते देख योद्धाओं के मन में किसकी विजय होगी, इस पर संशय होने लगा। दोनों के पास श्रेष्ठ आयुध थे और दोनों के ही कार्य विख्यात थे। कुछ कहते थे कि प्रलय काल के दो सूर्य रणभूमि में चराचर जगत को दग्ध करने के लिये प्रकट हुए हैं। ये दोनों ही अजेय और शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं। वीर कर्ण की सहायता के लिये दुर्योधन, कृतवर्मा, शकुनि और कृपाचार्य पहुँच गये। इन सबने एक साथ वीर धनंजय और भगवान श्रीकृष्ण पर आक्रमण कर दिया। किन्तु अजेय अर्जुन ने उनके अस्त्रों को शीघ्रता से काट डाला। सूतपुत्र कर्ण और वीर अर्जुन दोनों तीक्ष्ण अस्त्रों द्वारा एक-दूसरे को क्षत-विक्षत कर रहे थे। शत्रु-विजयी अर्जुन जिन-जिन अस्त्रों द्वारा राधानन्दन पर प्रहार करते, उन्हें वे शीघ्र ही नष्ट कर डालते। जब वीर अर्जुन ने कर्ण पर आग्नेय-अस्त्र का प्रयोग किया, तब वीर कर्ण ने वरुणास्त्र से उसे शान्त कर दिया। अब दोनों महापराक्रमी वीर एक-दूसरे पर अनेक दिव्य एवं तेजस्वी अस्त्रों का प्रयोग और निवारण करने लगे।

वसुदेवनंदन बोले—'वीर अर्जुन! तुमने जितने दिव्य अस्त्रों से कर्ण पर प्रहार किया है, उसने अपने अस्त्रों द्वारा उन्हें नष्ट

कर डाला है। तुमने जिस धैर्य से अनेक बार शत्रुओं को परास्त किया है, उसी धैर्य को धारण कर आज कर्ण को भी मार डालो और यह समृद्धशालिनी पृथ्वी राजा युधिष्ठिर को दे अनुपम यश प्राप्त करो।'

अर्जुन ने कहा—'प्रभो! मैं जगत के कल्याण और सूतपुत्र के वध के लिये अनेक दिव्य और भयंकर अस्त्रों को प्रकट करूँगा, इसके लिए आप मुझे आज्ञा दें।' भगवान श्रीकृष्ण से आज्ञा पाकर सव्यसाची अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र को प्रकट करने के पहले ब्रह्माजी को नमस्कार किया। जब वीर कर्ण ने उस ब्रह्मास्त्र का भी निवारण कर डाला, तब अर्जुन दूसरे दिव्य अस्त्रों का कर्ण पर प्रयोग करने लगे। वीर अर्जुन के दिव्य अस्त्रों द्वारा कर्ण और कौरव-सेना पीड़ित होने लगी और राजकुमार सभापति को अर्जुन ने यमलोक भेज दिया। इसी समय पाण्डु-पुत्र अर्जुन के धनुष की प्रत्यंचा अधिक खींचने के कारण सहसा भीषण घोष के साथ टूट गयी। उस अवसर पर सूतपुत्र कर्ण ने वीर अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण पर बड़े वेग से अस्त्र चलाये। यह देख कौरव-योद्धा सिंहनाद करने लगे कि अर्जुन और श्रीकृष्ण अब वीर कर्ण के वश में हो गये हैं। अतिशीघ्र कुन्तीकुमार अर्जुन ने नूतन प्रत्यंचा गाण्डीव पर चढ़ा ली और कौरव वीरों को क्षत-विक्षत करने लगे। वीर अर्जुन के गाण्डीव से वेगपूर्वक छूटे हुए भयंकर वेगशाली अस्त्रों की चोट से कर्ण के अंग विदीर्ण हो गये। अस्त्रों के कठिन आघात से कर्ण विचलित हो उठा, किन्तु धैर्य धारण कर रणभूमि में ही डटा रहा। कौरव योद्धा कर्ण की यह अवस्था देख रणभूमि से भाग गये। सम्पूर्ण धनुर्धारियों में श्रेष्ठ वे दोनों दुर्जय वीर शरीरों का मोह छोड़ युद्ध कर रहे थे। जब दोनों वीरों में घमासान युद्ध हो रहा था, तब पाताल निवासी अश्वसेन नामक नाग, जो अर्जुन से खाण्डव वन दाह के समय पीड़ित हो गया था, वैर का बदला लेने वीर कर्ण के तरकस में बाण बनकर घुस गया।

वीर कर्ण जब उस सर्पमुख बाण का अर्जुन पर प्रयोग कर रहा था, तब महामनस्वी मद्रराज शल्य ने कर्ण से कहा—'कर्ण! तुम्हारा यह बाण शत्रु के कंठ में नहीं लगेगा, अतः सोच-विचारकर प्रयोग करना।' यह सुन सूतपुत्र कर्ण के नेत्र लाल हो गये। 'मद्रराज ! कर्ण दो बार बाण का संधान नहीं करता। मैं कपटपूर्वक युद्ध भी नहीं करूँगा।' ऐसा कह कर्ण ने उस बाण को वीर अर्जुन पर छोड़ दिया। उस प्रज्वलित बाण को वीर अर्जुन की ओर वेग से आते देख भगवान श्रीकृष्ण ने शीघ्रता से अपने रथ को हटा लिया। कर्ण का चलाया हुआ वह सर्पमुख बाण वीर अर्जुन के किरीट में जा लगा। उस बाण के आघात से वीर अर्जुन का वह जगमगाता हुआ तेजस्वी किरीट विषाग्नि से प्रज्वलित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। दिव्य मुकुट के गिर जाने पर वीर अर्जुन को तनिक भी व्यथा नहीं हुई। वीर अर्जुन ने क्रोधित हो अनेक शस्त्रों द्वारा कर्ण पर प्रहार किया, जिनके आघात से उसके मस्तक के आभूषण और दोनों कुण्डल पृथ्वी पर गिर पड़े, और कवच विक्षत हो गया। तत्पश्चात वीर अर्जुन ने कर्ण पर एक तेज बाण का प्रयोग किया, जिससे वह मूछित हो गया, किन्तु पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ने संकट में पड़े कर्ण को मारने की इच्छा नहीं की। जब कर्ण मूर्छा से जागा, तब धैर्य धारण कर पुनः वीर अर्जुन से युद्ध करने लगा। अब काल प्रभावित कर्ण के रथ का बायाँ पहिया पृथ्वी में धंसने लगा। यह देख सूतपुत्र समरांगण में व्याकुल हो खिन्न मन से धर्म की निन्दा करने लगा। उसने मन ही मन कहा कि धर्मज्ञ पुरुषों ने सदा ही कहा है कि धर्मपरायण पुरुष की धर्म सदा रक्षा करता है। मैंने अपनी शक्ति और ज्ञान के अनुसार सदा धर्म पालन करने का प्रयत्न किया है, फिर वह अपने भक्तों की रक्षा क्यों नहीं करता ? यह विचार कर कर्ण पुनः वीर अर्जुन से युद्ध करने लगा। अपने पहिये को पृथ्वी में अधिक फंसा देख कर्ण रथ से कूद पड़ा और उसे निकालने का प्रयत्न करने लगा।

उसने धनुर्धर अर्जुन से कपट त्यागकर धर्म में स्थित हो दो घड़ी युद्ध बन्द करने को कहा—'पाण्डुनन्दन ! तुम अद्वितीय धनुर्धर एवं विशिष्ट वीर हो, अतः कायरों के मार्ग पर न चलो। तुम्हें कपटपूर्ण व्यवहार का परित्याग करना चाहिये। जो युद्ध से मुँह मोड़ चुका हो, जो ब्राह्मण हो, जो प्राणों की भीख माँगता हो, जो हाथ जोड़कर शरण में आया हो और जिसके कवच-आयुध नष्ट हो गये हों, उस पर उत्तम व्रत का पालन करनेवाले,शस्त्रों का प्रहार नहीं करते। तुम युद्ध के धर्मों को जानते हो, वेदान्त का तुमने अध्ययन किया है, तुम आत्म-बल और सदाचार से सम्पन्न हो, इसलिये जब तक मैं रथ पर न बैठ जाऊँ, तब तक मुझे अपने अस्त्रों से व्याकुल न करो।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कर्ण से कहा—'राधानन्दन ! सौभाग्य की बात है कि अब तुम्हें धर्म की याद आ रही है। प्रायः नीच पुरुष विपत्ति में पड़ने पर ही देव की निन्दा करते हैं, अपने किये हुए कुकर्मों की नहीं। जब तुम और कौरवों ने द्रौपदी को अप-मानित किया था, तब तुम्हारे मन में धर्म का विचार कहाँ चला गया था ? कौरव सभा में जूए के खेल द्वारा शकुनि ने युधिष्ठिर को छलपूर्वक हराया, दुर्योधन ने तुम्हारी ही सम्मति से भीमसेन को अन्न में विष मिलाकर खिलाया और उन्हें सर्पों से डंसवाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? जब युद्ध में बहुत-से महारथियों ने मिलकर निःशस्त्र बालक अभिमन्यु को मार डाला, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? उन अवसरों पर भी जब यह धर्म नहीं था, तो आज भी नहीं है। अब धर्म का आश्रय लेने से तुम्हारा छुटकारा इस मृत्यु से नहीं हो सकता। पाण्डव सदैव अपने धर्म से सुरक्षित हैं, अतः इनके द्वारा धृतराष्ट्र के पुत्रों का नाश अवश्य होगा।' भगवान श्रीकृष्ण के आदेश से वीर अर्जुन ने एक तेजस्वी बाण द्वारा कर्ण का सिर धड़ से अलग कर दिया। इस अद्भुत दृश्य को देख पाण्डव वीरों ने भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के साथ उच्च स्वर में शंख

बजाये। शूरवीर कर्ण को बाणों से बिंधा पृथ्वी पर पड़ा देख मद्रराज शल्य रथ सहित वहाँ से भाग गया। अपने पुत्र की ओर बार-बार देखते हुए मन्द किरणों वाले सूर्यदेव धीरे-धीरे अस्ताचल को चले गये।

वीर कर्ण के मारे जाने पर दुर्योधन की आँखों में आँसू भर आये और वह दीन-दुःखी हो गया। महाराजा शल्य विमूढ़चित्त होकर दुःख से आँसू बहाते हुए दुर्योधन के पास जाकर बोले—'राजन्! आज कर्ण और अर्जुन में जैसा युद्ध हुआ है, वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। कान्तिमान कर्ण प्रज्वलित अग्नि के तुल्य प्रकाशित था, किन्तु पार्थ के बाणरूपी जल से वह शान्त हो गया है। युद्ध के द्वारा उत्तम यज्ञ का उपार्जन कर पुत्र सहित कर्ण अर्जुन के तेज से भस्म हो गया है। याचकों के माँगने पर जिसने कभी, 'नहीं' नहीं कहा, वह धर्मात्मा कर्ण द्वैरथ युद्ध में वीर अर्जुन के द्वारा मारा गया है! जिसका सहारा लेकर कौरवों ने पाण्डवों से बैर किया था, वह वीर कर्ण कौरवों की विजय की आशा और सुख लेकर स्वर्ग को चला गया है। निश्चय ही देव पाण्डवों के पक्ष में है। वह उनकी तो रक्षा करता है और हमारा विनाश। तुम्हारे अर्थ की सिद्धि के लिये प्रयत्न करने वाले योद्धा प्रायः शत्रुओं के हाथ से मारे गये हैं। यह सब प्रारब्ध का खेल है, ऐसा जानकर धैर्य धारण कर शोक न करो।'

महाराज शल्य की बात सुन दुर्योधन उदास एवं दुःखी हो गया। वीर कर्ण की मृत्यु का अप्रिय समाचार सुन राजा धृतराष्ट्र और माता गांधारी निश्चेष्ट हो पृथ्वी पर गिर पड़े। महात्मा विदुर और संजय ने उन दोनों को संभाला और भवितव्यता को ही प्रबल मान आश्वासन दिया, तब वे दोनों अचेत-से हो चुपचाप बैठ गये।

भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन ने अब अपने-अपने शंखों से ध्वनि की, जिसके भय से कौरव-योद्धा रणभूमि छोड़-

कर भाग गये । दे दोनों वीर महात्मा युधिष्ठिर के और अन्य पाण्डव अपने-अपने शिविरों में चले गये । भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन ने शिविर में नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिर का दर्शन कर प्रणाम किया। उन्हें देख वे आनन्द के आँसू बहाने लगे । वसुदेव-नन्दन कृष्ण ने कर्ण के मारे जाने का वृतान्त उन्हें कह सुनाया। उन्होंने कहा—'राजन् । अब आप लोग संग्राम से मुक्त हो गये, अत: आगे जो कार्य करने हैं, उन्हें शीघ्र पूर्ण कीजिये ।'

धर्मपुत्र ने कहा—'प्रभो ! आपके रहते इस महान कार्य का सम्पन्न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । महाबाहो ! आपकी बुद्धि के प्रसाद से ही पार्थ ने प्रयत्नपूर्वक कर्ण का वध किया है। भगवन् ! आपकी कृपा से ही धनंजय युद्ध में शत्रुओं पर विजयी हुआ है। गोविन्द ! जब आप युद्ध में अर्जुन के सारथी बने थे, तभी हमें विश्वास हो गया था कि हमारी विजय निश्चित एवं अटल है । माधव ! आप जैसे स्वामी और संरक्षक के द्वारा सुरक्षित होकर आज मैं भाइयों सहित भूमण्डल का राजा कहलाऊँगा।'

प्रात:काल होने पर अश्वत्थामा और अन्य राजाओं की सलाह से राजा दुर्योधन ने महाराजा शल्य को विधिपूर्वक सेना-पति बनाया।'

तपस्वी कृपाचार्य बोले—'महाराज ! क्षत्रियों के लिए युद्ध-धर्म रो बढ़कर कोई कल्माणकारी मार्ग नहीं है । अनघ ! भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, वीर कर्ण, जयद्रथ, तुम्हारे सभी भाई और तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण स्वर्ग चले गये हैं, अब कौन बचा है, जिसका हम आश्रय ग्रहण करें ? श्रीकृष्ण की क्षत्रछाया में रहने के कारण वीर अर्जुन अजेय है। अत्यन्त भयंकर संग्राम को आरम्भ हुए आज सत्रह दिन हो गये । इसी समय में पाण्डवों ने हमारी विशाल सेना को नष्ट कर दिया है । जिस समय जय-द्रथ वीर अर्जुन के बाणों का निशाना बना, उस समय वीर कर्ण, द्रोणाचार्य, कृतवर्मा, दु:शासन, तुम और मैं उसकी सहायता

न कर सके। हम सबको परास्त कर वीर अर्जुन ने जयद्रथ को यमलोक पहुँचा दिया। अपनी सेना में अब कौन वीर है, जो पाण्डु-पुत्र अर्जुन पर विजय पा सके। जैसे चन्द्रमा के उदित न होने पर रात्रि अंधकारमयी दिखायी देती है, उसी प्रकार हमारी सेना योद्धाओं के मारे जाने से श्रीहीन हो रही हैं। राजन्! द्यूत-सभा में भीमसेन ने जो बात कही थी, उसे सत्य कर दिखाया और जो शेष है उसे भी वह अवश्य पूर्ण करेगा। पाण्डव साधु-पुरुष हैं, तो भी तुमने अकारण ही उनके साथ बहुत से अनुचित व्यवहार किये, उन्हीं का यह परिणाम तुम्हें भोगना पड़ रहा है। अब तुम अपने जीवन की रक्षा करो, क्योंकि आत्मा ही समस्त सुखों का भाजन है। जैसे पात्र के फूट जाने पर उसमें रखा हुआ जल चारों ओर बह जाता है, उसी प्रकार शरीर के नष्ट होने से सुख का भी अन्त हो जाता है। विद्वानों ने कहा है कि जब अपना बल कम या बराबर जान पड़े, तब शत्रु के साथ संधि कर लेनी चाहिए। हम लोग इस समय बल और शक्ति में पाण्डवों से हीन हो गये हैं, अतः मैं उनसे संधि करना ही उचित समझता हूँ। जो अपने कल्याण की बात नहीं सुनता और श्रेष्ठ पुरुषों का अपमान करता है, वह नष्ट हो जाता है। यदि राजा युधिष्ठिर से नम्रतापूर्वक हम अपना राज्य माँगे तो श्रेयस्कर होगा। धर्मराज युधिष्ठिर दयालु हैं। वे राजा धृतराष्ट्र और श्रीकृष्ण के कहने से तुम्हें उचित राज्य-भाग दे देंगे। मैं संधि को ही तुम्हारे लिये कल्याणकारी मानता हूँ, अतः अब पाण्डवों के साथ युद्ध न करो।'

तपस्वी कृपाचार्य के ऐसा कहने पर दुर्योधन दो घड़ी तक सोचता रहा, फिर बोला—'आचार्य! एक हितैषी सुहृद को जो कुछ कहना चाहिये, वह सब आपने मुझसे कहा है। जैसे मरणासन्न रोगी को औषधि अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार आपने जो उत्तम मार्ग मुझे बताया है, वह मुझे स्वीकार नहीं होता। हम लोगों ने छल से जूए में राजा युधिष्ठिर का धन हरण किया

था, अतः अब वे हम लोगों पर विश्वास नहीं करेंगे। श्रीकृष्ण मेरे यहाँ दूत बनकर आये थे, किन्तु मैंने उन्हें अपमानित किया था, इसलिए मेरे अपराध को वे अब क्षमा नहीं कर सकते हैं। सभा में अपमानित द्रौपदी ने जो विलाप किया था, उसे भीम कैसे सहन कर सकते हैं? अस्त्रहीन, असहाय अभिमन्यु को हमारे योद्धाओं ने क्रूरता के साथ मारा था, उसे याद कर वीर अर्जुन हमें यमलोक क्यों नहीं पहुँचायेंगे? धृष्टद्युम्न और शिखण्डी के बन्धुओं को मेरे योद्धाओं ने स्वर्ग पहुँचा दिया है, अतः वे मेरे हित की बात सोचेंगे भी नहीं। जब से द्रौपदी को हमने क्लेश दिया है, तब से वह मिट्टी की वेदी पर सोती है। उसने मेरे विनाश का संकल्प कर रखा है, अतः बदला चुकाये बिना वह हमारे करुण वचन सुनेगी भी नहीं। द्रौपदी अपने पतियों के अभीष्ट की सिद्धि के लिये नित्य कठोर तपस्या करती है और बैर की अग्नि को प्रज्वलित करती रहती है, जो किसी प्रकार बुझाई नहीं जा सकती। मैं समस्त राजाओं के ऊपर सूर्य के समान प्रकाशित होकर अब दास की भाँति युधिष्ठिर के पीछे-पीछे कैसे चल सकता हूँ? मैं बहुत-से भोग भोगकर और प्रचुर दान दे अब दीन पुरुषों की भाँति जीवन कैसे यापन कर सकता हूँ? आपने जो स्नेहवश हित की बात कही है, उसमें न तो मैं दोष निकालता हूँ, न इसकी निन्दा ही करता हूँ। मेरी यह मान्यता है कि अब किसी प्रकार संधि का अवसर नहीं रह गया है। अब युद्ध ही उत्तम नीति का पालन होगा। संसार में कोई भी सुख सदा नहीं रहता, फिर राष्ट्र और यश कैसे स्थिर रह सकते हैं? अब युद्ध के अतिरिक्त दूसरे उपायों से कीर्ति मुझे नहीं मिल सकती। जो बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान या संग्राम में शरीर का त्याग करे, वह क्षत्रिय ही महत्व को प्राप्त होता है। जिनके आचरण श्रेष्ठ हैं, जिनका धर्म सत्य है, जो आदिदेव भगवान का स्मरण करते हैं, वे बुद्धिमान निश्चय ही स्वर्ग में जाते हैं। वृद्ध पितामह, बुद्धिमान आचार्य, द्रोण,

जयद्रथ, कर्ण, दुःशासन और अनेक योद्धा युद्ध में प्राणों को त्याग कर इन्द्रलोक में प्रतिष्ठित हैं। यदि सबका वध कराने के पश्चात मैं अपने प्राणों की रक्षा करूँ, तो सारा संसार मेरी निन्दा करेगा। इसलिये अब युद्ध के द्वारा मैं भी स्वर्गलोक प्राप्त करूँगा।'

दुर्योधन की यह बात सुन सबने उसका अभिनन्दन किया और युद्ध करने के लिये तत्पर हो गये। दुर्योधन ने अपने योद्धाओं से कहा—'वीरो ! आज मैं अर्जुन, श्रीकृष्ण, भीमसेन और अन्य पाण्डवों को मारूँगा, तभी कर्ण के ऋण से मुक्त हो सकूँगा।'

शल्य

कौरव-सेना का हर्षनाद सुन महाराजा युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा—'माधव ! दुर्योधन ने मद्रराज शल्य को सेनापति बनाया है। अब जो उचित और आवश्यक कार्य हो, उसका सम्पादन कीजिये।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'महाराज ! मद्रराज शल्य बलशाली, महातेजस्वी, महामनस्वी, विद्वान, अद्‌भुत युद्ध करने वाले और शीघ्रतापूर्वक अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करने वाले हैं। पुरुषसिंह ! आपका पराक्रम सिंह के समान है। आपके अतिरिक्त युद्धस्थल में दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है, जो महाराजा शल्य का सामना कर सके। युद्ध में मद्रराज के मारे जाने पर आपकी विजय निश्चित है। 'ये मेरे मामा हैं' ऐसा समझकर आपको उनपर दया नहीं करनी चाहिये।'

कौरव वीरों ने निश्चय किया कि हम लोग शत्रुओं के साथ अब अकेले युद्ध नहीं करेंगे। ऐसा नियम बनाकर वे सब महारथी मद्रराज शल्य को आगे कर युद्धभूमि में बढ़े। प्रतापी

शल्य ने कौरव-सेना से सर्वतोभद्र नामक व्यूह की रचना की। मद्रराज शल्य उस व्यूह के मुख्य स्थान में थे। राजा युधिष्ठिर ने शल्य को मार डालने की इच्छा से उन पर आक्रमण किया, तदनन्तर दोनों पक्षों की सेनाओं में भयंकर युद्ध होने लगा। भीमसेन ने अपनी चतुरंगिनी सेना द्वारा कौरवों को चारों ओर से घेर लिया और सैनिकों का संहार करने लगे। धृष्टद्युम्न और शिखण्डी ने धर्मराज युधिष्ठिर को आगे कर मद्रराज शल्य पर धावा कर दिया। महारथी सात्यकि शकुनि पर टूट पड़े। रण-दुर्मद नकुल ने कर्ण-पुत्र चित्रसेन को यमलोक पहुँचा दिया। अपने भाई को मरा देख कर्ण के दो महारथी पुत्र सुषेण और सत्यसेन वीर नकुल से भिड़ गये। नकुल ने कुछ ही समय में महारथी सुषेण और सत्यसेन को मृत्यु के घाट उतार दिया। वीर कर्ण के पुत्रों की मृत्यु देख मद्रराज शल्य क्रोध में भर पूर्ण वेग से अब पाण्डव सेना का संहार करने लगे। प्रलय-काल के यमराज के समान मद्रराज शल्य ने अपने तीखे बाणों द्वारा पाण्डव सेना को आच्छादित कर दिया। यह देख भीमसेन ने अपने अस्त्रों द्वारा उन्हें घायल कर दिया। मद्रराज शल्य को चारों ओर से अवरुद्ध हुआ देख कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृत-वर्मा, उलक, शकुनि और कौरव-पुत्र उनकी रक्षा करने लगे। शल्य-पुत्र ने सहदेव पर धावा किया, किन्तु कुछ ही समय में वह सहदेव के द्वारा मारा गया। भीमसेन ने कृतवर्मा और मद्र-राज शल्य के घोड़ों को मार गिराया। मद्रराज शल्य अब भीम-सेन से गदा-युद्ध करने लगे। भीमसेन की गदा के प्रहार से मद्रराज व्याकुल हो गये, तब कृपाचार्य उन्हें अपने रथ पर बिठाकर युद्ध भूमि से दूर ले गये। महाराजा दुर्योधन से चेकि-तान भिड़ गया, पर उसे दुर्योधन ने यमपुर भेज दिया। कौरव-वीर स्वर्ग प्राप्ति की अभिलाषा से युद्ध कर रहे थे। उन्होंने महाराजा युधिष्ठिर पर आक्रमण कर दिया, किन्तु चन्द्रसेन और द्रुमसेन उनके द्वारा मारे गये। मद्रराज शल्य पुनः युद्ध-

भूमि में आ पहुँचे और पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर से युद्ध करने लगे। मद्रराज शल्य ने अद्भुत पराक्रम प्रकट किया, किन्तु परस्पर अस्त्रों के आघात से दोनों वीरों के शरीर से रक्त की धारा बहने लगी। अश्वत्थामा और दूसरे कौरव-योद्धा वीर अर्जुन से युद्ध कर रहे थे। जैसे वर्षा ऋतु में दो विशाल मेघखण्ड पानी बरसाते हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर वहाँ भयंकर बाणों की वर्षा कर रहे थे। भरद्वाजनन्दन अश्वत्थामा ने सबके देखते-देखते महारथी सुरथ को यमलोक पहुँचा दिया। सव्यसाची ने दो घड़ी तक गुरुपुत्र का आदर करने के पश्चात अश्वत्थामा के रथ को सारथी एवं घोड़ों सहित विध्वंस कर दिया। यह देख कौरव योद्धा अश्वत्थामा को युद्धभूमि से दूर ले गये। महात्मा युधिष्ठिर मद्रराज शल्य से इस प्रकार युद्ध कर रहे थे, जिस प्रकार इन्द्र ने राजा बलि से किया था। तत्पश्चात महात्मा युधिष्ठिर ने शौर्यशाली नरवीर योद्धाओं में श्रेष्ठ नरेश्वर शल्य को अपने तीक्ष्ण अस्त्रों से घायल कर दिया। तदनन्तर महात्मा युधिष्ठिर ने एक भयंकर तथा दैदीप्यमान शक्ति मद्रराज पर चलाई। वह शक्ति कालरात्रि और ब्रह्मदण्ड के समान अमोघ थी। वह ब्रह्मद्रोहियों का विनाश करने वाली तथा लक्ष्य बेंधने में अचूक थी। वह भीषण शक्ति मद्रराज की छाती में समा गई और वे वज्राहत पर्वत शिखर की भाँति पृथ्वी पर गिरकर यमलोक चले गये।

दुर्योधन की मृत्यु

मद्रराज के छोटे भाई विचित्र ने कुन्तीनन्दन पर आक्रमण कर दिया, किन्तु वह भी उनके द्वारा मारा गया। कुछ ही समय में सात्यकि ने राजा शल्व और क्षेमधूर्ति का वध कर डाला। यह देख कौरव-सेना युद्धभूमि से भाग गयी। भीष्म, द्रोण और कर्ण के मारे जाने पर कौरव-सैनिक एवं योद्धाओं को जो भय

और दुःख प्राप्त हुआ था, वही शोक और भय पुनः महाराजा शल्य के मारे जाने पर उनके हृदय को विदीर्ण करने लगा। वे कह रहे थे कि आज सत्यपरायण राजा युधिष्ठिर शत्रुहीन हो गये हैं और पापी दुर्योधन अपनी देदीप्यमान लक्ष्मी से भ्रष्ट हो गया है। सम्पूर्ण जगत के स्वामी जनार्दन श्रीकृष्ण जिनके रक्षक हैं और जिन्होंने धर्म का आश्रय ले रखा है, उनकी विजय क्यों न हो? अपनी सेना का पलायन देख राजा दुर्योधन स्वयं ही पाण्डवों से घोर युद्ध करने लगा। उसने अपने सहस्रों तीखे बाणों से पाण्डवों को आच्छादित कर अद्‌भुत पराक्रम प्रकट किया। धर्मराज युधिष्ठिर ने दुर्योधन और कृपाचार्य को रथ से विहीन कर दिया, तब अश्वत्थामा उन्हें अपने रथ पर चढ़ाकर अन्यत्र ले गया। अब शकुनि कौरव-योद्धाओं को अपने सामने रखकर पाण्डवों से युद्ध करने लगा, किन्तु दो घड़ी युद्ध करने के पश्चात वह रणभूमि से भाग गया।

यद्यपि शूरवीर कौरव-योद्धा रण से हटने वाले नहीं थे, किन्तु वीर अर्जुन के गाण्डीव धनुष की मार खाकर वे दुर्योधन के देखते-देखते रणभूमि से भाग गये। अब दुर्योधन ने धृष्टद्युम्न पर आक्रमण किया। धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन के रथ का अपने तीखे बाणों द्वारा ध्वंस कर उसे पराजित कर दिया। विपत्ति में पड़ा दुर्योधन एक घोड़े पर सवार हो रणभूमि से दूर भाग गया। थोड़ी दूर जाने के पश्चात राजा दुर्योधन को धर्मशील बुद्धिमान विदुरजी की बात याद आने लगी। उसका हृदय शोक और दुःख से संतप्त हो गया। शरीर में भीषण घाव थे, अतः उसने एक सरोवर में प्रवेश किया। इसी समय दुर्मर्षण, श्रुतान्त, जैय, भूरिवल, रवि, जयत्सेन, सुजात, दुर्विषह, शत्रुनाशक, दुर्विमोचन, सुदर्शन, सुशर्मा, दुष्प्रधर्ष और श्रुतवर्वा ने भीमसेन पर धावा किया, किन्तु कुछ ही समय में भीमसेन ने उन्हें यमलोक भेज दिया। कौरव-पुत्रों को मरा देख शकुनि और उनके पुत्र उलूक ने सहदेव पर आक्रमण किया, किन्तु सहदेव ने उन्हें

धराशायी कर दिया। यह देख कौरव सेना के योद्धाओं ने पाण्डवों पर आक्रमण किया, किन्तु वीर अर्जुन और भीम द्वारा वे यमलोक भेज दिये गये। कौरवों के पास युद्ध के आरम्भ में ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी, परन्तु युद्ध में पाण्डव-वीरों ने उसका विनाश कर डाला। यह देख कौरवों का भाई युयुत्सु जो पाण्डव वीरों को सहयोग देने उनकी सेना में महारथी बनाया गया था, अब महाराजा युधिष्ठिर और भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा ले कौरव पत्नियों को युद्धस्थल से हस्तिनापुर ले गया। पारस्परिक युद्ध से भरतवंशियों का जो घोर संहार हुआ था, उसकी चिन्ता करते-करते युयुत्सु शोक-मग्न हो गया। कौरव-पक्ष के तीन ही योद्धा अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा बचे थे। वे भी दुर्योधन से सरोवर के निकट मिलकर दूर चले गये। पाण्डव दुर्योधन का पता लगा रहे थे। एक व्याध ने दुर्योधन के सरोवर में छिपने का स्थान धन के लोभ से उन्हें बता दिया। राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित भगवान श्रीकृष्ण को आगे कर शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये।

उत्तम और कठोर व्रत का पालन करने वाले कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने दुर्योधन से हँसते हुए कहा—'सुयोधन ! तुमने किसलिये पानी में रहकर यह अनुष्ठान आरम्भ किया है ? सम्पूर्ण क्षत्रियों और अपने कुल का संहार करवाने के पश्चात अपने प्राण बचाने के लिये तुम सरोवर में क्यों छिपे हो ? तुम कुलीन क्षत्रिय और कुरुकुल की संतान हो, अतः अपने कुल और जन्म का स्मरण कर हमसे युद्ध क्यों नहीं करते ? तुम्हारे सभा-सद तुम्हें शूरवीर कहा करते थे, अतः युद्ध न करना अथवा युद्ध से पीठ दिखाकर भागना सनातन धर्म नहीं है। नीच पुरुष ही ऐसे कुमार्ग का आश्रय लेते हैं, इसलिये उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती। युद्धभूमि में गिरे हुए अपने पुत्र, भाइयों, मित्रों, संबंधियों और राजाओं को देखो, इन सबका वध कराकर तुम्हें जीवित रहने की इच्छा कैसे हुई ? तुम कर्ण और दुर्बुद्धि शकुनि

का सहारा ले अपने को अजर-अमर मानते थे, अब युद्ध से विमुख क्यों हो गये ? कहाँ गया तुम्हारा पौरुष, कहाँ है तुम्हारा अभिमान और कहाँ है वह तुम्हारा गर्जन-तर्जन और अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान ? या तो हमें परास्त कर पृथ्वी का सुख भोगो अथवा हमारे हाथों से स्वर्ग चले जाओ।'

दुर्योधन बोला—'महाराज ! यदि किसी भी प्राणी के मन में भय समा जाये तो आश्चर्य की बात नहीं है। मेरे पास न तो रथ है, न धनुष-तरकस ही। मेरी सेना और समस्त योद्धा नष्ट हो चुके हैं, इसलिये अकेला रह गया हूँ। मैं न तो प्राणों की रक्षा के लिये, न किसी भय और विषाद के ही कारण इस जल में छिपा हूँ। मैं केवल थकान मिटाने के लिये यहाँ विश्राम कर रहा हूँ। मैं जिनके लिये राज्य चाहता था, वे सभी भाई मारे जा चुके हैं, अतः पृथ्वी का भोग करने के लिये मेरे हृदय में उत्साह नहीं है। जब भीष्म पितामह, द्रोण और वीर कर्ण मारे जा चुके, तब अब युद्ध की कोई आवश्यकता नहीं। इस सूनी पृथ्वी का तुम ही उपभोग करो। तुम लोगों के अधीन जब सारा विशाल राज्य हो जायेगा, तब मैं मृगचर्म धारण कर वन में चला जाऊँगा और वहीं रहकर मृत्यु का आह्वान करूँगा।'

महायशस्वी युधिष्ठिर ने दुर्योधन के ये करुणायुक्त वचन सुन कहा—'सुयोधन ! तुम आर्त पुरुषों के समान विलाप न करो। यदि तुम पृथ्वी को देने में समर्थ होते तो भी मैं तुम्हारी दी हुई पृथ्वी का पालन नहीं करता। मैं तुमसे पृथ्वी को अधर्म-पूर्वक नहीं लूँगा, क्योंकि क्षत्रियों के लिये दान त्याज्य और अधर्म है, इसलिये तुम्हें युद्ध में परास्त कर ही मैं इस वसुधा का उपभोग करूँगा। जब तुम स्वयं ही इस पृथ्वी के स्वामी नहीं रहे, तब इसका दान कैसे कर सकते हो ? हम लोगों ने कुल में शांति रखने के लिये धर्म के अनुसार अपना ही राज्य-भाग माँगा था, उस समय तुमने हमारा राज्य क्यों नहीं दिया ? तुम तो पहले हमें सुई की नोक से जितनी पृथ्वी बिंध सकती हो, वह भी नहीं

देना चाहते थे, अब सारा राज्य क्यों दे रहे हो। इस समय तुम्हारा जीवन मेरे हाथ में है, अतः तुम स्वेच्छा से जीवित रहने में असमर्थ हो।'

अभिमानी दुर्योधन अपने छत्र की छाया भी सहन नहीं कर सकता था, ऐसे कठोर वचन कैसे सुन सकता था ? वह युधिष्ठिर से बोला—'मैं अकेला, थका-मांदा, रथहीन और अस्त्र-शस्त्र से रहित तुम सबसे कैसे युद्ध कर सकता हूँ ? तुम मुझे युद्ध के लिये विवश करते हो, यह अन्याय है। साधु-पुरुषों की कीर्ति का मूल कारण धर्म है। मैं तुम्हें धर्म और कीर्ति का पालन करने के लिये कहता हूँ। मैं तुम लोगों से एक-एक करके युद्ध करूँगा और सबको नष्ट कर दूँगा।'

युधिष्ठिर ने कहा—'मैंने तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार किया। तुम्हें जो अस्त्र पसन्द हो, उसीको ले हमारे एक भाई से युद्ध करो।'

दुर्योधन ने उत्तर दिया—'राजन् ! ऐसा ही होगा। तुम मुझे एक गदा दे दो और जो वीर मुझे जीतने का अभिमान रखता हो, वह मेरे साथ गदा-युद्ध करे।' यह कह दुर्योधन जल से बाहर आया। वह क्रोध में भरे यमराज तथा रुद्र के समान दीखता था।

राजा युधिष्ठिर ने कहा—'दुर्योधन ! जब तुम और तुम्हारे बहुत-से महारथियों ने मिलकर युद्ध में निःशस्त्र अभिमन्यु को मारा था, उस समय तुम्हारे मन में ऐसा विचार क्यों नहीं उत्पन्न हुआ। वास्तव में यह क्षत्रिय धर्म बड़ा क्रूर, किसी की अपेक्षा न रखने वाला तथा अत्यन्त निर्दयी है। धर्मज्ञ, शूरवीर तथा युद्ध में शरीर का विसर्जन करने को उद्यत होने पर भी तुमने असहाय अभिमन्यु का वध किया। प्रायः जब प्राणी संकट में पड़ते हैं, तब अपनी रक्षा के लिये धर्म की दुहाई देने लगते हैं। तुम कवच धारण कर लो और युद्ध की आवश्यक सामग्री, जो तुम्हारे पास न हो, उसे भी ले लो। पाँचों पाण्डवों

में से जिसके साथ युद्ध करना चाहो, उस एक का ही वध कर देने पर तुम राजा हो सकोगे।'

तदनन्तर दुर्योधन ने कवच और शिरस्त्राण धारण किया और बोला—'आज जो मेरे साथ युद्ध करने को उद्यत हो, वह अपनी गदा उठा ले।' यों कहकर दुर्योधन बार-बार गर्जना करने लगा।

तब भगवान श्रीकृष्ण ने अत्यन्त कुपित होकर कहा—'युधिष्ठिर ! यदि दुर्योधन तुम्हें, अर्जुन, नकुल और सहदेव को युद्ध के लिये वरण करे, तो क्या होगा ? मैं नहीं मानता कि आप चारों गदा-युद्ध में दुर्योधन का सामना करने में समर्थ हैं। इसने भीमसेन का वध करने का इच्छा से उनकी लोहे की मूर्ति के साथ तेरह वर्षों तक गदा-युद्ध का अभ्यास किया है। आपने दयावश यह दुःसाहसपूर्ण वचन क्यों कहे ? मैं भीमसेन के अतिरिक्त किसी को नहीं देखता, जो गदा-युद्ध में दुर्योधन का सामना कर सके। राजन् ! आपका यह जूआ शकुनि के जूए से कहीं अधिक भयंकर है। यद्यपि भीमसेन बलवान और समर्थ है, परन्तु दुर्योधन को गदा-युद्ध का अधिक अभ्यास है, अतः वही बड़ा माना जायेगा। भला कौन ऐसा होगा, जो सब शत्रुओं को जीत लेने के पश्चात, एक शेष शत्रु को जो संकट में पड़ा हो, उसके साथ इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर राज्य को दाँव पर धर दे। यदि भीमसेन पर युद्ध का भार रखा जाये, तो भी मुझे उसके विजयी होने में संदेह है, अतः राजा पाण्डु की संतान राज्य भोगने की अधिकारी नहीं है।'

भीमसेन बोले—'मधुसूदन ! मैं आज बैर की अंतिम सीमा पर पहुँच गया हूँ। श्रीकृष्ण ! मैं अवश्य ही युद्ध में दुर्योधन को मार डालूंगा। मेरी गदा दुर्योधन की गदा से डेढ़ गुनी भारी है। अतः माधव ! आप व्यथित न हों, मैं इससे भिड़ने का उत्साह रखता हूँ।'

भीमसेन के कथन से भगवान श्रीकृष्ण ने अत्यन्त प्रसन्न

होकर कहा—'महाबाहो! इसमें सन्देह नहीं कि तुमने कौरव-पुत्रों का अधिक से अधिक संहार कर उज्ज्वल राज्य-लक्ष्मी धर्मराज युधिष्ठिर को अर्पण की है। अवश्य ही रणभूमि में तुमसे टक्कर लेकर पापी दुर्योधन नष्ट हो जायेगा। किन्तु तुम्हें दुर्योधन के साथ सतर्क हो युद्ध करना चाहिये, क्योंकि वह गदा-युद्ध में अभ्यास-कुशल और युद्ध-कला में पारंगत है।'

भीम महाराजा युधिष्ठिर से बोले—'भैया! मैं रणभूमि में दुर्योधन के साथ लड़ूँगा। मेरे हृदय में दीर्घकाल से ही जो क्रोध संचित है, उसे इस दुर्बुद्धि पर निकालकर सबको परम शान्ति दूँगा। आज मैं आपके गले में कीर्तिमयी माला पहनाऊँगा और दुर्योधन अपनी राज्य-लक्ष्मी और प्राणों का परित्याग करेगा।' ऐसा कहकर पराक्रमी भीमसेन गदा उठा युद्ध के लिये उठ खड़े हुए। कौरव-पुत्र दुर्योधन भीमसेन की ललकार को न सह सका और युद्ध के लिये उसके सामने उपस्थित हो गया। उस समय दुर्योधन के मन में न घबराहट थी, न भय, न ग्लानि थी, न व्यथा। वह सिंह के समान निर्भय खड़ा था।

भीमसेन ने कहा—'दुर्योधन! तूने हम लोगों के साथ जो-जो अत्याचार किये थे, उन सब पाप-कर्मों को अब याद कर ले। तेरे ही कारण महायशस्वी पितामह आज शरशय्या पर पड़े हैं। तेरी इन करतूतों से आचार्य द्रोण, वीर कर्ण, प्रतापी शल्य और अनेक अवध्य योद्धा रण में मारे गये हैं। नराधम! एक-मात्र तू ही सबका नाशक है। अतः तुझे मारकर ही सबके लिये मैं प्रायश्चित करूँगा।'

दुर्योधन बोला—'वृकोदर! बढ़-बढ़कर बातें बनाने से क्या लाभ? मेरे साथ भिड़ने पर मैं तुम्हें शीघ्र हो यमलोक भेज दूँगा। आज कौन ऐसा शत्रु है, जो मेरे हाथ में गदा रहते हुए मुझे मार सके?' जब यह अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ होने वाला था, उसी समय धर्मात्मा एवं यदुकुल के प्रमुख वीर बल-रामजी वहाँ आ पहुँचे। यह देख श्रीकृष्ण ने पाण्डवों सहित

उनका चरण स्पर्श किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की। तदनन्तर दुर्योधन ने भी उनको प्रणाम किया और रोमांचकारी युद्ध आरम्भ कर दिया। महामनस्वी भीमसेन ने अपनी गदा द्वारा दुर्योधन पर बड़े वेग से आक्रमण किया। दुर्योधन ने उस प्रहार को बचाकर भीमसेन का सामना किया। अब वे एक-दूसरे को जीतने की इच्छा से भयंकर एवं रोमांचकारी युद्ध करने लगे। गदा से गदा टकराने से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं। जब भीमसेन अपनी गदा को जोर से घुमाता तब उससे भयानक शब्द होने लगता था। दोनों वीर एक-दूसरे से अपनी रक्षा के लिये प्रयत्नशील हो आघात-प्रतिघात कर रहे थे। भीमसेन ने क्रोध में भर दुर्योधन पर अपनी गदा से प्रहार किया, किन्तु दुर्योधन ने उसे उछलकर विफल कर दिया। उसी क्षण दुर्योधन ने अपनी गदा चलाई जो भीमसेन की पसली में लगी, किन्तु इस आघात से वे विचलित नहीं हुए। दुर्योधन की अपूर्व युद्ध-कला देख पाण्डव चिंतित होने लगे। अब भीमसेन ने जोर से आक्रमण कर दुर्योधन पर गदा से प्रहार किया, उसकी चोट से वह पृथ्वी पर घुटने टेककर गिर पड़ा। यह देख पाण्डवों ने सिंहनाद किया। दुर्योधन को यह सहन नहीं हुआ, अतः उसने अमर्ष से कुपित हो दौड़कर पराक्रमी भीमसेन पर प्रहार किया, किन्तु उस चोट का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वीर अर्जुन ने अपनी बाँई जाँघ ठोककर भीमसेन को संकेत से जूए के समय दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराया। उस प्रतिज्ञा को स्मरण कर भीमसेन ने दुर्योधन की जाँघ पर बड़े जोर से अपनी गदा द्वारा आघात किया, जिससे दुर्योधन की जाँघ टूट गई और वह पृथ्वी पर आर्तनाद करता हुआ गिर पड़ा। यह देख भगवान श्रीकृष्ण, पाण्डव और अन्य योद्धाओं ने भीषण सिंहनाद किया।

भीमसेन द्वारा धराशायी दुर्योधन के मस्तक पर पदाघात देखकर युधिष्ठिर ने कहा—'भीम ! तुम अब बैर से उऋण

हुए। दुर्योधन के सब भाई, मंत्री मारे गये और यह स्वयं भी युद्ध में मारा गया है। इस दशा में यह शोक के योग्य है, उपहास का पात्र नहीं।' राजा युधिष्ठिर दुर्योधन के पास गये और गद्गद कण्ठ से बोले—'तात! तुम्हें खेद या क्रोध नहीं करना चाहिये, क्योंकि जीव अपने कर्मों का ही फल भोगता है। तुमने लोभ, मद और अविवेक के कारण यह संकट प्राप्त किया है। तुम्हारे पापों से ही तुम्हारे भाई, स्वजन और मित्र युद्धभूमि में मारे गये हैं।' ऐसा कह धर्मपुत्र युधिष्ठिर दुःख से आतुर हो विलाप करने लगे।

दुर्योधन के मस्तक पर भीमसेन द्वारा पैर का प्रहार देख बलरामजी को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा—'भीम! तुमने नाभि के नीचे दुर्योधन पर जो गदा का प्रहार किया है, वह गदा-युद्ध के सिद्धान्त के विरुद्ध है, अतः मैं तुम्हें मार डालूंगा।'

उनका यह रुद्ररूप देखकर विनयशील भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी भुजाओं से उन्हें पकड़ लिया और बोले—'भैया! बूआ के पुत्र होने के कारण पाण्डव हमारे स्वजन एवं मित्र हैं। शत्रुओं ने इनके साथ बहुत छल-कपट किये थे। अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना धर्म है। कौरव-सभा में भीमसेन ने दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी। अतः अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के कारण मैं भीमसेन को दोषी नहीं मानता हूँ।' भगवान श्रीकृष्ण के वचन सुन बलरामजी शान्त हो द्वारका चले गये।

पाण्डव-पक्ष के योद्धाओं ने कहा—'भीम! शत्रुओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में भाग्यवश संसार में आपका महान यश फैलेगा। कौरव निर्लज्ज एवं पापी थे, अतः उन्होंने सुहृदों की बात नहीं मानी। उनके पाप के कारण पूज्य पितामह और आचार्य जो अजेय थे, युद्धभूमि में मारे गये। कौरवों ने अत्यन्त लोभ और तृष्णा के वशीभूत हो घृणित कार्य किये थे, उन्हीं का परिणाम उन्हें मिला है।' तदनन्तर पाण्डव सहायक योद्धा शंख बजाते, विश्राम करने प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने

शिविर में चल दिये। कौरव-शिविरों की ओर पाण्डवों के पीछे-पीछे रथों पर स्थित हो महाधनुर्धर बीर युयुत्सु, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदी के पुत्र गये। वहाँ पहुँचने पर भगवान श्रीकष्ण ने कुन्तीपुत्र अर्जुन से गाण्डीव, धनुष और दोनों बाणों से भरे हुए अक्षय तरकसों को लेकर रथ से उतरने को कहा। वीर अर्जुन के ऐसा करने पर वे स्वयं भी रथ से उतर पड़े। समस्त प्राणियों के ईश्वर-परमात्मा श्रीकृष्ण के उतरते ही गाण्डीवधारी अर्जुन का ध्वजचिह्न दिव्य वानर उस रथ से अंतर्धान हो गया और वह विशाल रथ, जो भीष्म, द्रोण और कर्ण के दिव्य-अस्त्रों द्वारा प्राय: दग्ध हो गया था, अब सहसा अग्नि से प्रज्वलित हो भस्म हो गया।

उस रथ को भस्मीभूत हुआ देखकर समस्त उपस्थित योद्धा आश्चर्य से चकित हो उठे, तब वीर अर्जुन ने हाथ जोड़-कर भगवान श्रीकृष्ण से पूछा—'गोविन्द ! यह रथ अकस्मात् कैसे भस्म हो गया ?'

भगवान बोले—'अर्जुन यह रथ नाना प्रकार के दिव्य-अस्त्रों के आघात से पहले ही जल चुका था, किन्तु समरांगण में मैं उस पर बैठता था, इसलिये यह भस्म न हो सका। आज जब तुम अपना अभीष्ट कार्य पूर्ण कर चुके हो, तब मैंने इसे त्याग दिया है।' तत्पश्चात भगवान श्रीकृष्ण ने महात्मा युधिष्ठिर को हृदय से लगाया और कहा—'कुन्तीनन्दन ! सौभाग्य से आपकी विजय हुई है और आप लोग सब सकुशल हैं। अब आगे समयानुसार कार्य शीघ्र कर डालिये।'

राजा धृतराष्ट्र और माता गांधारी को सांत्वना

भगवान के प्रेमपूर्वक वचन सुन युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर उनसे कहा—'भगवन्! आपकी ही कृपा से शत्रुओं का विनाश हुआ है। आपके द्वारा अनेकों बार हमारे कार्यों की सिद्धि हुई है और शुभ परिणाम प्राप्त हुए हैं। व्यासजी ने मुझसे कहा था कि जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं, और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ विजय है।' रात्रि में पुण्यसलिला औघवती नदी के तट पर सबने विश्राम किया।

सूर्योदय होने पर युधिष्ठिर भगवान श्रीकृष्ण से बोले—'माधव! इस समय क्रोध में जलती हुई गांधारी देवी को शांत करने के लिये आपका हस्तिनापुर जाना मुझे उचित लगता है। आप युक्ति और समयोचित वक्तव्य द्वारा गांधारी देवी को शीघ्र ही शान्त करें। हमारे पितामह व्यास भी वहीं होंगे।' युधिष्ठिर के आग्रह पर भगवान श्रीकृष्ण रथ पर आरूढ़ हो हस्तिनापुर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने धृतराष्ट्र के महल में प्रवेश किया। मुनिश्रेष्ठ व्यासजी को उन्होंने पहले से ही वहाँ उपस्थित देखा। उन्होंने व्यास, राजा धृतराष्ट्र और माता गांधारी को प्रणाम किया। यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र का हाथ अपने हाथ में लेकर फूट-फूटकर रोने लगे।

उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा—'भारत! काल के द्वारा जो कुछ भी हुआ है और हो रहा है, वह सब आपको ज्ञात है। नृपश्रेष्ठ! समस्त पाण्डव सदा से आपकी इच्छा के अनुसार आचरण करने वाले हैं। किसी तरह हमारे कुल और क्षत्रिय समूह का विनाश न हो, इसके लिये उन्होंने बहुत प्रयत्न किया था। धर्मवत्सल युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ नियत समय तक चुपचाप कष्ट सहते रहे। जब युद्ध का समय उपस्थित हुआ,

उस समय मैंने स्वयं आकर शान्ति स्थापना करने के लिये सबके सामने आपसे केवल पाँच ही गाँव माँगे थे, किन्तु काल से प्रेरित हो आपने लोभवश वे पाँच गाँव भी पाण्डवों को नहीं दिये। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान विदुर ने भी सदा आपसे शान्ति स्थापना करने के लिये याचना की थी, किन्तु आपने उनका भी निवेदन स्वीकार नहीं किया। इसे कालयोग से भिन्न और क्या कहा जा सकता है? भाग्य ही सबसे बड़ा आश्रय है। परंतप! धर्म, न्याय और स्नेह की दृष्टि से पाण्डव दोषी नहीं हैं, ऐसा जानकर आपको पाण्डवों के प्रति दोष दृष्टि नहीं रखनी चाहिये। अब तो आपका वंश पाण्डवों से ही चलने वाला है। राजन्! आप और गांधारी देवी को पाण्डव ही पिण्ड-पानी और पुत्र से प्राप्त होने वाला फल देंगे, अतः पाण्डवों के प्रति कल्याणभावना रखिये और उनसे स्नेह करिये। धर्मराज युधिष्ठिर के मन में आपके प्रति भक्ति और स्वाभाविक स्नेह है। वे नरसंहार कर दिन-रात शोक की आग में जलते रहते हैं। आप पुत्रों के शोक से संतप्त हैं, ऐसी दशा में वे अत्यन्त लज्जित होने के कारण आपके सामने नहीं आते।' फिर उन्होंने देवी गांधारी से कहा—'शुभे! इस संसार में तुम्हारे जैसी तपोबल-संपन्न स्त्री दूसरी नहीं है। तुमने दुर्योधन से कहा था—ओ मूढ़! जहाँ धर्म है, उसी पक्ष की जीत होगी।'

भगवान श्रीकृष्ण का कथन सुन देवी गांधारी बोली—'केशव! ये राजा अंधे और असमर्थ हैं। इनके सभी पुत्र मारे गये, अब पाण्डव और तुम ही इनके आश्रयदाता हो।'

माता गांधारी और राजा धृतराष्ट्र को सान्त्वना दे भगवान श्रीकृष्ण ने उनसे विदा ली और रणभूमि में आकर उन्होंने पाण्डवों को सारा वृतान्त सुनाया।

दुर्योधन के घायल होने का समाचार सुन अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा उसके पास आकर बैठ गये। अश्वत्थामा ने दुर्योधन से कहा—'महाराज! इस मृत्युलोक में कुछ भी सत्य

नहीं है, सभी नाशवान है। काल की गति को जानना दुष्कर है। किस कारण से कौन-सा कार्य होगा, इसको समझना अति कठिन है।'

दुर्योधन बोला—'मित्रो! इस मृत्युलोक का ऐसा ही नियम है। काल की गति को कोई रोक नहीं सकता। काल क्रम से एक न एक दिन सम्पूर्ण प्राणियों के विनाश की घड़ी आ ही जाती है। विधाता ने हो इसका निर्देश किया है। वही विनाश का समय अब मुझे भी प्राप्त हुआ है। मैं युद्धभूमि में प्राण त्याग रहा हूँ, इससे मुझे पूर्ण सन्तोष है। आप लोगों का मुझपर स्वाभाविक स्नेह है। मेरी मृत्यु से आपको दुःख और संताप नहीं करना चाहिये, क्योंकि वेद शास्त्रों के अनुसार मैं अक्षय लोक प्राप्त करूँगा।' इतना कह दुर्योधन चुप हो गया।

दुर्योधन की दयनीय दशा देख अश्वत्थामा क्रोध से प्रज्वलित हो उठा और बोला—'मैं सत्य की शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि सभी उपायों द्वारा श्रीकृष्ण के देखते-देखते पाण्डवों का वध करूँगा।' अश्वत्थामा की यह बात सुन दुर्योधन ने उसका सेनापति के पद पर अभिषेक किया। वे तीनों वीर दुर्योधन से बिदा ले एक जंगल में विश्राम करने चले गये। सूर्यदेव के अस्ताचल पर चले जाने के पश्चात रात्रि देवी का सर्वत्र आधिपत्य हो गया। रात्रि में विचरने वाले प्राणी अपनी इच्छानुसार घूमने-फिरने लगे और दिन में विचरने वाले जीव निद्रा के अधीन हो गये। नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं से पूर्ण उस वन में अश्वत्थामा की दृष्टि एक वट बृक्ष पर पड़ी, जो कौवों का आश्रय-स्थान बना हुआ था। कौवों के निर्भय होकर सो जाने पर एक बलवान उल्लू उधर आया। कालरूपधारी उस विहंग ने सोये हुए बहुत-से कौवों को अपने पंजों से मार डाला। उल्लू के कपटपूर्ण, क्रूरकर्म को देख अश्वत्थामा ने स्वयं भी वैसा ही करने का संकल्प किया। उसने मन में विचार किया कि अपवित्र अन्तःकरण वाले पाण्डवों ने पद-पद

पर छलपूर्ण, निंदा और घृणा के योग्य कार्य किये । न्याय पर दृष्टि रखने वाले धर्मचिन्तक एवं तत्वदर्शी पुरुषों ने आपत्ति काल में इन कर्मों को अधर्म नहीं बताया है क्रूर-बुद्धि का आश्रय लेकर उसने मामा कृपाचार्य और कृतवर्मा को अपना संकल्प सुनाया, किन्तु वे अश्वत्थामा का विचार सुन लज्जा से गड़ गये।

कृपाचार्य ने कहा—'महाबाहो ! सभी पुरुष प्रारब्ध और पुरुषार्थ के कर्मों से बंधे हुए हैं। उन दोनों से ही उत्तम-अधम कार्य होते हैं। उन्हीं से प्रबृत्ति और निवृत्ति कार्य भी संपादित होते हैं। दैवरहित पुरुष का पुरुषार्थ व्यर्थ है और पुरुषार्थ शून्य दैव भी व्यर्थ हो जाता है। मनुष्य की सारी सिद्धि दैव और पुरुषार्थ के सहयोग पर अवलम्बित है। इन दोनों में दैव बलवान है। वह स्वयं ही निश्चय कर फल-साधन में प्रवृत्त हो जाता है, किन्तु विद्वान पुरुषार्थ का ही आश्रय लेते हैं। प्रायः उनका किया हुआ कर्म निष्फल नहीं होता, परन्तु कर्म न करने से दुःख की ही प्राप्ति होती है, अतः कर्म को महान फलदायक समझना चाहिये। प्रतिदिन विद्वानों से अपने हित की बात पूछनी चाहिये, क्योंकि वे अप्राप्य की प्राप्ति कराने वाले उपायों के मुख्य हेतु हैं। सही उपाय ही सिद्धि का कारण कहा गया है। अपने मन को न वश में रहने वाला पुरुष राग, लोभ और क्रोध से जब किसी कार्य की सिद्धि के लिए चेष्टा करता है, तब उसका ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है। कार्य को आरम्भ करने से ही प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, परन्तु पुरुषार्थ और दैव की अनुकूलता से ही कार्य सिद्ध होते हैं।'

अश्वत्थामा बोला—'मामाजी ! प्रत्येक मनुष्य में पृथक्-पृथक् बुद्धि होती है। उसे अपनी ही बुद्धि उचित लगती है और उसी का आश्रय ले वह सब कार्य करता है। सभी लोग अपने आपको बुद्धिमान समझते हैं और अपनी बुद्धि की प्रशंसा करते हैं। संयोग से जिनके विचार परस्पर मिल जाते हैं, वे एक-

दूसरे की प्रशंसा और अन्य विचार वालों की निन्दा करते हैं। जैसे कुशल वैद्य रोगी को अपनी योग्यतानुसार औषध प्रदान करता है, वैसे ही मनुष्य कार्य की सिद्धि के लिये अपनी विवेक-शक्ति द्वारा विचार कर कार्य करता है, तो भी दूसरे उसकी निन्दा करते हैं। मनुष्य जब किसी संकट में पड़ जाता है अथवा उसे ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है, तब उसकी बुद्धि में क्रमशः शोक एवं हर्षरूपी विकार उत्पन्न हो जाते हैं। उस विकार के कारण उसी समय उसके भिन्न-भिन्न विचार प्रकट होते हैं, परन्तु अवसर अनुकूल न होने पर कुछ समय पश्चात उसकी अपनी ही बुद्धि उस कार्य के लिये अरुचिकर हो जाती है। जैसे जलती हुई आग सूखे जंगल या तिनकों की राशि को जला डालती है, उसी प्रकार मैं सोते हुए धृष्टद्युम्न और पाण्डवों पर आक्रमण कर उन्हें मौत के घाट उतार दूँगा। उनका संहार करने से ही मुझे शान्ति मिलेगी और पिता के ऋण से मुक्त हो जाऊँगा। मैं धृष्टद्युम्न का वध किये बिना जीवित नहीं रह सकता, अतः मैंने अपनी बुद्धि से सोते हुए शत्रुओं का संहार करने का दृढ़ निश्चय किया है।' रात्रि में अश्वत्थामा शत्रुओं के शिविर में घुस गया और कृपाचार्य एवं कृतवर्मा को द्वार पर खड़ा कर दिया। तत्पश्चात अश्वत्थामा ने शिविर में सोये हुए धृष्टद्युम्न, उत्तमौजा और युधामन्यु का क्रूरतापूर्वक वध कर दिया। धृष्ट-द्युम्न और अन्य वीरों की स्त्रियों का कोलाहल सुन प्रभद्रगण, द्रौपदी-पुत्र और सुतसोम आदि वीरों ने अश्वत्थामा का सामना किया। पाण्डव वीरों के दिव्य अस्त्रों और कवच-कुण्डलों से वंचित होने के कारण अश्वत्थामा ने सबको यमलोक पहुँचा दिया। जो वीर भागकर अपना जीवन बचाना चाहते थे, उन्हें कृतवर्मा और कृपाचार्य ने द्वार पर मार डाला। राजन्! वे तीनों वीर पाण्डव-योद्धाओं और सभी द्रौपदी-पुत्रों का वध कर दुर्योधन के पास गये। उन्होंने देखा कि दुर्योधन की चेतनाशक्ति लुप्त-सी हो गयी है और हिंसक जीव उन्हें पीड़ा दे रहे हैं।

कृपाचार्य ने कहा—'राजन्! अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पाँचों पुत्र और सब महारथियों को मार डाला है। अब शत्रु-पक्ष में पाँच पाण्डव, श्रीकृष्ण एवं सात्यकि ही बचे हैं।' मन को प्रिय लगनेवाली यह बात सुनकर दुर्योधन में पुनः चेतनाशक्ति आ गयी और वह बोले—'मित्रवर! आज कृपाचार्य, कृतवर्मा के साथ मिलकर तुमने अपूर्व कार्य किया है। सब वीरों को मरा सुन मैं अपने को इन्द्र के समान समझता हूँ। तुम सब लोगों का कल्याण हो।' द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने अपने स्वामी दुर्योधन का प्रिय कार्य समझ द्रौपदी के सोते हुए पुत्रों के सिर काटकर उसे भेंट किये। यह घटना दुर्योधन को भी अप्रिय लगी।

प्रातःकाल होने पर धृष्टद्युम्न के सारथी ने रात के समय निःसंकोच सोते हुए महारथियों का जो संहार अश्वत्थामा ने किया था, उसका समाचार धर्मराज युधिष्ठिर से कहा। यह अमंगलमय कथन सुन कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर पुत्रों के शोक से संतप्त हो पृथ्वी पर गिर पड़े और आर्त्त हो विलाप करने लगे। वे मन-ही-मन कहने लगे, कभी-कभी अनर्थ भी अर्थ-सा हो जाता है और अर्थ के रूप में दिखाई देने वाली वस्तु अनर्थ के रूप में परिणत हो जाती है। इसी प्रकार हमारी यह विजय भी पराजय का रूप धारण करके आई थी, अतः जय भी पराजय बन गई। यदि विजय लाभ के पश्चात् मनुष्य विपत्ति में पड़ जाता है, तो उसे पराजित ही कहना चाहिये। प्रमाद से बढ़कर संसार में मनुष्य के लिये दूसरी कोई मृत्यु नहीं है। प्रमादी मनुष्य को शुभ कर्म त्याग देते हैं और अशुभ बिना बुलाये ही उसके पास आ जाते हैं। जिन वीरों ने प्रचण्ड रण-समुद्र को पार कर लिया था, वे ही महारथी प्रमादवश मारे गये। प्रमादी पुरुष विद्या, तप, वैभव और महान यश कभी प्राप्त नही कर सकता, अतः साधु पुरुष का ही अनुकरण करना चाहिये। इस प्रकार आर्त्त स्वर में विलाप करते हुए धर्मराज युधिष्ठिर ने द्रौपदी को

सान्त्वना दी, किन्तु वह शोक से व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। भीमसेन ने उसे पृथ्वी पर से उठा लिया और धीरज बंधाया।

द्रौपदी राजा युधिष्ठिर से बोली—'पापाचारी द्रोण-पुत्र ने मेरे सोते हुए पुत्रों का वध किया है, अतः यदि आज आप उसके प्राण नहीं हर लेंगे, तो मैं भी जीवन का अंत कर दूंगी।' अर्जुन ने द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए कहा—'मैं उस अधम ब्राह्मण का सिर गाण्डीव धनुष के बाणों से काटकर तुझे भेंट करूँगा।' बच्चों की हत्या से अश्वत्थामा का मन उद्विग्न हो गया था। जब उसने देखा कि अर्जुन उसकी ओर झपटा आ रहा है, तब उसने अपने बचाव का एकमात्र साधन ब्रह्मास्त्र ही समझा। यद्यपि उसके लौटाने की विधि उसे मालूम न थी, फिर भी प्राण संकट में जान उसने उसी अस्त्र का संधान किया।

उसका तेजोमय अमोघ रूप देख अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण की इस प्रकार स्तुति की—'हे कृष्ण! तुम सच्चिदानन्द-स्वरूप परमात्मा हो। तुम्हारी शक्ति अनन्त है और तुम्हीं भक्तों को अभय देने वाले हो। तुम प्रकृति से परे आदिपुरुष साक्षात परमेश्वर हो और अपनी चिद्शक्ति से त्रिगुणमयी माया को दूर कर तुम अपने अद्वितीय स्वरूप में स्थित हो। तुम्हारा यह अवतार पृथ्वी का भार हरण करने तथा भक्तजनों के निरन्तर ध्यान और स्मरण करने के लिए ही हुआ है। यह भयंकर तेज सब दिशाओं से मेरी ही ओर क्यों आ रहा है?'

भगवान ने कहा—'अर्जुन! यह अश्वत्थामा का चलाया हुआ ब्रह्मास्त्र है। तुम शस्त्रास्त्र-विद्या में निपुण हो, इसलिए ब्रह्मास्त्र के तेज से ही इस ब्रह्मास्त्र की प्रचंड आग को बुझा दो।'

अर्जुन ने भगवान की बात सुनकर ब्रह्मास्त्र के निवारण के लिये ब्रह्मास्त्र का ही संधान किया। अब दोनों अस्त्रों की लपटों से प्रजा जलने लगी। लोकों का नाश होते हुए देखकर भगवान की अनुमति से अर्जुन ने उन दोनों को ही लौटा लिया। फिर

उन्होंने अश्वत्थामा को पकड़कर बाँध लिया। भगवान श्रीकृष्ण ने उससे कहा, 'अरे दुष्ट! धर्मवेत्ता पुरुष असावधान, मतवाले, पागल, सोये हुए, बालक, स्त्री, विवेक-शून्य, शरणागत और भयभीत पुरुष का वध कभी नहीं करते। जो दुष्ट दूसरों को मारकर अपने प्राणोंका पोषण करता है, उसका वध ही कल्याण-कारी है।'

यद्यपि अर्जुन के मन में गुरु-पुत्र के प्रति दया आई, उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर उसे शिविर में ले जाकर द्रौपदी को सौंप दिया। गुरु-पुत्र को पशु के समान बाँधकर लाया जाना सती द्रौपदी को भी अच्छा नहीं लगा। उसने अर्जुन से कहा—'इन्हें आप छोड़ दीजिये। ये हम लोगों के अत्यन्त पूजनीय हैं। आर्यपुत्र! गुरु-वंश की नित्य वंदना और पूजा करनी चाहिये।' द्रौपदी की बात धर्म और न्याय के अनुकूल थी। वहाँ पर उप-स्थित सब नर-नारियों एवं युधिष्ठिरादि सभी भाइयों ने द्रौपदी की इस बात की बड़ी सराहना की, पर भीमसेन ने तो उसका वध ही उचित समझा। इस पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन की ओर संकेत करते हुए कहा—'पतित ब्राह्मण का वध नहीं करना चाहिए, परन्तु आततायी तो सदा वध्य ही है। इसलिए तुम उचित कार्य करो।' अर्जुन ने श्रीकृष्ण की बात समझकर अश्वत्थामा के सिर की मणि उसके बालों के साथ उतारकर उसे मुक्त कर दिया। वह श्रीहीन होकर वहाँ से चला गया।

कुछ काल बाद पाण्डवों से विदा लेकर सात्यकि के साथ जब श्रीकृष्ण द्वारकापुरी पधारने के लिए रथ पर सवार हुए, उसी समय भय से विह्वल अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा उनके पास दौड़ी आई, उसने अत्यन्त कातर स्वर से प्रार्थना की—'जगदीश्वर! सूर्य के समान एक तेज मेरी ओर तीव्र गति से दौड़ा आ रहा है। यह भले ही मुझे जला डाले, पर मेरे गर्भ-स्थित शिशु का अमंगल न हो, अतः आप कृपा कर मेरी रक्षा कीजिए।' भक्तवत्सल भगवान यह सुनते ही समझ गये कि

अश्वत्थामा ने पांडवों के वंश को निर्बीज करने के विचार से ब्रह्मास्त्र का पुनः प्रयोग किया है।

उत्तरा के गर्भ में स्थित शिशु परीक्षित जब अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र के तेज से जलने लगा, तब उसने देखा कि एक ज्योतिर्मय पुरुष उसके सामने खड़ा है। वह देखने में तो अंगूठे-भर का है, परन्तु उसका स्वरूप अत्यन्त निर्मल है। उसका अति सुन्दर श्याम शरीर है और पीताम्बर धारण किये वह उसके चारों ओर घूम रहा है एवं चक्र के द्वारा ब्रह्मास्त्र के तेज को शान्त करता जा रहा है। इस प्रकार शिशु के सामने ही भगवान श्रीकृष्ण ने ब्रह्मास्त्र के तेज को शान्त कर उसकी रक्षा की और अन्तर्धान हो गये। शुभ समय में पांडु के वंशधर परीक्षित का जन्म हुआ।

विदुरजी राजा धृतराष्ट्र को सान्त्वना देने उसके पास गये और बोले—'राजन्! शोक त्यागिये और अपने मन को स्थिर कीजिये, क्योंकि समस्त प्राणियों की मृत्यु ही अन्तिम गति है। संसार में संग्रह का अन्त क्षय, संयोग का वियोग, उन्नति का पतन और जीवन का अन्त मृत्यु है। शूरवीर और कायर दोनों को यमपुर जाना पड़ता है। देव के विधान से जो युद्ध नहीं करता, वह भी मरता है और जो युद्ध करता है, वह जीवित रह जाता है। जन्म के पहले प्राणी व्यक्त नहीं थे, बीच में व्यक्त होकर दिखाई देते हैं और मृत्यु के बाद पुनः व्यक्त नहीं रहते। काल के न तो प्रिय है न अप्रिय। जो जीव संसार की यात्रा में आये हैं, उन सबको एक दिन परलोक जाना ही होगा। जीव अदृश्य जगत से आता है और पुनः अदृश्य जगत में चला जाता है। माता-पिता, भाई-बन्धु न उसका है, न वह उनका है। शोक और भय के हजारों स्थान हैं। वे प्रतिदिन मूढ़ मनुष्य पर ही अपना प्रभाव डालते हैं विद्वान पर नहीं। रूप, युवावस्था, धन, आरोग्य तथा प्रियजनों का एक साथ निवास अनित्य है, अतः विद्वान पुरुष इनमें आसक्त नहीं होते। शोक न अर्थ का साधक

है, न धर्म और सुख का ही। इसके द्वारा मनुष्य अपने कर्तव्य-पथ से भ्रष्ट होकर धर्म, अर्थ और काम से भी वंचित हो जाता है। शरीर समय पर नष्ट हो जाता है, किन्तु उसमें स्थित जो सत्यस्वरूप आतमा है, वह नित्य है। विद्वान पुरुष को चाहिये कि जिन-जिन साधनों से मन दुःख अथवा सुख से मुक्त हो जाता है, उन्हीं में मन को नियमपूर्वक लगाकर शान्ति प्राप्त करे। जो भगवान के ध्यान में लगे रहते हैं, उनकी सब विपत्तियों से रक्षा होनी सम्भव है, परन्तु शास्त्रानुसार जो नहीं चलते, उन्हें तो कष्ट ही उठाना पड़ता है। विद्वान पुरुष को चाहिये कि वह अपने मन को वश में कर ज्ञान की शरण ले।'

विदुरजी का उपदेश सुन धृतराष्ट्र, देवी गांधारी और माता कुन्ती देवी युद्धभूमि में गये। पाण्डवों ने उन्हें श्रद्धा सहित प्रणाम किया और राजा धृतराष्ट्र ने पहले धर्मात्मा युधिष्ठिर को हृदय से लगाया। तदनन्तर उनके मन में दुर्भावना जाग उठी। वे भीम को इस प्रकार खोजने लगे मानो आग बनकर उसे जला देना चाहते हों। शोकरूपी वायु से बढ़ी क्रोधाग्नि उनके मुख पर दिखायी देती थी। भीमसेन के प्रति उनके अशुभ संकल्पों को जानकर भगवान श्रीकृष्ण ने उनकी लोहे की मूर्ति धृतराष्ट्र के सामने कर दी। बलवान राजा धृतराष्ट्र ने उस लोहे की बनी मूर्ति को असली भीमसेन ही समझा और उसे दोनों बाहों से दबाकर तोड़ डाला। जब उनके रोष का आवेश दूर हो गया तब वे भीमसेन को याद कर विलाप करने लगे।

उन्हें भीमसेन के वध से दुःखित और क्रोध-शून्य हुआ जान पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—'महाराजा धृतराष्ट्र ! आप शोक न करें। भीमसेन आपके हाथ से मारा नहीं गया है। प्रभो ! आपने लोहे की प्रतिमा को ही चूर-चूर कर डाला है। आपका मन पुत्रों के शोकवश धर्म से विचलित हो गया था, इसलिये आपके सामने भीमसेन की लोहे की प्रतिमा

ही रखी गई थी । हम लोगों ने सर्वत्र शान्ति स्थापन करने का प्रयत्न किया है, उसका आप भी अनुमोदन करें । आपने वेदों एवं शास्त्रों का अध्ययन एवं श्रवण किया है, अतः आपको क्रोध तथा शोक नहीं करना चाहिये । आप बुद्धिमान और बला-बल का निर्णय करने में समर्थ होकर भी अपने ही अपराध से जो विनाश हुआ है, उसके लिये शोक क्यों करते हैं ? मैंने तो आपको संधि के लिये बहुत समझाया था, परन्तु बल और शौर्य में पाण्डवों को बढ़ा-चढ़ा जानकर भी आपने मेरा वचन नहीं माना । राजन् ! आप अपने मन को वश में न रखकर सदा दुर्योधन के अधीन रहे, उसी का यह परिणाम है ।'

जब भगवान श्रीकृष्ण ने राजा धृतराष्ट्र को समझाया तब वे बोले—'माधव ! आपका कथन सत्य है, परन्तु मैं पुत्रों के स्नेह में बंधकर धैर्य से विचलित हो गया था । अब मैं शान्त हूँ, मेरा क्रोध और शोक दूर हो गया है । अपने सब पुत्रों के मारे जाने पर अब मैं पाण्डवों से प्रेम करूँगा, जो मेरे हित-चिंतक हैं ।' तदनन्तर उन्होंने भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को हृदय से लगाकर उन्हें अनेक आशीर्वाद दिये ।

यद्यपि भगवान श्रीकृष्ण के समझाने पर राजा धृतराष्ट्र और माता गांधारी कुछ समय के लिये अपने शोक को भूल गये थे, तथापि माता गांधारी को पुनः क्रोध आ गया । वह पाण्डवों को शाप देना चाहती थीं । सती-साध्वी देवी के मन के आन्त-रिक भाव को महर्षि व्यास जान गये ।

महातपस्वी व्यासजी माता गांधारी से बोले—'तुम्हें पाण्डु-पुत्रों पर क्रोध नहीं करना चाहिये । प्रतिदिन दुर्योधन विजय की अभिलाषा से तुम्हारे पास आकर आशीर्वाद माँगता था और तुम सदा यह ही कहती थीं कि 'जहाँ धर्म है, वहाँ विजय है ।' तुमने कभी झूठ नहीं बोला है और प्राणियों के हित में सदा तत्पर रहती आयी हो । युद्ध में पाण्डवों ने जो विजय पायी है, इससे यह सिद्ध होगया कि 'धर्म का बल सबसे अधिक

है।' साध्वि ! तुम तो सदा से क्षमाशील हो, अब पाण्डवों को क्षमा क्यों नहीं करतीं ? अपने धर्म को स्मरण कर शोक और क्रोध को त्याग दो।'

माता गांधारी ने कहा—'भगवन् ! मैं पाण्डवों के प्रति दुर्भावना नहीं रखती हूँ, न उनका विनाश ही चाहती हूँ, किन्तु पुत्रों के शोक से मेरा मन व्याकुल हो जाता है। कुन्ती के पुत्र जिस प्रकार कुन्ती से रक्षणीय हैं, उसी प्रकार मुझे भी इनकी रक्षा करनी चाहिये। कुरुकुल का संहार तो दुर्योधन, मेरे भाई शकुनि, कर्ण और दु:शासन के अपराध से ही हुआ है, इसके लिये पाण्डव दोषी नहीं हैं, किन्तु भीमसेन ने गदा-युद्ध में दुर्योधन के साथ उचित व्यवहार नहीं किया। धर्मज्ञ नीतिज्ञों ने गदा-युद्ध के लिये नाभि से नीचे प्रहार करना अन्याय बताया है, अत: भीमसेन ने ऐसा कर पाप किया है।' उसी समय पाण्डव, द्रौपदी और भगवान श्रीकृष्ण वहाँ उपस्थित हो गये।

भीमसेन ने माता के वचन सुन डरते-डरते विनयपूर्वक कहा—'माताजी ! यह धर्म हो या अधर्म, मैंने दुर्योधन से डरकर अपने प्राण बचाने के लिये ही ऐसा किया है, अत: आप मेरा अपराध क्षमा करें। दुर्योधन ने अधर्म से राजा युधिष्ठिर को जुए का खेल खिलाकर जीता था, इसलिये मैंने भी उसके साथ विषम व्यवहार किया है।'

भीम का कथन सुन माता गांधारी बोली—'तात ! तुमने मेरे पुत्र की प्रशंसा की है, अत: वह अमर हो गया। तुमने जो कुछ कहा है, उससे प्रतीत होता है कि दुर्योधन अपराधी था; परन्तु तुमने दु:शासन को युद्ध में मारकर उसका रक्त पी लिया, यह सत्पुरुषों द्वारा निंदित और क्रूरतापूर्ण कार्य है।'

भीमसेन ने कहा—'द्यूत क्रीड़ा के समय दु:शासन ने जब द्रौपदी के केश खींचे थे, उस समय क्रोध में भरकर मैंने प्रतिज्ञा की थी कि दु:शासन का रक्त पीऊँगा। यदि मैं उस प्रतिज्ञा को

पूर्ण न करता तो क्षत्रिय-धर्म से गिर जाता। माँ ! आप शोक न करें। वह रक्त मेरे दाँतों और होठों को लाँघ कर आगे न जा सका। जैसा मेरा शरीर है वैसा ही भाई का था, इसलिये जब मैं अपना रक्त नहीं पी सकता, तब भाई का कैसे पीता ? अतः आप मुझपर प्रसन्न हों।' पाण्डवों और द्रौपदी ने अपने अश्रु भरे नेत्रों से माता कुन्ती को प्रणाम किया। माता कुन्ती ने सबको धीरज बंधाया और फिर वह द्रौपदी को गांधारी के पास ले गयी। माता गांधारी द्रौपदी को देखकर स्नेह से गद्‌गद हो गई और उससे बोली—'तुम दुःख से इस प्रकार व्याकुल न होओ। मैं भी तो दुःख महासागर में डूबी हुई हूँ। काल से प्रेरित होकर यह नरसंहार हुआ है, यह विनाश अवश्यम्भावी था। जब संधि कराने में श्रीकृष्ण सफल नहीं हुये, उस समय बुद्धिमान विदुरजी ने जो महत्त्वपूर्ण बात कही थी, उसीके अनुसार युद्ध के परिणामस्वरूप कुल का संहार हुआ है। तदनन्तर महर्षि व्यास की आज्ञा से भगवान श्रीकृष्ण, पाण्डव, राजा धृतराष्ट्र, माता गांधारी, कुन्ती, द्रौपदी और कौरव-कुल की स्त्रियाँ युद्ध-स्थल में मृतकों को जलांजली देने गईं। अपने सुहृदों को रणभूमि में मृत देखकर उन सबकी दयनीय दशा हो गयी।

शान्ति-पर्व

कर्ण

पाण्डव, विदुर, धृतराष्ट्र और सम्पूर्ण स्त्रियों ने गंगाजी में अपने सुहृदों को श्रद्धांजलि प्रदान की। जब गंगातट पर राजा युधिष्ठिर ठहरे हुए थे, उस समय बहुत-से श्रेष्ठ ऋषि-मुनि, जिनमें मुख्य द्वैपायन व्यास, नारद, महर्षि देवल, देवस्थान और कण्व थे, उनसे मिलने के लिये पधारे। राजा युधिष्ठिर ने उन सबका बहुविध सत्कार किया।

नारदजी ने धर्मपुत्र युधिष्ठिर से कहा—'भगवान श्रीकृष्ण की कृपा तथा धर्म के प्रभाव से आपने शत्रुओं पर विजय पायी है। अब क्षत्रिय धर्म के पालन करने में तत्पर रहकर आप प्रसन्न तो हैं न ? इस राज्य लक्ष्मी को पाकर आपको कोई शोक तो नहीं सता रहा है ?'

युधिष्ठिर बोले—'भगवान श्रीकृष्ण के बाहुबल का आश्रय लेने से मैंने विजय प्राप्त की है, पर मेरे हृदय में निरंतर यह महान दुःख बना ही रहता है कि मैंने लोभवश अपने बंधु-बांधवों का संहार करवा डाला। सुभद्रा कुमार अभिमन्यु और द्रौपदी के प्यारे पुत्रों को मरवाकर यह विजय भी मुझे पराजय-सी जान पड़ती है। द्रौपदी के भाई-बन्धु मारे गये, किन्तु वह हम लोगों के प्रिय और हितकर कार्यों में सदा लगी रहती है। जब मैं यह देखता हूँ, तब मेरे मन में अधिक पीड़ा होने लगती है। मेरी माता कुन्ती ने श्रद्धेय कर्ण के जन्म का रहस्य छिपाकर मुझे भारी दुःख में डाल दिया है। संसार में जिनका सामना करने

वाला कोई भी महारथी नहीं था, जो बुद्धिमान, दयालु, दाता, संयमपूर्वक व्रत का पालन करने वाले थे, जिनमें विचित्र प्रकार से युद्ध करने की कला थी, जो अतिशय पराक्रमी तथा शीघ्रता-पूर्वक अस्त्र चलाने वाले थे, जो धनुर्वेद के विद्वान और मेरे बड़े भाई थे, मैंने अनजाने में राज्य के लोभ में आकर भाई के हाथों से ही ऐसे भाई का वध करा दिया। इस बात को सोचकर चिन्ता मेरे हृदय को जलाती रहती है। अर्जुन भी उन्हें भाई के रूप में नहीं जानते थे, किन्तु उत्तम व्रत का पालन करने वाले कर्ण हमें भाई के रूप में जानते थे।

'मेरी माता कुन्ती हम लोगों में संधि कराने की इच्छा से उनके पास गई थी और उन्हें बताया था, तुम मेरे प्रथम पुत्र हो, इसलिये तुम पाण्डवों का साथ दो। परन्तु महामनस्वी कर्ण ने माता का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

'कर्ण ने कहा—मैं युद्ध के समय राजा दुर्योधन का साथ दूँगा, क्योंकि ऐसा न करने से मेरी नीचता, क्रूरता और कृतघ्नता सिद्ध होगी। यदि मैं तुम्हारे प्रस्ताव के अनुसार इस समय युधि-ष्ठिर से मिल जाऊँ या संधि कर लूँ तो सब लोग यही समझेंगे कि कर्ण अर्जुन से डर गया है, अतः मैं पहले अर्जुन को परास्त करूँगा, फिर युधिष्ठिर से संधि।'

'माता कुन्ती बोली—तुम इच्छानुसार अर्जुन से युद्ध करो, किन्तु अन्य चार भाइयों को अभय प्रदान करो।

'बुद्धिमान कर्ण ने हाथ जोडकर माता से कहा—देवी! तुम्हारे अन्य चार पुत्र यदि मेरे वश में आ जायेंगे तो भी मैं उनका वध नहीं करूँगा। तुम्हारे पाँच पुत्र निश्चित रूप से जीवित रहेंगे। यदि मैं मारा गया तो अर्जुन को लेकर तुम्हारे पाँच पुत्र होंगे और यदि अर्जुन मारा गया तब मेरे सहित तुम्हारे पाँच ही पुत्र जीवित रहेंगे। इस गुप्त रहस्य को न तो माता कुन्ती ने प्रकट किया और न कर्ण ने ही। तदनन्तर युद्ध-स्थल में महाधनुर्धर शूरवीर कर्ण, अर्जुन के हाथ से मारे गये। कर्ण

हमारे ज्येष्ठ और सहोदर भाई थे। कर्ण और अर्जुन की सहायता से तो मैं देवराज इन्द्र को भी परास्त कर सकता था। जब धृतराष्ट्र के दुष्ट पुत्रों ने मुझे बहुत क्लेश पहुँचाया, तब सहसा मेरे हृदय में क्रोध प्रकट हुआ, परन्तु कर्ण को देखकर वह शांत हो गया। मेरा विश्वास है कि कर्ण के दोनों पैर माता कुन्ती के चरणों के सदृश थे। माता कुन्ती और कर्ण के पैरों में इतनी समानता का कारण मेरी समझ में नहीं आया। कर्ण को क्यों शाप हुआ था, यह प्रसंग मुझे सुनाइये।'

नारदजी बोले—'राजन्! एक समय देवताओं ने विचार किया कि कौन-सा ऐसा उपाय हो, जिससे भूमण्डल का क्षत्रिय समुदाय शस्त्रों के आघात से पवित्र हो स्वर्ग-लोक में पहुँच जाये, यह सोचकर उन्होंने भगवान सूर्य द्वारा कुमारी कुन्ती के गर्भ से एक तेजस्वी बालक उत्पन्न कराया, जो संघर्ष का जनक हुआ। यही बालक सूतपुत्र कर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने गुरु द्रोणाचार्य से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की। वह भीमसेन का बल, अर्जुन की स्फूर्ति, आपकी बुद्धि, नकुल-सहदेव की विनय, गाण्डीवधारी अर्जुन की श्रीकृष्ण के साथ बचपन से ही मित्रता और पाण्डवों पर प्रजा का अनुराग देख चिन्तामग्न हो जलता रहता था, इसलिए उसने बाल्यावस्था में ही राजा दुर्योधन के साथ मित्रता कर ली और दैव की प्रेरणा से आप लोगों के साथ सदा द्वेष रखने लगा।

'अर्जुन को धनुर्वेद में अधिक विद्वान देखकर कर्ण ने गुरु द्रोणाचार्य से कहा—'गुरुदेव! मैं ब्रह्मास्त्र को चलाने और लौटाने का रहस्य जानना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि मैं अर्जुन से युद्ध करूँ। आपका सभी शिष्यों व पुत्रों पर समभाव से स्नेह है। मुझे बड़ा दुःख होगा, यदि विद्वान यह कहें कि कर्ण सभी अस्त्रों का ज्ञाता नहीं है।'

'कर्ण की दुष्टता को समझकर अर्जुन से स्नेह रखने वाले गुरु द्रोणाचार्य बोले—'ब्रह्मास्त्र का ज्ञान ब्रह्मचर्य का व्रत करने

वाला ब्राह्मण या तपस्वी क्षत्रिय ही प्राप्त कर सकता है, दूसरा कोई भी नहीं।'

'उनके ऐसा कहने पर गुरु द्रोणाचार्य से आज्ञा लेकर कर्ण परशुरामजी के पास चला गया और उनसे बोला—'मैं भृगुवंशी ब्राह्मण हूँ, मैंने गुरु भाव से आपकी शरण ली है।' इस पर परशुरामजी ने उसके गोत्र आदि सारी बातें पूछकर उसे शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया। भृगु श्रेष्ठ परशुरामजी से विधि-पूर्वक धनुर्वेद सीखकर कर्ण उसका अभ्यास करने लगा! एक दिन सूर्यपुत्र कर्ण आश्रम के निकट अकेला टहल रहा था। उसी समय अग्निहोत्र में लगे हुए किसी वेदपाठी ब्राह्मण की कामधेनु उधर जा निकली। उसने अनजान में उस धेनु को हिंसक जीव समझकर मार डाला।

'कर्ण दुःखित हो उस ब्राह्मण से बोला—'मैंने अनजान में आपकी गाय मार डाली है, अतः आप मेरा यह अपराध क्षमा करें। मुझ पर कृपा करें।'

'ब्राह्मण उसकी बात सुनते ही कुपित हो उठा और कठोर वाणी द्वारा डाँटता हुआ बोला—'दुराचारी! तू मार डालने योग्य है। दुर्मते! तू इस पाप का फल प्राप्त करेगा। तू जिसके साथ सदा ईर्ष्या करता है उसके साथ युद्ध करते समय तेरे रथ का पहिया पृथ्वी में धँस जायेगा और तू अचेत-सा हो जायेगा। उसी असावधान अवस्था में तेरा शत्रु तेरे मस्तक को काट गिरायेगा। ब्राह्मण के शाप से कर्ण को बड़ा दुःख हुआ। उसने दीनतावश सिर झुका लिया और शाप का चिंतन करता हुआ परशुरामजी के पास लौट आया। राजन्! कर्ण के बाहुबल, प्रेम, इंद्रिय-संयम तथा गुरु सेवा से परशुरामजी अत्यन्त संतुष्ट थे। तपस्वी परशुरामजी ने कर्ण को शान्तभाव से सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र के प्रयोग और उपसंहार की शिक्षा दी। कर्ण के ऊपर उनका विश्वास और सौहार्द हो गया था। एक दिन बुद्धिमान परशुरामजी कर्ण के साथ अपने आश्रम के निकट ही घूम रहे थे। उपवास करने

के कारण उनका शरीर दुर्बल हो गया था। वे मन ही मन थकावट अनुभव कर रहे थे, इसलिए परशुरामजी कर्ण की गोद में सिर रखकर सो गये। इसी समय एक भयंकर कीड़ा, जिसका डंक तीक्ष्ण था, कर्ण के पास आया और उसने उसकी जाँघ को छेद दिया। गुरु के जगने के भय से कर्ण न तो उसे फेंक ही सका, न मार ही पाया। यद्यपि कर्ण को असह्य वेदना हो रही थी, फिर भी सूर्यपुत्र ने उसे सहन कर लिया।

'परशुरामजी के शरीर में जब रक्त ने स्पर्श किया, तब भार्गव-श्रेष्ठ जग उठे और बोले—'मैं तो अशुद्ध हो गया हूँ, भय छोड़कर इस विषय में सत्य-सत्य बता। कर्ण ने उन्हें कीड़े के काटने की गाथा सुनाई। परशुरामजी ने भी उस कीड़े को देखा। परशुरामजी की दृष्टि पड़ते ही उस कीड़े ने प्राण त्याग दिये और वह एक विशाल राक्षस बन गया।

'राक्षस ने हाथ जोड़कर पूर्ण मनोरथ परशुरामजी से कहा—प्रभु-श्रेष्ठ! आपका कल्याण हो। मुनिवर! आपने मुझे इस नारकीय योनि से छुड़ा दिया है।'

परशुरामजी ने कहा—'तू कौन है? किस कारण से तेरी यह दुर्दशा हुई?'

राक्षस बोला—'मैं प्राचीन काल में दंश नाम से एक प्रसिद्ध असुर था। एक दिन मैंने बलात भृगुजी की प्रिय पत्नी का हरण कर लिया। इस पर महर्षि ने मुझे शाप दिया और मैं कीड़ा होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। मेरी प्रार्थना पर प्रसन्न हो उन्होंने फिर कहा—परशुरामजी के दर्शन से इस शाप से तेरी मुक्ति हो जायेगी। हे पुन्य-कीर्ति प्रभो! मैं आपको बारंबार नमस्कार करता हूँ।' इतना कहकर वह राक्षस वहाँ से चला गया।

'परशुरामजी ने क्रोधपूर्वक कर्ण से कहा—ऐसा भारी दुःख ब्राह्मण कदापि नहीं सहन कर सकता। तू स्वेच्छा से सत्य बता तू कौन है? तेरा धर्म तो क्षत्रिय के समान है।

'कर्ण परशुरामजी के शाप के भय से डर गया और उन्हें

प्रसन्न करने की चेष्टा करते हुए बोला—'मैं ब्राह्मण और क्षत्रिय से भिन्न सूत जाति में पैदा हुआ हूँ। मुझे राधापुत्र कर्ण कहते हैं। भृगु-नंदन ! मैंने अस्त्र शिक्षा के लोभ से ऐसा किया है। वेद और विद्या का दान करने वाला शक्तिशाली गुरु पिता के ही तुल्य है, इसलिए मैंने आपके निकट आकर भार्गव गोत्र बताया है।' इतना कह डर से काँपता हुआ कर्ण हाथ जोड़े उनके चरणों में पृथ्वी पर गिर पड़ा।

'परशुरामजी क्रोधित हो कर्ण से बोले—'तुमने ब्रह्मास्त्र के लोभ में मुझसे मिथ्याचार किया है, इसलिए जब तुम संग्राम में अपने ही समान योद्धा से भिड़ोगे और तुम्हारी मृत्यु का समय निकट आयेगा, तब तुम्हें इस ब्रह्मास्त्र का स्मरण नहीं रहेगा। जो ब्राह्मण या तपस्वी क्षत्रिय नहीं है, उसके हृदय में ब्रह्मास्त्र स्थिर नहीं रह सकता। अंत में कर्ण के वहुत अनुनय-विनय करने पर उन्होंने आशीर्वाद दिया कि कोई भी क्षत्रिय युद्ध में तुम्हारी समानता नहीं करेगा।

'परशुरामजी को संतुष्ट कर कर्ण उनके आश्रम से चला गया और दुर्योधन के पास पहुँचकर बोला—मैंने सब अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और उसके साथ आनन्द-पूर्वक रहने लगा। राजन् ! कर्ण के बल की ख्याति सुनकर मगध देश के राजा जरासंध ने उसे युद्ध के लिये ललकारा। दोनों ही दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता और बलशाली थे, इसलिये आपस में युद्ध में तत्पर हो गये। वे नाना प्रकार के अस्त्रों से एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। कुछ ही समय में दोनों के तरकश खाली हो गये, धनुष कट गये और तलवारें टूट गईं। तब वे दोनों वीर विजय की आकांक्षा से एक-दूसरे के साथ मल्ल-युद्ध करने लगे। कर्ण ने जरासंध को पृथ्वी पर पटक दिया और चीरना चाहा। इस पर जरासंध ने बैर भाव त्यागकर उसे अंग देश की मालिन नगरी दे दी। तब से कर्ण अंगदेश का राजा कहलाने लगा। कर्ण की जरासंध पर विजय से प्रफुल्लित हो राजा दुर्योधन ने

भी उसे चंपारन का राज्य दे दिया। इस प्रकार कर्ण अपनी अस्त्र-विद्या के प्रभाव से भूमंडल पर विख्यात हो गया।

'एक दिन देवराज इंद्र ने ब्राह्मण का वेश धारण कर तुम लोगों का हित करने के लिये कर्ण से उनके कवच और कुण्डल का दान माँगने जा रहे थे, जो उसके जन्म के साथ ही रक्षार्थ उत्पन्न हुए थे। इस कुमंत्रणा का भगवान सूर्य को पता चल गया, अतः वे रात्रि को स्वप्न में कर्ण से बोले—'तात ! देवराज इंद्र तुम्हारे पास आवेंगे। तुम्हारी दानशीलता का उन्हें ज्ञान है, कि किसी सत्पुरुष के माँगने पर तुम उसे अभीष्ट वस्तु दे देते हो। किन्तु इन्द्र को तुम अपने कवच और कुण्डल न देना, क्योंकि तुम अपने कवच और कुण्डलों द्वारा रण में शत्रुओं के लिये अवध्य हो। यदि तुम उन्हें कवच और कुण्डल दे दोगे, तो तुम्हारी मृत्यु अवश्यंभावी है।'

कर्ण ने कहा—'आप वरदायक देवता हैं। मैं आपसे प्रसन्न रहने का अनुरोध करता हूँ। यदि मैं आपका प्रिय हूँ तो आप मुझे इस व्रत से विचलित न करें। मैं श्रेष्ठ याचकों को अपने प्राण भी दे दूँगा, जिससे मेरी कीर्ति तीनों लोकों में विख्यात हो जायगी। शूरवीरों को प्राण देकर भी यश की रक्षा करनी चाहिये। अपयश से तो मृत्यु ही अच्छी है। संसार में कीर्ति माता की भाँति मनुष्य को नया जीवन प्रदान करती है, अतः मैं इंद्र को दान दे उत्तम गति प्राप्त करूँगा।' कर्ण के वचन सुन सूर्यदेव अन्तर्धान हो गये। जब कर्ण हाथ जोड़ जल में खड़ा हो भगवान दिवाकर की स्तुति कर रहा था, उस समय देवराज इन्द्र ने ब्राह्मणों के साथ आकर उससे भिक्षा माँगी।

'अधिरथ कुमार ने पूछा—'मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?'

'छद्मवेषी ब्राह्मणरूपधारी इन्द्र ने कहा—'अनघ ! यदि तुम सत्यवादी हो तो तुम्हारे शरीर के ऊपर जो कवच और कुण्डल हैं इन्हें काटकर मुझे दे दो।'

'कर्ण बोला—'आप भूमि, गाएँ, घर, जीवन बृत्ति ले लें,

किन्तु मैं कवच और कुण्डल नहीं दूँगा।' कर्ण की प्रार्थना ब्राह्मण देव ने स्वीकार नहीं की। कर्ण ने पुनः कहा—'देवेश्वर! आप पधार रहे हैं इसका मुझे पहले से ही पता था। मैं आपके मनोरथ निष्फल नहीं करूँगा। उचित तो यह है कि आप मुझे वर दें, क्योंकि आप सब भूतों के ईश्वर तथा उन्हें उत्पन्न करने वाले हैं।' यद्यपि कर्ण छद्मवेषी इन्द्र को पहचान गया था और उस कुचक्र का उसे ज्ञान होते हुए भी बिना किसी संकोच के उसने उन दिव्य कवच और कुण्डलों को देवराज इंद्र को दान दे दिया।

'इन्द्र बोले—'तात! मैं तुम पर प्रसन्न हो कवच और कुण्डल के बदले अमोघ शक्ति देता हूँ। तुम्हारा स्वरूप किसी प्रकार भी वीभत्स नहीं होगा, क्योंकि तुम सत्यवादी हो। जब तक तुम्हारे पास दूसरे शस्त्र रहेंगे और प्राण संकट में न आएगा, तब तक तुम प्रमादवश उस अमोघ-शक्ति का प्रयोग न करना, नहीं तो यह तेरा ही संहार कर डालेगी।' इन्द्र से प्रज्वलित शक्ति ले कर्ण प्रसन्न हो गया। धृतराष्ट्रपुत्र कर्ण के कवच और कुण्डलों का दान सुनकर दीन हो गये।

'वेदपाठी ब्राह्मण और परशुरामजी का शाप, कवच और कुण्डलों का दान, राजा शल्य की ओर से कर्ण के तेज को नष्ट करने का प्रयास और भगवान श्रीकृष्ण की कर्ण के विरुद्ध नीति उसकी मृत्यु के हेतु थे।

'माता कुन्ती ने युधिष्ठिर से कहा—'तुम्हें कर्ण के लिए शोक नहीं करना चाहिये। मैंने और भगवान सूर्य ने उसे बता दिया था कि पाण्डव तुम्हारे भाई हैं। एक हितैषी जितना समझा सकता है उतना ही समझाने का प्रयास हम दोनों ने किया, किन्तु कर्ण काल के वशीभूत था, इसलिये वह पाण्डवों के विपरीत ही सारे कार्य करने लगा। यह देखकर मैंने भी उसकी उपेक्षा कर दी।'

यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर की आँखें भर आईं और वे कर्ण को याद करके दु:ख से संतप्त हो शोक-सागर में डूब गये।

युधिष्ठिर का शोक

युधिष्ठिर बोले—'हे अर्जुन! यदि हम लोग द्वारिका में जाकर भीख माँगकर जीवन निर्वाह करते तो आज अपने कुटुम्ब का संहार कर इस दुर्दशा को प्राप्त नहीं होते। क्षत्रियों के आचार, बल, पुरुषार्थ और अमर्ष को धिक्कार है, जिनके कारण हम ऐसी विपत्ति में पड़ गये। क्षमा, मन और इंद्रियों का संयम, बाहर-भीतर की पवित्रता, वैराग्य, ईर्ष्या का अभाव, अहिंसा और सत्य-भाषण ये धर्म ही श्रेष्ठ हैं। हम लोग तो लोभ और मोह के कारण, राज्य-लोभ के सुख का अनुभव करने की इच्छा से दंभ और अभिमान का आश्रय ले इस दुर्दशा में फँस गए हैं। जब हमने अपने बन्धु-बांधवों को मरा देख लिया, तब हमें इस समय तीनों लोकों का राज्य भी प्रसन्न नहीं कर सकता। हम लोगों ने इस तुच्छ राज्य के लिये अवध्य राजाओं की हत्या की है और बन्धु-बांधवों से हीन हो अर्थ-भ्रष्ट की भाँति जीवन व्यतीत कर रहे हैं, अतः हमें राज्य का परित्याग ही अभीष्ट होना चाहिये। सभी पिता तपस्या, ब्रह्मचर्य पालन, सत्य भाषण और तितिक्षा आदि साधनों द्वारा अनेक कल्याणमय गुणों से युक्त बहुत-से पुत्र पाना चाहते है। इसी प्रकार सभी माताएं उपवास, यज्ञ, व्रत और मंगलमय कृत्यों द्वारा उत्तम पुत्रों की इच्छा रखती हैं। उन सबका यही उद्देश्य होता है कि हमारे पुत्र सम्भावित गुणों से सम्पन्न होंगे, तो हमें अत्र और परत्र सुख होगा, किन्तु उनका यह मनोरथ सर्वथा निष्फल हो गया, क्योंकि हमने उनके पुत्रों को मार डाला है। वे देवताओं और पितरों का ऋण उतारे बिना ही यमलोक में चले गए। जो लोग कामना से युक्त हो क्रोध और हर्ष के कारण अपना संतुलन

खो बैठे हैं, वे कभी विजय का फल नहीं भोग सकते। हमने शूर-वीरों को मार डाला, पाप किया और अपने ही देश का विनाश कर डाला है। हमारा क्रोध तो शान्त हो गया, किन्तु यह शोक मुझे निरंतर घेरे रहता है। किया हुआ पाप कहने से, शुभ कर्म करने से, पछताने से, दान और तपस्या से, निवृत्ति-परायण होने से, तीर्थयात्रा करने से और वेद-शास्त्रों का स्वाध्याय एवं जप करने से भी दूर होता है। श्रुतियों का कथन है कि त्यागी पुरुष पाप से परिशुद्ध हो जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है।

'धनंजय ! ज्ञानी स्थिर बुद्धि, द्वन्द्वरहित होकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। श्रुतियाँ कहती हैं कि संग्रह-विग्रह में फंसा हुआ मनुष्य पूर्ण धर्म नहीं प्राप्त कर सकता। मुझे इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है।

'मैं सुखों का परित्याग कर साधु पुरुषों के मार्ग पर चलना चाहता हूँ। मैं वन में रह फल-फूल खाकर कठोर तपस्या और अग्निहोत्र करूँगा और परिमित आहार से शरीर को दुर्बल कर दूँगा। मृग चर्म, वल्कल वस्त्र, सिर पर जटा धारण कर, सर्दी-गर्मी, हवा, भूख, प्यास सहन करूँगा। वहाँ महात्माओं का दर्शन होगा। मैं एकान्त में रहकर आध्यात्मिक तत्व पर विचार करूँगा। मैं किसी का अप्रिय नहीं करूँगा और जैसा भी आहार मिल जाएगा उसी से जीवन निर्वाह करूँगा। यदि मैं मूँड मुँडा-कर मननशील संन्यासी हो जाऊँगा तो सारे शरीर पर धूल पड़ी होगी, सूने घर में मेरा निवास होगा या किसी वृक्ष के नीचे पड़ा रहूँगा और प्रिय-अप्रिय का विचार छोड़ दूँगा। मैं किसी के लिये हर्ष या शोक न करूँगा, निन्दा और स्तुति को समान समझूँगा। मैं आशा और ममता को त्याग निर्द्वंद्व हो जाऊँगा और संग्रह-विग्रह के लोभ से दूर रहूँगा। मैं इंद्रियों का दमन कर मन को सदा प्रसन्न तथा प्राणियों में सम्भावना रखूँगा और हिंसा नहीं करूँगा। मैं किसी के अधीन न रह

वायु के समान सर्वत्र विचरूँगा। अज्ञानवश तृष्णा ने मुझसे बड़े-बड़े पाप करवाये हैं। मनुष्य शुभाशुभ कर्म द्वारा स्वजनों का भरण-पोषण करता है, फिर अंत में जीवात्मा शरीर को त्याग पहले के किये हुए पापों को ग्रहण कर दूसरा जन्म प्राप्त करता है, क्योंकि कर्ता को ही उसके कर्म का फल मिलता है। मनुष्य पर संसार में जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि का आक्रमण होता ही रहता है, किन्तु जो संसृति से निवृत्त हो जाता है, वह इन दुःखों को प्राप्त नहीं होता। इसलिये तत्वों को जानने वाला मनुष्य संसार से क्यों प्रयोजन रखेगा? आज दीर्घकाल के पश्चात मुझे यह विवेकरूपी अमृत प्राप्त हुआ है, इसे पाकर मैं अक्षय, अविकारी एवं सनातन पद को प्राप्त करना चाहता हूँ।'

उनकी ऐसी दशा देखकर अर्जुन और भाइयों ने विनय और गंभीरतापूर्वक उनको समझाना आरंभ किया—'राजन् यह दुःख और कष्ट की बात है कि आपकी विह्वलता पराकाष्ठा तक पहुँच गयी है। आश्चर्य है कि आप पराक्रम और धर्म द्वारा प्राप्त की हुई राज्य-लक्ष्मी का परित्याग कर रहे हैं। यदि राज्य का परित्याग ही करना था तो आपने राजाओं का वध क्यों किया और करवाया। जिसके कल्याण का साधन नष्ट हो गया है, जो निरा दरिद्र है, जिसकी संसार में ख्याति नहीं है, जो असमर्थतावश प्रयास करने में अयोग्य हो, उसे ही भीख मांग-कर जीवन निर्वाह करने की अभिलाषा रखनी चाहिये। जब आप राज-कुल में जन्म लेकर राज्य छोड़ घर-घर भीख माँग-कर जीवन-निर्वाह करेंगे, तब लोग आपको क्या कहेंगे? राजा नहुष ने निर्धनावस्था में दुःखपूर्वक उद्गार प्रकट किया था, कि सर्वस्व त्याग कर निर्धन हो जाना मुनियों का ही धर्म है, राजाओं का नहीं। राजाओं का धर्म तो धन से ही सम्पन्न होता है। जो धनहीन है वह धर्म भी नहीं कर सकता। दरिद्र मनुष्य को लोग इस तरह देखते हैं मानो वह पापी या कलंकित हो। जैसे पतित मनुष्य शोचनीय होता है, वैसे ही निर्धन भी।

जैसे पर्वतों से नदियाँ बहती रहती हैं, उसी प्रकार धन से शुभ-कर्मों का अनुष्ठान होता रहता है। राजन् ! धन से ही धर्म, काम, स्वर्ग की सिद्धि, जीवन-निर्वाह, हर्ष की वृद्धि, शास्त्रों का श्रवण, अध्ययन और शत्रुओं का दमन संभव है। जैसे गर्मी में छोटी-छोटी नदियाँ सूख जाती हैं, उसी प्रकार निर्धन मंदबुद्धि मनुष्य की सारी क्रियाएं छिन्न-भिन्न हो जाती है। धनी के बहुत मित्र भाई बन्धु होते हैं। वही पुरुष और पंडित कहलाता है। धन से कुल की प्रतिष्ठा बढ़ती है। निर्धन के लिये न तो यह लोक सुखदायक है, न परलोक ही। हम लोग पहले अशरण पुरुषों को शरण देने वाले थे, किन्तु अब हमारा ही अर्थ नष्ट समझकर इस दुर्बलता पर वे बुरी दृष्टि डालेंगे। वेदशास्त्र ने भी राजाओं के लिये यही निर्णय दिया है कि वे न्यायपूर्वक धन उपार्जन करें, विद्वान बनें, स्वाध्याय और यज्ञ का अनुष्ठान करें। अब आपको यज्ञ करने का अवसर प्राप्त हुआ है. इसलिए यदि आप यज्ञ नहीं करेंगे तो आपको पाप लगेगा। क्षत्रियों के लिये यही कल्याण का सनातन मार्ग है, आप इसी मार्ग पर चलिये।

'राजन् ! जैसे मंद और अर्थ ज्ञान से शून्य श्रोत्रियों की बुद्धि केवल मंत्र पाठ में ही रहती है, उसी प्रकार आपकी बुद्धि भी तात्त्विक अर्थ को समझने वाली नहीं है। यदि आपने आलस्यपूर्ण जीवन बिताने का ही निश्चय किया है, तो कौरवों का क्यों विनाश किया ? जैसे कोई मनुष्य परिश्रम करके कुआँ खोदे और फिर जल न पीकर वहाँ से लौट जाये, उसी प्रकार हमारा पराक्रम व्यर्थ हो गया। यदि कोई आशा लेकर कठि-नाई से सफलता प्राप्त करे, फिर फल चखे बिना ही लौट आये वैसे ही हमारी दशा है। शास्त्र का उपदेश है कि आपत्ति काल में, बुढ़ापे में, शत्रुओं द्वारा संपत्ति से वंचित होते से मनुष्य को संन्यास ग्रहण करना चाहिये। जो पुत्र और पौत्रों के पालन में असमर्थ हो, देवताओं, पितरों और ऋषियों को तृप्त न कर

सकता हो, अतिथियों को भोजन देने की भी शक्ति न रखता हो, ऐसे मनुष्य को ही अकेले जंगल में रहकर जीवन बिताना चाहिए। श्रेष्ठ पुरुष केवल संन्यास को ही पुण्यकारक नहीं मानते। यदि कोई संन्यास से ही सिद्धि प्राप्त कर ले, तब तो पर्वत और वृक्ष जल्दी ही सिद्धि पा सकते हैं। वे उपद्रव शून्य, परिग्रह रहित और निरंतर ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले हैं। यदि अपने शरीर मात्र का भरण-पोषण करने से सिद्धि मिलती हो, तो जल-स्थल पर रहने वाले पशु पक्षियों को भी सिद्धि प्राप्त हो जानी चाहिये।

'राजन्! जब दूसरों के कर्मों द्वारा सिद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती, तब तो सभी को कर्म करना पड़ेगा, अकर्मण्य पुरुष कभी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। श्रेष्ठ पुरुषों ने जो कर्म किया है, वह दूसरों से होना अत्यंत कठिन है। उनके कर्म पवित्र और जीवन उत्तम है। वे धर्म-परायण पुरुष, सफल मनोरथ हो, श्रेष्ठ गति को प्राप्त हुए हैं। वेद में सतकर्मों का प्रतिपादन दृढ़तापूर्वक किया है, इसलिए इन कर्मों के अनुष्ठान से ही अभीष्ट सिद्धि होती है। यज्ञों का सम्पादन ही धर्म कहलाता है और गृहस्थ आश्रम ही सिद्धि का पुण्यमय क्षेत्र है। जो मनुष्य कर्म करते हुए भी कुमार्ग का आश्रय लेते हैं, उन्हें पाप लगता है। यज्ञ रूप कर्म तपस्या से युक्त ही तपस्वियों का तप कहलाता है। तपस्या श्रेष्ठ कर्म है, परन्तु शास्त्रों के अनुसार गार्हस्थ्य धर्म में ही सारी तपस्या प्रतिष्ठित है। जिसके मन में किसी के प्रति ईर्ष्या नहीं होती, जो सत्य-भाषण करता है, जो धर्म से प्राप्त धन का श्रेष्ठ यज्ञों में उपयोग करता है वह मनुष्य त्यागी माना जाता है।

'राजन्! गृहस्थाश्रम में देवता, पितर और अतिथियों के लिए किए जाने वाले आयोजन से धर्म, अर्थ और काम तीनों की सिद्धि होती है। वेद-विहित विधि का पालन करने वाले निष्ठावान त्यागी का कभी विनाश नहीं होता। चित्त की एका-

ग्रता, स्वाध्याय, ज्ञान और ध्यान भी यज्ञ कहलाता है। राजन् ! केवल बाहरी द्रव्यों का त्याग कर देने से सिद्धि नहीं मिलती, परन्तु वासनाओं का त्याग करने से, अनासक्त भाव से रहने से, सुख की प्राप्ति होती है। यह मेरा है ऐसा भाव मृत्यु है, यह मेरा नहीं है अमृत है। सनातन ब्रह्म अपने ही भीतर स्थिर है। यदि आपकी दृष्टि में गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए राज्य करना अधर्म है, तो स्वायम्भुव मनु और जनक आदि नरेशों ने इसका सेवन क्यों किया ? राजाओं का धर्म दुष्ट को दण्ड देना, सत्यपुरुषों का पालन करना, युद्ध में पीठ न दिखाना, समयानुसार क्षमा और क्रोध प्रकट करना, दान देना और कर लेना ही है।

'राजन् ! दण्ड से प्रजा के शासन, धर्म और अर्थ की रक्षा होती है, इसलिये इसे त्रिवर्ग रूप कहा गया है। दंड के भय से पापी पाप नहीं करते। मनुष्य को प्रमाद से बचने और सन्मार्ग पर चलने के लिये जो मर्यादा स्थापित की गयी है उसी का नाम दण्ड है। ईश्वर, पुरुष, प्राण, चित्त, प्रजापति, भूतात्मा और जीव इन नामों से दंड का प्रतिपादन किया गया है। जो दंड है, वही सनातन व्यवहार है, वही वेद है। जो वेद है, वह धर्म सत्पुरुषों का सन्मार्ग है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसमें सर्वथा गुण या अवगुण ही हों।

'राजन् ! समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा अवध्य है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नए अपना लेता है, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर नूतन शरीर को ग्रहण करती है। आप सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता हैं, इसलिये कायर मनुष्य के समान क्यों दीनतावश मोह में पड़े हैं ? आपके इस मोह से हम सब संशय में पड़े गए हैं। हमारे तन-मन में व्याकुलता और निर्बलता आ गई है। मनुष्य में दो प्रकार की व्याधियाँ होती हैं—एक शारीरिक और दूसरी मानसिक। इन दोनों की उत्पत्ति एक दूसरे पर आश्रित है। जो मनुष्य बीते हुए मानसिक अथवा शारीरिक दु:ख के लिये बारंबार शोक करता है, उसे कष्ट

भोगने पड़ते हैं। यदि शोक को रोका न जाये तो उसके द्वारा शरीर संतप्त हो उठता है और शोक विपत्तियों को दूर भी नहीं करता। संताप से कान्ति फीकी पड़ जाती है, तथा आयु, धर्म का भी नाश होता है। शोकहीनता, सुख और आरोग्य का उत्पादन करती है। शरीर के निरोग होने से मनुष्य फिर धन-सम्पत्ति का उपार्जन कर सकता है। विद्वान पुरुष जो बातें बीत गयी हैं, जो अभी सामने नहीं आई हैं या भविष्य में होने वाली हैं, उनके लिए शोक या चिन्ता नहीं करते।

'काल-चक्र से प्राप्त सुख-दु:ख से जो लोग आहत होते हैं, उनके उस दु:ख के लिये दूसरा कोई दोषी नहीं है। ऋषि, मुनि, असुर, देवता, विद्वान सब पर विपत्तियाँ आती हैं, पर जिन्हें सत-असत का विवेक है, वे मोह में नहीं पड़ते। इसलिए पुरुष जिस-जिस अवस्था को प्राप्त हो, उसी में उसे आनन्द मानना चाहिये। मनुष्य को प्रारब्ध के विधान से जो कुछ पाना है, उसे ही वह पाता है, जहाँ जाना है, वहीं वह जाता है और जो-जो सुख या दु:ख उसके लिये प्राप्तव्य हैं, उन्हें वह प्राप्त करता है।

'शास्त्र शोक को दूर करने वाला, शान्तिकारक और कल्याणमय है, उसके श्रवण से मनुष्य सुखी होता है। जो बीती बात के लिये शोक करता है उसे न तो अर्थ की प्राप्ति होती है, न धर्म की और न यज्ञ की! मनुष्य उसके कारण को याद कर दु:ख ही उठाता है। सभी प्राणियों को संयोग और वियोग प्राप्त होते ही रहते हैं। यदि मनुष्य निरन्तर शोक करता है तो वह एक दु:ख से दूसरे दु:ख को प्राप्त होता है। यदि दु:ख दूर करने के लिये कोई यत्न न किया जा सके अथवा किया हुआ यत्न काम न दे, तो उसके लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये। दु:ख से छूटने का उपाय अवश्य सोचना चाहिये। जो शोक छोड़कर दु:ख से छूटने का साधन करता है वह निश्चित ही दु:खों से मुक्त हो जाता है। कौरव, जटासुर, चित्रसेन, जयद्रथ और कीचक ने जो हमें दु:ख दिये उनको आप क्यों भूल गए? गुरु द्रोणाचार्य,

भीष्म पितामह के साथ जो आपका युद्ध हुआ था, वैसा ही युद्ध आपको मन के साथ करना होगा। इस युद्ध में विजय पाये बिना ही यदि आप प्राणों का त्याग कर देंगे, तो पुनः आपको शरीर धारण करना पड़ेगा।

'जो शील और सदाचार से विनीत है, जिसने अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण कर लिया है, जो सफलतापूर्वक वर्ताव करता है और समस्त प्राणियों का हितैषी है, जिसको अतिथि प्रिय है, जो धर्मशील है, जिसने धर्मपूर्वक धन उपार्जन किया है, ऐसे गृहस्थ के लिए अन्य आश्रमों की क्या आवश्यकता है?'

द्रौपदी ने कहा—'महाराज! गृहस्थ आश्रम सब धर्मों का मूल है। इसमें रहकर अंतःकरण के राग आदि दोषों को त्यागने पर जितेन्द्रिय मनुष्य सर्वत्र सिद्धि प्राप्त कर लेता है। उसे घर आये हुए अतिथियों का आदर-सत्कार तथा भोजन कराना चाहिये। गृहस्थ पुरुषों के लिये अतिथि से बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। यदि अतिथि पूजित होकर मन-ही-मन गृहस्थ के कल्याण का चिन्तन करे, तो उससे जो फल मिलता है उसकी तुलना दूसरे यज्ञों से नहीं हो सकती। जो गृहस्थ सुपात्र और सुशील अतिथि का सत्कार नहीं करता, तब वह अतिथि उसका पुण्य ले, अपना पाप देकर चला जाता है। उसे बड़े भाई को पिता के समान, पत्नी, पुत्र, बेटी को अपने ही शरीर के समान और सेवक को धाय समान समझना चाहिये। जिसके दिन-रात धर्म पालन में ही व्यतीत होते हैं, उसे लोग ब्रह्मज्ञ मानते हैं। कर्म-परायण मनुष्य निष्काम भाव से जिन कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, वे सब दोषों और पापों को नष्ट कर देते हैं। वेद का सार है सत्य वचन। दान, मन और इन्द्रियों का संयम सबसे बड़ी तपस्या है। सुख का सार स्वर्ग और स्वर्ग का सार शान्ति है। गार्हस्थ्य और योग धर्म दोनों का ही श्रेष्ठ पुरुषों ने आचरण किया है, दोनों ही सम फल देने वाले हैं।

'चारों आश्रम ही देवयान नामक सनातन मार्ग माने गये

हैं। ज्ञान प्राप्त करके परब्रह्म में स्थित हो जाना ही यदि पुरुषार्थ की चरमसीमा है तब तो गृहस्थ धर्म का महत्व और भी बढ़ जाता है, क्योंकि गृहस्थों का सहारा लिये बिना कोई भी आश्रम न तो चल सकता है और न कोई ज्ञान की निष्ठा ही प्राप्त कर सकता है। जैसे समस्त प्राणी माता की गोद का सहारा लेकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ का आश्रय लेकर ही दूसरे आश्रम टिके हैं, अतः गृहस्थ ही यज्ञ है, तप है। जो किसी भी शुभ कर्म का आचरण करता है उस धर्म का कारण गृहस्थ आश्रम ही है। गृहस्थ आश्रम में कुटुम्ब का भरण-पोषण, दान, स्वाध्याय, यज्ञ, सरल और कोमल भावरूप जो कर्म हैं, वे सब अन्य मनुष्यों के लिये अत्यन्त दुष्कर हैं। जो गृहस्थ कर्तव्य समझकर निष्काम भाव से धर्म और यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, उनका फल प्रत्यक्ष देखने में आता है। जो त्याग की भावना से लोभ और कृपणतारहित धन को सत्पात्रों को दान देते हैं, कभी पाप नहीं करते और सदा निष्काम कर्म के साधनों में ही लगे रहते हैं, उनके मानसिक संकल्पों की सिद्धि होने लगती है। उन्हें विशुद्ध ज्ञानस्वरूप परब्रह्म के विषय में दृढ़ निश्चय हो जाता है। जो सब प्राणियों में समभाव रहते हैं, जो शुद्ध चित्त और सन्तुष्ट रहते हैं, जो शब्द ब्रह्म और परब्रह्म दोनों में श्रद्धा रखते हैं, जो आवश्यक नियमों का पालन करते हैं, वे सुख का ही अनुभव करते हैं और उन्हें प्रायश्चित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जो काम, क्रोध से रहित, शान्ति परायण सत्संग और शुभ कर्म करते हैं, उन्हें स्वतः अक्षय मोक्ष रूप फल मिल जाता है। ऐसे पुण्यात्मा मनुष्य यदि पुनः संसार में जन्म ग्रहण करते हैं तो पाप कर्मों में लिप्त नहीं होते। जब कर्मों द्वारा चित्त के रोगादि दोष जल जाते हैं, तब मनुष्य स्वतः ज्ञान में स्थित हो जाता है।

'ज्ञान, संन्यास और निष्काम भाव से कर्मों को करना विद्वानों ने मोक्ष का समान ही साधन बताया है। संन्यासी

त्रिदंड आदि को धारण करता है और गृहस्थ गृह आदि को। यदि त्रिदंड आदि धारण करने पर किसी को ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त हो सकता है तो गृह आदि रखने से दूसरे को उसी ज्ञान के द्वारा मोक्ष कैसे प्राप्त नहीं हो सकता ? क्योंकि परिग्रह दोनों के लिये समान है—एक त्रिदंड आदि का संग्रह करता है दूसरा गृह, धन आदि का। अपने-अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये जिस मनुष्य को जिस-जिस वस्तु से प्रयोजन होता है, वे सभी अपना-अपना काम बनाने के लिये उन-उन वस्तुओं का आश्रय लेते हैं। जो गृहस्थ आश्रम में दोष देख उसका परित्याग कर दूसरे आश्रम में चला जाता है, वह भी कुछ छोड़ता है और कुछ ग्रहण करता है, अतः उसे भी संगदोष से छुटकारा नहीं मिलता। मेरी तो यह धारणा है कि गेरुआ वस्त्र पहनना, मस्तक मुँडा लेना तथा त्रिदंड कमण्डलु धारण करना, ये सब संन्यास मार्ग का परिचय देनेवाले चिह्न मात्र हैं, इनके द्वारा मोक्ष की सिद्धि नहीं होती। न तो अकिंचनता में मोक्ष है न किंचनता में बन्धन ही। धन और निर्धनता दोनों ही अवस्था में ज्ञान से ही जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्षरूपी पत्थर पर रगड़कर त्यागरूपी तलवार को तेज कर विषय और वासनाओं को काटने से मनुष्य जीवन मुक्त हो जाता है, अन्यथा नहीं। मनुष्य योग युक्त होकर भी यदि काम भागों में आसक्त हो, तो उसका त्रिदंड धारण करना अनुचित एवं व्यर्थ है। यदि प्रजा न हो तो कोई राजा नहीं हो सकता, राजा न हो तो राज्य नहीं, राज्य न हो तो राजा धर्म कैसे कर सकता है और धर्म न हो तो परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

'जो सर्वदा धर्मपरायण रहकर उत्तम और अधम विषयों को यथायोग्य विचारपूर्वक ग्रहण करता है और नाना प्रकार के शुभ कर्मों का आचरण करता है, उनके फलस्वरूप उसे अप्राप्य निर्दोष सुख एवं पुण्यात्मक लोक प्राप्त होते हैं।

'गृहस्थ धर्म की मर्यादा का पालन करने वाले उत्तम गति

को प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य अपने सत्कर्मों द्वारा धर्म को धारण करता है और निष्काम भाव से दान देता है, वह शुभ गुणों से संयुक्त होता है। उस मनुष्य का शरीर नाश हो जाने पर भी उसकी मृत्यु नहीं होती। धर्म पर चलने वालों का नाश नहीं होता, वे ही बुद्धिमान हैं। जो वन में पैदा हुए और वहीं मर गए, उन्हें बिना अनुभव के धर्म की प्राप्ति नहीं होती।

'प्राणेश्वर! मोक्ष की प्राप्ति संशयास्पद है, क्योंकि प्राणी प्रारब्ध के अधीन है। इस संसार में दाता के दान से ही साधु पुरुषों की जीविका चलती है। यदि दान देने वाला दाता ही न हो, तो साधु-संन्यासी कैसे जी सकते हैं? इस जगत में अन्न से गृहस्थ का और गृहस्थों से भिक्षुओं का निर्वाह होता है। अन्न से प्राण शक्ति प्रकट होती है, अतः अन्नदाता प्राणदाता होता है। जितेन्द्रिय संन्यासी गृहस्थ आश्रम से अलग होकर भी गृहस्थों के सहारे ही जीवन धारण कर प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। याचना से किसी को भिक्षु नहीं समझना चाहिये। जो सरल भाव से सर्वथा त्याग करता है, वही पूर्ण त्यागी है अनासक्त संग रहित,शत्रु-मित्रमें समभाव रखनेवाला ही मुक्त है। जैसे ज्ञान और विज्ञान के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, उसी प्रकार सदगुरु से सम्बन्ध हुए विना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरु इस संसार सागर से पार उतारने वाले हैं, और उनका दिया हुआ ज्ञान यहाँ नौका के समान बताया गया है। मनुष्य उस ज्ञान को पाकर भवसागर से पार और कृतकृत्य हो जाता है। जैसे नदी को पार कर लेने पर मनुष्य नाव और नाविक को छोड़ देता है, उसी प्रकार मुक्त मनुष्य गुरु और ज्ञान दोनों को छोड़ देता है। पहले के विद्वान लोक मर्यादा तथा कर्म परम्परा की रक्षा के लिये, गृहस्थ के धर्मों का पालन करते थे। नाना प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करते हुए शुभाशुभ कर्मों का परित्याग करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। अपने भीतर ही आत्म ज्योति का प्रकाश है, अन्यत्र नहीं। यह ज्योति सम्पूर्ण प्राणियों

के भीतर समान रूप से स्थित है। जिसका संशय नष्ट हो गया है, वह निश्चय के द्वारा परमगति को प्राप्त कर लेता है।

'शिष्यों का धर्म है, गुरु की सेवा करना, ब्राह्मणों का वेदों को धारण करना, तथा राजा का प्रजा का संरक्षण करना धर्म है। अतिथि सत्कार के साथ-साथ यज्ञों का अनुष्ठान करना, वैश्यों और क्षत्रियों का धर्म कहा गया है। समस्त प्राणियों के हित की इच्छा रखना गृहस्थ का धर्म है। नियमित आहार का सेवन और विधिवत व्रत का पालन करना सबका धर्म है। धर्म के पालन से इंद्रियों की शुद्धि होती है। मैं किसका हूँ? कहाँ से आया हूँ? मेरा कौन है? तथा जीवन का प्रयोजन क्या है? इत्यादि बातों पर संन्यासी को सदा विचार करना चाहिये। पत्नी के लिये पतिव्रता धर्म ही सबसे बड़ा कहा जाता है, इसलिये उसे ऐसे वचन कहना चाहिये, जिससे कि पति का हित हो।

'मौन रहने से ज्ञान रूप फल की प्राप्ति होती है, दान देने से महान यश की। सत्य बोलने से वाणी, पटुता और परलोक में प्रतिष्ठा होती है। भूदान करने से मनुष्य आश्रम धर्म के पालन के समान उत्तम गति और न्यायपूर्वक धन उपार्जन कर श्रेष्ठ फल पाता है। अपनी रुचि के अनुकूल कर्म यदि पापकर्म से रहित और अपने लिये हितकर हो तो उसे करके कोई भी नरक में नहीं पड़ता। अपने चित्त को भलीभाँति एकाग्र करने वाला इसको स्वयं देख सकता है। जब मनुष्य मन, वाणी तथा क्रिया के द्वारा किसी भी प्राणी से द्वेष नहीं रखता, तब वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है। श्रेष्ठ पुरुष भी यदि निन्दित कर्म करता है, तो वह कर्म उसे कलंकित कर देता है। अधर्म कर्ता का पीछा नहीं छोड़ता। समय आने पर कर्ता को इस पाप का फल अवश्य भोगना पड़ता है। जिसका मोह दूर हो गया है, जो समस्त संसर्गों का त्याग कर चुका है, वह गृहस्थ-धर्म पालन करते हुए भी बुद्धि द्वारा निर्द्वन्द्वता प्राप्त कर लेता

है। जिसकी बुद्धि किसी अनर्थ अथवा भोगों में आसक्त नहीं होती, पर स्त्री में अनुराग और शत्रु आदि के विषय में क्रोध नहीं होता, वही सच्चा वैरागी है।

'जो मूंड मुंडाकर गेरुवे वस्त्र पहन दंड धारण कर लेते हैं, किन्तु हृदय में कामना भरी रहती है, वे ढोंगी हैं। यदि हम लोग दान और तपस्या में तत्पर हों, धर्म का अनुष्ठान करेंगे, काम, क्रोध आदि को त्याग देंगे, दया, दान का आश्रय ले प्रजा का पालन करेंगे, तथा गुरुजनों और बृद्ध पुरुषों की सेवा करेंगे, तो हमें अभीष्ट लोक प्राप्त हो जायेगा। देवता, अतिथि और समस्त प्राणियों को विधिपूर्वक उनका भाग देते हुए ब्राह्मण भक्त और सत्यवादी बने रहेंगे, तो हम सब दुःखों से मुक्त हो जायेंगे।

'क्षत्रियों के लिये संग्राम में मर जाना तो यज्ञों से भी बढ़कर माना गया है, जो पारलौकिक पुण्य फल की प्राप्ति कराने वाला है। तप और त्याग तो ब्राह्मण के धर्म हैं, जो मृत्यु पश्चात पर-लोक में फल देने वाले हैं। जो कुछ हुआ है, उसी रूप में होने वाला था। दैव का उल्लंघन नहीं किया जा सकता, इस-लिये आपको गृहस्थ आश्रम के श्रेष्ठ मार्ग पर चलना चाहिये।'

युधिष्ठिर बोले—'प्रियवर! असंतोष, प्रमाद, मद, राग, अशान्ति, मोह और उद्वेग, ये सभी पाप आप लोगों के भीतर घुस गए हैं, तभी आप लोगों को राज्य की इच्छा होती है। सकाम, कर्म और बंधन से सर्वथा मुक्त होकर शान्त एवं सुखी हो जाओ। लोभ, मोह से आवृत हो जो तुम सब असीम कामना करते हो, उसकी सारी आयु पर्यन्त भी पूर्ति होनी असम्भव है। जैसे आग में जितना भी ईंधन डाला जायगा, वह प्रज्वलित होती रहती है, वैसी ही दशा तृष्णा की है। योग और क्षेम धर्म तुम सबमें स्थित है, इसलिये त्याग का आश्रय लो। यत्नशील साधक विषयों का परित्याग कर संतुष्ट हो जाता है, किन्तु विषय भोगों से संपन्न समृद्धिशाली भी कभी संतुष्ट नहीं

होता। अपने मनोरथों के पीछे बड़े-बड़े कार्यों का आरम्भ न करो। आशा तथा ममता न रखो और उस शोकरहित पद का आश्रय लो, जो इस लोक और परलोक में भी अविनाशी है। तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा स्वाध्याय के बल से मृत्यु के पश्चात मनुष्य ऐसे लोक में पहुँच जाता है, जहाँ उसे दुःख नहीं सताता। शुभाशुभ किये हुए कर्मों की साक्षी आत्मा ही है। बुद्धिमान और तपस्वी ही उस गति को प्राप्त होते हैं, अन्य नहीं।

'यह दुर्लभ मानव शरीर स्वर्ग लोक में पहुंचाने के लिये सीढ़ी के समान है। इसको पाकर अपने आपको इस प्रकार धर्म में एकाग्र करो कि फिर उसे स्वर्ग से नीचे न गिरना पड़े। जो भोगों का परित्याग कर तपोवन में जा तपस्या करते हैं, उनके लिये कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो प्राप्त न हो।

'विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है, सत्य के समान कोई तप नहीं है, राग के समान कोई दुःख नहीं है और त्याग के सदृश कोई सुख नहीं है।

'धन खर्च करते समय बड़ा दुःख होता है। उसकी रक्षा में भी सुख नहीं है और उसकी प्राप्ति भी बड़े कष्ट से होती है, इसलिये धन को प्रत्येक अवस्था में दुःखदायक समझकर उसके नष्ट होने पर चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मनुष्य धन संग्रह करते-करते कभी तृप्त नहीं होते, क्योंकि तृष्णा का कभी अन्त नहीं होता। संसार में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जो मनुष्य की आशा को तृप्त कर दे। मनुष्य की आशा समुद्र के समान है, जो कभी भरती ही नहीं। कामना करने वाले मनुष्य की जब एक इच्छा पूरी हो जाती है, तब दूसरी नई उत्पन्न हो जाती है। भोगों की कामना कभी शान्त नहीं होती। जैसे घी की आहुति पड़ने पर अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, इसी प्रकार भोगों की कामना भी बढ़ती ही रहती है। जो लौकिक धन के लिये लोभ करता है, उसका धर्म रूपी धन नष्ट हो जाता है। धर्म का पालन करने पर जिस धन की प्राप्ति होती है उससे बढ़कर संसारिक

धन नहीं है। भोगी अधिक धन की आशा लिये ही मर जाते हैं। जिस धन को न राजा से भय है, न चोर से ही, तथा जो मर जाने पर भी जीव का साथ नहीं छोड़ता, उस धर्मरूपी धन का उपार्जन करो। अपने कर्मों के अनुसार प्राप्त हुए धन को पर-लोक में परस्पर बाँटना नहीं पड़ता, क्योंकि वह उसकी निजी अविनाशी और अटल सम्पत्ति है, जिससे परलोक में भी जीवन-निर्वाह हो सकता है।

'मनुष्य की हृदयभूमि में मोहरूपी बीज से काम, क्रोध और अभिमान रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है। इच्छा जल सींचने का पात्र, प्रमाद जल और अज्ञान जड़ है। दूसरों के दोष देखना पत्ते; शोक, कामना, चिन्ता और तृष्णा डालियाँ हैं। जो वैराग्य रूपी शस्त्र द्वारा उस काम वृक्ष को काट डालता है, वह दुःख से पार हो जाता है। इसी प्रकार यह शरीर नगर है, बुद्धि इस नगर की रानी है। मन निश्चयात्मिका बुद्धि रूप रानी का मंत्री है। इंद्रियाँ इस नगर में निवास करने वाली प्रजा हैं। ये मनरूपी मंत्री की आज्ञा के अधीन रहती हैं। इन प्रजाओं की रक्षा के लिये मन को बड़े-बड़े कार्य करने पड़ते हैं। यहाँ रज और तम दो मार्ग हैं। मन, बुद्धि और जीव विषय सुख का आश्रय लेने के लिये इन मार्गों में चलते हैं। बुद्धि दुर्धर्ष होने पर भी मन के साथ रहने से उसके समान ही हो जाती है और अनर्थ का ही निश्चय करती है। सत्संग, सत्कर्म और परमात्मा के स्मरण से ही इस नगर और नगरवासियों का कल्याण हो सकता है।

'मनुष्य को शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध इन पाँचों विषयों का अनुभव करने के लिये पहले इच्छा होती है। फिर उनमें से किसी एक को पाकर उसके प्रति राग या द्वेष हो जाता है। जिसके प्रति राग-द्वेष होता है, उसे पाने के लिये वह प्रयत्न करता है। जिन विषयों के प्रति उसके मन में राग उत्पन्न हो जाता है उनके प्रतिकूल विषयों से द्वेष होता है। फिर अनुकूल

विषय को प्राप्त करने के लिये लोभ होता है और लोभ के बाद उसके मन पर मोह अधिकार जमा लेता है। लोभ और मोह से घिरे हुए तथा राग-द्वेष के वशीभूत हुए मनुष्य की बुद्धि धर्म में नहीं लगती। वह कपट से धन कमाने में सारी बुद्धि लगा देता है। वह राग और मोह से आवृत्त होकर पाप की ही बात सोचता है, पाप ही बोलता है और क्रिया द्वारा पाप ही करता है। ऐसे मनुष्य इस लोक और परलोक में दु:ख भोगते हैं। पाप कर्मों से दूर रहना, पुण्य कर्मों का अनुष्ठान करना, यही कल्याण का साधन है। विषयासक्त पुरुष की बुद्धि चंचल होती है। उसे काम, क्रोध और मोह को सभी उपायों से दबाना चाहिये। क्रूर स्वभाव का परित्याग सबसे बड़ा धर्म है, क्षमा सबसे बड़ा बल है, आत्मा का ज्ञान ही सबसे उत्कृष्ट ज्ञान है और सत्य से बढ़कर तो कुछ है ही नहीं। जिनके मन में कामना नहीं है, जो किसी वस्तु का संग्रह नहीं करता, जिसने सब कुछ त्याग दिया है, वही विद्वान है।

'तुम लोगों ने अहित में ही हित बुद्धि कर रखी है। जो विनाशशील वस्तुएँ हैं, उन्हें तुम अविनाशी मानते हो, यह बात तुम सबकी समझ में क्यों नहीं आती ? इस अनर्थमय जगत में क्यों आसक्त हो रहे हो ? अपने मोक्ष का साधन क्यों नहीं करते ? संसार में पाप-पुण्य के सिवाय सब कुछ नाशवान है। तुम सब कर्मों से निवृत्त, सब प्रकार के बंधनों से मुक्त और सांसारिक भावनाओं से रहित हो जाओ। आयु निरंतर बीती जा रही है, वह पल-भर भी ठहरती नहीं। जब अपना शरीर ही अनित्य है, तब इस संसार की किस वस्तु को नित्य समझा जाये ? धनी हो या निर्धन सबको उपभोग काल में ही विषयों में किंचित सुख की प्रतीति होती है, उपभोग के पश्चात नहीं। जो मनुष्य विनीत भाव से विचरण करता है, वही सुखी और विद्वान है। जब मनुष्य सुख को दु:ख और दु:ख को सुख समझने लगता है, उस समय बुद्धि, उत्तम नीति और पुरुषार्थ भी उसकी

रक्षा नहीं कर पाते, अतः मनुष्य को स्वभावतः ज्ञान प्राप्ति के लिये यत्न करना चाहिये, क्योंकि यत्न करने वाला मनुष्य दुःख में नहीं पड़ता।

'भाइयो! धर्म और ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाले वेद में वचन उपलब्ध हैं उन्हें मैं जानता हूँ। वे हैं, कर्म करो और कर्म छोड़ो। तुम सब तो अस्त्र-विद्या के पंडित हो, शास्त्रों के तात्पर्य को यथार्थ रूप में जानने की शक्ति तुममें नहीं है। तपस्या, त्याग और ब्रह्म ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है। तपस्या और स्वाध्याय में लगे धर्मात्मा पुरुषों को सनातन लोकों की प्राप्ति होती है। कितने ही ऐसे धीर पुरुष हुए हैं, जिनके शत्रु पैदा ही नहीं हुए और वे स्वाध्याय करके स्वर्ग को चले गये। बहुत-से पुरुषों ने इंद्रियों का निग्रह कर अज्ञान को त्यागा और वे त्यागी पुरुषों के लोकों में चले गये। ज्ञानयोग सब साधनों में प्रधान, अभीष्ट एवं अनिर्देश्य है, किन्तु उसके स्वरूप को समझना बहुत कठिन है। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि मन को कल्याण मार्ग में लगा, तृष्णा और कर्मों का परित्याग कर, धन-जन से दूर होकर, सुखी हो जाय। मनुष्य के मन में संतोष होने से उसे परम सुख की प्राप्ति होती है। शास्त्रों के ज्ञाता एवं महान विद्वानों का कथन है कि तत्ववेत्ता पुरुष तपस्या द्वारा परम पद को प्राप्त कर लेता है। वह ज्ञानयोग से परम तत्व को उपलब्ध कर स्वार्थ त्याग के द्वारा सदा नित्य सुख का अनुभव करता रहता है।

'आप लोग मुझ पापी को आमरण अनशन के लिये बैठा हुआ समझें। अब मैं न तो अन्न खाऊँगा, न पानी पीऊँगा और यहीं रहकर प्राणों को सुखा दूँगा। आप लोग मुझे आज्ञा दें कि मैं अब इस शरीर को त्याग दूँ।'

मुनियों द्वारा युधिष्ठिर को उपदेश

मुनिवर देवस्थान ने राजा युधिष्ठिर से कहा—'महाराज! तुमने धर्म के अनुसार यह राज्य जीता है, इसलिये इसे त्याग देना उचित नहीं है। चारों आश्रम ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये चार सीढ़ियाँ हैं, जो वेद में प्रतिष्ठित हैं। इन्हें क्रमशः पार करो और यज्ञों का अनुष्ठान करो। स्वाध्याय-यज्ञ और ज्ञान-यज्ञ तो ऋषि लोग किया करते हैं। ऋषियों में भी कुछ कर्मनिष्ठ और कुछ तपोनिष्ठ होते हैं। यह सत्य है कि धन के लिए विशेष चेष्टा करना दोष है। पर ब्रह्म ने यज्ञ के लिए ही धन की सृष्टि की है, और यज्ञ के उद्देश्य से उसकी रक्षा करने वाले को उत्पन्न किया है, इसलिये यज्ञ में ही धन का उपयोग करना चाहिये। तेजस्वी इन्द्र, देवाधिदेव महादेव, महाराज मरुत और राजा हरिश्चन्द्र यज्ञों के प्रभाव से विश्व में प्रतिष्ठा पा रहे हैं। जैसे कछुआ अपने सब अंगों को सिकोड़ लेता है, उसी प्रकार मनुष्य अपनी सब कामनाओं को समेट ले, तब ज्योतिःस्वरूप आत्मा उसके अंतःकरण में प्रकाशित हो जाती है। जब मनुष्य काम और द्वेष को जीतकर किसी से भय नहीं मानता, न उससे दूसरे प्राणी भय मानते हैं, तब वह आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है। जब मनुष्य मन, वाणी और क्रिया द्वारा प्राणियों से न द्रोह, न किसी वस्तु की अभि-लाषा ही करता है, तब परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। कुछ लोग प्रेमपूर्वक व्यवहार की प्रशंसा करते हैं, तो कुछ यत्न और परिश्रम की। कोई यज्ञ को ही उत्तम बताते हैं, तो कोई संन्यास को; कोई भगवान के ध्यान में लगे रहते हैं, तो कोई आत्म-चिन्तन में; किन्तु विद्वानों ने ऐसा निश्चित किया है कि कर्तव्य समझकर अपना धर्म पालन करना ही श्रेष्ठ धर्म है। उससे उसे परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। किसी से द्रोह न करना,

सत्य बोलना, समस्त प्राणियों को उनका भाग समर्पित करना, दया भाव, मन और इंद्रियों का संयम, मृदुता, लज्जा और अचंचलता गुणों को अपनाना, ये श्रेष्ठ और अभीष्ट धर्म हैं, ऐसा स्वायंभुव मनु का कथन है। कुंतीनंदन ! तुम भी इन धर्मों का पालन करो। तुम सबसे समभाव रखो, यज्ञ से बचे हुए अन्न का भोजन करो, दुष्टों का दमन, साधुओं का पालन करो और शास्त्रों के यथार्थ रहस्य को जानो। शास्त्र विहित कर्म करने से मनुष्य का इहलोक और परलोक सफल हो जाता है। संन्यास के द्वारा निर्वाण प्राप्त करना अत्यंत दुष्कर एवं दुर्लभ है, क्योंकि उसमें बहुत से विघ्न आते हैं।'

व्यासजी ने कहना आरम्भ किया—'युधिष्ठिर ! शास्त्रोक्त परम धर्म, गृहस्थ आश्रम का ही आश्रय लेकर टिका हुआ है। तुम शास्त्र के कथनानुसार स्वधर्म का ही आचरण करो। देवता, पितर, अतिथि, भृत्य, पशु-पक्षी और अन्य प्राणियों का गृहस्थों से ही पालन होता है। मैं तुम्हें शंख और लिखित का दृष्टांत सुनाता हूँ।

'शंख और लिखित दो भाई थे और कठोर व्रत का पालन करने वाले थे। एक दिन लिखित बड़े भाई शंख के आश्रम पर गया, किन्तु शंख उस समय बाहर गया हुआ था। शंख की आज्ञा लिए बिना ही उसने शंख के आश्रम में लगे हुए फलों को खा लिया। शंख को जब यह मालूम पड़ा, तब वह छोटे भाई लिखित पर क्रोधित होकर बोला—'तुम चोर हो। तुम नृप-श्रेष्ठ सद्युम्न के पास जाओ और उसे उचित दंड देने की आज्ञा सुनाओ।' लिखित भाई की आज्ञा शिरोधार्य कर राजा सद्युम्न के पास गया और उससे कठोर दंड देने की भिक्षा माँगी।

'राजा बोला—'मुने ! यदि आप मुझे दंड देने का अधिकारी मानते हैं तो मुझे क्षमा करने का भी अधिकार है। आप पवित्र कर्म करने वाले महान व्रतधारी हैं, इसलिए मैंने आपको क्षमा करके लौटने की आज्ञा दे दी।' किन्तु राजा सद्युम्न के बार-बार

आग्रह करने पर भी लिखित ने दंड देने का हठ नहीं छोड़ा। भूपाल ने लाचार होकर उसके दोनों हाथ कटवा दिये।

लिखित अपने भाई शंख के पास जाकर आर्त होकर कहने लगा—'मैंने दंड पा लिया है, मुझ दुर्बुद्धि को आप क्षमा कर दें।'

'शंख बोले—'धर्मज्ञ ! मैं तुम पर कुपित नहीं हूँ। हम दोनों निर्मल और निष्कलंक रूप से विख्यात हैं। तुमने धर्म का उल्लंघन किया था, अतः उसीका प्रायश्चित किया है। तुम शीघ्र ही बाहुदा नदी के तट पर जाकर विधिपूर्वक देवताओं, पितरों और ऋषियों का तर्पण करो, जिससे कि भविष्य में तुम्हारा मन अधर्म की ओर न लगे।' लिखित ने वैसा ही किया। जब वे पवित्र हो तर्पण देने की चेष्टा करने लगे, उसी समय उनके दो हाथ प्रकट हो गये। लिखित ने चकित होकर अपने भाई को दोनों हाथ दिखाए, तब शंख ने बताया कि मैंने तपस्या के बल से तुम्हारे हाथ नए पैदा किए हैं। दंड देने का अधिकार तो राजा को ही है। दंड देने से राजा और दंड को स्वीकार करने से तुम दोनों ही पवित्र हो गये हो।

'राजन् ! दंड धारण ही क्षत्रिय-धर्म के अंतर्गत है, मूँड मुँड़ाकर संन्यासी बनना नहीं। धर्मशास्त्रों की आज्ञा का उल्लंघन करने से राजा का पतन हो जाता है, पर जो काम और क्रोध की अवहेलना करके शास्त्रीय विधि का आश्रय ले सर्वत्र पिता के समान सम दृष्टि रखता है वह कभी पाप से लिप्त नहीं होता। जो राजा प्रजा की रक्षा नहीं करता, वह पापों से संयुक्त हो जाता है।

'राजन् ! तुम शोक सागर में गोते लगा रहे हो, किन्तु न तो शोक करने से नष्ट हुई वस्तु मिल सकती है, न चिन्ता से ही। कोई ऐसा दाता भी नहीं है जो मनुष्य को उसकी नष्ट हुई वस्तु दे दे। मनुष्य को विधाता के विधान को स्वीकार करना पड़ता है। तुम उन मरे हुए व्यक्तियों का स्मरण ही क्यों करते

हो ? शोक करने से शोक की वृद्धि होगी। यह शरीर भी अपना नहीं है और पृथ्वी भी अपनी नहीं, ऐसी दृष्टि रखने वाला पुरुष कभी मोह में नहीं फँसता।

'विधाता ने कर्मों के लिए तुम्हारी सृष्टि की है। तुम उन्हीं का अनुष्ठान करो। उन्हीं से तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। तुम कर्मों के फल के स्वामी या नियंता नहीं हो। उत्तम कुल में जन्म, बल-पराक्रम, आरोग्य, रूप, सौभाग्य और उपभोग सामग्री, ये सब दैवाधीन है। रोग, ज्वर और अनेक शारीरिक व्याधियाँ जीव मृत्यु के निमित्त हैं। इनका उल्लंघन करने वाला अभी तक कोई दिखाई नहीं दिया, न ये सब किसीके नियंत्रण में ही रहे हैं। काल के प्रभाव से समस्त प्राणियों को ये सब प्राप्त होते ही रहते हैं। जैसे नदी में जल के प्रभाव से एक तिनका दूसरे से कुछ समय के लिये मिल जाता है फिर अलग हो जाता है, उसी प्रकार प्राणियों के संयोग और वियोग होते रहते हैं, अतः विवेकी पुरुष को अपने मन में विचार करना चाहिये कि 'मैं कौन हूं', 'कहाँ हूँ', 'कहाँ जाऊँगा', 'यहाँ किसलिए आया हूँ।' प्राणी संसार के चक्र में घूमता रहता है। यहाँ पिता, माता, मित्र इत्यादि का साथ मार्ग में मिले हुए बटोहियों के समान ही है।

'राजन्! सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख आता है, पर दोनों ही स्थिर नहीं रहते। संसार में अत्यन्त मूर्ख या जो बुद्धि से परे पहुँच गये हैं, वे ही सुखी हैं, बीच वाले नहीं। सुख-दुःख, उत्पत्ति-विनाश, लाभ-हानि और जीवन-मरण ये समय-समय पर क्रम से सब को आते ही रहते हैं, इसलिए धीर पुरुष इनके लिए हर्ष और शोक नहीं करते। जिसके मान और मोह दूर हो गए हैं, जो नाना प्रकार की आसक्तियों से रहित है, उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। जैसे पानी में बुलबुले बनते और नष्ट हो जाते हैं वैसे ही संसार में प्राणियों का संयोग और वियोग होता है। संग्रह का अंत विनाश, उन्नति का

पतन और जीवन का अंत मृत्यु है। जहाँ आलस्य है वहाँ दुःख और जहाँ कार्य दक्षता है वहाँ सुख। वहीं ऐश्वर्य, लक्ष्मी, धृति और कीर्ति निवास करती है।

'यद्यपि विद्वान पुरुष कहते हैं कि परलोक न तो किसी ने देखा है, न उससे आकर किसी ने उसके विषय में बताया है, पर अपने कल्याण की इच्छा रखने वाले पुरुषों को शास्त्रों की बातों पर विश्वास करना चाहिए। जब मनुष्य मन, वाणी और कार्यों द्वारा सम्पूर्ण भूतों के प्रति पाप बुद्धि का परित्याग कर देता है, तब वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। तुम भी शोक छोड़कर उठो और क्षत्रिय-धर्म का कर्तव्य समझकर पालन करो, जिससे परम पद को प्राप्त हो जाओगे।'

भगवान व्यास के समझाने पर भी जब राजा युधिष्ठिर नहीं बोले, तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहना आरम्भ किया—'राजन्! इस समरांगण में जो वीर मारे गये हैं वे मिल जायें, यह सम्भव नहीं है। जैसे स्वप्न में मिले हुए धन जागने पर मिथ्या हो जाते हैं, उसी प्रकार जो वीर मृत्यु के मुख में चले गये हैं, उनका दर्शन दुर्लभ है। ये क्षत्रिय-धर्म में तत्पर रहने वाले, वेद शास्त्र के पारंगत, शूरवीर, पुण्यमय गति को प्राप्त हुए हैं।

'अवीक्षित के पुत्र राजा मरुत भी मर गए, जिनके यज्ञ में इंद्र, वरुण सहित देवता, प्रजापति और देवगुरु बृहस्पति पधारे थे। राजा मरुत के शासन काल में पृथ्वी से बिना जोते ही अन्न पैदा होता था। राजन्! धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य इन चारों बातों में राजा मरुत तुम से बढ़े-चढ़े और तुम्हारे पुत्र से भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गए तब औरों की तो बात ही क्या? अतिथि सत्कार के प्रेमी राजा सुहोत्र के राज्य में इंद्र ने सोने की वर्षा की थी और नदियाँ अपने जल के साथ स्वर्ण बहाया करती थीं। वे भी धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य में तुम से बढ़-चढ़ के थे और तुम्हारे पुत्र से भी अधिक पुण्यात्मा

थे। जब वे भी मर गए, तब दूसरों की क्या बात है ?

'अंगदेश के राजा बृहद्रथ ने सौ यज्ञ किये थे और प्रचुर द्रव्य को दक्षिणा में बांटा था। वे भी तुमसे सर्वगुणों में अधिक थे, जब वे भी मर गए तब दूसरों की क्या बात है? राजा शिवि, दुष्यंत और शकुन्तला के पुत्र महामनस्वी राजा भरत, राजा दिलीप, राजा मान्धाता, राजा ययाति, राजा भगीरथ, राजा अंबरीष, राजा रंतिदेव, राजा सगर, महाराजा पृथु जो तुमसे सब प्रकार से उत्तम थे, उन्होंने भी परमगति पाई। राजन् ! तुम चुपचाप क्या सोच रहे हो? मेरी बात को क्यों नहीं सुनते? जैसे मरणासन्न मनुष्य पर प्रयोग की हुई औषधि व्यर्थ हो जाती है, क्या उसी प्रकार मेरा प्रवचन निष्फल तो नहीं हो गया ?'

युधिष्ठिर ने कहा--'भगवन् ! पवित्र गंधवाली माला के समान, विचित्र अर्थ से भरी हुई आपकी वाणी मैं सुन रहा हूँ। आपके वचन सम्पूर्ण शोक का विनाश करने वाले हैं। आपका दर्शन करके ही मैं शोकरहित हो गया हूँ, और अमृत पान के समान उससे तृप्त नहीं हो रहा हूँ, इसलिए मुझे और उपदेश दें। कोई बुद्धिमान, विद्वान, कल्याण चाहने वाला जैसे उपदेश दे सकता है, वैसी ही बात आपने कही है। आपने मेरे लिए जो आदेश दिया है मैं उसका पालन करूँगा।' भगवान श्रीकृष्ण की अनुमति से व्यासजी ने कहना आरम्भ किया :

'राजन् ! तुम्हारे पिता पाण्डु तुम्हारे लिये आशा रखते थे कि मेरे पुत्र में शूरता, बल और सत्य की वृद्धि हो। तुम्हारी माता कुन्ती की भी अभिलाषा थी कि तुम्हारी महत्ता और उदारता बढ़े। दान, वेदाध्ययन, यज्ञ और प्रजा का पालन—ये धर्म रूप हो या अधर्म रूप, तुम्हारा जन्म इन्हीं कर्मों को करने के लिये हुआ है। राज्य आदि का धर्मपूर्वक भार वहन करने से राजा की कीर्ति चिरस्थायी होती है और उसे कोई दोष नहीं लगता। राजन् ! बताओ तो तुम्हारे पिता आज कहाँ हैं?

तुम्हारे पितामह अब कहाँ चले गए ? यह शरीर अनित्य है, इस बात को तुम देखते हो और समझते हो, फिर जो मृत्यु ग्रस्त हो गए, उनके लिए क्यों शोक करते हो ? जरा बुद्धि लगाकर विचार करो, एक दिन तुम भी नहीं रहोगे। सारे पदार्थ जब संसर्ग में आते हैं, तभी दृष्टिगोचर होते हैं, दूर हो जाने पर उनका दर्शन सम्भव नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में ज्ञान और विज्ञान से तृप्त तुम्हारे जैसा पुरुष शोक नहीं करता।

'शास्त्र शोक को दूर करने वाला शान्तिकारक और कल्याणमय है। शोक के सहस्रों स्थान हैं, जो प्रतिदिन मूढ़ पुरुषों पर अपना प्रभाव डालते हैं। जो बीती बात के लिये शोक करता है, उसे न तो अर्थ की प्राप्ति होती है न धर्म और यज्ञ की ही। सभी प्राणियों को संयोग और वियोग प्राप्त होते ही रहते हैं। किसी एक पर ही यह शोक का अवसर आता हो, ऐसी बात नहीं है। दुःख दूर करने की सबसे अच्छी औषधि यही है कि उसका बार-बार चिंतन न किया जाय। चिंतन करने से वह घटता नहीं, किन्तु बढ़ता ही है। इसलिये मानसिक दुःख को विचार से और शारीरिक कष्ट को औषधि सेवन द्वारा नष्ट करना चाहिये।

'दैव कर्म सबके लिये कर्तव्य है, वही यज्ञ है और वही परमात्मा का स्वरूप है। तुम्हारा हृदय कोमल और बुद्धि एक निश्चय पर डटी रहने वाली है। तुम जितेन्द्रिय हो, इसलिये तुम्हारे जैसे पुरुष को शोक नहीं करना चाहिये। तुमको हाथ में कपाल लेकर भीख माँगने वालों की वृत्ति की इच्छा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वह अत्यन्त पापपूर्ण दोषों से दूषित और कायरों के ही योग्य है।

'राजन्! काल ही समस्त कार्य करता है और काल के प्रभाव से ही भाँति-भाँति की क्रियाएं आरंभ होती हैं। इसमें कौन किसका अपराध करता है। काल ही जन्म-मृत्यु दोनों क्रियाएँ समान रूप से चलाता रहता है। जैसे आग ईंधन को

जला देती है उसी प्रकार काल समस्त प्राणियों को दग्ध कर देता है। क्षत्रिय धर्म का बारंबार विचार करके शोक न करो, क्योंकि ये सभी रणधीर अपने धर्म में स्थित रहते हुए यमराज के विधान से प्रेरित हो काल के गाल में चले गये हैं। तुम भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव उन सबका वध करने वाले नहीं हो। काल ने नियमानुसार उनके प्राण हरण किये हैं। काल जो कर्म का साक्षी है, किसी पर अनुग्रह नहीं करता। काल ने युद्ध को प्राणियों का वध कराने के लिये निमित्त मात्र बनाया है। वह कर्म की डोरी का सहारा ले समयानुसार कर्मों का फल देता है। जैसे लोहार या बढ़ई का बना हुआ यंत्र निर्माण करने वाले के अधीन रहता है उसी प्रकार यह जगत कालयुक्त कर्म की प्रेरणा से ही सचेष्ट रहता है। प्राणी किसी व्यक्त कारण के बिना ही दैवात पैदा होता है, और देवेच्छा से ही अकस्मात उसका विनाश हो जाता है। इसलिए हर्ष और शोक करना व्यर्थ है।

'यदि एक सुहृद को त्याग देने से कुटुम्ब के शेष व्यक्तियों का कष्ट दूर हो जाये, तो वैसा करना सदाचार या धर्म ही है। किसी समय धर्म ही अधर्म रूप हो जाता है, और कहीं अधर्म रूप दीखने वाला कर्म ही धर्म बन जाता है। इसलिये विद्वान को धर्म और अधर्म का रहस्य अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। जो पुरुष हृदय में पाप की भावना रखकर किसी पाप कर्म में प्रवृत्त होता है, तथा पाप कर्म करने के पश्चात भी लज्जित नहीं होता, उसमें वह सारा पाप पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो जाता है और प्रायश्चित से भी उसका पाप नष्ट नहीं होता। तुम तो जन्म से ही शुद्ध स्वभाव के हो। तुम्हारे मन में युद्ध की इच्छा न होते हुए भी शत्रुओं ने तुम्हें युद्ध के लिये विवश किया और तुम्हें युद्ध करना पड़ा। अब तुम युद्ध कर्म करके निरंतर पश्चाताप कर रहे हो, इसलिये तुम यज्ञ का अनुष्ठान करो। ऐसा करने से प्रायश्चित हो जायेगा और तुम पापरहित भी हो जावोगे।'

युधिष्ठिर ने पूछा—'पितामह ! किन-किन कर्मों को करने से मनुष्य प्रायश्चित का अधिकारी होता है और उसे कौन-सा प्रायश्चित करना चाहिये, जिससे कि वह पापमुक्त हो जाये।'

व्यासजी ने उत्तर दिया—'राजन् ! जो मनुष्य शास्त्रविहित कर्मों का आचरण न करके निषिद्ध कर्म करता है, वह प्रायश्चित का भागी होता है। जो सूर्योदय के बाद या सूर्यास्त होने के पहले सोता रहे, ब्रह्महत्यारा, दूसरों की निंदा करने वाला, सुपात्र को दान न देने वाला, झूठ बोलने वाला, गुरु और पूज्य जनों का अपमान करने वाला और सदाचार की मर्यादा का उल्लंघन करने वाला ये सभी पापी माने गये हैं, इन्हें प्रायश्चित करना चाहिये। स्वधर्म को त्यागने ,शरणागत को सहायता न देने एवं माता-पिता से झगड़ा करने से मनुष्य अधार्मिक होता है। मनुष्य तप, यज्ञ और दान के द्वारा पापों के नष्ट होने से पवित्र हो जाता है, किन्तु यह तभी सम्भव है जब वह फिर से पाप में प्रवृत्त न हो। जो पवित्र स्थान में मिताहारी होकर, हिंसा का त्याग करके, रागद्वेष, मान-अपमान आदि से शून्य हो, मौन भाव से गायत्री मंत्र का जप करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। यदि क्रोध और मोह के वशीभूत हो अशुभ कर्म हो जाये तो शास्त्रों की दृष्टि से उपवास एवं जप से पाप की शान्ति होती है।

'भरतनंदन ! मनुष्य शुभ और अशुभ जो कर्म करता है, उसके पाँच महाभूत साक्षी होते हैं। उन कर्मों का फल उसे इस या नवजीवन में प्राप्त होता ही है। इसलिए मनुष्य को दान, तपस्या और सत्कर्मों द्वारा शुभ कर्मों की वृद्धि करनी चाहिये, जिससे कि अशुभ कर्म के फल नष्ट हो जायें। जिनमें दंभ और द्वेष की प्रधानता है, उन श्रद्धाहीन पुरुषों के पाप नष्ट नहीं होते। जो इहलोक और परलोक में सुख चाहता है, उसे श्रेष्ठ पुरुष के आचरण और धर्म का सदा ही सेवन करना चाहिये। यदि तुम्हारे मन में उन अतीत घटनाओं के कारण ग्लानि है,

तो प्रायश्चित कर लो, किन्तु खेद के वशीभूत हो आत्महत्या न करो, यह पाप है।

'राजन्! एक ही क्रिया देश काल के भेद से धर्म या अधर्म हो जाती है। चोरी करना, झूठ बोलना, हिंसा करना आदि अधर्म भी आपत्ति काल में धर्म माने गए हैं। अपने या दूसरे का प्राण बचाने के लिये यदि झूठ बोला जाय, तब उसे पाप नहीं लगता। विज्ञ पुरुष की दृष्टि में धर्म और अधर्म देश-काल के भेद से दो प्रकार के हैं। धर्माधर्म में जो प्रवृत्ति और अप्रवृत्ति होती है, वह भी लोक और वेद के भेद से दो प्रकार की होती है। वैदिक अप्रवृत्ति (निवृत्ति धर्म) का फल है मोक्ष, और वैदिक प्रवृत्ति का फल है स्वर्ग, जन्म-मृत्यु संसार। देवताओं के निमित्त शास्त्रीय कर्म जो कुछ किया जाता है, उससे शुभ ही फल होता है।

'राजन्! गृहस्थ को दोषों से रहित हो सदाचार का पालन करते हुए घर में ही रहना चाहिये। ऐसा करने से उसे धर्म का फल मिल जाता है। यश के लोभ से, भय के कारण, प्रत्युपकार करने वाले को दान देने से धर्म नहीं मिलता। जिस प्रकार अन्नहीन ग्राम, जल रहित कुँआ और राख में दी हुई आहुति व्यर्थ होती है, उसी प्रकार कुपात्र को दिया हुआ दान व्यर्थ हो जाता है। तुम शोक को त्याग कर धर्म के अनुसार राज्य करो।'

युधिष्ठिर ने कहा—'महामने! मैं सम्पूर्ण धर्मों को और राज्य धर्मों को विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।'

व्यासजी बोले—'युधिष्ठिर! यदि तुम धर्म का पूर्ण रूप से विवेचन सुनना चाहते हो, तो पितामह भीष्म के पास जाओ। गंगापुत्र सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता और सर्वज्ञ हैं। वे तुम्हारे संदेहों का निवारण करेंगे। जिन्हें गंगादेवी ने जन्म दिया है, जिन्होंने इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओं का साक्षात दर्शन किया है, जिन शक्तिशाली भीष्म ने वृहस्पति आदि देवर्षियों की सेवा कर

राजनीति का अध्ययन किया है, जिन राजर्षि ने ऋषिच्यवन और वसिष्ठ से वेदों का अध्ययन किया है, वे तुम्हें कल्याण-कारी उपदेश देंगे। भीष्म पितामह ने तेजस्वी सनत्कुमार से अध्यात्म ज्ञान की शिक्षा पाई है। उन्होंने मार्कण्डेयजी से यति धर्म का ज्ञान प्राप्त किया है और परशुराम तथा इन्द्र से अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा पाई है। मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर भी उन्होंने मृत्यु को अपनी इच्छा के अधीन कर लिया है। संतान-हीन होने पर भी उनके पुत्र अत्र-परत्र विख्यात हैं। ज्ञान, श्रेय कोई भी ऐसा विषय नहीं है जिसका उन्हें ज्ञान न हो। सूक्ष्म धर्म और अर्थ के तत्व को जानने वाले वे धर्मवेत्ता भीष्म तुम्हें धर्म का उपदेश देंगे। तुम उनके पास चले जाओ।'

युधिष्ठिर ने कहा—'मैं पापात्मा हूँ, इसलिये कैसे उन्हें मुँह दिखा सकता हूँ?'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'राजन्! भगवान व्यास जो आज्ञा देते हैं, वही करें। जैसे वर्षाकाल में लोग मेघ की ओर टकटकी लगाये देखते हैं, उसी प्रकार ये सारे ब्राह्मण और आपके तेजस्वी भाई आपसे धैर्य धारण करने की प्रार्थना करते हैं। राजन्! इन महामना ब्राह्मणों और स्वजनों का प्रिय करने के लिये भी आपको इनकी बात मानकर जगत के हित साधन में लग जाना चाहिये।' भगवान श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर राजा युधिष्ठिर सबके हित के लिये उठ खड़े हुए। उन्होंने अपने कर्तव्य का निश्चय करके मन में पूर्ण शान्ति पा ली थी।

युधिष्ठिर का राज्याभिषेक और भीष्म के पास जाना

नक्षत्रों से घिरे हुए चन्द्रमा के समान राजा युधिष्ठिर राजा धृतराष्ट्र को आगे करके राजधानी हस्तिनापुर को चल

दिये। नगर में प्रवेश करते समय धर्मज्ञ कुन्तीनन्दन ने देवताओं और ब्राह्मणों का पूजन किया। मालाओं और पताकाओं से नगर की शोभा हो रही थी। नारियाँ लजाती हुई धीरे-धीरे बोल रही थीं—पांचाल राजकुमारी ! तुम धन्य हो, जो इन पंच महान पुरुषों की सेवा में लगी रहती हो। तुम्हारे सभी पुण्य कर्म अमोघ हैं और समस्त व्रतचर्या सफल है। राजा युधिष्ठिर उस शोभा सम्पन्न मार्ग को पार कर राज-भवन में जा पहुँचे। वहाँ ब्राह्मणों ने माँगलिक द्रव्यों द्वारा उनका अभिषेक किया और आशीर्वाद दिये। राजा युधिष्ठिर ने भी ब्राह्मणों का विधि-पूर्वक पूजन किया। तदनन्तर पूर्व की ओर मुख करके महा-राजा युधिष्ठिर और महारानी द्रौपदी प्रसन्नतापूर्वक राज्य सिंहासन पर विराजमान हुए। मंत्री, सेनापति आदि ने माँगलिक सामग्रियों से उन दोनों की पूजा की। भगवान श्रीकृष्ण ने पांच-जन्य शंख के जल से महाराज युधिष्ठिर और महारानी द्रौपदी का अभिषेक किया और उपस्थित सभासदों ने जय-जयकार किया।

राज्याभिषेक के पश्चात परम बुद्धिमान युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर भगवान श्रीकृष्ण से कहा—'आपकी ही कृपा, नीति, बल और बुद्धि से मुझे पुनः अपने बाप-दादा का राज्य प्राप्त हुआ है। मैं आपको बारंबार नमस्कार करता हूँ। अपने मन और इंद्रियों को संयम में रखने वाले भक्त एकमात्र आपको ही अंतर्यामी पुरुष और भक्तों का प्रतिपालक बताते हैं और नाना प्रकार के नामों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं। यह संपूर्ण जगत आपकी लीलामयी सृष्टि है। आप इस विश्व की आत्मा हैं और आप ही से इस जगत की उत्पत्ति हुई है। आप ही व्यापक होने के कारण 'विष्णु', विजयी होने से 'जिष्णु', दुःख और पाप हर लेने से 'हरि', अपनी ओर आकृष्ट करने के कारण 'कृष्ण', विकुण्ठ धाम के अधिपति होने से बैकुण्ठ, क्षर-अक्षर से पुरुष और उत्तम होने के कारण पुरुषोत्तम कहलाते हैं। मेरा

आपको नमस्कार है। आपने पुराण पुरुष परमात्मा होने के कारण माता अदिति के यहाँ अवतार लिया है। आपकी कीर्ति परम पवित्र है। आप समस्त इंद्रियों के प्रेरक हैं। आपको ही यज्ञ पुरुष हंस, दामोदर और नटवरनागर कहते हैं। भगवान शंकर और आप एक ही हैं। सब देव और देवियाँ आपके ही अंश हैं। आप कामनाओं की वर्षा करने वाले धर्म हैं। आपको सबके आदिकरण, निर्गुण, निराकार, परमात्मा, विराट पुरुष, महेश्वर और सर्वत्र व्यापक कहते हैं। आपको ही कालचक्र, श्रीपद्म, विभु, सूक्ष्म और सदाचार स्वरूप कहते हैं। आपको ही ब्रह्म, हिरण्यगर्भ, स्वधा और स्वाहा कहते हैं।' इस प्रकार जब धर्मराज युधिष्ठिर ने सभा में भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति की तब भगवान श्रीकृष्ण ने अत्यन्त प्रसन्न होकर भारतभूषण युधिष्ठिर का उत्तम वचनों द्वारा अभिनन्दन किया।

तदनन्तर राजा ने कृपाचार्य के साथ गुरु शिष्य का-सा सम्बन्ध स्थापित किया और विदुरजी को पूजनीय पुरुष मानकर उन्हें सम्मान दिया। धृतराष्ट्र का उन्होंने विशेष सत्कार किया।

महायशस्वी राजा प्रजा को प्रसन्न करने के पश्चात भगवान श्रीकृष्ण के निवास-स्थान पर गए और उनसे हाथ जोड़कर मधुर वाणी से बोले—'आपकी रात सुख से बीती है न ? आपकी सारी ज्ञानेन्द्रियाँ प्रसन्न तो हैं न ?' धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार कहते चले जा रहे थे, किन्तु भगवान ने उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया। वे उस समय ध्यान में मग्न थे। तब युधिष्ठिर ने उनसे पूछा—'भगवन्! आप किसका ध्यान कर रहे हैं ? इससे मेरे मन में बड़ा आश्चर्य हो रहा है। गोविंद ! आपने सम्पूर्ण इंद्रियों को बुद्धि में लीन कर लिया है और प्राणवायु अवरुद्ध हो गई है। भगवन् ! जैसे वायु शून्य स्थान में दीपक की लौ काँपती नहीं है उसी तरह आप भी स्थिर हैं। यदि मैं सुनने का अधिकारी होऊँ तो इस ध्यान का यथार्थ तत्त्व मुझे

बता दीजिये। मैं आपकी शरण में आया हूँ और आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'राजन् ! बाण-शय्या पर पड़े हुए पुरुषसिंह भीष्म, जो इस समय बुझती हुई आग के समान हो रहे हैं, मेरा ध्यान कर रहे हैं, इसलिए मेरा मन भी उन्हीं में लगा हुआ है। बिजली की गड़गड़ाहट के समान जिनके धनुष की टंकार देवराज इन्द्र भी नहीं सह सकते थे, जिन्होंने राजाओं के समुदाय को परास्त कर काशीराज की तीनों कन्याओं का अपहरण किया था, जो तेईस दिनों तक भृगुनन्दन परशुरामजी से युद्ध करते रहे, तो भी परशुरामजी उन्हें परास्त नहीं कर सके, वे भीष्मजी मन इन्द्रियों का निग्रह कर मेरी शरण में आ गये हैं। राजन् ! वे भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों की बातें जानते हैं। धर्मज्ञों में श्रेष्ठ पुरुषसिंह अपने कर्मों के अनुसार जब स्वर्ग को चले जायेंगे, उस समय पृथ्वी अमावस्या की रात्रि के समान श्रीहीन हो जायगी, अतः गंगानन्दन भीष्म के पास चलकर उनके चरणों में प्रणाम कीजिये और आपके मन में जो सन्देह हो उसे पूछिये। वे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और राजधर्मों के अद्वितीय ज्ञाता हैं। जब भीष्मरूपी सूर्य अस्त हो जायेगा, उस समय सब प्रकार के ज्ञानों का प्रकाश नष्ट हो जायेगा।'

युधिष्ठिर ने कहा—'भगवन् ! आप सम्पूर्ण जगत के विधाता हैं, उससे आपके कथन पर सोचने-विचारने की आवश्यकता नहीं है। मेरे ऊपर अनुग्रह करें और भीष्म पितामह के पास आगे-आगे चलें। महाबाहो ! सूर्य के उत्तरायण होते ही भीष्म पितामह देवलोक को चले जायेंगे, अतः उन्हें आपका दर्शन अवश्य प्राप्त होना चाहिये।'

युधिष्ठिर की प्रेरणा से सब भाई और मित्र भीष्म पितामह का दर्शन करने कुरुक्षेत्र को चल पड़े। परिवार और मित्रों के साथ पाण्डवों एवं भगवान श्रीकृष्ण ने दूर ही से भीष्म

पितामह को देखा। वे देवर्षि महात्माओं के बीच में ग्रहों से घिरे हुए चन्द्रमा के समान शोभा पा रहे थे। शर-शय्या पर ही पड़े-पड़े हाथ जोड़ पवित्र भाव से भीष्म भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान कर रहे थे। ध्यान करते-करते हृष्ट-पुष्ट स्वर से उन्होंने मधुसूदन की इस प्रकार स्तुति करनी आरम्भ की :

'मैं श्रीकृष्ण की आराधना की इच्छा से जिस वाणी का प्रयोग करना चाहता हूँ, वह विस्तृत हो या संक्षिप्त, उसके द्वारा वे पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों। जो स्वयं शुद्ध हैं, जिनकी प्राप्ति का मार्ग भी शुद्ध है, मैं उन्हीं सर्वात्मा श्रीकृष्ण की शरण लेता हूँ। उनका न आदि है न अंत, वे ही परब्रह्म परमात्मा हैं, और उन्हीं में सम्पूर्ण प्राणी स्थित हैं। जैसे सूत मणियों को सुसज्जित और बंधन करता है, वैसे ही त्रिगुणात्मक जगत भगवान श्रीकृष्ण में ओत-प्रोत है। श्रीकृष्ण सदा नित्य, सर्वत्र विद्यमान हैं। यह विश्व उनके ही श्री अंगों में स्थित है, और उन्होंने ही इसकी सृष्टि की है। उन हरि के सहस्रों सिर, नेत्र, भुजा, चरण और मुख देदीप्यमान रहते हैं। वे ही श्रीकृष्ण नारायण के रूप में विश्व के आधार, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, स्थूल-से-स्थूल हैं, और उन्हीं को सत्य और सत्यकर्मा कहते हैं। जो वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नामों द्वारा ब्रह्म, जीव, मन और अहंकार रूपों में प्रकट हुए, उन्हीं भक्त प्रतिपालक भगवान श्रीकृष्ण की पूजा की जाती है। भगवान वासुदेव की प्रसन्नता के लिए तप किया जाता है, क्योंकि वे सब की आत्मा, सर्वज्ञ और सबके हृदयों में विराजमान हैं। सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग कर अनन्य भाव से स्थित रहने वाला साधक अपने विशुद्ध अंतःकरण में जिन गोविन्द का ज्ञानदृष्टि से साक्षात्कार करता है, उस परमेश्वर की मैं शरण लेता हूँ।

'शास्त्रों में जिनका पुरुष नाम से वर्णन किया गया है, जो युगों के आरम्भ में ब्रह्म और युगान्त में संकर्षण कहे गए हैं, उन उपास्य परमेश्वर श्रीकृष्ण की मैं स्तुति करता हूँ। जो एक

होकर भी अनेक होते हैं, जो इंद्रियों से अतीत हैं, जो सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं, जो सत और असत से परे हैं, जो दुःख रूपी रोग की सबसे बड़ी औषधि हैं, उन श्रीकृष्ण भगवान की मैं शरण लेता हूँ। जो इस विश्व के विधाता, सम्पूर्ण कार्यों के साक्षी और अविनाशी कहलाते हैं, उन भगवान श्रीकृष्ण में मेरी बुद्धि हो। जो अज्ञान से परे ज्ञान स्वरूप हैं और उन्हें जान लेने पर मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्कर से सदा छूट जाता है, उन्हें मेरा प्रणाम है। ऋक्, साम और यजु जिनके आश्रित हैं, गायत्री आदि सात छंद जिनके सात तंतु हैं, अग्नि जिनका मुख है, उन यज्ञरूप परमात्मा को मेरा प्रणाम है। विश्वदेव, मरुद-गण, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, बसु, सिद्ध और साध्य ये सब जिनकी विभूतियाँ हैं, उन परमात्मा को नमस्कार है। जिन्होंने बराह, कच्छप, वामन, मत्स्य, नरसिंह, परशुराम इत्यादि अवतारों से जन-कल्याण किया था, उन्हीं परमात्मा को मेरा नमस्कार है। अव्यक्त प्रकृति, बुद्धि (महत्तत्व), अहं-कार, मन, ज्ञानेन्द्रियाँ, तन्मात्राएँ और उनके कार्य, ये सब जिनके ही स्वरूप हैं, उन तत्वमय परमात्मा को नमस्कार है। जो भूत, वर्तमान और भविष्य कालरूप हैं, जो पंचभूत आदि की उत्पत्ति और प्रलय के कारण हैं, उन भूतात्मा परमेश्वर को नमस्कार है। जो समस्त प्राणियों के शरीर में साक्षी रूप से स्थित हैं तथा क्षर (नाशवान) भूतों में, अक्षर (अविनाशी) के रूप में विद्यमान हैं, उन श्रीकृष्ण रूप परमात्मा को नमस्कार है। जिन्हें सर्वलोक महेश्वर, कमल नयन, पुरुषोत्तम, नारायण कहते हैं, उन भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण की मैं शरण लेता हूँ। जिनके हृदय में मंगलभवन देवेश्वर श्रीहरि विराजमान हैं, उनका सभी कार्यों में सदा मंगल होता है। जिनका व्यव-हार केवल धर्म के लिये ही है, जिनकी भिन्न-भिन्न प्रकार से उपासना की जाती है, उन धर्मस्वरूप भगवान को मेरा प्रणाम है। जिन अनंग की प्रेरणा से सम्पूर्ण अंगधारी प्राणी पैदा होते

हैं, जो स्थूल जगत में अव्यक्त रूप से विराजमान हैं, जो सम्पूर्ण क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ के रूप में बैठा हुआ है, उस परमात्मा को मेरा प्रणाम है। जो इंद्रियों को वश में करके शुद्ध तत्व में स्थित हो गये हैं, जो निरंतर योगाभ्यास में लगे हुए हैं, जिनके पापों का क्षय हो गया है, वे शान्तिचित्त साधक जिसे प्राप्त करते हैं, उन मोक्ष रूप परमेश्वर को नमस्कार है। सृष्टि का अंत करने के लिए जो प्रलयकालीन अग्नि का रूप धारण करते हैं, उस परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ। जिस पर यह विश्व टिका हुआ है, वह ब्रह्माण्ड कमल पुण्डरीकाक्ष भगवान की नाभि से प्रकट हुआ है, उन परमेश्वर को मेरा नमस्कार है। सृष्टि और प्रलय रूप सब विकार जिनसे उत्पन्न और लुप्त होते हैं, उन कारणरूप परमेश्वर को मेरा नमस्कार है। जो मेघ में विद्युत, उदर में जठरानल के रूप में स्थित हो प्राणशक्ति को बढ़ाते हैं, उन प्राणात्मा परमेश्वर को मेरा नमस्कार है। जिन्हें ऋषि, मुनि, देव, दानव और गंधर्व ठीक-ठीक नहीं जान सके, जिनका स्वरूप किसी प्रमाण का विषय नहीं है, जो त्रिभुवन और सम्पूर्ण दिशाओं में व्यापक हैं, जो जन्मदाता और संहारकर्ता हैं, जो किसीसे पराजित नहीं होते, उन अविनाशी को मेरा प्रणाम है। मैं आपके दिव्य जन्म कर्म का रहस्य नहीं जानता। मैं तो तत्व दृष्टि से जो उनका सनातन रूप है. उसीकी ओर लक्ष्य रखता हूँ। वे भगवान श्रीकृष्ण मेरे सारे पाप नष्ट कर दें। जो विद्या और तप के जन्मस्थान हैं, उन भगवान विष्णु का मैंने वाणी रूप यज्ञ से पूजन किया है, वे भगवान श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों।'

फिर उन्होंने कहा :

नारायणः परंब्रह्म, नारायणः परंतपः
नारायणः परो देव, सर्वं नारायणः सदा।

और 'श्रीकृष्णाय नमः' कहकर चुप हो गये।

श्रीकृष्ण, पाण्डव और अन्य साथी दूर से ही भीष्म पितामह को देखकर अपने-अपने रथों से उतर गये और महामुनियों की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने सबको प्रणाम किया और भीष्म पितामह को घेरकर बैठ गये।

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'वक्ताओं में श्रेष्ठ भीष्मजी! क्या आप प्रसन्न हैं, आपके शरीर में पीड़ा तो नहीं है? प्रभो! आपने निरंतर धर्म में तत्पर रहने वाले पिता शान्तनु के वरदान से मृत्यु को अपने अधीन कर लिया है, इसलिए आपके सामने यह कहना उचित न होगा कि सभी प्राणियों के जन्म और मरण प्रारब्ध के अनुसार नियत हैं, अतः आपको दैव का विधान समझकर मन में दुःख नहीं मानना चाहिये। आप ज्ञान में सबसे बड़े हैं। आपकी बुद्धि में भूत, भविष्य और वर्तमान प्रतिष्ठित हैं। महामते! प्राणियों का संहार कब होता है, धर्म का क्या फल है और उदय कब होता है, यह सारी बातें आपको ज्ञात हैं, क्योंकि आप धर्म के प्रचुर भंडार हैं। तात! मैंने तीनों लोकों में सत्यवादी, धर्म में तत्पर, शूरवीर और महापराक्रमी आपके सिवाय दूसरे प्राणी के विषय में नहीं सुना है, जिसने शरीर के लिए स्वभाव सिद्ध मृत्यु को अपनी तपस्या से रोक दिया हो। सत्य, तप, दान और यज्ञ के अनुष्ठान में धनुर्वेद और नीति-शास्त्र में, प्रजा के पालन में, कोमलतापूर्ण वर्ताव में, बाहर-भीतर की शुद्धि, मन और इंद्रियों के संयम तथा सम्पूर्ण प्राणियों के हित साधन में, आपके समान मैंने दूसरे किसी महारथी को नहीं सुना है। आप वसुओं में इंद्र के समान हैं। ब्राह्मणों ने आपको आठ वसुओं से उत्पन्न नवां वसु बताया है। आप पुरुषों में उत्तम और पराक्रम में देवताओं में भी विख्यात हैं। नरेन्द्र! मनुष्यों में आपके समान गुणों से युक्त पुरुष न तो मैंने देखा है न सुना ही। अतः आपसे यह निवेदन है कि धर्मराज युधिष्ठिर अपने कुटुम्बियों के वध से बहुत संतप्त हो रहे हैं, आप इनका शोक दूर करने के लिये सब धर्मों का उपदेश करें। गंगानंदन!

संसार में संदेहग्रस्त विषय का समाधान करने वालों में आप श्रेष्ठ हैं, इसलिए मोह में पड़े हुए मनुष्य के शोक और संताप को दूर कर उसे शान्ति दे सकते हैं।'

भगवान श्रीकृष्ण के वचन सुनकर भीष्मजी ने अपना मुँह ऊपर उठाया और हाथ जोड़कर कहा—'सम्पूर्ण लोकों की उत्पत्ति और प्रलय के अधिष्ठान भगवान श्रीकृष्ण आपको मेरा नमस्कार है। पूज्यवर! आपने मेरे सम्बन्ध में जो बात कही है, उन भावों का मैं सत्कार करता हूँ। गोविन्द! आपका जो सनातन रूप है, उसे मैं देख रहा हूँ। मैं आपकी शरण में आया हुआ आपका भक्त हूँ और उत्तम गति को प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरे लिए जो कल्याणकारी उपाय हो, उसीका आप संकल्प कीजिये।'

श्रीकृष्ण ने कहा—'पुरुष श्रेष्ठ! मुझमें आपकी पराभक्ति है, इसलिए मैंने आपको अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन कराया है। जो मेरा भक्त है, किन्तु सरल और शान्त स्वभाव का नहीं है, उसे मेरे स्वरूप का दर्शन नहीं होता। वीर भीष्म! अब आप परलोक में चले जायेंगे, अतः उसके पहले ही इन्हें ज्ञान और धर्म का उपदेश दें।

श्रीकृष्ण का धर्म और अर्थ से युक्त हितकर वचन सुनकर शान्तनुनन्दन हाथ जोड़कर बोले—'हे अच्युत! आपके वचन सुन मैं आनन्द के समुद्र में निमग्न हो गया हूँ। भला मैं आपके समीप क्या कह सकता हूँ? जबकि सारा विषय आपकी वेदमयी वाणी में प्रतिष्ठित है। देव! जो कर्तव्य किया जाता है, वह सब आपसे ही प्रकट हुआ है। मधुसूदन! इन बाणों के गड़ने से जो जलन हो रही है, उसके कारण मेरे मन में बड़ी व्यथा है, इसलिए बुद्धि काम नहीं करती। गोविन्द! ये बाण, विष और अग्नि के समान मुझे निरंतर पीड़ा दे रहे हैं, अतः मुझमें कुछ भी कहने की शक्ति नहीं है और चित्त भ्रान्त हो गया है। मुझे न तो दिशाओं का ज्ञान है और न आकाश एवं पृथ्वी का ही।

मैं तो आपके प्रभाव से ही जी रहा हूँ। इसलिए आप स्वयं धर्मराज को उपदेश दें, क्योंकि आप शास्त्रों के भी शास्त्र हैं।' आप जगत के कर्ता सनातन पुरुष हैं। आपके रहते हुए मेरे जैसा कोई पुरुष कैसे उपदेश दे सकता है ? क्या गुरु के रहते शिष्य उपदेश का अधिकारी है ?'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'भीष्मजी आप महापराक्रमी, परम धैर्यवान, स्थिर तथा सर्वार्थदर्शी हैं। आपका यह कथन युक्ति संगत है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आपकी पीड़ा शीघ्र दूर हो जाय। आपको दाह, मूर्छा, रोग, भूख, प्यास का भी कष्ट न रहे। आपके अंत:करण में सम्पूर्ण ज्ञान प्रकाशित हो उठे। आपकी बुद्धि किसी भी विषय में कुण्ठित न हो। आपका मन सत्वगुण में स्थित रहे। आप जिस विषय का चिन्तन करें, उसमें आपकी बुद्धि सफलतापूर्वक आगे बढ़ती जाय। नृपश्रेष्ठ ! आप ज्ञान दृष्टि से सम्पन्न हो संसार बंधन में पड़े जीवों को यथार्थ रूप में देख सकें।'

दूसरे दिन भगवान श्रीकृष्ण, पाण्डव और उनके मित्रों के साथ भीष्मजी के पास जाकर बोले—'आपकी रात सुख से बीती है न ? क्या आपको सभी ज्ञातव्य विषयों को स्पष्ट रूप से दर्शन कराने वाली निर्मल बुद्धि प्राप्त हो गयी ? क्या आपके अंत:करण में सब प्रकार के ज्ञान प्रकाशित हो रहे हैं ?'

भीष्मजी ने कहा—'आपकी कृपा से मेरे शरीर की जलन, मन का मोह, थकावट, विकलता, ग्लानि तथा रोग ये सब दूर हो गये हैं। पुरुषोत्तम ! अब मैं भूत, भविष्य और वर्तंतान तीनों कालों की सभी बातें स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ। वेद, वेदान्तों में जो धर्म बताए गए हैं, वे सब धर्म मुझे स्मरण हो गये हैं। देश, जाति, राजधर्म और कुल के धर्मों का भी इस समय मुझे पूर्ण ज्ञान है। जिस विषय में जो कुछ भी कहने योग्य बात है, वह सब मैं कहूँगा। आपकी कृपा से मेरे हृदय में निर्मल और कल्याणमयी बुद्धि का आवेश हुआ है। आप स्वयं ही पाण्डव

पुत्र युधिष्ठिर को कल्याणकारी उपदेश क्यों नहीं देते ? मेरा आपको बार-बार नमस्कार है।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'आप शास्त्र ज्ञान तथा सदाचार से सम्पन्न हैं। श्रेष्ठ विद्वान से जब कुछ पूछा जाये, तब उसे उचित है कि वह लोगों को धर्म का उपदेश दे। जो मनुष्य श्रद्धा-पूर्वक पूछने वाले को उपदेश नहीं देता, उसे दोष की प्राप्ति होती है।'

भीष्म पितामह का युधिष्ठिर को उपदेश

श्रीकृष्ण की बात सुनकर महातेजस्वी भीष्म ने कहा—'गोविन्द ! आप सम्पूर्ण भूतों की सनातन आत्मा हैं। आपके प्रसाद से मेरी वाक् शक्ति दृढ़ है, अतः मैं समस्त धर्मों का प्रवचन करूँगा। अब राजा शिरोमणि धर्मपरायण महात्मा युधिष्ठिर मुझसे प्रश्न करें। जिनमें धर्म, इंद्रिय संयम, क्षमा, धैर्य और तेज सदा विद्यमान रहते हैं, उन पाण्डव पुत्र युधिष्ठिर के प्रश्नों का मैं उत्तर दूंगा। जो संबंधियों, अतिथियों और शरणागतों का सत्कार करते हैं, वे युधिष्ठिर तो धर्म परायण हैं। जिनमें सत्य, दान, तप, शान्ति और दक्षता है तथा श्रम का अभाव है, वे तो धर्म के ज्ञाता हैं। जो कामना, क्रोध, भय और लोभ से अधर्म नहीं करते, वे युधिष्ठिर तो धर्मज्ञों में श्रेष्ठ हैं। उन्होंने शास्त्रों के रहस्य का श्रवण किया है और सदा स्वाध्याय से लगे रहते हैं, फिर भी उनके प्रश्नों का मैं यथा-शक्ति उत्तर दूंगा।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'पुरुषश्रेष्ठ ! धर्मराज युधिष्ठिर बहुत लज्जित हैं। उन्होंने माननीय गुरुजनों, संबंधियों एवं बंधु-बांधवों का संहार किया है, इसलिए आप शाप न दे दें, इस भय से आपके निकट नहीं आते।'

भीष्म पितामह बोले—'भगवन् ! जैसे दान, अध्ययन

और तप ब्राह्मणों का धर्म है, उसी प्रकार समरभूमि में शत्रुओं को मार गिराना क्षत्रियों का धर्म है। जो असत्य के मार्ग पर चलने वाले पिता, भाई, गुरुजन, बंधु-बांधव और धर्म मर्यादा का उल्लंघन करने वाले पापाचारी को समरभूमि में मार डालता है, उसका वह कार्य अधर्म नहीं है। संग्राम में शत्रु ललकारने पर क्षत्रियों को युद्ध के लिये उद्यत रहना चाहिये। युद्ध क्षत्रियों के लिये धर्म का पोषक, स्वर्ग की प्राप्ति का साधन और लोक में यश फैलाने वाला है।'

भीष्मजी के ऐसा कहने पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर उनके पास जाकर एक विनीत पुरुष के समान खड़े हो गये और उन्होंने उनके दोनों चरणों को पकड़ लिया। भीष्म पितामह ने उन्हें आश्वासन देकर प्रश्न करने की आज्ञा दी। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण और भीष्म को प्रणाम कर समस्त गुरुजनों की अनुमति ले महाराज युधिष्ठिर ने पितामह से प्रश्न किया :

'पितामह ! धर्मज्ञ विद्वानों की मान्यता है कि राजाओं का धर्म श्रेष्ठ है, पर मैं इसे बहुत बड़ा भार मानता हूँ, अतः मेरी शंका निवारण करें और मुझे राजधर्म का उपदेश दें। राजन् ! मुझे बताया गया है कि राजा सम्पूर्ण जीवों का परम आश्रय है। राजा के धर्म में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समावेश है। यदि राजा प्रमाद कर बैठे तो संसार की व्यवस्था ही विगड़ जाएगी और सब लोग दुःखी हो जायेंगे। जैसे सूर्यदेव के उदय होने से अंधकार का नाश होता है, उसी प्रकार राज धर्म मनुष्यों के अशुभ आचरणों का निवारण करता है।'

भीष्मजी ने महान धर्मात्मा ब्राह्मणों और विश्वविधाता भगवान श्रीकृष्ण को नमस्कार कर कहा—'महाराजा युधिष्ठिर ! राजाओं को प्रजा को प्रसन्न रखने की इच्छा से देवताओं और ब्राह्मणों के प्रति शास्त्रोक्त विधि से पूजन और वर्ताव करना चाहिए, इससे वे उनसे ऋणमुक्त हो जाते हैं। राजा को सदा पुरुषार्थी और प्रयत्नशील रहना चाहिये, केवल प्रारब्ध से

प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। यद्यपि कार्य की सिद्धि के लिये प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनों ही कारण माने गये हैं, किन्तु मैं पुरुषार्थ को ही प्रधान मानता हूँ, क्योंकि प्रारब्ध तो पहले से ही निश्चित है। बीज के विना कुछ भी पैदा नहीं होता, इसलिये जैसा बीज बोया जाता है, वैसे ही फल-फूल इत्यादि उससे उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही फल मनुष्य को मिलता है , अतः बीज की तरह प्रारब्ध भी पुरुषार्थ के बिना नहीं सिद्ध होता। पुरुषार्थ खेत है, और दैव बीज। खेत और बीज के संयोग से ही अन्न, फल और फूल पैदा होते हैं। इसी प्रकार अपना किया हुआ कर्म सर्वत्र ही फल देता है। पुरुषार्थी मनुष्य सर्वत्र भाग्य के अनुसार प्रतिष्ठा पाता है, परन्तु जो अकर्मण्य है, वह सम्मान से भ्रष्ट हो दुःख भोगता है। जो पुरुषार्थ नहीं करते वे ऐश्वर्य और लक्ष्मी का भी उपभोग नहीं कर सकते। यदि अपने कर्म का फल न प्राप्त हो तो सारा कर्म ही निष्फल हो जाये और मनुष्य भाग्य पर ही आश्रित हो कर्म से उदासीन हो जाये। दैव पुरुषार्थ का अनुसरण करता है, परंतु पुरुषार्थ न करने पर दैव किसी को कुछ नहीं दे सकता। यह निश्चित है कि दैव के बिना पुरुषार्थ की उत्पत्ति नहीं हो सकती, अतः कर्म में प्रवृत करने में दैव का ही हाथ है। देवताओं का आश्रय पुण्य है। पुण्य से ही सब कुछ प्राप्त होता है, इसलिए पुण्यात्मा का दैव कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता। जैसे छोटी-सी भी आग वायु का सहारा पाकर बड़ी हो जाती है, उसी प्रकार पुरुषार्थ का सहारा पाकर दैव भी मनुष्य पर विशेष अनुग्रह कर देता है। राजा बलि को देवताओं ने धर्मपाश से बाँध लिया था, किन्तु अपने पुण्य के प्रभाव से वे पाताल के अधिपति बन गए। जैसे तेल समाप्त हो जाने से दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार सुकर्म क्षीण हो जाने पर दैव भी सहायक नहीं रहता। जो दान करने के कारण निर्धन हो गया है, ऐसे सत्पुरुष के देवता भी सहायक हो जाते हैं। पर जहाँ सत्कर्म

नहीं होता है, वह घर श्मशान के ही तुल्य जान पड़ता है। दैव में इतनी शक्ति नहीं है कि वह मनुष्य को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग में लगा दे। जैसे शिष्य गुरु को आगे करके चलता है, उसी प्रकार दैव पुरुषार्थ को आगे करके स्वयं पीछे चलता है। संचित पुरुषार्थ मनुष्य को जहाँ चाहता है, ले जाता है। केवल दैव या पुरुषार्थ से फल की सिद्धि नहीं होती। प्रत्येक वस्तु का कार्य एक ही साथ पुरुषार्थ और दैव दोनों से ही गुँथा हुआ है। दैव की अनुकूलता से ही शुभ कार्यों का सम्पादन होता है। जहाँ मनुष्य की बुद्धि नहीं पहुँच सके, ऐसे कर्म शुभ हों या अशुभ, दैव की प्रेरणा से ही उत्पन्न माने जाते हैं। दैव और पुरुषार्थ दोनों के सहयोग से कर्म सम्पन्न होता है। जैसे भूमि खोदने से जल तथा काष्ठ का मंथन करने से अग्नि की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार पुरुषार्थ करने पर दैव का सहयोग स्वतः प्राप्त हो जाता है। यदि आरम्भ किया हुआ कार्य पूरा न हो सके अथवा उसमें बाधा पड़ जाये तो इसके लिए किसीको दुःख नहीं करना चाहिये, उसको ईश्वर का स्मरण कर पुरुषार्थ में लगे ही रहना चाहिये। विद्या, तप तथा धन उद्योग से प्राप्त हो सकते हैं, अतः उद्योग को ही सिद्धि का साधन समझना चाहिये। जो राजा उद्योगहीन होता है, वह बुद्धिमान होने पर भी विषहीन सर्प के समान सदैव शत्रुओं के द्वारा परास्त होता रहता है।

राजन्! सत्य सिद्धिकारक है, वह इहलोक और परलोक में भी सुख देता है। जो गुणवान, शीलवान, मन और इन्द्रियों को संयम में रखने वाला, कोमल स्वभाव वाला, धर्मपरायण, जितेन्द्रिय, प्रसन्न मुख और उदारचित्त है, वह कभी लक्ष्मी से भ्रष्ट नहीं होता। राजा को कोमलता और सरलता का पालन करना चाहिये, किन्तु जो उसकी आज्ञा का उल्लंघन करे, उसके साथ कठोरता का बर्ताव भी करना होगा। जैसे वसंत ऋतु का सूर्य न तो अधिक ठंड पहुँचाता है न कड़ी धूप ही। अग्नि जल से, क्षत्रिय ब्राह्मण से और लोहा पत्थर से प्रकट हुआ है। इनका

तेज अन्य सब स्थानों पर तो अपना प्रभाव दिखाता है, परन्तु अपने को उत्पन्न करने वाले कारण से टक्कर लेने पर स्वयं ही शान्त हो जाता है। ऐसा सोचकर ब्राह्मणों को सदा नमस्कार ही करना चाहिये। यदि वेदान्त का पारंगत ब्राह्मण अनीति पर चले, तो उन पर भी नियंत्रण करना उचित है।

'राजन्! कर्तव्य और अकर्तव्य का ज्ञान न रखने वाला कुमार्गी मनुष्य यदि अपना ही क्यों न हो, उसे भी दंड देना सनातन विधान है। राजा सगर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र असमंजस को त्याग दिया था, क्योंकि वह पुरवासी बालकों को पकड़-कर सरयू नदी में डुबा दिया करता था। उद्दालक ऋषि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्राह्मणों के साथ मिथ्या और कपटपूर्ण व्यवहार करने के कारण त्याग दिया था। जैसे समुद्र की यात्रा में टूटी हुई नौका त्याग दी जाती है, उसी प्रकार उपदेश न देने वाले आचार्य, वेदमंत्रों के अज्ञानी ऋत्विज, रक्षा न करनेवाले राजा और कटु वचन बोलने वाली स्त्री का त्याग कर देना चाहिये। यदि दण्ड नीति नष्ट हो जाये तो धर्म रसातल में चला जायेगा और समाज के नियमों का नाश हो जायेगा। जो राजा अपने धर्म के अनुसार कार्य करता है, वह धर्मज्ञ है। जो ब्राह्मणों के प्रति भक्ति रखते हैं, वे सबके प्रिय होते हैं। मरु, जल, पृथ्वी, वन, पर्वत और जीवों में मानव ही प्रधान है।

'जो मनुष्य व्यसनों में पड़ा रहता है, उसे दुःख उठाना पड़ता है, इसलिए इनका त्याग ही उचित है, किन्तु धैर्य, साहस का त्याग करना उचित नहीं। व्यसन नीचे लिखे प्रकार के होते हैं: शिकार, जुआ, दिन में सोना, परनिन्दा, परस्त्री सेवन, मद, वाद्य, नृत्य और मदिरा पान ये कामज हैं। चुगली, दुस्साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थ दूषण, वाणी और दंड की कठोरता ये क्रोधज व्यसन हैं।

'राजन्! तुम्हें सेवकों के साथ अधिफ हँसी-मजाक नहीं करनी चाहिये। राजा से जीविका चलाने वाले सेवक अधिक

मुँह लगे हों तो मालिक का अपमान कर बैठते है। वे अपनी मर्यादा में स्थिर नहीं रहते और स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करने लगते हैं। वे जब किसी कार्य से भेजे जाते हैं, तब उसकी सिद्धि में संदेह उत्पन्न कर देते हैं। वे राजा की गोपनीय त्रुटियों को भी सबसे कह देते हैं।

'प्रजा की रक्षा ही राजा का कार्य है। प्रजा का सुख ही उसका सुख है। प्रजा को जो प्रिय है, वही उसका प्रिय है। प्रजा के हित में ही उसका हित और सर्वस्व है। जहाँ राजा क्षमाशील न हो वहाँ अधर्म नहीं होता। अशिष्ट पुरुषों को दंड देना और शिष्ट का पालन करना राजा का धर्म है।

'जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, क्रोध को जीत लिया है, शास्त्रों के सिद्धान्त का निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रयत्न में सदा लगा रहता है, जो अपने गुप्त विचारों को प्रकट नहीं करता वही राजा होने योग्य है। प्रजा की रक्षा न करने से राजा को पाप लगता है।

'राजन्! राजा को न्याय करने में धर्मराज और धन संग्रह करने में कुबेर के समान होना चाहिये। जो शूरवीर, भक्त, कुलीन, नीरोग हों और शिष्ट पुरुषों से सम्बन्ध रखते हों, जो आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए दूसरों का कभी अपमान न करते हों, जो धर्म परायण, विद्वान और लोक व्यवहार के ज्ञाता हों, जिनमें साधुता भरी हो, जो पर्वतों के समान अटल रहने वाले हों, ऐसे लोगों को ही सहायक बनाना चाहिये। जैसे पुत्र अपने पिता के घर में निर्भय होकर रहते हैं, वैसे ही राजा के राज्य में प्रजा निर्भय होकर विचरे, तो वह राजा श्रेष्ठ माना जाता है। जिस राजा के राज्य में कूटनीति, कपट और ईर्ष्या का सर्वथा अभाव हो, उसीके द्वारा सनातन धर्म का पालन होता है। जो ज्ञान और ज्ञानियों का सत्कार करता है, जो शास्त्र के विषयों को समझता है तथा परहित करने वाला और स्वार्थ

त्यागी है, वही राजा योग्य है।

'राजन् ! सभी धर्मों में राजधर्म प्रधान है, क्योंकि उसके द्वारा सभी वर्णों का पालन होता है। राज धर्म में सभी प्रकार के त्याग का समावेश है और त्याग को सर्वश्रेष्ठ धर्म बताया गया है। संसार के सारे कर्म राज धर्म पर अवलंबित हैं। अतः जो राजधर्म के तत्व को नहीं जानते, वे युक्त-अयुक्त वचनों द्वारा लोगों के विश्वास को नष्ट कर देते हैं। जो धर्म प्रत्यक्ष है, अधिक सुखमय है, छल रहित है तथा सर्वलोक हितकारी है, वह राजधर्म में प्रतिष्ठित है। इस विषय का मैं तुम्हें एक आख्यान सुनाता हूँ।

'राजन् ! मानधाता नाम के एक पराक्रमी नरेश हुए थे। उन्होंने भगवान विष्णु की आराधना की। श्रीहरि ने देवराज इंद्र का रूप धारण कर उन्हें दर्शन दिया और पुनः पूछा : 'आप भगवान विष्णु का क्यों दर्शन चाहते हो ? वे तो अप्रमेय है और अपनी अनन्त माया शक्ति, असीम धैर्य और बल-पराक्रम से सम्पन्न हैं। तुम्हें उनसे कौन-सी वस्तु प्राप्त करने की इच्छा है ? तुम्हारे हृदय में और कोई कामना हो तो उसे मैं पूर्ण कर दूँगा।'

'मानधाता ने कहा—'भगवन्! मैं आपकी कृपा से आदिदेव भगवान विष्णु का दर्शन प्राप्त कर लूँगा। इस समय मैं समस्त कामनाओं का परित्याग कर केवल धर्म-सम्पादन की इच्छा से वन में जाना चाहता हूँ, क्योंकि सभी सत पुरुष अंत में इसी सन्मार्ग का दिग्दर्शन करा गये हैं। क्षात्रधर्म के प्रभाव से मैंने उत्तम लोक प्राप्त किये हैं, किन्तु भगवान विष्णु से जिस धर्म की प्रवृत्ति हुई है, उस धर्म का आचरण करना मैं नहीं जानता।'

'इन्द्र बोला—'राजन् ! भगवान विष्णु से तो पहले राज-धर्म ही प्रवृत्त हुआ है, अन्य सभी धर्म उसके अंग हैं। जो राजा शक्ति से सम्पन्न नहीं है, वह धर्मपरायण होने पर भी दूसरों को परमगति की प्राप्ति नहीं करा सकता। पूर्वकाल में भगवान

विष्णु ने क्षात्रधर्म के द्वारा ही दुष्टों का दमन कर देवताओं और साधु पुरुषों की रक्षा की थी। यदि भगवान श्रीहरि असुरों का संहार नहीं करते तो न कहीं ब्राह्मण का पता लगता, न ब्रह्माजी का ही। धर्म सैकड़ों बार नष्ट हो चुके हैं, परन्तु क्षात्र धर्म ने उनका पुनः उद्धार किया है। युद्ध में अपने शरीर की आहुति देना, प्राणियों पर दया करना, प्रजा की रक्षा करना, ये सब बातें क्षात्र धर्म में ही विद्यमान हैं। राजा के भय से लोग पाप नहीं करते। यद्यपि ऋषि, मुनि त्याग को ही श्रेष्ठ बताते हैं, किन्तु युद्ध में जो राजा अपने शरीर का त्याग करते हैं, वे सबसे श्रेष्ठ हैं। प्रिय-अप्रिय की भावना का परित्याग कर समभाव प्रतिष्ठित करने से जो गति संन्यासियों को प्राप्त होती है, वह राजा को भी मिल जाती है। जो संकट में पड़े हुए अपने सजातियों, सम्बन्धियों और सुहृदों का उद्धार करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है। राष्ट्र और राष्ट्रवासियों का सबसे बड़ा कार्य अच्छे राजा को नियुक्त करना है, क्योंकि बिना राजा के राज्य निर्बल होता है, वहाँ निवास नहीं करना चाहिये। जिस देश में निर्बल राजा के कारण अराजकता रहती है, वहाँ धन या स्त्रियाँ सुरक्षित नहीं रहते। यह सत्य है कि सदा मिथ्याचार में प्रवृत्त होने वाले मनुष्यों पर शासन करना बड़ा कठिन कार्य है, पर दण्ड का भय दिखाकर उन्हें भी सन्मार्ग पर लाना चाहिए। जैसे सूर्य और चन्द्रमा का उदय न होने पर समस्त प्राणी घोर अंधकार में डूब जाते हैं, इसी प्रकार बिना राजा के सारी प्रजा आपस में लड़-झगड़कर नष्ट हो जाती है। यदि राजा स्वधर्म का पालन न करे तो व्यभिचार से किसीको घृणा न होगी, व्यापार चौपट हो जायगा और अन्याय एवं अत्याचार फैल जाएगा।'

युधिष्ठिर ने कहा—'पितामह! राजा शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई? जिसे हम राजा कहते हैं, वह गुणों में दूसरे के समान ही है। उसके इंद्रियाँ अन्य के तुल्य ही हैं। वह भी दूसरे की

भाँति सुख-दुःख और जरा-मृत्यु का अनुभव करता है। फिर वह विशिष्ट बुद्धि रखने वाले अनेक शूरवीरों और सत्पुरुषों पर प्रभुत्व स्थापित कर पृथ्वी का पालन करता है और कैसे सब उसकी प्रसन्नता चाहते हैं, उस व्यक्ति को देवता के समान समझकर सब नमस्कार करते हैं, इसका कोई विशेष कारण होना चाहिए।'

भीष्म बोले--'आदि सतयुग में न तो राज्य था न राजा, न दण्ड था न दण्ड देने वाला। समस्त प्रजा धर्म के द्वारा ही एक-दूसरे की रक्षा करती थी। कुछ समय बाद सब लोग पारस्परिक संरक्षण के कार्य में महान कष्ट का अनुभव करने लगे। जब उन पर लोभ, मोह, काम और क्रोध छा गया, तब कर्तव्याकर्तव्य ज्ञान से शून्य होने के कारण धर्म मार्ग से वे च्युत हो गये। धर्म का विप्लव हो जाने पर वेदों के स्वाध्याय और यज्ञ आदि कर्मों का भी लोप हो गया। सांसारिक मनुष्यों की ऐसी स्थिति देखकर विद्वानों ने नीति शास्त्र की रचना की, जिसमें धर्म, अर्थ और काम का विस्तारपूर्वक वर्णन है। वह त्रिवर्ग नाम से विख्यात है और चौथा वर्ग मोक्ष है, जिसमें सत्व, रज और तम की गणना है। नीतिशास्त्र में आत्मा, देश, काल, उपाय, कार्य और सहायक इन छः वर्गों का भी वर्णन है। इस ग्रंथ में वेदत्रयी और राजनीति का भी निरूपण किया गया है। सुना जाता है कि सबसे पहले प्रथु ने शासन नीति अपनाई और कृषि कर्मों में सुधार किया, इस पर ब्राह्मणों ने पृथु का राजा के पद पर अभिषेक किया। तब से विद्वानों ने यह घोषणा कर दी कि देव और नरदेव समान हैं।

'राजा को पहले अपने मन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, इसके बाद शत्रु पर। जो अपनी इंद्रियों को वश में नहीं रख सकता, वह शत्रुओं का दमन नहीं कर सकता। जो बुद्धिमान राजा राज्य का हित चाहे, उसे युद्ध को टालने का प्रयत्न करना चाहिए और साम, दाम, दंड, भेद से कार्य सफल करना चाहिए।

जिन राज्यों में स्त्रियों की प्रधानता है और जिन्हें विद्वानों ने छोड़ रखा है, वे राज्य मूर्ख मंत्रियों से संतप्त हो पानी की बूंद के समान सूख जाते हैं। जब लोग अपने कर्मों में संलग्न रहते हैं, तब धर्म मर्यादा में संकीर्णता नहीं आती। प्रजा निर्भय एवं कुशलपूर्वक रहने लगती है और प्रजा के योग, क्षेम स्वतः सिद्ध होते रहते हैं। राजा को धर्म का आचरण करना, आस्तिक बनना, क्रूरता का त्याग करना, मर्यादा का उल्लंघन न करना, प्रिय भाषण करना, बढ़-बढ़कर बातें न कहना, कुपात्र को दान न देना, दुष्टों से मेल न करना, बंधुओं से झगड़ा न करना, अपने गुणों का स्वयं ही वर्णन न करना, श्रेष्ठ पुरुष का धन न छीनना, नीच पुरुष का आश्रय न लेना, विनीत रहना, गुरुजनों की सेवा करना, दंभहीन और अवसरगामी होना चाहिये। जब संसार में पाप फैल जाता है तब मनुष्य के हृदय में आत्मरूप से निवास करने वाले संहारकारी रुद्रदेव प्रकट हो जाते है और वे सबका संहार कर डालते हैं, अतः विवेकी पुरुष को चाहिए कि वह पापियों के साथ किसी तरह भी सम्पर्क स्थापित न करें। राजा जिस-जिस धर्म का आदर करता है, प्रजा को वही अपनाना अच्छा लगता है। प्रजा जो स्वाध्याय, दान, होम और पूजन करती है, उसका चौथाई भाग धर्मपूर्वक पालन करने वाले नरेश को प्राप्त होता है। जैसे सब प्राणी वर्षा के सहारे जीवन निर्वाह करते हैं, वैसे ही धार्मिक राजा के आश्रित हो प्रजा जीवनयापन करती है।

'राजा को पराक्रमी, कीर्तिमान, प्रतिज्ञा पर स्थिर रहने वाले, समर्थ एवं सुशील पुरुषों का सम्मान करने वाले, ईर्ष्या, कामना, भय, क्रोध, लोभ से धर्म का उल्लंघन न करने वाले, सत्यवान और क्षमाशील पुरुषों को ही मंत्री, पुरोहित या सहायक बनाना चाहिये। जिनका उत्तम कुल में जन्म हो, सदा श्रेष्ठ पुरुषों के सम्पर्क में रहें, सहनशील, कार्यदक्ष और कृतज्ञ हों वे ही मंत्री, पुरोहित या सहायक के योग्य हैं। विवेकहीन

मंत्री से कर्म, कर्तव्य और अकर्तव्य का सत्य निर्णय नहीं होता।

'जो अधर्म के कार्यों से राजा को सदा बचाने का प्रयत्न करता है तथा उसकी हानि से भयभीत हो उठता है, उसे उत्तम मित्र समझना चाहिये। जो नीतिज्ञ नहीं है, जिसने अपने मन को वश में नहीं किया है, जो सहायकों से सम्पन्न नहीं है, वह भारी भार नहीं उठा सकता। जैसे जलती हुई आग के पास मनुष्य सचेत होकर रहता है, वैसे ही मनुष्य को राजा के पास सावधानी से रहना चाहिये। यह राजनीति एक नदी के समान है, राजकीय पुरुष उसमें मगर और मत्स्य है। जिस प्रकार ऐसी नदी को पार करना मृत्यु से लड़ना है, उसी प्रकार दुष्ट अधिकारियों से युक्त राज्य में रहना कठिन है।'

युधिष्ठिर ने कहा—'पितामह! कौन-से ऐसे धर्म हैं जो सभी वर्णों के लिए उपयोगी हैं?'

भीष्मजी बोले—'युधिष्ठिर! वेद में सर्वत्र सभी आश्रमों के लिए स्वर्ग प्राप्ति कराने वाली तपस्या का उल्लेख है। धर्म के बहुत से द्वार हैं। संसार में ऐसी कोई क्रिया नहीं है जिसका कोई फल न हो। जो पुरुष जिस विषय में पूर्ण निश्चय को पहुँच जाता है उसीको वह कर्तव्य समझता है। जो पुरुष जिस अवस्था में, जिस देश अथवा काल में, जिस उद्देश्य से जैसा कर्म करता है वह उस धर्म का वैसा ही फल पाता है। काल के उलटफेर से प्रभावित तथा स्वभाव से प्रेरित हुआ मनुष्य विवश होकर उत्तम, मध्यम और अधम कर्म करता है। जो कल्याणकारी और मंगलकारी शुभाशुभ कर्म हैं, वे ही इस शरीर का निर्माण करते हैं और शरीर के साथ ही उनका भी अंत हो जाता है।

'राजन्! क्रोध न करना, सत्य बोलना, धन को बाँटकर भोगना, क्षमा भाव रखना, बाहर-भीतर से पवित्र रहना, अपनी ही पत्नी से संतान पैदा करना, किसीसे द्रोह न करना, सरल भाव रखना, योग्य व्यक्तियों का भरण-पोषण करना—यह नौ

धर्म सभी वर्णों के लिए उपयोगी हैं।

'जो विद्वान उत्तम लक्षण से युक्त सर्वत्र समान दृष्टि रखने वाला है, ऋक्, यजुः और सामवेद का अध्ययन करके शुद्ध कर्मों में लगा रहता है, जो मन, वाणी और इंद्रियों का संयम करता है और शान्त रहता है वही ब्राह्मण है।

'तप, अध्ययन, अध्यापन, यजन-याजन, दान, परिग्रह से ब्राह्मण का यश बढ़ता है। वेदों के प्रवचन में निपुण, अध्यात्म-ज्ञान में कुशल, सत्वगुण सम्पन्न, सत्य प्रतिज्ञ, संतों की सेवा करने वाले ब्राह्मण, महान भाग्यशाली हैं। ईश्वर का पूजक, धैर्यवान, प्रमाद रहित, इंद्रिय और मन को वश में रखने वाला ब्राह्मण उत्तम है। जो ब्राह्मण षोडस अग्निहोत्री को जानता है, वही यज्ञ सम्बन्धी निश्चयात्मक ज्ञान से सम्पन्न है। ब्राह्मण होकर क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कर्मों को जो करता है, वह मंद बुद्धि पुरुष इस लोक में निंदित और परलोक में नरकगामी होता है।

'दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना, दुष्टों को दंड देना, रणभूमि में पराक्रम प्रकट करना और प्रजा का पालन करना, ये सब क्षत्रियों के धर्म हैं। क्षत्रियों के लिए शास्त्र में ऐसे स्वर्ग साधक कर्म बताए हैं, जो हिंसा प्रधान हैं—जैसे युद्ध। जैसे यज्ञ के अंत में यज्ञ करने वाले मनुष्य पवित्र हो जाते हैं, वैसे ही युद्ध में शस्त्रों द्वारा मारे जाने से वीर पाप नष्ट हो जाने के कारण पवित्र हो जाते हैं। खाट पर मरना क्षत्रियों के लिए अधर्म है, वीरों के लिए यह कायरता की बात है।

'दान देना, अध्ययन और यज्ञ करना, सत्यपूर्वक धन संग्रह करना, कृषि-गोरक्षा करना वैश्यों का धर्म है। सब की सेवा करना शूद्र का धर्म है। सभी वर्ण वाले अपने-अपने धर्म का अनुष्ठान करने से परम सिद्धि को पाते हैं, इसलिए सभी वर्ण वाले मानव अच्छे हैं। विद्वानों ने चारों वर्णों का विभाजन किया है, इसलिए वे ब्राह्मणों के समान और उनके जाति भाई

या कुटुम्बी हैं। जैसे ऋक्, यजुः और साम एक ही ओंकार से प्रकट होने के कारण परस्पर से अभिन्न हैं, उसी प्रकार यदि तत्व से निश्चय किया जाय तो ब्राह्मण के साथ सबकी अभिन्नता है।

'सब धार्मिक कर्मों के प्रतिपादन के लिए श्रद्धा आवश्यक है, इसलिए श्रद्धा को सबसे बड़ा देवता माना गया है। मानसिक संकल्पों द्वारा जो भावनात्मक यज्ञ होता है, उसे सभी वर्णों को करना चाहिए। मानसिक यज्ञ करने वाले यजमान के यज्ञ में देवता प्रतिष्ठित रहते हैं, क्योंकि वह यज्ञ श्रद्धा के कारण परम पवित्र होता है। यदि कोई पापी भी यज्ञ करता है, उसे सभी 'साधु' ही कहते हैं। यज्ञ के समान कोई धर्म नहीं है, इसलिए दोष दृष्टि का परित्याग कर श्रद्धा से शास्त्रीय विधि का आश्रय ले अपनी शक्ति और इच्छा के अनुसार यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये।

'राजन्! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास यह चार आश्रम हैं। संन्यास का अवलंबन केवल ब्राह्मणों ने किया है। उपनयन के अनंतर द्विजत्व को प्राप्त हो, वेदाध्ययन पूर्ण कर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिये। वहाँ इंद्रियों का संयम रखते हुए वानप्रस्था श्रम में प्रवेश करें। तत्पश्चात विधि-पूर्वक संन्यास ग्रहण करें। संन्यासी को चाहिये कि वह मन और इंद्रियों का संयम करे, और मुनि वृत्ति से रहे। किसी वस्तु की कामना न करे। अपने लिये मठ या कुटी न बनाए। निरंतर घूमता रहे। जहाँ सूर्यास्त हो जाय वहीं ठहर जाए। प्रारब्ध से जो कुछ मिल जाए, उसीसे जीवन निर्वाह करे। आशा-तृष्णा का सर्वथा त्याग कर सबके प्रति समान भाव रखे। भोगों से दूर रहे, और हृदय में किसी प्रकार का विकार न आने दे।

'जो वेदों का अध्ययन करने के पश्चात धर्म से युक्त हो गार्हस्थ्य धर्म का पालन करता है, वह उत्तम पुरुष है, जो शठता और कुटिलता से दूर रहता है, परमित आहार करता

है, देवताओं की आराधना में तत्पर रहता है, उपकार करने वाले के प्रति कृतज्ञ रहता है, सत्य और मृदुभाषा बोलता है, क्रूर नहीं होता है, और क्षमा भाव रखता है, इंद्रियों का संयम कर गुरुजनों की आज्ञा मानता है, निरंतर अन्न दान करता है और ईर्ष्या-द्वेष से दूर रहता है, वह पुरुष उत्तम है। जो गृहस्थ पुरुष सरलता, अतिथि सत्कार, धर्म, अर्थ का सेवन इस लोक में करता है, वह परलोक में भी सुख पाता है। परिवार का भरण-पोषण, शास्त्रों का स्वाध्याय, गृहस्थ पुरुष का कर्तव्य है। ब्रह्मचारी को आचार्य की परिचर्या में संलग्न रहना चाहिये और किसी भी असत कर्म में प्रवृत्त नहीं होना चाहिये।

'महाराज ! मनुष्य को प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम—इन चारों प्रमाणों द्वारा सदा अपने-पराये की पहचान करते रहना चाहिये। जिनके मन में शुद्ध भाव नहीं हैं, वे ईर्ष्या-वश निर्दोष पर भी दोषारोपण कर देते हैं। अपने धार्मिक कर्मों में लगे हुए मुनियों के भी शत्रु और मित्र पैदा हो जाते हैं। संसार में बहुत से असभ्य प्राणी सभ्य की तरह, और सभ्य असभ्य की तरह सम्मान पाते हैं। आकाश औंधी की हुई तेल से भरी कढ़ाई के समान दिखाई देता है, और जुगनू अग्नि के सदृश, परन्तु न तो आकाश में तेल है, और न जुगनू में अग्नि ही। इसलिये प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली वस्तु की भी परीक्षा करनी चाहिये। जैसे कौआ व्यर्थ की काँव-काँव किया करता है वैसे ही मूर्ख भी अकारण ही निन्दा करता रहता है। इसलिये अच्छे राजा को चाहिये कि वह टिटिहरी या रोगी की तरह टाँव-टाँव करते हुए उस निंदाकारी पुरुष की उपेक्षा कर दे। कुलीन पुरुष यदि बिना अपराध के तिरस्कृत हो जाय, तो भी तिरस्कार करने वाले का अनिष्ट मन में नहीं लाता, किन्तु नीच कुल का व्यक्ति साधु स्वभाव के पुरुष का आश्रय पाकर भी एक बार अपमानित होने पर शत्रु बन जाता है, अतः राजा को कुलीन मनुष्य को ही मित्र और मंत्री बनाना चाहिये। मूर्ख मंत्री या

निर्बल शत्रु, जवान अथवा बूढ़ा ही क्यों न हो असावधान रहने वाले को आपत्ति में डाल देता है। व्यापारी राष्ट्र के वाणिज्य, व्यवसाय तथा खेती की उन्नति करते हैं, अतः बुद्धिमान राजा को चाहिये कि उन पर प्रेम भाव, दयालुता रखे और कर इतना ही लगाये जो वे वहन कर सकें। मदिरालय, वैश्याएं, जुआरी, राष्ट्र को हानि पहुँचाने वाले हैं, इन पर नियंत्रण करना चाहिये। ये कल्याण मार्ग पर चलने वाली प्रजा को हानि पहुँचाते हैं। विद्वानों का निर्णय है कि आपत्ति काल को छोड़कर मनुष्य भीख न माँगे, नहीं तो कोई भी कर्म न करेगा। विद्वान, शूरवीर, धनी, धर्मनिष्ठ, तपस्वी, सत्यवादी तथा बुद्धिमान मनुष्य ही प्रजा की रक्षा करते हैं। जो धर्मज्ञ, धैर्यवान और संग्राम में कभी पीठ न दिखाने वाले शूरवीर हैं, वे सब राजा की प्रशंसा करें या निंदा, उसे उनका सत्कार ही करना चाहिये, क्योंकि किसी का कोई भी काम सबको अच्छा लगे, ऐसा सम्भव नहीं है। राजा धर्म का पालन और प्रचार करने के लिये ही होता है, विषयों का उपभोग करने के लिये नहीं। सभी प्राणी धर्म के ही आधार पर स्थित हैं, और धर्म राजा के उदर में प्रतिष्ठित है। जो अपने धर्म के पालन में तत्पर रहते हैं, उन्हें ही अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि होती है। राजा को सान्त्वनापूर्ण, मधुर एवं स्नेहपूर्ण वचन बोलना चाहिये। इसके समान वशीकरण साधन दूसरा नहीं है। राजन्! राजा को प्राणियोंको नहीं सताना चाहिये, क्योंकि वे उसे अपनी दुःख की क्रोधाग्नि से जला डालते हैं, और उसके कुल में कोई अंकुर भी नहीं उत्पन्न होता। झूठे अपराध लगाये जाने पर मनुष्यों के जो आँसू गिरते हैं, वे मिथ्या कलंक लगाने वाले के कुल का नाश कर डालते हैं। यदि दीन की लोभवश, युक्ति से कोई सम्पत्ति हर ले, तो वह विनाशकारक हो जाती है। जब कोई दीन, अनाथ और वृद्धों के आँसू पोंछता है और उनके हृदय में हर्ष उत्पन्न करता है, वह उत्तम पुरुष कहलाता

है। जो धर्म को अर्थसिद्धि की अपेक्षा बड़ा मानता है, वह धर्म के कारण ही बड़ी शोभा पाता है। बलवान शत्रु का अपकार करके दूर रहकर भी निश्चित नहीं रहना चाहिये, क्योंकि जैसे बाज पक्षी अचेत पक्षी पर झपट्टा मारता है उसी प्रकार दूरस्थ शत्रु भी असावधान पर टूट पड़ता है। जो द्वेषवश कल्याणकारी गुणोंवाले बंधुओं का सम्मान नहीं करता और चंचल चित्त से सब समय उन पर क्रोधित रहता है वह कष्ट में पड़ जाता है।'

युधिष्ठिर ने कहा—'पितामह! जो शूरवीर शत्रु के साथ युद्ध करके मृत्यु को प्राप्त होते हैं वे किस लोक में जाते हैं, यह बताइये।'

भीष्मजी बोले—'युधिष्ठिर! इस विषय में राजा अम्बरीष और इन्द्र के संवाद का उदाहरण दिया जाता है।

'नाभाग-पुत्र अम्बरीष ने स्वर्ग लोक में जाकर देखा कि उसका सेनापति सुदेव इन्द्र के साथ विराजमान है। अपने शक्तिशाली सेनापति को निज से भी समृद्धवान देख राजा आश्चर्य से चकित हो उठा और इन्द्र से बोला—'देव! मैं पृथ्वी का विधिपूर्वक शासन और संरक्षण करता था। मैंने ब्रह्मचर्य का पालन, गुरु की सेवा, वेदों का अध्ययन और राजशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की है। अन्न का दान दिया है, अतिथियों की सेवा, स्वाध्याय और यज्ञों द्वारा ऋषि और देवताओं की पूजा की है। यह सुदेव जो मेरा सेनापति था, उसने यज्ञ से ब्राह्मण, ऋषि, देवताओं को तृप्त भी नहीं किया है, इसलिये इसे ऐसा ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हुआ?'

'इन्द्र ने कहा—'पूर्व काल में आपके तीन शत्रु—संयम, विषम और सुयम महाबली राक्षसों ने आप पर विशाल सेना ले आक्रमण किया, और आपकी प्रजा और सैनिकों को बंदी बना लिया। सेनापति सुदेव के विरुद्ध मंत्रियों की बात सुन आपने उसे सेनापति के पद से हटा दिया। फिर उन्हीं मंत्रियों की कपटपूर्ण सलाह से सुदेव को सेनापति के अधिकार पर पुनः स्थापित

कर दिया, और उसे उन राक्षसों से युद्ध करने की आज्ञा दी, जो दुर्जय थे। सुदेव ने जब राक्षसों की विशाल सेना देखी, तब वह इस निर्णय पर पहुँचा कि शत्रु सेना देवता या दानवों से भी परास्त नहीं की सकती फिर महाराज अम्बरीष या मेरी तो बात ही क्या। ऐसा विचार कर उसने भगवान शंकर की आराधना आरम्भ कर दी, और कुछ समय बाद खड्ग ले अपना ही सिर काटने पर उद्यत हो गया।

'अपने भक्त को बचाने के लिये भगवान शंकर प्रकट होकर बोले—'तुम आत्मबलिदान क्यों करना चाहते हो?'

'सुदेव ने भगवान शंकर को प्रणाम कर कहा—'भगवन्! मैं इन राक्षसों को युद्ध में पराजित नहीं कर सकता, इसलिए जगतपते! आप मुझ आर्त्त को शरण दें। भगवन्! मंत्रियों सहित महाराजा अम्बरीष मुझ पर कुपित हैं। उन्होंने मुझे स्पष्ट रूप से आज्ञा दी है कि शत्रु सेना को पराजित किये बिना लौटकर न आना।'

'भगवान शंकर ने सुदेव पर प्रसन्न होकर उसे एक दिव्य रथ दिया और बोले—'सुदेव! तुम इस रथ पर बैठकर दानवों को परास्त कर सकोगे, जो अस्त्र-अस्त्रों से सुसज्जित है। पर रथ से उतरना नहीं।'

'सुदेव ने रथ पर सवार होकर राक्षसों को परास्त किया, किन्तु वाहु युद्ध करते समय वह भी राक्षसों से मारा गया।

'राजन्! जो युद्ध द्वारा इसी तरह संग्राम यज्ञ सम्पादित करता है, उसकी परमगति होती है। सुदेव को भी वही उत्तम स्थान मिला, जो दूसरे रणधीरों को मृत्यु के बाद प्राप्त होता है। इसलिए युद्ध स्थल में मारे गये शूरवीरों के लिये किसी प्रकार भी शोक नहीं करना चाहिये। इन्द्र के यह वचन सुन राजा अम्बरीष ने स्वीकार किया कि'योद्धाओं को स्वतः सिद्धि प्राप्त होती है।'

भीष्म ने कहा—'युधिष्ठिर! तुम्हें मैं राजा जनक का भी

इतिहास सुनाता हूँ—मिथला नरेश जनक बड़े महात्मा एवं सम्पूर्ण तत्वों के ज्ञाता थे। उन्होंने अपने योद्धाओं से कहा—जो निर्भय होकर युद्ध करने वाले वीर हैं, वे युद्ध में मरने के पश्चात् अविनाशी शोक और ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु जो युद्ध में पीठ दिखाकर भागते हैं, उन्हें नरक और अपकीर्ति मिलती है। यहीं स्वर्ग और नरक है। वीरों और कायरों के पेट, पीठ, हाथ और पैर समान ही होते हैं, पर कायर जगत में अपमान को प्राप्त होते हैं, और वीर सम्मान को। जो अपने प्राणों की परवाह न कर पतंग की भाँति निर्भय हो हाथ में हथियार उठाये, अग्नि के समान विनाशकारी संग्राम में प्रवेश कर जाता है, वह स्वर्गलोक में जाता है।'

भिन्न-भिन्न कारणों से शत्रु मित्र और मित्र शत्रु बन जाता है

भीष्म ने आगे कहना प्रारम्भ किया—'राजन्! मनुष्य तीन प्रकार के होते है। एक अनागत-विधाता, दूसरा प्रत्युत्पन्न-मति और तीसरा दीर्घसूत्री। प्रथम संकट आने के पहले ही अपना बचाव कर लेता है, दूसरा समय आने पर ही आत्म-रक्षा का उपाय करता है, तीसरा प्रत्यक्ष कार्य में अनावश्यक बिलम्ब करता है, उसे दीर्घसूत्री कहते हैं। इस विषय में तुम तीन मत्स्यों का आख्यान जानते ही हो। इनमें दो बच गये, और तीसरा दीर्घसूत्री अपने आलस्य के कारण मारा गया।

'राजन्! भिन्न-भिन्न कार्यों का ऐसा प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण कभी शत्रु मित्र और मित्र शत्रु बन जाता है। अतः देश-काल को समझकर कर्तव्य-अकर्तव्य का निश्चय करना चाहिये। इस विषय में एक बिलाव और चूहे का मैं तुम्हें दृष्टान्त सुनाता हूँ :

'राजन्! एक वन में विशाल बरगद का वृक्ष, जो लता

समूहों से आच्छादित और भाँति-भाँति के पक्षियों से सुशोभित था। उसकी छाया शीतल होने के कारण वह बहुत से सर्पों और पक्षियों का आश्रय बना हुआ था। बरगद की डाली पर एक लोमेश नाम का बिलाव रहता था, जो पक्षियों को खा जाया करता था। उसी वन में एक चाण्डाल भी रहता था, जो पक्षियों को जाल में फँसा लेता था। एक दिन यह बिलाव उस चाण्डाल के जाल में फँस गया। उसके शक्तिशाली शत्रु के जाल में फँस जाने पर सब पक्षी और चूहे निर्भय हो विचरने लगे और अपने फँसे हुए शत्रु पर हँसने लगे। इतने में एक चूहे ने जो जाल के पास खेल रहा था, एक विशाल शत्रु नेवले को देखा। बरगद की शाखा पर जब उस चूहे ने एक उल्लू को भी देखा, तब दोनों बलवान शत्रुओं से प्राण बचाने की उसे चिंता हो गई। उसने सोचा कि बुद्धिमान, विद्वान और नीतिशास्त्र में निपुण विपत्ति में पड़कर भी उससे छूटने की चेष्टा करता है। इसमें सन्देह नहीं कि बिलाव मेरा महान शत्रु है, पर यदि सम्भव हो तो इसे स्वार्थ सिद्ध करने की बात पर राजी करे। यह निश्चय कर वह चूहा जाल को काटकर उसमें घुस गया। उसने बिलाव को सान्त्वना देते हुए मधुर वाणी में कहा :

'भैया बिलाव ! मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा जीवन सुरक्षित रहे, इसमें हम दोनों की भलाई है। मैंने तुम्हारी जीवन रक्षा के लिए एक उपाय सोचा है। यदि तुम मेरी हिंसा नहीं करोगे, तो मैं तुम्हारे सारे बंधन काट डालूँगा। इस प्रकार हम दोनों की मैत्री चिरस्थायी हो जाएगी।'

'बिलाव ने उत्तर दिया—'सौम्य ! मैं तुम्हारे प्रस्ताव का अभिनन्दन करता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम निर्भय हो मुझे जीवन प्रदान करो। मेरे मुक्त हो जाने पर तुम्हारे किये हुए उपकार का बदला मैं अवश्य चुकाऊँगा। इस समय मैं तुम्हारा भक्त और शिष्य हूँ। मैं तुम्हारी शरण ग्रहण करता हूँ।'

'अपने-अपने प्रयोजन की सिद्धि करने के लिये चूहे और

बिलाव ने आपस में संधि कर ली और चूहा धीरे-धीरे जाल को काटने लगा। चूहे और बिलाव को कार्यवश संधि-सूत्र में बंधे देख उल्लू और नेवला निराश हो, अपने-अपने स्थान पर चले गये। इतने में यमदूत के समान चाण्डाल आ पहुँचा। तदनन्तर चूहे ने विलाव का अंतिम बंधन भी काट डाला। उस भारी संकट से छुटकारा पाकर विलाव वृक्ष की शाखा पर जा बैठा और चूहा बिल में घुस गया। चाण्डाल ने उस जाल का सब ओर से निरीक्षण किया और जब कोई भी जानवर उसमें फंसा नहीं मिला तब निराश होकर घर को लौट आया। इस भारी भय से मुक्त हो दुर्लभ जीवन पाकर वृक्ष की शाखा पर बैठे हुए बिलाव ने चूहे से कहा :

'मित्र! तुमने विपत्ति के समय मेरा विश्वास किया है और मुझे जीवन दान दिया है, अब सुख भोगने का समय आया है इसलिये मेरे पास आओ। अब से मेरे सभी मित्र और परिवार के लोग तुम्हारी पूज्यजनों के समान सेवा करेंगे।' बिलाव की ऐसी शान्तिपूर्ण वाणी सुन उत्तम मंत्रणा के ज्ञाता चूहे ने कहा :

'लोमेश! तुमने जो कहा है वह सब मैंने ध्यान देकर सुना है। अब मेरी बुद्धि में जो विचार स्फुरित हो रहा है, उसे मैं तुम्हें सुनाता हूँ। इस जगत में मित्र और शत्रु की पहचान अत्यंत सूक्ष्म है। अवसर आने पर कितने ही मित्र शत्रु बन जाते हैं और कितने ही शत्रु मित्र। जब वे काम और क्रोध के अधीन हो जाते हैं, तब उन्हें समझना असम्भव है कि वे मित्र हैं या शत्रु। मैत्री कोई स्थिर वस्तु नहीं है, क्योंकि स्वार्थ बड़ा बलवान है। जो विश्वासपात्र न हो, उस पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। माता-पिता, पुत्र, बंधु-बांधव सब में स्वार्थ के सम्बन्ध से ही स्नेह होता है। यदि अपना प्यारा पुत्र भी पतित हो जाय, तो माँ-बाप उसे त्याग देते हैं, अतः इस जगत में स्वार्थ ही बलवान है। किसी कारण को लेकर उत्पन्न होने वाली प्रीति, जब तक वह कारण रहता है, तब तक ही वह बनी

रहती है। कारण नष्ट हो जाने पर प्रीति भी स्वतः निवृत्त हो जाती है। समय कारण के स्वरूप को बदल देता है, और स्वार्थ उस समय का अनुकरण करता रहता है। मैं तुम्हारे स्वार्थ को अच्छी तरह समझता हूँ। तुम जाति से ही मेरे शत्रु हो, किन्तु प्रयोजन से मित्र बन गये थे। अब वह प्रयोजन सिद्ध कर लेने के पश्चात पुनः तुम्हारी प्रकृति शत्रु भाव को प्राप्त हो गई है। इसलिये अब मैं तुमसे नहीं मिलूँगा। इस विषय पर शुक्राचार्य ने कहा है कि जब अपने पर और शत्रु पर एक सी विपत्ति आये, तब निर्बल को बलवान शत्रु के साथ मेल करके बड़ी सावधानी और युक्ति से अपना काम निकाल लेना चाहिये।' इतना कहकर चूहा बिल में घुस गया।

'राजन्! मैं तुम्हें इसी विषय पर एक और आख्यान सुनाता हूँ। काम्पिल्य नगर में ब्रह्मदत्त नाम के एक राजा राज्य करते थे। उनके अंतःपुर में पूजनी नाम से प्रसिद्ध एक चिड़िया निवास करती थी जो समस्त प्राणियों की बोली समझती, और सम्पूर्ण तत्वों को जानने वाली थी। एक दिन उसने राजमहल में एक बच्चा दिया और उसी दिन राजा के भी एक बालक उत्पन्न हुआ। वह कृतज्ञ पूजनी चिड़िया प्रतिदिन दोनों बच्चों के लिये दो फल ले आती थी।

'एक दिन राजपुत्र ने चिड़िया के बच्चे को खेल-खेल में मार डाला। अपने बच्चे को मरा देख वह दुःख से संतप्त हो कहने लगी—'राजा में संगति निभाने की भावना नहीं होती। उनमें न प्रेम होता है न सौहार्द्र। वे स्वार्थ से ही दूसरे का सम्मान करते हैं। जब काम निकल जाता है तब उसे त्याग देते हैं, इसलिए इन पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। यह राजकुमार कृतघ्न, अत्यन्त क्रूर और विश्वासघाती है। मैं इससे इस वैर का बदला लूंगी।' ऐसा कहकर उसने अपने पंजों से राजकुमार की दोनों आँखें फोड़ डाली और उड़कर राजा से बोली—इस जगत में स्वेच्छा से जो पाप किया जाता है उसका

फल तत्काल ही कर्ता को मिल जाता है। उसके पूर्वकृत शुभा-शुभ कर्म भी नष्ट नहीं होते। उनका फल भी कर्ता को समय आने पर भोगना ही पड़ेगा। अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी क्योंकि तुम्हारा-मेरा वैर स्थापित हो गया है। वैर पाँच कारणों से हुआ करता है, स्त्री, घर-जमीन, कठोर वाणी, जातिगत और किसी समय किये हुए अपराध के कारण। जैसे लकड़ी के भीतर आग छिपी रहती है उसी प्रकार वैर करने वाले के हृदय में वैर भाव छिपा रहता है। जिस प्रकार बडवानल समुद्र में भी शान्त नहीं होती, उसी प्रकार क्रोधाग्नि न धन से, न कठोरता दिखाने से, न मीठे वचनों से, न शास्त्र ज्ञान से शान्त होती है। जैसे प्रज्वलित वैराग्नि एक पक्ष को दग्ध किये बिना नहीं बुझती, उसी प्रकार अपराधजनित कर्म अपराधी का अनिष्ट किये बिना शांत नहीं होता। इसलिए शत्रु की बातों पर विश्वास करने वाले मारे जाते हैं। विद्या, शूरवीरता, दक्षता, बल और धैर्य—ये पाँच मनुष्य के स्वाभाविक मित्र हैं और यज्ञ, दान, दया, सत्य, तप और स्वाध्याय धर्म है। बुद्धिमान इन्हीं का आश्रय लेते हैं। जैसे मनुष्य अपने रोगी नेत्रों से सूर्य को देखता है या तीव्र हवा की ओर रखता हैं तब उनके उन नेत्रों में पीड़ा बढ़ जाती है, वैसे ही जो अपनी शक्ति का ध्यान न कर मोहवश दुर्गम मार्ग पर चल देता है, उसका जीवन वहीं समाप्त हो जाता है। जो पथ्य छोड़कर अपथ्य का सेवन करता है वह रोग ग्रस्त हो जाता है। जब-जब तुम अपने पुत्र को देखोगे तब-तब तुम्हारे हृदय में क्रोध और प्रज्वलित हो उठेगा। इनके आधीन हो तुम किसी दिन मुझे मार डालोगे, अतः मैं अब तुम्हारे पास नहीं रहूँगी। बलवान से वैर करना कभी अच्छा नहीं होता। इतना कहकर पूजनी चिड़िया राजा से विदा ले उड़ गयी।'

पाप का अधिष्ठान क्या है ? धर्म, अर्थ और काम में श्रेष्ठ कौन है ?

युधिष्ठिर ने पूछा––'पितामह ! पाप का अधिष्ठान क्या है ? और किससे इसकी प्रवृत्ति होती है ?'

भीष्म ने उत्तर दिया—'पाप का अधिष्ठान लोभ है। लोभ से मनुष्य अधर्म, छल-कपट और नाना प्रकार के पाप करने लगता है। फिर क्रोध, काम, मोह, अभिमान और उद्दण्डता प्रकट होते हैं। मनुष्य में षट् दोषों के कारण असहनशीलता, निर्लज्जता, चिन्ता, और अपयश उत्पन्न हो जाते हैं। लोभ से ही कृपणता, शास्त्र विरुद्ध कर्मों में प्रवृत्ति, सबके प्रति अविश्वास, द्रोह और कुटिलतापूर्वक वर्ताव होते हैं। लोभ मनुष्य से पराये, माता-पिता तथा गुरुजन के धन का अपहरण कराता है। उससे वाणी और मन का वेग उत्पन्न होता है और निन्दा, मिथ्या भाषण करने की प्रवृत्ति होती है। जैसे बहुत सी नदियों के जल से भी समुद्र नहीं भरता, उसी प्रकार लोभी मनुष्य बहुत धन उपार्जन करने पर भी संतुष्ट नहीं होता। बड़े-बड़े विद्वानों की भी बुद्धि लोभ के कारण मारी जाती है और वे निरंतर क्लेश उठाते रहते हैं। जिसने अपने मन और इंद्रियों को वश में कर लिया है उस पुरुष को मोह सहित लोभ को जीतना चाहिए। लोभ से अज्ञान हृदय में आता है , अज्ञान से षट् दोष, निद्रा, आलस्य, हर्ष, शोक, और पाप होते हैं, और जीव को नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेना पड़ता है।

'क्रोध दूसरों के दोष एवं प्रतिकूल व्यवहार को देखने से बढ़ता है और क्षमा से इसकी निवृत्ति होती है। काम संकल्प से उत्पन्न होता है। इसका जितना भी सेवन किया जाय, उतना ही बढ़ता रहता है, किन्तु उससे विरक्त होने से नष्ट हो जाता है। मोह अज्ञान से उत्पन्न होता है किन्तु विद्वानों के संसर्ग से

नष्ट हो जाता है। जिस पर प्रेम हो उसके वियोग से शोक प्रकट होता है किन्तु ज्ञान का आधार लेने से उसकी शान्ति हो जाती है। नीच मनुष्य के द्वेषपूर्ण तथा अप्रामाणिक वचनों को सुन भ्रम में पड़ जाने से मनुष्य को दूसरों की निन्दा करने की प्रकृति हो जाती है। इससे उनका साथ त्यागना चाहिए।

'लोभ और अज्ञान का नाश करने के लिए दम अर्थात् संयम, तप और सत्य की साधना करनी चाहिए। ये तेज की वृद्धि करते है और सात्विक कर्मों में मन को लगाते हैं। इनसे मनुष्य अगाध गाम्भीर्य धारण करता है। जैसे समुद्र अनन्त जलराशि पाकर भी भरता नहीं, उसी प्रकार वह भी धर्म संचय से कभी तृप्त नहीं होता। वह सदाचार, शील और आत्म तत्व को जानने वाला होता है। कर्तृत्वाभिमान और फलाशक्ति से शून्य मनुष्य इस लोक में सत्कार और परलोक में परमगति पाता है। संयमी पुरुष जहाँ भी रहे, उसके लिए वह स्थान वन और आश्रम है।' तदनन्तर पितामह की आज्ञा से पाण्डव अपने विश्रामस्थल पर गये।

वहाँ युधिष्ठिर ने चारों भाइयों और विदुरजी से पूछा, 'धर्म, अर्थ और काम में कौन श्रेष्ठ है?'

विदुरजी बोले—'राजन्! शास्त्रों का अनुशीलन, तपस्या, त्याग, क्षमा, दया, सत्य और संयम ये धर्म की ही जड़ हैं। धर्म से ही देवताओं की उन्नति हुई है और धर्म में अर्थ भी स्थित है, अतः मन को वश में करके धर्म को अपना प्रधान ध्येय बनाना चाहिये और सम्पूर्ण प्राणियों के साथ समभाव रखना चाहिये।

'राजन्! कोई मानते हैं कि धर्म सत्य से, कोई मानते हैं युक्ति से, कोई श्रेष्ठ आचरण से और कोई दान, दया, यज्ञ, अहिंसा आदि उपायों से स्थित रहता है, परन्तु माता-पिता तथा गुरुजनों का सम्मान करना ही धर्म की स्थिरता में अधिक महत्वपूर्ण है। जो उनकी आज्ञा के पालन में संलग्न रहते हैं

उनको दूसरे सभी धर्म स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। प्राणियों के अभ्युदय और कल्याण के लिए हो धर्म का प्रवचन किया गया है,अतः जो कर्म इस उद्देश्य से युक्त हो वही घर्म है। धर्म का नाम धर्म इसलिए पड़ा है कि वह सबको धारण करता है—अधोगति से बचाता है और जीवन की रक्षा करता है।

'राजन् ! आत्मा शुभ कर्मों के लिए प्रेरणा देती है। यदि कोई आश्रम में रहकर किसी की हत्या करे तो उसे क्या पाप नहीं लगेगा और यदि घर में रहकर दान देता है, स्वधर्म पालन और भगवान का भजन करता है तो क्या वह व्यर्थ हो जायेगा ? धर्म, अर्थ और काम एक साथ प्रकट हुए हैं। धर्म अर्थ की प्राप्ति का कारण है और काम अर्थ का फल है। इन तीनों का मूल है संकल्प और संकल्प है विषय रूप। धर्म से शरीर की रक्षा होती है और धर्म का उपार्जन करने के लिए धन की आवश्यकता होती है और काम है भोग। ये सभी गुणमय हैं, अतः आसक्ति और फलेच्छा का त्याग कर त्रिवर्ग का सेवन किया जाये तो मनुष्य का कल्याण ही होता है। धर्म, अर्थ, सदाचार, वल और लक्ष्मी शील के ही आधार पर रहते हैं। मन, वाणी, क्रिया द्वारा किसी प्राणी से द्रोह न करना, दया करना और दान देना यह शील कहलाता है। जो मन के प्रतिकूल होने के कारण सुहृद की बात नहीं सुनता और अर्थ सिद्धि के वचनों को सुनता है वह धर्म से गिर जाता है। जो द्वेषवश कल्याणकारी गुणोंवाले बंधुओं का सम्मान नहीं करता और चंचल चित्त से सब समय उन पर क्रोधित रहता है वह कष्ट में पड़ जाता है।

'जैसे ज्ञान का फल चाहने वाले के लिए ज्ञान से परिचित होना आवश्यक है उसी प्रकार धर्म का फल चाहने वाले को भी धर्म का परिचय प्राप्त करना चाहिये। दुष्ट पुरुष यदि धर्म की इच्छा करे तो भी उसके द्वारा विशुद्ध कर्म का सम्पादन होना कठिन है। पहले निवृत्ति और प्रवृत्ति मार्ग का निश्चय कर

मन, वाणी और शरीर द्वारा श्रद्धापूर्वक धर्म के पालन में लग जाओ। देश, काल और कर्म विशेष पर विचार करने से एक ही कर्म, धर्म और अधर्म हो जाता है। सभी प्राणियों के मन में शुभ और अशुभ विचार उठते रहते हैं। मनुष्य को चाहिये कि चित्त को सदा अशुभ विचारों से हटाकर शुभ विचारों में लगाये। धर्म के अनुसार मनुष्य की जिस कर्म में रुचि हो, उसे तत्परता से पालन करना चाहिये। जो सत्पुरुषों का संग करता है उसे उनके प्रभाव से कोई ऐसा उपाय प्राप्त हो जाता है जो इहलोक और परलोक में भी कल्याण करने वाला होता है।

'शास्त्रों में जो सुकर्म बताये हैं उन्हें ही लोग धर्म मानते हैं। सबके साथ प्रेमपूर्वक बर्ताव करने से जो कुछ प्राप्त होता है वह भी धर्म है। लोकयात्रा का निर्वाह करने के लिए महर्षियों ने कर्म की जो मर्यादा स्थापित की है वह भी धर्म है। धर्म का पालन करने से इहलोक और परलोक में सुख मिलता है। धर्म के यज्ञ, दान, तप आदि बहुत से द्वार हैं अतः जगत में धर्म की कोई भी क्रिया निष्फल नहीं होती। जो मनुष्य जिस-जिस साधन द्वारा सफलता को प्राप्त कर लेता है उसी साधन या धर्म को वह श्रेष्ठ समझता है।'

विदुरजी की बात समाप्त होने पर धर्म और अर्थ के तत्व को जानने वाले अर्जुन ने युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर कहना आरम्भ किया—'राजन्! यह कर्मभूमि है। यहाँ जीविका के साधन, कर्मों की ही प्रशंसा होती है। अर्थ ही समस्त कर्मों के पालन में सहायक है। बिना अर्थ के धर्म और काम की भी सिद्धि नहीं होती। धनवान धन के द्वारा उत्तम कर्मों का पालन और दुर्लभ कामनाओं की प्राप्ति कर सकता है। श्रुतियों का कथन है कि धर्म और काम अर्थ के ही दो अवयव हैं। जैसे प्राणी ब्रह्मा की उपासना करते हैं उसी प्रकार धनवान की उपासना भी मनुष्यों से होती है। जो धनवान हैं उन्हीं के स्वजन उनके साथ स्वजनोचित बरताव करते हैं। दरिद्रों के स्वजन

तो उनके जीते-जी ही उन्हें छोड़ देते हैं। निर्धन मनुष्य सैकड़ों यत्न करके भी धन उपार्जन नहीं कर सकते, अत: धन की रक्षा करनी चाहिये तथा विधिपूर्वक उसका दान करना चाहिये। धन संकटों से छुड़ाने वाला है इसलिए विपत्ति निवारक कहलाता है।

'अर्थ की प्राप्ति के लिए ही विद्या, कर्म, पवित्रता और ज्ञान का सहारा लिया जाता है। जटा और मृगचर्म धारण करने वाले ब्रह्मचारी, संग्रह से रहित विद्वान, और नियम और धर्म का पालन करने वाले गृहस्थ भी धन की इच्छा रखते हैं। लक्ष्मी के कारण ही मनुष्य का सर्वत्र आदर-सत्कार होता है। लक्ष्मी मनुष्य के सारे दोषों को ढक देती है। आस्तिक-नास्तिक, संयम-नियमपरायण भी अर्थ के इच्छुक होते हैं, अत: अर्थ की प्रधानता को न जानना अज्ञान है, जानना सुख है।'

नकुल और सहदेव ने निवेदन किया---'धन अत्यन्त प्रिय और दुर्लभ वस्तु है। इसकी प्राप्ति हो जाने पर मनुष्य संसार में सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण कर सकता है। जो धर्म से युक्त हो और धर्म धन से सम्पन्न हो वह अमृत के समान है। निर्धन की कामना पूर्ण नहीं होती और धर्महीन को धन भी कैसे मिल सकता है, इसलिए मनुष्य को मन संयम में रखकर धर्माचरण करना चाहिये जिससे कि धन का साधन हो सके, फिर काम स्वत: सिद्ध हो जायेगा। धन और धर्म दोनों सत्य के ऊपर प्रतिष्ठित हों तो वे मनुष्य की रक्षा करते हैं।'

भीमसेन ने कहा—'धर्मराज! जिसके मन में कोई कामना नहीं है, उसे न तो धन कमाने की इच्छा होती है और न धर्म करने की ही। किसी न किसी कामना से संयुक्त हो ऋषि-मुनि इंद्रियों का संयम करके तपस्या में मन लगाते हैं। कामना से ही मनुष्य शास्त्रों का अध्ययन करके पारंगत विद्वान हो जाते हैं। कामना से ही यज्ञ, दान और दैव-कर्मों से प्रवृत्ति होती है।

व्यापारी, किसान और शिल्पी कामना से ही अपने-अपने कर्मों में लगे रहते हैं। कामनारहित प्राणी न कहीं है, न कभी था और न भविष्य में होगा ही। अतः यह काम ही त्रिवर्ग का सार है। धर्म और अर्थ भी इसीमें स्थित हैं।'

धर्मराज युधिष्ठिर ने पूर्व वक्ताओं के वचनों पर विचार करके कहना आरम्भ किया—'बंधुओ ! आप लोगों ने धर्मशास्त्रों के सिद्धान्तों पर विचार कर जो अपना-अपना निर्णय बताया है इसे मैंने ध्यान से सुना है। अब आप मेरी बात को भी अनन्य चित्त होकर अवश्य सुनिये। जो न पाप में लगा है न पुण्य में, न अर्थोपार्जन में तत्पर है न धर्म में, न काम में ही वह सब प्रकार के दोषों से रहित हो, सुख-दुःख को देने वाली सिद्धियों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है और सब से समभाव से बरताव करता है। मनुष्य नाना मकार के दुःखों से पीड़ित हो निरंतर मुक्ति की ही प्रशंसा करते हैं, पर जिसके मन में आसक्ति है, उसकी कभी मुक्ति नहीं होती। आसक्तिशून्य ज्ञानी ही मोक्ष को प्राप्त होते हैं। विधाता सभी प्राणियों को विभिन्न कार्यों के लिए प्रेरित करता है, अतः विधाता ही प्रबल है। मनुष्य कर्मों के द्वारा अप्राप्य अर्थ नहीं पा सकता। जो होनहार है वही होता है, अतः मोक्ष का उपाय ज्ञान ही वास्तविक कल्याणकारक है।

'मनुष्य को जब कभी विषय-भोग से वैराग्य हो जाता है, तब विरक्त होने पर वह हर्ष-शोक को त्याग देता है और ज्ञानमय धन पाकर नित्य सुख का अनुभव करने लगता है। जो धन से ही सुख मानते हैं, उन मनुष्यों के लिए मैं निरंतर शोक करता हूँ। ज्ञानी ऐसा मानते हैं कि जो है वह दुःख है और जो नहीं है वह सुख है। राज्य लक्ष्मी आकर भी जा सकती है और जिसके पास नहीं होती उसके पास भी आ सकती है।

'उत्तम आचार-विचार वाले राजा भरत ने समृद्धिशाली राज्य का परित्याग कर दिया था, इसी प्रकार अन्य भूपालों

ने भी। वे सबके सब जंगल में फल-मूल खाकर तपस्या कर दुःख से पार पहुँच गये। भोग प्रारब्ध के अधीन और अस्थिर है फिर भी मनुष्य नहीं चाहने योग्य विषयों को चाहते हैं। जो तुम्हें सुख के रूप में प्रतीत होते हैं वे वास्तव में दुःख रूप ही हैं। धनी, लोभ और क्रोध के वश में आकर पाप-कर्म में संलग्न रहता है। जैसे वायु शरद ऋतु के बादलों को उड़ा ले जाती है उसी प्रकार संपत्ति मन को हर लेती है। जो धन के कारण ऊँचे या महत्वपूर्ण पद पर पहुँच जाता है, उसके धन की यदि हानि हो जाय तब उसे मृत्यु के तुल्य कष्ट होता है। इस राज्य संपत्ति को अनित्य समझकर भी भला कौन प्राप्त करने की इच्छा करेगा। उत्तम कुल में उत्पन्न हुए कुछ ही मनुष्य ऐसे हैं, जो धर्म की शरण लेते हैं और समस्त लौकिक व्यवहार एवं धन-सम्पत्ति को त्याग देते हैं, क्योंकि कुल में वैर की आग प्रज्वलित करने वाले दो ही दोष हैं—लोभ और अमर्ष। जब मैं तीनों लोकों पर दृष्टि डालकर देखता हूँ तब मुझे शुद्ध एवं वैराग्य सम्पन्न पुरुष के समान कोई नहीं दिखाई देता है।

'मनुष्य जैसे-जैसे संसार के पदार्थों को सारहीन समझता है, वैसे ही वैसे इनसे उसका वैराग्य हो जाता है। जगत अनेक दोषों से परिपूर्ण है, ऐसा निश्चय कर बुद्धिमान पुरुष अपने मोक्ष के लिये प्रयत्न करते हैं। मूर्ख अपने कर्मों के परिणाम को न सोचकर सुख से सोता है क्योंकि वह अज्ञान से आवृत रहता है। जिसके कारण शोक, ताप और दुःख उठाना पड़े उन्हें बुद्धिमान मनुष्य को त्याग देना चाहिये। ये अमोध रात्रियाँ नित्य आती हैं और चली जाती हैं। रात बीतने के साथ ही आयु कम हो जाती है और मृत्यु क्षण-भर के लिए भी नहीं ठहर सकती है। जैसे भेड़ के पास अचानक व्याघ्री पहुँच जाती है और उसको दबोचकर चल देती है, उसी प्रकार मृत्यु जीव को लेकर चल देती है, अतः सबको संन्यास धर्म का आचरण करना चाहिये, क्योंकि जीवन अनित्य है। तपस्वियों की गति सर्वत्र है, उनका

कहीं भी प्रतिरोध नहीं होता, क्योंकि वे दूरदर्शी हैं। वे योग्य व्रत का आचरण करने से देदीप्यमान हो जाते हैं, तथा ज्ञान और विज्ञान उनकी शोभा बढ़ाते हैं। जो मनुष्य मोह में डूबा हुआ, न करने योग्य काम कर अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करता है और शुभ कर्म नहीं करता, ऐसे आसक्त हुए मनुष्य को काल अपने वश में कर लेता है। अमृत और मृत्यु दोनों इस शरीर में ही स्थित हैं। मनुष्य मोह से मृत्यु को और शुभ कर्म से अमृत को प्राप्त करता है। मनुष्य कैसा ही चतुर क्यों न हो, जो उसके भाग्य में नहीं है, उस धन को प्रयत्न कर भी नहीं पा सकता। यदि कोई पुरुषार्थ सफल होता है, तो वह दैव के सहयोग से ही सिद्ध होता है। मनुष्य धनी हो जाने पर राज्य पाना चाहता है, राज्य से देवत्व की इच्छा और देवत्व से इंद्रपद प्राप्त करना चाहता है। तृष्णा धन से नहीं बुझती, धन पाकर तो वह और भी प्रज्वलित होती है। काम, क्रोध आदि दोषों से युक्त बुद्धि की प्रेरणा से मन पाप-कर्मों में प्रवृत होता है। इस प्रकार मनुष्य अपने ही कार्यों द्वारा पाप करके दुःख भोगता है। वह पापाचारी दरिद्र से दरिद्र हो मृतक तुल्य हो जाता है और अत्यन्त क्लेश और भय पाता है। जिस-जिस मनुष्य ने जैसा कर्म किया है वह कर्म उसके पीछे लगा रहता है और उसका साथ नहीं छोड़ता। पूर्व जन्म के कर्मों का भी फल मनुष्य अकेला ही भोगता है। जैसे फूल और फल बिना किसी की प्रेरणा के ही समय पर वृक्षों पर लग जाते हैं, उसी प्रकार पहले के किए हुए कर्म भी अपने फल भोग कर समय का उल्लंघन नहीं करते। सम्मान-अपमान, लाभ-हानि, उन्नति-अवनति, दुःख और सुख, वर्तमान और पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार बारंबार प्राप्त होते हैं, और प्रारब्ध भोग के पश्चात निवृत्त हो जाते हैं। जीव माता की गर्भ शय्या में आते ही पूर्व जन्म द्वारा उपार्जित सुख-दुःख का भोग करने लगता है। जैसे क्षार आदि से धोने से कपड़ा साफ हो जाता है उसी प्रकार तपस्या आदि सत-कर्मों से पाप धुल

जाते हैं। इसलिए जिस कार्य से आत्मा की उन्नति हो वही कर्म करना चाहिये।'

परम तत्व

दूसरे दिन युधिष्ठिर ने पूछा—'पितामह ! मुझे तत्वों एवं जीवात्मा के विषय में उपदेश दें।'

भीष्म ने उत्तर दिया—'भगवान नारायण सम्पूर्ण जगत स्वरूप हैं, वे ही सबकी आत्मा और सनातन पुरुष हैं। वे कूटस्थ, अविनाशी, अव्यक्त, निर्लेप, सर्वव्यापी, प्रकृति से परे और इंद्रियातीत हैं। उन भगवान नारायण के हृदय में जब सृष्टि विषय के संकल्प का उदय हुआ, तब उन्होंने एक पुरुष को उत्पन्न किया, जो मानस देव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह अनादि, अंत, अभेद्य, अजर और अमर, अव्यक्त, शाश्वत और अक्षय था। वही सब प्राणियों के जन्म और मृत्यु का कारण है। उस स्वयम्भू देव ने पहले महतत्व (समष्टि बुद्धि) फिर अहंकार की सृष्टि की। फिर सम्पूर्ण भूतों को धारण करने वाले भगवान ने आकाश को उत्पन्न किया। आकाश से वायु, वायु से जल, जल से अग्नि और अग्नि से पृथ्वी का प्रादुर्भाव हुआ। प्राणियों का शरीर और सारा स्थावर जंगम जगत इन पाँच भूतों से ही युक्त है।

'आत्मा शरीर में स्थित होकर शरीर की रक्षा करती है और प्राण शरीर को चेष्टाशील बनाता है। प्राण से संयुक्त आत्मा ही जीव है। प्राण के द्वारा इंद्रियाँ परिचालित होती हैं। शरीर को त्याग देने पर जीव आकाश की भाँति स्थित होता है। वह अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण दृष्टि में नहीं आता। जीव के चले जाने पर शरीर अचेतन हो पृथ्वी पर गिरकर पार्थिव भाव को प्राप्त हो जाता है, क्योंकि पृथ्वी ही उसका आधार है। मन भी पंच भौतिक ही है। एकमात्र अंतरात्मा ही इस

शरीर का भार वहन करता है। वही रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द और सुख-दुःख का अनुभव करता है। जब उसका शरीर के साथ सम्बन्ध छूट जाता है, तब शरीर को सुख का भान नहीं होता। आत्मा जब प्राकृत गुणों से युक्त होता है, तब उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं, और जब उन्हीं गुणों से मुक्त हो जाता है, तब परमात्मा कहलाता है। आत्मा शरीर में रहकर भी कमल पत्र पर पड़े हुए जल बिंदु की तरह उससे पृथक है। देह का नाश होने पर भी जीव का नाश नहीं होता। वह एक देह को त्याग कर दूसरे शरीर में चला जाता है। तत्वदर्शी पुरुष शुद्ध बुद्धि से आत्मा को अपने हृदय में भी साक्षात कर अनन्त आनन्द का अनुभव करते हैं।

'सत्य से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। जैसे जहाज समुद्र से पार होने का साधन है उसी प्रकार सत्य ही स्वर्गलोक में पहुँचने की सीढ़ी है। सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही तप है, सत्य ही सृष्टि रचता है, सत्य के ही आधार पर संसार टिका हुआ है और सत्य के प्रभाव से मनुष्य स्वर्ग को जाता है। असत्य अहंकार का रूप है, और अज्ञानान्धकार से घिरे हुए मनुष्य तमो गुणों से ग्रस्त हो ज्ञान के प्रकाश को नहीं देखते। सत्य और अनंत से युक्त जो मानव योनि है वह ज्ञान और अज्ञान दोनों के सम्मिश्रण से जगत के जीवों को प्राप्त होती है। जो सत्य और असत्य है, वह ही धर्म और अधर्म, प्रकाश और अंधकार तथा सुख और दुःख है। धर्म और अर्थ सत्य के अंग हैं, अतः सुख के उद्देश्य से ही सुकर्म किया जाता है। सत्य ही प्राणी का सच्चा सुख है। जिसका संशय रहित कामनायुक्त मन अच्छी तरह वश में हो जाता है वह मनुष्य इहलोक और परलोक में भी सुखी होता है।

'ब्रह्म की उपासना ध्यान योग से भी की जाती है। साधक अपने मन को द्वंद्वों और दोषों से मुक्त कर सत्व गुणों में स्थित हो नियमों का पालन करते हुए इंद्रियों को विषयों से हटाकर

स्थिर भाव से परमात्मा का ध्यान करे। जैसे पत्ते पर पड़ी हुई पानी की बूँद हिलती रहती है, उसी प्रकार ध्यान में स्थित साधक का मन भी प्रारम्भ में चंचल रहता है किन्तु उसे ऊबना नहीं चाहिये तथा पुनः ध्यान योग द्वारा अपने कल्याण का प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार मनोनिग्रहपूर्वक ध्यान करने वाले योगी को जो दिव्य सुख मिलता है वह पुरुषार्थ या दैव योग से भी नहीं मिल सकता और वह योगी निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है।

'सांख्य और योग—इन दोनों भागों में भी मनोनिग्रह और इंद्रियसंयम आवश्यक माने गये हैं। सत्य, अग्निहोत्र, एकान्त सेवन, ध्यान, तपस्या, दम, क्षमा, अनुसूया, मिताहार, विषयों का संयम, मित भाषण तथा शम ये प्रवर्तक यज्ञ हैं, निर्वतक यज्ञ जप है। निवृत्ति मार्ग तीन तरह का है—व्यक्त, अव्यक्त और अनाश्रय। साधक विषयों का चिन्तन न करे। वेद संहिता का पाठ एवं प्रणव और गायत्री मंत्र का जप करे। फिर समाधि में स्थित होने पर जप को भी त्याग दे। ऐसे साधक समाधि से विशुद्ध परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप में प्रवेश कर जाता है और पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेता।

'कर्मपरायण मनुष्य जो प्रवृत्ति या निवृत्ति रूप में संलग्न रहता है, वह उसी के महान फल का भागी होता है। भगवान नारायण प्रजा के आदि, मध्य और अन्त हैं, वे ही धाता, धेय, कर्ता और कार्य हैं। वे ही तप, तेज, यश और वाणी के स्वामी एवं संरक्षक हैं। निष्काम भाव से समस्त कर्म करने वाले भक्तों की परमगति वे ही हैं। वे ही सम्पूर्ण प्राणियों के वासस्थान हैं, इसलिये उनका नाम वसुदेव कहा गया है। सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा जगत को प्रकाशित करते हैं और वे उनके केश कहलाते हैं। उन केशों से युक्त होने के कारण द्विज और मुनि उन्हें केशव कहते हैं। पृथ्वी को उन्होंने पुनः वाराह रूप धारण कर प्राप्त किया था, इसलिये उनका नाम गोविन्द पड़ा। वे ही कर्ता,

करण, कार्य हेतु, आज्ञा, विधि और तपस्वरूप हैं। उन भगवान को भक्त से बढ़कर दूसरा कोई प्रिय नहीं है।

'जो सूक्ष्म, अज्ञेय, अव्यक्त, अचल और ध्रुव है, जो इंद्रियों, विषयों और सम्पूर्ण भूतों में परे है वही सब प्राणियों की अंतरात्मा है, अतः क्षेत्रज्ञ नाम से कहा जाता है। वही गुणातीत पुरुष कहलाता है। उसी से त्रिगुणमय अव्यक्त की उत्पत्ति हुई है, उसी को व्यक्त भाव से स्थित, अविनाशिनी, अव्यक्त, प्रकृति कहा गया है। वही सर्वसद्गुणसम्पन्न तथा निर्गुण कहलाता है। ज्ञान योग के द्वारा उसका साक्षात्कार होता है। जो सदा उसका स्मरण करते हैं तथा अनन्य भाव से उसकी शरण लेते हैं वे उसके परमपद को पाते हैं। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ आत्मा से पृथक होने पर भी काष्ठ में सटे हुए लोहे के समान आत्मा के साथ जुड़ी हुई हैं परन्तु इनमें स्वतंत्र कोई प्रेरणा शक्ति नहीं है।

'वेद ही मनुष्य के उत्तम नेत्र हैं, वेद ही उनके परम बल हैं, वेद ही उनके आश्रय हैं तथा वेद ही उनके सर्वोत्तम उपास्य देव हैं। तपस्या के परम फल भगवान नारायण ही हैं तथा नारायण की प्राप्ति ही सर्वोत्तम गति है। निवृत्ति और प्रवृत्ति रूप धर्म भी नारायण का ही स्वरूप है। अधिष्ठान, कर्ता, भिन्न-भिन्न प्रकार के करण, नाना प्रकार की चेष्टाएँ और पाँचवा देव—इन पाँच कारणों के रूप में सर्वत्र श्रीहरि ही विराजमान हैं, और भगवान नारायण हरि ही एकमात्र ज्ञातव्य तत्व हैं। पाँचों इंद्रियों का प्रेरक जो विख्यात मन है वह भी श्रीहरि ही है। वे अविनाशी पुरुष नारायण अकर्ता, कर्ता, कार्य तथा कारण भी हैं। स्वर्ग, अन्तरिक्ष, भूतल और जल—इन सभी स्थानों में और सम्पूर्ण लोकों में जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म होता है, वह सब नारायण की ही सत्ता से होता है। उस सगुण-निर्गुण विश्वात्मा पुरुष को कोई भी इन चरम चक्षुओं से नहीं देख सकता। वे ज्ञान से ही ज्ञातव्य हैं। वे स्थूल, सूक्ष्म और कारण

तीनों शरीर से रहित होकर भी सम्पूर्ण शरीरों में निवास करते हैं पर उनके कर्मों से लिप्त नहीं होते। वे योगात्मा श्रीहरि क्षेत्र (शरीर) को और शुभाशुभ कर्म रूप उनके कारणों को भी जानते हैं इसलिए क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं। जो परमात्मा है, वह नित्य निर्गुण है, उसी को नारायण कहते हैं और वही सर्वात्मा पुरुष कहलाता है। जो लोकतंत्र या सम्पूर्ण धाम का प्रकाशक है वह परम पुरुष ही वंदनीय परम तत्व है। वही ज्ञाता और वही ज्ञातव्य है, वही भोक्ता और वही भोज्य पदार्थ है, वही स्पर्श करने वाला और वही स्पर्श के योग्य वस्तु है, वही दृष्टा और वही दृष्टव्य है। सम्पूर्ण देवता मुनि उसी का भजन करते हैं।

'युधिष्ठिर! इसी प्रसंग में जप की महत्ता पर एक प्राचीन घटना का उदाहरण दिया जाता है। एक बुद्धिमान, जप में तत्पर रहने वाला, वेदों का पारंगत विद्वान ब्राह्मण हिमालय के निकटवर्ती पहाड़ों पर रहता था। उसके ज्ञानपूर्वक गायत्री के जप करने से देवी सावित्री ने उसे दर्शन दिया। उस समय ब्राह्मण गायत्री मंत्रों की आवृत्ति कर रहा था, इसलिए देवी के आने पर भी चुप ही बैठा रहा। जब जाप समाप्त हो गया, तब ब्राह्मण ने उठकर देवी के चरणों में मस्तक रख साष्टांग प्रणाम किया और बोला :

'देवि ! आज मेरा अहोभाग्य है कि आपने प्रसन्न हो मुझे दर्शन दिया। यदि आप मुझ पर संतुष्ट हैं तो ऐसी कृपा कीजिये कि मेरा मन जप में ही लगा रहे।'

'देवि बोली—'ब्रह्मर्षि ! मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगी। तुम नियमपूर्वक एकाग्रचित्त होकर जप करो। तुम्हें ब्रह्मपद की प्राप्ति हो जायेगी।' देवी के चले जाने पर ब्राह्मण नियमपूर्वक जप करता रहा।

'उसके जप से प्रसन्न होकर धर्म ने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और बोला—'मैं धर्म हूँ। तुम्हें इस जप का जो फल प्राप्त हुआ है, उसे मैं तुम्हें सुनाने आया हूँ। साधो ! तुमने दिव्य लोकों पर

विजय प्राप्त की है। अब तुम अपने प्राणों का परित्याग कर पुण्य लोक में चले जाओ।'

'ब्राह्मण ने कहा—'प्रभो! मैंने इस शरीर के साथ बहुत सुख-दुःख उठाया है अतः इसे त्यागकर स्वर्ग में जाने का मेरा उत्साह नहीं है।'

'धर्म बोला—'ब्राह्मण यदि तुम शरीर छोड़ना नहीं चाहते, तो काल, मृत्यु और यम की बातों पर विचार करो।'

'यमराज, काल और मृत्यु ने कहा—'ब्राह्मण! तुम्हें शुभ आचरणों द्वारा तपस्या का उत्तम फल प्राप्त हुआ है, अतः तुम्हारे लिये स्वर्ग में जाने का समय आ गया है। हम लोग आज तुम्हें यहाँ से ले जाने के लिये उपस्थित हुए हैं।'

'ब्राह्मण ने पूछा—'दैव! मैं आप लोगों की क्या सेवा करूँ?'

'इसी समय राजा इक्ष्वाकु भी उस स्थान पर आ पहुँचे। राजा इक्ष्वाकु ने उन सबको प्रणाम करके कुशल समाचार पूछा। ब्राह्मण ने भी राजा का आदर-सत्कार कर कहा—'महाराज! आपकी मैं क्या सेवा करूँ?'

'राजा ने कहा—'पूज्यवर! मैं क्षत्रिय राजा हूँ और आप उत्तम आचरण करने वाले ब्राह्मण हैं, इसलिये आपको मैं कुछ धन देना चाहता हूँ।'

'ब्राह्मण बोला—'राजन्! ब्राह्मण दो प्रकार के होते हैं और धर्म भी दो प्रकार का माना गया है—प्रवृत्ति और निवृत्ति। मैं निवृत्ति मार्ग का आचरण करने वाला ब्राह्मण हूँ। राजन्! कर्मनिष्ठ पुरुष को जिस प्रकार प्रवृत्ति धर्म की उपलब्धि होती है वही उसे अच्छा लगता है, उसी प्रकार जो ज्ञान में निष्ठा रखने वाले हैं, उन्हें ज्ञान के सिवा दूसरी कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती। वेदों के विद्वान, जो अत्यंत बुद्धिमान हैं, वे मोक्ष मार्ग को ही चाहते हैं। सत्पुरुषों ने सदा इसी मार्ग को ग्रहण किया है, अतः यही अनिन्द्य एवं निर्दोष है। आप उसको दान दें

जो प्रवृत्ति मार्ग में हो। जैसे आप अपने धर्म में तत्पर रहते हैं उसी तरह मैं भी अपने धर्म से संतुष्ट हूँ। इस समय मैं अपनी तपस्या द्वारा आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ ?'

'राजा ने कहा—'ब्राह्मण देव ! हम लोग तो युद्ध की ही याचना किया करते हैं, पर यदि आप मेरा उपकार ही करना चाहते हैं तो आप अपने जप का फल मुझे दे दें।'

'ब्राह्मण बोला—'आपको मुझसे युद्ध की ही याचना करनी चाहिये थी।'

'राजा ने कहा—'विप्रवर ! ब्राह्मणों की वाणी ही वज्र के समान होती है, और क्षत्रिय बाहुबल से जीवन-निर्वाह करते हैं, अतः आपके साथ मेरा वाक्‌युद्ध स्थापित हुआ है।'

'ब्राह्मण बोला—'राजन् ! मैंने जो जप किया है उसका उत्तम फल आप ग्रहण करें।'

'राजा ने कहा—'भगवन् ! मेरी याचना की तो पूर्ति हो गयी, पर यह तो बता दीजिये कि इसका फल क्या है ?'

'ब्राह्मण ने उत्तर दिया—'राजन् ! इस जप का फल क्या मिलेगा यह तो मैं भी नहीं जानता। पर मैंने जो कुछ जप किया था, उसका सब फल आपको दे दिया है। धर्म, यम, काल और मृत्यु इस बात के साक्षी हैं।'

'राजा ने कहा—'दैव ! यदि आप मुझे अपने जप जनित धर्म फल नहीं बता सकते तो यह अज्ञात फल मेरे किस काम का ? मैं संदिग्ध फल नहीं चाहता इसलिये इसे आप ही रखिये।'

'ब्राह्मण बोला—'राजन् ! मैंने आपको अपने जप का फल दे दिया है, इसलिए आपकी बात नहीं स्वीकार करूँगा। मैंने जप करते समय कभी फल की कामना नहीं की थी, अतः इस जप का क्या फल होगा वह मैं नहीं जानता। आपने कहा था 'दीजिये' और मैंने कहा था 'दूँगा,' यदि इस तरह स्पष्ट बात करने पर भी आप वचन का पालन नहीं करेंगे तो आपको

असत्य का महान् पाप लगेगा। मैंने बिना सोचे-विचारे ही देने की प्रतिज्ञा कर डाली, अतः उसी प्रकार आप भी बिना विचारे मेरा दिया हुआ जप का फल ग्रहण करें।'

'जो झूठ बोलता है, उसको न इस लोक में सुख मिलता है न परलोक में। न वह पूर्वजों का उद्धार कर सकता है, न भविष्य में होने वालों का। सत्य के समान तप, यज्ञ, वेदाध्ययन, दान और नियम भी तारने वाले नहीं हैं। सत्य ही अविनाशी ब्रह्म है, सत्य ही नित्य तप है, सत्य ही यज्ञ है और सत्य ही सनातन वेद है। सत्य को सबसे श्रेष्ठ फल माना गया है। धर्म और संयम की सिद्धि सत्य से ही होती है। सत्य ही ओंकार है। सत्य की ही सत्ता से सूर्य, अग्नि का प्रभाव और प्राणियों का जीवन है। सत्य पर ही स्वर्गलोक प्रतिष्ठित है और यज्ञ, तप, वेद, मंत्र और सरवस्ती सत्य के ही स्वरूप हैं। जहाँ सत्य है, वहाँ धर्म है और सत्य के बिना कोई भी शुभ कर्म नहीं हो सकता। जो देने की प्रतिज्ञा करके देना नहीं चाहता, और जो याचना तो करता है पर लेता नहीं है, वे दोनों ही मिथ्यावादी हैं।'

'राजा ने कहा ! 'क्षत्रियों का धर्म तो प्रजा की रक्षा और युद्ध करना है। क्षत्रियों को दाता कहा गया है, फिर मैं आप से दान कैसे ले सकता हूँ ?'

'ब्राह्मण ने उत्तर दिया––'दान लेने के लिये मैंने आपसे अनुरोध नहीं किया था और न देने के लिये मैं आपके घर ही गया था। आपने स्वयं यहाँ आकर याचना की है, अब कैसे अस्वीकार कर सकते हैं ?'

'दोनों का विवाद सुनकर धर्म बोले––'आप दोनों शान्त हों। मैं साक्षात धर्म हूँ। ब्राह्मण देवता दान के फल से युक्त हो जायें और राजा सत्य के फल से। आप दोनों समान फल के भोगी हैं।'

'राजा ने कहा—'हे देव ! मुझे स्वर्ग की इच्छा नहीं है। यदि ब्राह्मण देवता स्वर्ग में जाना चाहें तो मेरे किए हुए पुण्य

फल को ग्रहण करें।'

'ब्राह्मण ने कहा—'राजन् ! मैं निवृत्ति मार्ग का पथिक हूँ, आप से कोई दान लेना नहीं चाहता।'

'राजा बोला—'देव ! यदि आपने अपने जप का फल दे ही दिया तो ऐसा कीजिये कि हम दोनों के जो भी पुण्य फल हैं उन्हें एकत्र करके हम दोनों समान-समान ही साथ-साथ भोगें। हम दोनों का उन पर समान अधिकार रहे।'

'इसी समय वहाँ दो पुरुष उपस्थित हुए। एक का नाम विरूप था, दूसरा विकृत। वे बारंबार एक-दूसरे से झगड़ रहे थे। विकृत कह रहा था—'मेरा तुम पर कोई ऋण नहीं है और विरूप बोल रहा था मैं तुम्हारा ऋणी हूँ।'

'विकृत ने कहा—'हम दोनों विवाद का निर्णय महाराज से करा लें, जिससे कि हममें से कोई भी दोष का भागी और निन्दा का पात्र न हो।'

'विरूप बोला—'पृथ्वीनाथ ! मैं इसके गोदान के फल का ऋणी हूँ, उसे मैं आज लौटाना चाहता हूँ, किन्तु यह ले नहीं रहा है। राजर्षि ! इसने धर्म की प्राप्ति के लिए तपस्वी ब्राह्मण को एक उत्तम गाय दी थी। मैंने इसके घर जाकर इससे उसी गोदान का पुण्य फल माँगा था। इसने शुद्ध हृदय से मुझे वह दे दिया था। तदनन्तर मैंने भी अपनी शुद्धि के लिए दो दूध देने वाली गायें उत्तम वृत्ति वाले ब्राह्मण को श्रद्धापूर्वक दान दे दीं। प्रभो ! उसी गोदान का फल मैं इसे वापस करना चाहता हूँ। इसके एक गोदान का फल लेकर मैं आज इसे दूना फल लौटाना चाहता हूँ। ऐसी परिस्थिति में आप स्वयं निर्णय कीजिये कि हम दोनों में से कौन शुद्ध है और कौन दोषी ? अब आप न्याय कर इस झगड़े का निपटारा कर दें और हम लोगों को धर्म के मार्ग पर स्थापित करें।'

'राजा ने कहा—'विकृत ! जब यह तुम्हें तुम्हारा दिया हुआ ऋण लौटा रहा है, तब तुम उसे स्वीकार क्यों नहीं

करते ? मुझे तुम्हारा व्यवहार अनुचित जान पड़ता है, इसलिए तुम दोषी हो।'

'विकृत बोला—'राजर्षि ! मैंने इसे दान दिया था, अब वह दान इससे वापस कैसे लूँ ? आपकी दृष्टि में यदि यह मेरा अपराध है, तो आप मुझे सहर्ष दंड भोगने की आज्ञा दें।'

'राजा ने कहा—'जब तक तुम दोनों के विवाद का निपटारा नहीं हो जाता तब तक दोनों यहाँ से न जाना।' फिर उन्होंने ब्राह्मण ने कहा—'द्विज श्रेष्ठ ! आपका और मेरा पुण्य हम दोनों के लिए सम्मिलित हो और हम दोनों उसे साथ-साथ उपभोग करें। इस उद्देश्य से आप भी मेरा दिया हुआ दान ग्रहण करें।'

'विरूप बोला—'राजन् ! हम दोनों काम और क्रोध हैं। हमने ही आपको इस कार्य में लगाया है। आपने जो साथ-साथ फल भोगने की बात कही है, इससे आपको और ब्राह्मण देवता को एक समान लोक प्राप्त होंगे। आप दोनों ही श्रेष्ठ और सुफल पुरुष हैं।'

'ब्राह्मण ने धर्म, यम, काल और मृत्यु की पूजा की और राजा से कहा—'राजर्षि ! मेरे जप के फल से संयुक्त हो आप श्रेष्ठ गति को प्राप्त कीजिये और आपकी आज्ञा लेकर देवी सावित्री के वरदान से मैं फिर जप में लग जाऊंगा। किन्तु यदि आपका आग्रह है कि हम साथ-साथ अपने पुण्य का फल भोग करें तो वह भी मुझे स्वीकार है।'

भीष्म ने कहा—'राजन् ! उन दोनों का ऐसा निश्चय होने के कारण उन्हें समान सद्गति मिली।'

जाजली और तुलाधार

भीष्म बोले—'राजन् ! धर्म के विषय में मैं तुम्हें एक और इतिहास सुनाता हूँ।

'प्राचीन काल में जाजली नाम के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण थे। उन महातपस्वी जाजली ने कठिन तपस्या की। यद्यपि वे जल, गर्मी और सर्दी में खड़े रहते थे, इससे उन्हें कष्ट का अनुभव तो होता था किन्तु उन्हें वास्तविक धर्म का ज्ञान नहीं हुआ। तपस्या की समाप्ति होने पर उन्हें दंभ हो गया कि इस जगत में मेरे जैसा कोई मनुष्य नहीं है जिसमें जल, थल और नभ में विचरने की शक्ति हो।

'वर्षा ऋतु में भी वे आकाश के नीचे ही खड़े रहते थे, अतः उनके सिर के बाल बराबर भीगे रहने के कारण वे जटा के रूप में परिणत हो गये। महातपस्वी जाजली निराहार रहते और चेष्टा-शून्य होने के कारण सूखे पेड़ के समान जान पड़ते थे। राजन् ! एक समय उनके सिर पर गौरैया पक्षी के एक जोड़े ने अपने रहने के लिए घोंसला बना लिया। वे बड़े दयालु थे, इसलिए उन्होंने उन पक्षियों को अपनी जटाओं से हटाने या उड़ाने की कोई चेष्टा नहीं की। अतः वे पक्षी उस घोंसले में सुख से रहने लगे और समय आने पर अंडे दिये। अंडों से कुछ समय बाद बच्चे बाहर निकल आये और उड़ गये। तदनन्तर जाजली मुनि वहाँ से अन्यत्र चले गये। अपने मस्तक पर चिड़ियों के रहने की घटना को याद कर वे अपने को महान धर्मात्मा समझने लगे।

'किसी महामुनि ने उनसे कहा—'तुम्हें ऐसा अभिमान नहीं करना चाहिए। द्विज श्रेष्ठ ! काशी में महायशस्वी तुलाधार वणिक धर्म का पालन करते हैं, किन्तु वे भी ऐसा नहीं कहते।' उस महामुनि की बात सुनकर जाजली मुनि काशी नगर में तुलाधार के पास पहुँचे। उन्होंने तुलाधार को सौदा बेचते देखा। विविध पदार्थों के क्रय-विक्रय से वे जीवन-निर्वाह करते थे। ब्राह्मण को आते देखकर वे खड़े हो गये और बड़े हर्ष से उन्होंने ब्रह्मर्षि का स्वागत-सत्कार किया।

'तुलाधार बोला—'आप मेरे पास आ रहे हैं इसे मैं पहले

से ही जानता हूँ। आपने कठिन तपस्या की है और पक्षियों के पालन धर्म को बहुत निभाया है।'

'जाजली ने कहा—'वैश्य पुत्र ! तुम तो सब प्रकार के रस, गंध, वनस्पति, औषधि, मूल और फल आदि बेचते हो, अतः तुम्हें यह धर्म में निष्ठा रखने वाली बुद्धि कैसे प्राप्त हुई ? तुम्हें यह ज्ञान कैसे सुलभ हुआ ?'

'तुलाधार ने कहा—'जाजले ! समस्त प्राणियों का हित करना और सबके प्रति मैत्री भाव रखना ही उत्तम धर्म है। मैं उसी भावना से जीवन-निर्वाह करता हूँ। मैंने घास-फूस से यह घर तैयार किया है। मैं विविध वस्तुओं को दूसरों से खरीदकर बेचता हूँ और पूरा तौलता हूँ। मैं किसी से न अनुरोध करता हूँ न विरोध, न किसी से मेरा द्वेष है और न अनुराग। यही मेरा व्रत और नियम है। मैं आकाश की भाँति असंग रहकर न तो दूसरे के कार्यों की प्रशंसा करता हूँ न निंदा ही। मैं सबके प्रति समता रखता हूँ इसलिये मिट्टी और स्वर्ण को समान समझता हूँ। मैं मन और इंद्रियों के संयम द्वारा विषयों को देखकर भी नहीं देखता, केवल साक्षी रूप से रहता हूँ। जैसे वृद्ध, रोगी और दुर्बल मनुष्य विषय भोगों की स्पृहा नहीं रखते, उसी प्रकार मेरे मन से भी धन और विषय भोग की इच्छा दूर हो गयी है। जब मनुष्य समस्त प्राणियों के प्रति मन, वाणी और क्रिया द्वारा भी बुरे भाव नहीं रखता, तब वह मनुष्य ब्रह्म भाव को प्राप्त हो जाता है। मैं शास्त्रों और महात्माओं के बताये हुए मार्ग का अनुसरण करता हूँ। जैसे नदी की धारा में बहता हुआ काठ अकस्मात किसी दूसरे काठ से जुड़ जाता है एवं पृथक हो जाता है, इसी प्रकार संसार में प्राणियों के भी परस्पर संयोग-वियोग होते रहते हैं। जो अभयदान का आचरण करता है वह सहायता देने वाला धनी, सौभाग्यशाली तथा श्रेष्ठ समझा जाता है। जो जप, तप, दान और ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण भूतों को अपने से अभिन्न देखता है, वह ब्रह्म रूप हो जाता है। जो

स्वर्गादि की कामना से धर्म कार्य करते हैं वे स्वर्ग फलों को पाते हैं, किन्तु वे पुण्य क्षीण होने के पश्चात स्वर्ग से च्युत हो जाते हैं, इसलिये विज्ञ मनुष्य सकाम कर्मों की निंदा करते हैं। धर्म का स्वरूप सूक्ष्म होने के कारण सबकी समझ में नहीं आता, इसलिये सत्पुरुषों का आचरण देखने से धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है।

'जाजले! धर्म निष्प्रयोजन या निष्फल नहीं है। स्वर्ग और ब्रह्म की प्राप्ति के लिये ही धर्म की व्यवस्था की गई है। इस कार्य का हेतु या परिणाम क्या है, इस पर विचार करके ही धर्म को स्वीकार करना चाहिये। लोगों ने किया है, या कर रहे हैं यह जानकर उनका अंधानुकरण नहीं करना चाहिये। शुभ कर्मों के द्वारा देवता संतुष्ट होते हैं। शास्त्रों का कथन है कि नमस्कार, स्वाध्याय, घृत और अन्न से भी देवताओं की पूजा की जाती है। जिस प्रकार आकाश से निर्मल जल की वर्षा होती है, उसी प्रकार शुद्ध भाव से किये हुए यज्ञ से धर्म की प्राप्ति होती है। जैसे जगत की भलाई के लिये ही शुभ संकल्पों से वृक्षों और लताओं में फल-फूल लगते हैं, वैसे ही यज्ञ से फल की कामना न करने पर भी शुभ फल की प्राप्ति होती ही है, जो करने योग्य कर्मों को करना अपना कर्तव्य समझता है, उनका पालन न होने से भय मानता है और कर्तापन का अभिमान नहीं रखता, वह साधु पुरुष कहलाता है। निष्काम भाव से किये जाने वाले कर्म श्रेष्ठतम माने जाते हैं,अतः कर्मों के फल की भावना या कामना पर संयम-नियंत्रण रखना आवश्यक है। सत्यभाषण, इंद्रिय संयम और ईर्ष्या द्वेष से रहित नियमों का पालन करना यज्ञ ही है। ब्रह्म सर्व स्वरूप है, सम्पूर्ण देवता उसी के रूप हैं। वह ब्रह्म प्राणी मात्र में विराजमान है, इसलिये इनके तृप्त होने पर सम्पूर्ण देवता तृप्त हो जाते हैं। बहुत से मनुष्य ऐसे हैं, जिनका धर्म ही आधार है। वे धर्म को ही सुख मानते हैं और कर्तव्य कर्म दृढ़तापूर्वक करते हैं। वे स्तुति, निंदा

और शोक से दूर रहते हैं और श्रद्धालु चित्त वाले हैं, अतः उनमें सर्वव्यापक परमात्मा सर्वात्मा रूप से विराजमान है। ज्ञानियों ने प्रजाहित की कामना से ही मानसिक यज्ञ का अनुष्ठान किया है। श्रेष्ठ मनुष्य स्वधर्म का पालन करते हुए भी अज्ञों को स्वर्ग में पहुँचा देते हैं। जाजले! आत्मा ही प्रधान तीर्थ है, इसलिये तीर्थ सेवन के लिये देश-देश में भटकने की आवश्यकता नहीं है। श्रद्धा सूर्य की पुत्री है। उसे विशुद्ध ज्ञानदायिनी, सावित्री, प्रसवित्री भी कहते हैं। श्रद्धा, मन और वाणी के दोषों को दूर कर मनुष्य के शुद्ध कर्मों की रक्षा करती है, इससे श्रद्धालु मनुष्य के पाप का क्षय हो जाता है। श्रद्धालु मनुष्य साक्षात धर्म का स्वरूप है। जो श्रद्धापूर्वक अपने धर्म में स्थित रहता है, वही श्रेष्ठ मनुष्य माना गया है।

'घट के निर्माण काल में जिस बुद्धि का उपयोग किया जाता है वह घट के निर्मित होने पर आवश्यक नहीं रहती। इसी प्रकार चित्त शुद्धि का लक्ष्य पूरा हो जाने पर नाना प्रकार के कर्मों की आवश्यकता नहीं रहती। काम, क्रोध, भय, निद्रा का परित्याग और वाणी का संयम करना चाहिये। ध्यान, स्वाध्याय, दान, सत्य, लज्जा, सरलता, क्षमा, बाहर-भीतर की पवित्रता, शुद्ध आहार और इंद्रियों का संयम ये ही योग के साधन हैं। जो साधक विशुद्ध मन से कर्म-गति का अनुसंधान करता है वह उसे अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर ब्रह्म पद को प्राप्त कर वह उसी में प्रतिष्ठित हो जाता है।

'जिसका चित्त योगयुक्त नहीं है उसे समत्व बुद्धि नहीं प्राप्त होती। योग के बिना कोई सुख नहीं पाता। दुःखों से सम्बन्ध का त्याग और धैर्य ये दोनों ही सुख के कारण हैं। जब मनुष्य पुण्यात्माओं के संसर्ग में रहते हैं तब उन्हें निर्मल बुद्धि प्राप्त होती है और पापियों के संग से पाप के भागी होते हैं। जैसे जल, अग्नि और चन्द्रमा की किरणों के संसर्ग से मनुष्य क्रमशः शीत, उष्ण और सुखदायी स्पर्श का अनुभव करता है,

उसी प्रकार वह पुण्यात्मा और पापियों के संग से पुण्य और पाप दोनों का स्पर्श प्रत्यक्ष अनुभव करता है। मनुष्य पूर्व जन्मों के कर्मों के अनुसार भोजन, वस्त्र तथा अपने माता-पिता के द्वारा संचय किया हुआ धन प्राप्त करता है। संसार में जो मिलता है वह पूर्वकृत कर्मों के फल के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जिसने षट दोषों पर विजय प्राप्त कर ली है, जो जगत को सारहीन समझता है, वह सत्य-सम्पन्न मनुष्य सदा ही मुक्त है। वेदों में सत्यंवद, धर्मंचर, यजेत, जुहुयात इत्यादि वाक्यों द्वारा मनुष्य का कर्तव्य विधान किया गया है। वही धर्म का लक्षण है। जैसे बिना बीज के कोई अंकुर पैदा नहीं होता, उसी प्रकार पुण्य कर्म के बिना कोई सुखी, समृद्धिशाली नहीं हो सकता। इंद्रियरूप घोड़ों से युक्त सूक्ष्म शरीर एक रथ है, ज्ञानकार बृत्तियाँ ही इस रथ के घोड़ों की बागडोर है। इन उपकरणों से युक्त रथ पर आरूढ़ हो जो मनुष्य यात्रा करता है वह बुद्धिमान है। जो मनुष्य इंद्रियों की वाह्यवृत्तियों से रहित हो मन से ईश्वर की उपासना करता है वह श्रेष्ठ समझा जाता है। जो मनुष्य स्वयं जान-बूझकर पाप करने के पश्चात उसके प्रायश्चित के उद्देश्य से शुभ कर्म का अनुष्ठान करता है वह शुभ और अशुभ दोनों का पृथक-पृथक फल भोगता है। जैसे कच्चे घड़े में रखा हुआ जल नष्ट हो जाता है परन्तु पकाये हुए घड़े में ज्यों का त्यों बना रहता है उसी प्रकार विशुद्ध अन्तःकरण में शुभ कर्म निश्चल रहते हैं। धनधान्य के दान से धर्म के उद्देश्य को यत्नपूर्वक बचाये रखना चाहिये। जो अपनी शक्ति के अनुसार अतिथियों को जल या अन्न पवित्र भाव से अर्पण करता है, वह उत्तम फल पाता है। महात्मा राजा रन्ति देव अन्न-जल को पवित्र भाव से अर्पण करने के कारण परम सिद्धि को प्राप्त हुए। प्रत्येक मनुष्य देवता, पितर, अतिथि और कुटुम्बियों का ऋण लेकर जन्म लेता है, अतः उसे ऋण से मुक्त होने का यत्न करना चाहिये। धर्म का पालन करते हुए ही जो धन

प्राप्त होता है वही सच्चा धन है। जैसे सूर्य का सामीप्य प्राप्त होने से प्रत्येक वस्तु चमक उठती है, उसी प्रकार साधु पुरुषों के सत्संग से नीच मनुष्य भी सद्‌गुणों से सुशोभित होने लगता है। श्वेत वस्त्र को जिस रंग में रंगा जाये वह वैसा ही रूप धारण कर लेता है, इसी प्रकार मनुष्य जैसा संग करता है वैसा ही रंग उसके ऊपर चढ़ जाता है।

'मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु अज्ञान है, जिससे आवृत्त और प्रेरित हो वह क्रूरतापूर्ण कर्म करने लगता है। आसक्ति का अभाव ही श्रेय का मूल कारण है और ज्ञान ही सबसे उत्तम गति है। किया हुआ तप और सुपात्र को दिया हुआ दान कभी नष्ट नहीं होते। जैसे तिल का तेल भिन्न-भिन्न प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से वासित हो अत्यन्त मनोहर गंध ग्रहण करता है, वैसे ही शुद्ध चित्त मनुष्य का स्वभाव सत्पुरुषों के संग से सत्व गुण संपन्न हो जाता है। मनुष्य के लिये धर्म करने का कोई विशेष समय निश्चित नहीं है, क्योंकि मृत्यु किसी की प्रतीक्षा नहीं करती। इसलिये उसे नित्य निरंतर धर्म का आचरण करते रहना श्रेयष्कर है।

'सत्व गुण के लक्षण ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, स्वाभिमान, तप, सत्य, क्षमा, धैर्य, स्वच्छता, आत्मा का बोध हैं। रजोगुण के लक्षण असंतोष, पश्चाताप, शोक, लोभ, अक्षमा, दमन करने की प्रवृत्ति, काम, क्रोध और ईर्ष्या हैं। तमोगुण के लक्षण अविवेक, मोह, प्रमाद, निद्रा, अभिमान, विषादऔर प्रीति का अभाव है।

'योगियों का ध्यान योग प्रधान कर्तव्य है। ध्यान दो प्रकार का होता है—एक तो मन की एकाग्रता, दूसरा प्राणायाम। प्राणायाम के भी दो भेद हैं—सगुण और निर्गुण। दोनों तरह की पूजा प्रभु-प्राप्ति के द्वार हैं।

'योगियों को चाहिये कि मन के द्वारा इंद्रियों को विषयों से हटाएं और अविचल हो जाएं। जिसका मन सदा ध्यान में संलग्न रहता है, ऐसे योगी के लिये यह व्रत है। ध्याननिष्ठ

योगी को अपने हृदय में भी परमात्मा का दर्शन होता है, जैसे सूर्य का आकाश में।

'वेदों में वर्णित प्रकृति, अव्यक्त, त्रिगुण मयी, जड़ और रचनात्मक है और पुरुष को ब्रह्म, पुरुषोत्तम, परमेश्वर, परमात्मा नाम से कहा गया है। उन दोनों के और भी नाम हैं।

'प्रकृति—विश्वा, अम्बा, वरुण, ज्ञान, अज्ञ, तप, सूर्य, अविद्या, अवेद्य, चला, क्षय।

'पुरुष—अविश्व, अश्व, मित्र, श्रेय, ज्ञाता, क, अतपा, अतिसूर्य, विद्या, वेद्य, निश्चल, अक्षय।

'क्रूर स्वभाव का परित्याग सबसे बड़ा धर्म, क्षमा सबसे बड़ा बल है। आत्मा का ज्ञान सबसे उत्कृष्ट ज्ञान और सत्य से बढ़कर कुछ है ही नहीं। जिससे प्राणियों का अत्यन्त हित होता हो वही सत्य है। जो संकल्पों को छोड़ चुका है, जो किसी वस्तु का संग्रह नहीं करता और जिसने सब कुछ त्याग दिया है वही विद्वान है। जो अनासक्त भाव से विषयों का अनुभव करता है, जिसका चित्त शान्त, निर्विकार और एकाग्र है, वह मुक्त है। वैराग्य मुक्ति का प्रधान कारण है और ज्ञान से ही वैराग्य प्राप्त होता है।

'परम पुरुष ने मनुष्य को उन्नति के पथ पर ले जाने वाली यह धर्म की मर्यादा स्थापित की है। देवताओं-पितरों की पूजा करनी चाहिये, यह उसी की आज्ञा है। ब्रह्मा, रुद्र, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, तप, यम, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, वसिष्ठ, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, कन्दर्प, क्रोध और विक्रित ये २१ प्रजापति उसी परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं तथा उसी परमात्मा की सनातन धर्म की मर्यादा का पालन एवं पूजन करते हैं। इसके उद्देश्य से किये जाने वाले कार्यों से अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होती है।'

'इस प्रकार तुलाधार ने मुनि जाजली को नाना प्रकार के विषयों से युक्त बहुजन सम्मत अर्थ-बोधक उत्तम उपदेश दिये।'

लक्ष्मी के निवास-स्थान

युधिष्ठिर ने पूछा—'पितामह ! लक्ष्मी किन सत्पुरुषों के यहाँ निवास करती है ?''

भीष्म ने उत्तर दिया—'इस विषय पर मैं तुम्हें इन्द्र तथा लक्ष्मी का संवाद सुनाता हूँ।

'इन्द्र ने लक्ष्मी से पूछा—'पवित्र देवी ! तुम कौन हो ? और दैत्यराज बलि को त्यागकर कहाँ जा रही हो ?'

'लक्ष्मी बोली—'देव ! मुझे न तो विरोचन जानता है और न उसका पुत्र बलि ही। मुझे भूति, लक्ष्मी और श्री कहते हैं। देवताओं को भी मेरे विषय में यथार्थ ज्ञान नहीं है। धाता या विधाता भी मुझे किसी कार्य में नियुक्त नहीं कर सकते, किन्तु काल का आदेश मुझे मानना पड़ता है। काल इस समय बलि का परित्याग करने के लिये मुझे प्रेरित कर रहा है। मैं सत्य, दान, व्रत, तपस्या और धर्म में निवास करती हूँ। राजा बलि इन सबसे विमुक्त हो चुके हैं। पहले ये ब्राह्मणों के हितैषी, सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे, किन्तु अब ब्राह्मणों के प्रति इनकी दोष दृष्टि हो गयी है। पहले ये यज्ञ किया करते थे, किन्तु अब मोहित चित्त होकर अपना ही यजन कराने लगे हैं।

'जो धैर्य से विचलित नहीं होते और स्वर्ग प्राप्ति के साधनों में सानन्द लगे रहते हैं, जो अध्ययन, यज्ञ-योग में संलग्न रहते हैं, जो देवता, गुरु, पितर और अतिथियों की पूजा करते हैं, जो जितेन्द्रय, ब्राह्मण भक्त, सत्यवादी हैं, जो श्रद्धालु, धीर, क्रोध को जीत चुके हैं, जो ईर्ष्या रहित और दूसरों के गुणों में दोष दृष्टि नहीं रखते, जो स्त्री, पुत्र, बंधु-बांधवों और मित्रों का भरण-पोषण करते हैं, जो अमर्षवश कभी एक-दूसरे के प्रति लाग-डाँट नहीं रखते, जो दूसरों पर दया तथा अनुग्रह करते हैं और आचार-विचार से रहते हैं, जो सरल स्वभाव, दृढ़तापूर्वक भक्ति रखने वाले हैं, जो कृतज्ञ और मधुरभाषी हैं,

जो लज्जाशील हैं और व्रत नियमों का पालन करते हैं, जो पर्वों पर विशेष रूप से स्नान करते हैं, जो धर्म की चर्चा करते हैं और परिग्रह से दूर रहते हैं, जो अनाथ, वृद्ध, दुर्बल, रोगी, स्त्री, त्रस्त, विषादग्रस्त और जिसका सर्वस्व लुट गया है, उसको सहायता देते हैं, जो परायी स्त्री से संसर्ग नहीं रखते और सब प्राणियों को अपने ही समान समझते हैं, जिनमें निद्रा, तन्द्रा, अप्रसन्नता, अविवेक, अप्रीति, विषाद और कामना आदि दोष नहीं होते, इस प्रकार के उत्तम गुण वालों के पास मैं रहती हूँ।

'जो बड़े-बूढ़े, विद्वानों की बात पर व्यर्थ दोष निकालते हैं, जो नवयुवक बड़े-बूढ़े आने पर उठते नहीं और न प्रणाम या आदर-सत्कार करते हैं, जो बाप के रहते बेटा मालिक बन बैठता है, जो निंदित कर्मों द्वारा धन उपार्जन करते हैं, जहाँ पिता-पुत्र और पति-पत्नी परस्पर अत्याचार करते हैं, जो भोजन, घृत और दूध को झूठे हाथ से छूते हैं, जो पशुओं को घर में बाँध देते हैं और चारा-पानी से उनकी सेवा नहीं करते, जिसके घर में दिन-रात कलह मचा रहता है, जहाँ वर्ण-शंकर संतान होती है, जो दूसरे का धन हड़प लेते हैं, जहाँ माता-पिता बेटों से अन्न की भीख माँगते हैं और कष्ट से जीवन बिताते हैं, जो कृतघ्न, नास्तिक, पापाचारी, अभक्ष्य वस्तु खाने वाले और मनमाने आचरण करने वाले हैं, जो सूर्योदय के बाद दिन में और सूर्यास्त के पहले सोते हैं, जो गुरुजनों और बड़े-बूढ़ों की सेवा नहीं करते हैं उनके यहाँ मेरा निवास नहीं है। जो आलस्य, अप्रसन्नता, कामना और षट दोषों से युक्त हैं उनके यहाँ मैं नहीं रहती हूँ। जो क्रोध, लोभ, शत्रुता, अभिमान, दीर्घसूत्री शठता से युक्त हैं, इस प्रकार नीच गुणवालों के पास मैं नहीं रहती हूँ।

'अब मैं तुममें निवास करूँगी। तुम उपरोक्त गुणों से युक्त रहना, नहीं तो तुम्हें मैं त्याग दूँगी। मैंने हजारों-लाखों व्यक्ति त्यागे हैं, क्योंकि उनके ऊपर दोषों का आवरण छा गया था

और वे धर्म से च्युत हो गये थे। मेरा एक पैर पृथ्वी पर, दूसरा जल में, तीसरा अग्नि में और चौथा ब्राह्मण भक्त, सत्यवादी श्रेष्ठ पुरुष के घर में रहता है। मुझे तीनों लोकों में समस्त चराचर प्राणी प्राप्त करने की इच्छा से उत्साहपूर्वक प्रयत्न करते रहते हैं। मुझे पद्मा, पद्ममालिनी, मेधा, स्थिति, सिद्धि, कान्ति, समृद्धि, स्वाहा, स्वधा, संस्तुति, नियति और स्मृति भी कहते हैं। युद्ध में विजय पाने वाले पुण्यात्मा राजाओं की सेना के अग्र भाग में ध्वजाओं पर उनके राज्य और नगरी में धर्माचरण करने वाले श्रेष्ठ और दानशील पुरुष के निवास स्थान में मैं सदा रहती हूँ। जो विनयी, दयावान, धैर्यवान और शुद्ध कर्मों का आचरण करते हैं, जो कर्मपरायण, क्रोध-रहित, कृतज्ञ, दैव आराधना में तत्पर तथा सत्वगुणों से युक्त, क्षमाशील, जितेन्द्रिय हैं, उनके यहाँ मैं निवास करती हूँ। आशा, श्रद्धा, धृति, शान्ति, विजित, सन्नति, क्षमा और बृत्ति ये आठ देवियाँ मेरे साथ सदा रहती हैं।'

गौतम

भीष्म ने कहा—'राजन्! प्रत्येक काम को सोच-विचार कर करना चाहिए। इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें एक आख्यान सुनाता हूँ।

'महर्षि गौतम के एक महाज्ञानी पुत्र था, जिसका नाम चिरकारी था। वह कर्तव्य विषयों को भलीभाँति विचार कर सारे कार्य विलम्ब से किया करता था। वह चिरकाल तक सोता, जागता और विलम्ब से कार्य पूर्ण करता था, इसलिए लोग उसे आलसी समझकर चिरकारी कहते थे। एक दिन गौतम ने अपनी स्त्री के अपराध करने पर कुपित हो बिना विचारे ही चिरकारी को आज्ञा दी—बेटा! तू अपनी माँ को मार डाल।

'इतना कह ब्रह्मर्षि गौतम वन में चले गये। पिता की यह आज्ञा पाकर चिरकारी धर्म संकट में पड़ गया। अपने स्वभाव के अनुसार देर तक सोचकर वह इस निर्णय पर पहुँचा कि पिता की आज्ञा का पालन भी हो जाय और माता का वध भी न हो। पिता की आज्ञा का पालन करना परम धर्म है और माता की रक्षा करना भी पुत्र का प्रधान धर्म है। माता का वध करके कौन पुत्र सुखी रह सकता है और पिता की आज्ञा की अवहेलना करके कौन प्रतिष्ठा पा सकता है? माता, पिता दोनों ने ही मुझे जन्म दिया है अत: मैं दोनों को ही अपनी उत्पत्ति का कारण मानता हूँ। अत: क्या करूँ जिससे मैं अधर्म से बच जाऊँ। पिता अपने शील, सदाचार, कुल और गोत्र की रक्षा के लिए पुत्र की कामना करते हैं। पिता भरण-पोषण करने तथा शिक्षा देने के कारण पुत्र का प्रधान गुरु है इसलिए वह परम धर्म का साक्षात स्वरूप है। वेदों में भी उसी को धर्म निश्चित किया गया है। पुत्र पिता का सम्पूर्ण प्रतिरूप है और पिता पुत्र का सर्वस्व है, इसलिए पिता के आदेश का पालन करना चाहिए। जो पिता की आज्ञा का पालन करते हैं उनके पाप नष्ट हो जाते हैं। पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है और पिता ही सबसे बड़ी तपस्या है। पिता के प्रसन्न होने पर सब देवता प्रसन्न होते हैं। यदि पिता पुत्र से कभी कठोर वचन भी कह दे तो वे आशीर्वाद बन जाते हैं और यदि पिता पुत्र का अभिनन्दन करे तो पुत्र के पापों का प्रायश्चित हो जाता है। फूल डंठल से, फल वृक्ष से अलग हो जाते हैं किन्तु पुत्र को पिता से कभी अलग नहीं होना चाहिए।

'फिर उसने विचार किया कि माता से यह पाँच भौतिक मनुष्य शरीर मुझे मिला है। इसके उत्पन्न करने में माता ही मुख्य हेतु है। संसार के समस्त आर्त प्राणियों को सुख और सांत्वना देने वाली माता ही है। जब तक माता जीवित रहती है तब तक पुत्र अपने को सनाथ समझता है और उसके न रहने

पर अनाथ हो जाता है और उसके लिए संसार सूना प्रतीत होने लगता है। पुत्र निर्धन होने पर भी माता उसे माता-अन्नपूर्णा का-सा व्यवहार देती है। पुत्र असमर्थ हो या समर्थ, दुर्बल हो या हृष्ट-पुष्ट, माता उसका पालन करती है। माता बच्चे को गर्भाशय में धारण करने के कारण धात्री, जन्म देने के कारण जननी, पालन-पोषण करने के कारण अम्बा और वीर संतान की माँ होने के कारण वीरसू कही गयी है।माता ही बालक का निकटतम शरीर है अत: कोई भी सचेतन मनुष्य अपनी माता की हत्या नहीं कर सकता। यदि कोई निर्बल एवं निस्सहाय परायी स्त्री पर बलात्कार करे, तब स्त्री को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। स्त्री के लिए पति ही परम आदरणीय है। वही उसका सबसे बड़ा देवता माना गया है। उपरोक्त बातों का विचार कर वह इस निर्णय पर पहुंचा कि माता का गौरव पिता से भी बढ़कर है।

'विलम्ब करने का स्वभाव होने के कारण चिरकारी बहुत समय तक इस प्रकार सोचता-विचारता रहा। इतने में उसके पिता वन से लौट आये। महाज्ञानी तपोनिष्ठ गौतम अपनी पत्नी के अनुचित वध पर विचार कर संतप्त हो रहे थे। वे दुःख से आँसू बहाते हुए वेदाध्ययन और धैर्य के प्रभाव से अपने को संभाल कर इस प्रकार पश्चाताप कर रहे थे। अहो ! त्रिभुवन का स्वामी इंद्र ब्राह्मण का रूप धारण कर मेरे आश्रम पर आया था। मैंने उसका स्वागत, अतिथि सत्कार किया और स्वयं ही उसकी विधिवत पूजा की, परन्तु इंद्र की विषय-लोलुपता के कारण दुःखद घटना घटित हो गयी। उसमें मेरी स्त्री का कोई अपराध नहीं है। जिसे मैंने पत्नी कहकर अपने घर में आश्रय दिया था, जो एक सती-साध्वी नारी थी, मैंने उसका वध करवा डाला। अब इस पाप से मेरा कैसे उद्धार होगा ? मैंने उदारबुद्धि चिरकारी को उसकी माता के वध के लिये आज्ञा दी थी। यदि उसने इस कार्य में भी विलम्ब कर अपने

नाम को सार्थक किया है, तो वही मुझे स्त्री हत्या के पाप से बचा सकता है।

'गौतम ने कहा—'बेटा चिरकारी! तेरा कल्याण हो। यदि आज भी तूने विलम्ब से कार्य करने के अपने स्वभाव का अनुसरण किया है तो नाम सफल है।' राजन्! इस प्रकार विचार करते हुए दुःखी महर्षि गौतम ने घर में प्रवेश किया। पिता को देखकर चिरकारी ने हथियार फेंक दिया और पृथ्वी पर गिर-कर साष्टांग प्रणाम किया। चिरकारी की माता लज्जा के मारे निश्चेष्ट खड़ी थी। यह देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

'उन्होंने कहा—'बेटा चिरकारी! तू चिरकाल तक चिरंजीवी बना रहे।' माता ने भी उसे अनेक आशीर्वाद दिये।

'चिरकाल तक सोच-विचार कर मित्रता जोड़नी चाहिये और जिसे मित्र बना लिया है उसे सहसा नहीं छोड़ना चाहिये। राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पापाचरण और किसी का अप्रिय करने में जो विलम्ब करता है उसकी प्रशंसा की जाती है। अनु-मान से किये हुए अपराधों के विषय में पूर्ण सोच-विचार कर जो निर्णय करते हैं उनकी भी प्रशंसा की जाती है।'

नर-नारायण

युधिष्ठिर ने पूछा—'पितामह! आप नर-नारायण के विषय में मुझे ज्ञान दें।'

भीष्म बोले—'परमेश्वर सम्पूर्ण जगत के आत्मा और सनातन देवता हैं। वे ही एक समय धर्म के पुत्र-रूप में प्रकट हुए थे। उनके नाम नर, नारायण, हरि और कृष्ण हैं। उनमें से अविनाशी नारायण और नर बद्रिकाश्रम में घोर तपस्या करने लगे। एक समय नारदजी घूमते घामते बद्रिकाश्रम आ पहुँचे। वे सोचने लगे कि भगवान नर और नारायण तपस्या में स्थित हैं। ये दोनों धर्मस्वरूप, यशस्वी, बुद्धिमान तथा सम्पूर्ण

प्राणियों के पिता हैं। भला ये किस देवता का भजन कर रहे हैं, ऐसा सोचकर भगवान नारायण के प्रति भक्ति से प्रेरित हो वे उनके समीप गये। भगवान नर-नारायण ने नारदजी का विधि से पूजन किया।

'तदनन्तर प्रसन्न चित्त से नारदजी ने भगवान नारायण को नमस्कार किया और कहा—'भगवन्! आप अजन्मा, सनातन, सबके माता-पिता और पुरुषोत्तम हैं। हे देव! आप में ही यह सम्पूर्ण जगत प्रतिष्ठित है। चारों आश्रमों के लोग आपकी ही प्रतिदिन पूजा करते हैं फिर आप किस देवता की पूजा कर रहे हैं?'

'भगवान बोले—'नारदजी! जो सूक्ष्म, अज्ञेय, अव्यक्त, अचल और ध्रुव है, जो इंद्रियों, विषयों और सम्पूर्ण भूतों से परे है, वही सब प्राणियों का अंतरात्मा है, वही क्षेत्रज्ञ कहा जाता है, वही त्रिगुणातीत अविनाशी तथा पुरुष कहलाता है। उसीसे क्षेत्र त्रिगुणमय अव्यक्त प्रकृति की उत्पत्ति हुई है। वह ब्रह्म सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर अंतर्यामी रूप से स्थित रहता है पर सर्व-साधारण मनुष्य को दिखाई नहीं देता। वही सम्पूर्ण ज्ञान का ज्ञेय है। वह ब्रह्म दृश्य और अदृश्य सभी वस्तुओं में व्याप्त है।

'ब्रह्म का सगुण रूप प्राणायाम द्वारा मन को निर्गुण में स्थिर करने में सहायक है। इसलिये प्राणायाम द्वारा मन को परमात्मा में लगाना चाहिये। जगत का शासन करने वाला एक ही परमात्मा है दूसरा नहीं। जैसे जल निम्न स्थान की ओर ही प्रवाहित होता है उसी प्रकार उस शासक से प्रेरित हो प्राणी अपने कर्मों का वहन करता है।

'यह जगत काल रूपी नद है जिसमें वर्ष रूपी भंवरे और महीने तरंगें हैं। दिन-रात जल का प्रवाह है। षट दोष भयंकर ग्राह हैं। यज्ञ-तप नौका है। सत्य भाषण और मोक्ष दोनों किनारे हैं। इसके प्रवाह में पड़े हुए प्राणी यमलोक की ओर चले जा रहे हैं। धार्मिक मनुष्य ही प्रज्ञा रूप पतवार द्वारा इसे पार करते

हैं। कामनाओं से आसक्त, दोषों से परिपूर्ण, चंचल चित्त वाले अज्ञानी संदेह में रहने के कारण, काल नद को पार नहीं कर पाते। ध्यान, स्वाध्याय, दान, सत्य, सरलता, क्षमा और इंद्रियों के निग्रह से तेज की वृद्धि होती है और पापों का नाश हो जाता है। इसलिए बुद्धिमान और श्रेष्ठ मनुष्य को सुकर्मों द्वारा नद या भवसागर पार होने का नित्य प्रयत्न करना चाहिये। प्रकृति ही गुणों की सृष्टि करती है। क्षेत्रज्ञ आत्मा तो उदासीन की भाँति उनको देखा करता है। वह स्वाधीन एवं उनका अधिष्ठाता है। समस्त देवता, योगी और ज्ञानी उसी अनन्त अच्युत परमात्मा की उपासना करते हैं। कुछ विद्वान कहते हैं कि पुरुषार्थ, दैव और स्वभाव तीनों मिलकर ही कार्य साधक होते हैं और कर्म और उसके फल की प्राप्ति के हेतु भी ये तीनों ही हैं। परन्तु तप ही मनुष्य के कल्याण का मुख्य साधन है। तप का मूल है शम और दम। तप के प्रभाव से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

'जिसका पाप दान, अध्ययन, श्रद्धा, व्रत, सत्य, शौच और इंद्रियनिग्रह से धुल गया है वह मन का दमन करके योग का अभ्यास करे। वह पवित्र एवं एकान्त स्थान में आसन पर बैठ जाय और मन में किसी प्रकार की व्यग्रता न आने दे। अपनी नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि रखकर सम्पूर्ण दिशाओं की ओर दृष्टिपात न करे और ध्यानमग्न हो जाय। मन को दृढ़तापूर्वक स्थापित करना योग की सिद्धि का सूचक है, अतः सम्पूर्ण प्रयत्नों से मन को सदा स्थिर रखना चाहिये। फिर मन को संकल्पों से हटाकर आत्मा में स्थापित करे। जब मन सहित इंद्रियाँ आत्मा में स्थिर हो जाती हैं तब प्राण और अपान वायु एक ही साथ वश में हो जाते हैं और योग सिद्धि अटल हो जाती है। तत्पश्चात् प्राण को भली-भाँति रोककर परमात्मा का चिंतन करे। ऐसे योगाभ्यास परायण योगी का मन शीघ्र ही प्रसन्न हो जाता है। उसे परमात्म-तत्व का प्रकाश दिखाई

देता है और उसका साक्षात्कार हो जाता है, अतः उससे विरत होना नहीं चाहता। जैसे बादल की बूंदें पर्वत को चंचल नहीं कर सकतीं, उसी प्रकार अनेक प्रकार के विक्षेप भी योगी को विचलित नहीं कर सकते। जो कोई उस परमात्मा को प्रणाम करता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है। वही समस्त पदार्थों की उत्पत्ति का कारण सर्वसद्गुण सम्पन्न होकर भी निर्गुण कहलाता है। ज्ञान योग के द्वारा या जो सदा उसको भक्ति और प्रेमभाव से स्मरण करते हैं और अनन्य भाव से उसकी शरण लेते हैं वे उसके परमपद को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए सब प्राणियों को उसकी ही उपासना करनी चाहिये। वह सद्सत्स्वरूप परमात्मा ही हम दोनों नर-नारायण की उत्पत्ति का कारण है, इसलिये हम दोनों ही उसकी पूजा करते हैं।'

भीष्म पितामह बोले—'भगवान श्रीकृष्ण बिना बादल के आकाश में उदित सहस्र सूर्य के समान तेजस्वी हैं। वे इस ब्रह्माण्ड के स्वामी, साधु पुरुषों और देवताओं के रक्षक, सर्वज्ञ, सब में ओतप्रोत और सर्वव्यापक हैं। वे ही परमात्मा इंद्रियों के प्रेरक, सर्वगुण सम्पन्न और महेश्वर हैं। भगवान श्रीकृष्ण ही अनन्त शेषनाग कहे गये हैं। जो भगवान श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करता है, उसे कीर्ति, विजय और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जब धर्म का ह्रास होता है। तब भगवान श्रीकृष्ण देवता या मानव के रूप में अवतार ले धर्म की रक्षा और स्थापना करते हैं। मनुष्य को चाहिये वे मन, वाणी और कर्म से उन भगवान की उपासना करे। राजन्! व्यासजी तथा बुद्धिमान नारदजी से सुनकर मैंने पूज्य श्रीकृष्ण के प्रभाव का यह वर्णन किया है। राजन्! तुम अपनी हत्या कर लेने को अधिक महत्व दे रहे हो किन्तु ये सब राजा युद्ध में काल द्वारा मारे गये हैं और श्रीकृष्ण ही दण्डधारी सनातन काल हैं, अतः तुम्हें अपने स्वजनों के लिये शोक नहीं करना चाहिये। यदि तुम न्यायोचित

रीति से प्रजापालन में कुशलतापूर्वक लगे रहोगे तो तुम्हें स्वर्ग-लोक प्राप्त होगा।'

युधिष्ठिर ने पूछा—'पितामह ! जिनके स्मरण करने मात्र से मनुष्य संसार बंधन से मुक्त हो जाता है उन सर्व समर्थ भगवान विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ। कुल श्रेष्ठ ! समस्त जगत में पूज्यतम परम आश्रय स्थान देव कौन है ? किस देव की स्तुति, गुण कीर्तन और पूजन करने से मनुष्य कल्याण की प्राप्ति कर सकता है ? आप समस्त धर्मों में किस धर्म को श्रेष्ठ मानते हैं तथा किसका तप करने से जीव जन्म-मरण रूप संसार बंधन से मुक्त हो जाता है ?'

भीष्म बोले—'तात ! जो स्थावर जंगम रूप संसार का स्वामी है, जो ब्रह्मादि देवों का देव है, जो देश, काल और वस्तु से अपरिच्छिन्न है, जो क्षर, अक्षर से श्रेष्ठ पुरुषोत्तम है, उसका सहस्र नामों द्वारा निरन्तर गुण कीर्तन करने से मनुष्य दुःखों से पार हो जाता है। उसी अविनाशी पुरुष का भक्ति से पूजन करने से, उसका ध्यान करने से तथा स्तवन एवं नमस्कार-करने से मनुष्य भव-सागर से पार हो जाता है। जो विकार-रहित है, जो सर्वव्यापक है, जो सम्पूर्ण लोकों का महेश्वर है, उस लोकाध्यक्ष देव की निरंतर स्तुति करनी चाहिये। जो सबका हितकारी है, जो सब धर्मों को जानने वाला है, जो प्राणियों की कीर्ति बढ़ाने वाला है, जो समस्त भूतों का उत्पत्ति स्थान एवं संसार का कारण रूप है उस परमेश्वर का स्तवन करने से मनुष्य दुःख से छूट जाता है। मैं सम्पूर्ण धर्मों में इसी धर्म को बड़ा मानता हूँ कि मनुष्य कमलनयन भगवान वासुदेव का भक्तिपूर्वक स्तुतियों से संकीर्तन और अर्चन करे। राजन् ! जो परम महान तेजःस्वरूप है, जो परम महान तप स्वरूप है, जो परम महान ब्रह्म है, जो सबका परम आश्रय है, जो तीर्थ आदि में परम पवित्र है, जो मंगलों का भी मंगल है, जो देवों का भी देव है, प्राणियों का अविनाशी पिता है, जिससे सम्पूर्ण

भूत प्रकट और लय होते हैं, जो संसार स्वामी है, उस भगवान विष्णु के हजार नाम पाप और संसार के भय को दूर करने वाले हैं। महान आत्मस्वरूप विष्णु के जो नाम गुण के कारण प्रवृत्त हुए हैं उनमें से जो-जो प्रसिद्ध हैं और जो मुनियों द्वारा सर्वत्र गाये गये हैं उन सब नामों का मैं पुरुषार्थ सिद्धि के लिये वर्णन करता हूँ। ये विष्णु सहस्रनाम से जगत में विख्यात हैं।' फिर उन्होंने कीर्तन करने योग्य भगवान के सहस्र नामों का राजा युधिष्ठिर को पूर्ण रूप से वर्णन किया और कहा—'जो मनुष्य इस विष्णुसहस्रनाम का सदा भक्ति युक्त होकर श्रवण, कीर्तन या पठन-पाठन करता है उसका कहीं भी अशुभ नहीं होता। उसे धर्म, अर्थ, काम, यश और सन्तान की प्राप्ति होती है और वह आरोग्यवान, कान्तिवान, बलवान, रूपवान और सर्वगुण सम्पन्न हो जाता है। वह जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि के भय से छूट जाता है और आत्मसुख, क्षमा, धैर्य, स्मृति, श्री एवं कीर्ति को पाता है। इसके पाठ से मनुष्य को क्रोध नहीं आता, ईर्ष्या उत्पन्न नहीं होती, लोभ नहीं होता और बुद्धि शुद्ध रहती है, इसलिये इस परम श्रेय विष्णुसहस्रनाम का प्रतिदिन पाठ करना चाहिये।'

युधिष्ठिर ने पूछा—'पितामह ! प्रातःकाल भगवान विष्णु और विष्णुसहस्रनाम के स्तोत्रों के अलावा किस मंत्र का जप और किस देवता को प्रणाम करना चाहिये ?'

भीष्म पितामह ने कहा—'राजन् ! वेद में भगवान शिव के ग्यारह नाम विख्यात हैं, उन नामों का कीर्तन और भगवान शिव को नमस्कार करना चाहिये। वे ग्यारह नाम इस प्रकार हैं: अजैकपाद्, अहिर्बुधन्य, पिनाकी, अपराजित, ऋत, पितृ-रूप, त्रयम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हवन और ईश्वर।

'इसी प्रकार सूर्य भगवान को नमस्कार करना चाहिये। ये आदित्य बारह कहलाते हैं: अंश, भग, मित्र, जलेश्वर, वरुण, धाता, अर्यमा, जयन्त, भास्कर, वृष्ठा, पूषा, इंद्र तथा विष्णु।

'आठ वसुओं को भी प्रणाम करना चाहिये, उनके नाम इस प्रकार हैं: धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास, नासत्य और दस्त्र दो अश्विनीकुमार कहलाते हैं वे भी नमस्कार के योग्य हैं।

'अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि ये सात और अरुधन्ती अत्यंत तेजस्वी और उच्चकोटि के ऋषि और ऋषि पत्नी हैं। इन्हें भी नमस्कार करना चाहिये।'

ब्राह्मण और नागराज

भीष्मजी एक और आख्यान सुनाने लगे—'युधिष्ठिर ! नेमिषारण्य में गोमती के तट पर एक महान धर्मात्मा, बुद्धिमान और शास्त्रों का ज्ञाता पद्मनाभ का नाग रहता था। वह तप, इंद्रिय-संयम, उत्तम आचार-विचार से संयुक्त और सदा स्वाध्याय में लगा रहता था। वह यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला दानियों का शिरोमणि, क्षमाशील, सत्यवादी, शीलवान और जितेन्द्रिय था। वह अनुकूल वचन बोलता, सरल भाव से रहता, कर्तव्य और अकर्तव्य को जानता और समस्त प्राणियों के हित में लगा रहता था। एक धर्म के तत्व का जिज्ञासु ब्राह्मण विचित्र वनों, तीर्थों और सरोवरों को लाँघता हुआ उस नाग के घर पर पहुँचा।

'उस समय नागराज घर पर नहीं थे, इसलिये उनकी पतिव्रता पत्नी ने ब्राह्मण का विधिपूर्वक पूजन और स्वागत किया और कहा—'मेरे माननीय पतिदेव बाहर गए हैं, वे आते ही आपका दर्शन अवश्य करेंगे।'

'ब्राह्मण बोला—'देवी! मैं उनके दर्शन करने का निश्चय कर ही यहाँ आया हूँ, अतः उनके आगमन की प्रतीक्षा करता हुआ गोमती के तट पर निवास करूँगा।' श्रेष्ठ ब्राह्मण गोमती नदी के तट पर निराहार रहकर कठोर नियमों का पालन और

जप करने लगा।

'अतिथि सत्कार के लिये प्रसिद्ध नागराज के भाई-बंधु ब्राह्मण के पास जा उसकी पूजा करके बोले—'तपोधन! आपको हमारे यहाँ अतिथि के रूप में आये आज छः दिन हो गये, किन्तु अभी तक आप भोजन लेने के लिये हमें आज्ञा नहीं दे रहे हैं। आपका आतिथ्य करना हमारा कर्तव्य है, क्योंकि हम सब गृहस्थ हैं। यहाँ रहकर आपने भोजन छोड़ दिया है, इससे हमारे धर्म में बाधा आती है। बालक से लेकर वृद्ध तक हम सब इस बात से दुःखित हैं। हम अतिथि एवं बन्धुओं को अन्न देने से पहले भोजन नहीं करते।'

'ब्राह्मण ने कहा—'आप लोगों के इस कथन से मैं तृप्त हो गया हूँ। आप लोग ऐसा समझें कि मैंने यहाँ आहार ही प्राप्त कर लिया है। नागराज के दर्शन के लिये ही यह मेरा सारा व्रत और नियम है, अतः आप लोग घर लौट जाइये।' ब्राह्मण का यह आग्रह देख नागपत्नी परिवार सहित अपने घर लौट गई।

'कुछ समय बाद नागराज घर लौटे और उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा—'कल्याणि! मेरे कथनानुसार तुम अतिथियों के पूजन में तत्पर रही हो न? मेरे वियोग ने तुम्हें शिथिल तो नहीं कर दिया है? कहीं धर्म की मर्यादा-पालन में तुम असफल या विमुख तो नहीं हो गयी हो?'

'नागपत्नी ने कहा—'पतिदेव! जब आप सदा धर्म पर स्थित रहते हैं, तब धर्म को जानती हुई भी मैं कैसे सन्मार्ग का त्याग कर कुमार्ग पर चल सकती हूँ। महाभाग! देवताओं की आराधनारूप धर्मचर्या में कोई कमी नहीं आयी है। अतिथियों के सत्कार में भी मैं सदा आलस्य छोड़कर लगी रहती हूँ, परन्तु यहाँ एक ब्राह्मण देवता पधारे हैं। वे मुझसे अपना कोई कार्य नहीं बता रहे हैं, केवल आपका दर्शन चाहते हैं। वे कठोर व्रत का पालन और वेदों का पारायण करते हुए गोमती के किनारे बैठे हैं। महाप्रज्ञ नागराज! अब आपको वहाँ जाकर

ब्राह्मण देवता को दर्शन देना चाहिये।'

'नागराज बोला—'पवित्र देवी! ब्राह्मण रूप में तुमने किसका दर्शन किया है? वे ब्राह्मण कोई मनुष्य हैं या देवता? भला कौन मनुष्य मुझे देखने की इच्छा कर सकता है? और यदि दर्शन की इच्छा करे भी तो कौन इस तरह आज्ञा देकर मुझे बुला सकता है? यशस्विनी! नाग महापराक्रमी और अत्यंत वेगशाली होते हैं। वे देवताओं, असुरों और देवर्षियों के लिये भी वंदनीय हैं, विशेषत: मनुष्यों के लिये हमारा दर्शन सुलभ नहीं है।'

'नागपत्नी ने कहा—'नागराज! उस ब्राह्मण की सरलता से तो मैं यही समझती हूँ कि वह देवता नहीं है किन्तु आपका भक्त है। जैसे वर्षा के जल का प्रेमी प्यासा पपीहा पानी के लिये बादलों की ओर देखता रहता है उसी प्रकार वह ब्राह्मण दूसरा कार्य सिद्ध करने की इच्छा से आपका दर्शन चाहता है। उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ आपके समान कोई सद्‌गृहस्थ अतिथि की उपेक्षा नहीं कर सकता, अत: आप आज इस ब्राह्मण देवता का दर्शन कीजिये। उसकी आशा भंग कर अपने आपको भस्म न कीजिये। जो आशा लेकर शरण में आये हुए के आँसू नहीं पोंछता, उसे पाप लगता है।'

'नागराज बोला—'साध्वि! मुझमें जातीयता के कारण अभिमान नहीं है, किन्तु रोष भरा हुआ है। उसे भी अब तुमने अपनी वाणी रूपी अग्नि से जलाकर भस्म कर दिया है। मैं रोष से बढ़कर मोह में डालने वाला दूसरा कोई दोष नहीं देखता। इन्द्र से भी टक्कर लेने वाला प्रतापी दशानन रावण रोष के ही अधीन हो युद्ध में श्री रामचन्द्रजी के हाथों मारा गया था। महाबली राजा कीर्तवीर्य अर्जुन इन्द्र के समान पराक्रमी था परन्तु रोष के ही कारण परशुरामजी के द्वारा युद्ध में मारा गया। इसलिये आज तुम्हारी बात सुनकर तपस्या के शत्रु और कल्याण मार्ग को भ्रष्ट करने वाले इस क्रोध को मैंने पराजित

कर लिया है। अब मैं वहाँ जाता हूँ जहाँ वे ब्राह्मण देवता विराजमान हैं। वे जो कहेंगे वही मैं करूँगा। वे सर्वथा कृतार्थ होकर यहाँ से जायेंगे।'

'नागराज मन ही मन उस ब्राह्मण के कार्य का विचार करते हुए उसके पास गया और मधुर वाणी से बोला—'हे ब्राह्मण देव! आप मेरे अपराधों को क्षमा करें। मुझ पर रोष न करें। मैं आपसे पूछता हूँ कि आप यहाँ किस प्रयोजन को लेकर आये हैं?'

'ब्राह्मण ने कहा—'मैं नागराज पद्म का दर्शन करने यहाँ आया हूँ। उन्हें कोई क्लेश न हो, सकुशल घर लौटकर आ जायें, इसके लिये योगयुक्त हो मैं वेदों का परायण कर रहा हूँ।'

'नाग बोला—'महाभाग! आपका आचरण बड़ा ही कल्याण-मय है। आप बड़े ही साधु पुरुष हैं और सज्जनों पर स्नेह रखते हैं। ब्रह्मर्षि! मैं ही वह नाग हूँ जिससे आप मिलना चाहते हैं। आप मुझे इच्छानुसार आज्ञा दीजिये, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?'

'ब्राह्मण ने कहा—'नागराज! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ जिसे मैं स्वयं नहीं जानता। मैं विषयों से निवृत्त हो परब्रह्म परमात्मा की खोज कर रहा हूँ तो भी गृह में आसक्त हुए इस चंचल चित्त की उपासना करता हूँ। आप चन्द्रमा की किरणों की भाँति सुखद एवं गुणों से प्रकाशमान हैं। इस समय मेरे मन में एक नया प्रश्न उठा है। पहले इसका समाधान कीजिये, फिर मैं आपसे अपना कार्य निवेदन करूँगा। मैंने सुना है कि आप भगवान सूर्य के भक्त हैं और वे आप पर प्रसन्न रहते हैं। भगवान सूर्य सारे भूमंडल की प्रतिदिन परिक्रमा करते हैं इसलिये उन्होंने कोई आश्चर्यजनक बात आपसे कही है तो वह मुझे भी सुनाइये।'

'नागराज बोला—'एक दिन भगवान भास्कर सम्पूर्ण लोकों को तपा रहे थे। उसी समय दूसरे सूर्य के समान एक तेजस्वी

पुरुष उन्हें दिखायी दिया जो सब ओर से प्रकाशित हो रहा था। जब वह अपने तेज से आकाश को चीरकर उनकी ओर बढ़ा, तब भगवान भास्कर ने उसके स्वागत के लिये अपनी दोनों भुजाएँ उसकी ओर बढ़ा दीं। वह तेज उनकी किरणों के समूह में समा गया और एक ही क्षण में तेजोराशि के साथ एकाकार हो सूर्य रूप हो गया। यह आश्चर्यमयी घटना देखकर मैंने सूर्य देव से निवेदन किया कि जो दूसरे सूर्य के समान यहाँ आये, वे कौन थे ?

'सूर्यदेव ने उत्तर दिया—'यह उत्तम वृत्ति से जीवन निर्वाह के व्रत का पालन करने से सिद्धि को प्राप्त हुआ एक मुनि था। यह ब्राह्मण देवता फल-मूल का आहार कर और पानी पीकर सदा एकाग्रचित्त हो ध्यानमग्न रहता था। यह ब्राह्मण देवता संहिता के मंत्रों द्वारा भगवान शंकर का स्तवन और जप किया करता था, इसलिये यह स्वर्गलोक में गया है। यह ब्राह्मण असंग रहकर कामनाओं का त्याग कर एवं शील वृत्ति से प्राप्त हुए अन्न को ही खाता था। ऐसे लोगों को जो उञ्छवृत्ति से उत्तम गति प्राप्त होती है वह न देवता, न गंधर्व और न असुर ही पा सकते हैं।'

'ब्राह्मण ने कहा—'नागराज! इसे सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मेरे मन में जो अभिलाषा थी वह पूर्ण हो गई है। महामना! आपका कल्याण हो। अब मैं यहाँ से चला जाऊँगा। यदि मेरे से आपका कुछ कार्य सिद्ध हो सके तो ऐसे अवसरों पर मेरा स्मरण करें।'

'नागराज बोला—'विप्रवर! आप जिस कार्य के लिये यहाँ आये हैं उसे तो बताइये ? मेरे द्वारा जब आपका कार्य सम्पन्न हो जाय, तब ही मेरी अनुमति ले अपने घर को जाइये। आपका मुझमें प्रेम है, इसलिये बटोही की तरह केवल मुझे देखकर ही चल देना आपके लिये उचित नहीं।'

'ब्राह्मण ने कहा—'आत्मज्ञानी नागराज! देवता भी

आपसे बढ़कर ज्ञानी नहीं हैं, यह सर्वथा यथार्थ है। मैं आप और समस्त प्राणी सदा जिसमें स्थित हैं वही आप हैं, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही आप भी हैं। मैं निश्चय नहीं कर पा रहा था कि किस पुण्यमय साधन को अपनाऊँ? किन्तु अब वह संदेह दूर हो गया है। अब मैं सिद्धि प्राप्त करने के लिये उञ्छ व्रत का ही आचरण और ब्रह्म के नामों का तप करूँगा। मैं कृतार्थ हो गया हूँ। आपका कल्याण हो। अब मैं आपसे जाने की आज्ञा चाहता हूँ।'

'नागराज की अनुमति लेकर वह दृढ़ निश्चय वाला ब्राह्मण उनके उपदेश के अनुसार यम-नियमों का पालन करता हुआ जप करने लगा।'

गौतमी, ब्राह्मणी, व्याध, सर्प, मृत्यु, काल

युधिष्ठिर ने कहा—'पितामह! आपने नाना प्रकार से शान्ति के सूक्ष्म स्वरूप का वर्णन किया है, परन्तु इन दृष्टान्तों को सुनकर भी स्वयं ही किये गये अपराधों से मन को शान्ति कैसे मिल सकती है? वीरवर। बाणों में भरे हुए आपके शरीर और इसके गहरे घावों को देख मैं बारंबार अपने पापों का ही चिन्तन करता हूँ! पुरुषसिंह! पर्वत से गिरने वाले झरने की तरह आपके शरीर से रक्त की धारा बह रही है, इसको देखकर मैं वर्षाकाल के कमल की तरह गला जाता हूँ। मेरे ही कारण समरांगण में आपकी यह दशा हुई है। मैंने क्रोध और लोभ के वशीभूत हो यह निन्दनीय कर्म किया है इसलिये न जाने किस दुर्गति को प्राप्त होऊँगा। यदि मैं पहले ही युद्ध में मारा जाता तो आपको इस प्रकार अन्यन्त पीड़ित और दुःख से आतुर अवस्था में नहीं देखता।'

भीष्म बोले—'महाभाग! जब तुम सदा परतन्त्र हो, तब अपने को शुभाशुभ कर्मों का कारण क्यों मानते हो? वास्तव में कर्मों का कारण क्या है यह विषय अत्यन्त सूक्ष्म और इंद्रियों

की पहुँच से बाहर हैं। इस विषय में विद्वान पुरुष गौतमी ब्राह्मणी, व्याध, सर्प, मृत्यु और काल के संवाद रूप एक उदाहरण दिया करते हैं।

'कुन्तीनन्दन! पूर्वकाल में गौतमी नाम की एक बूढ़ी ब्राह्मणी थी। एक दिन उसके इकलौते बेटे को साँप ने डस लिया और उसकी चेतना-शक्ति लुप्त हो गयी। इतने ही में अर्जुन नाम के एक व्याध ने उस साँप को पकड़ लिया और उसे गौतमी के पास ले आया।

'व्याध ने पूछा—'यही वह नीच साँप है जिसने तुम्हारे पुत्र को मार डाला है। बताओ, मैं किस तरह इसका वध करूँ?'

'गौतमी ने कहा—'अर्जुन! छोड़ दे इसे। होनहार को कोई टाल नहीं सकता। संसार में जो धर्माचरण करते हैं, वे भवसागर से पार हो जाते हैं, किन्तु जो पाप का बोझ ढोते हैं वे नरक समुद्र में डूब जाते हैं। इस सर्प को मार डालने से मेरा पुत्र जीवित नहीं हो सकता और इसके जीवित रहने पर भी तुम्हारी क्या हानि होगी? ऐसी परिस्थिति में प्राणी का अंत कर कौन यमलोक में जायेगा?'

'व्याध बोला—'देवि! मैं जानता हूँ कि प्राणियों को कष्ट में पड़ा देख बड़े-बूढ़े दु:खी हो जाते हैं, परन्तु दु:खी मनुष्य पर ये उपदेश प्रभाव नहीं डाल सकते। शान्ति चाहने वाले मनुष्य काल को ही नाश का कारण मानते हैं, किन्तु जो बदला लेना जानते हैं वे शत्रु का नाश करके ही शोक छोड़ते हैं। दूसरे लोग श्रेय का नाश होने पर मोहवश सदा उसके लिये शोक करते हैं. अत: इस शत्रुरूप सर्प के मारे जाने पर तुम भी अपने पुत्र-शोक को त्याग देना।'

'गौतमी ने कहा—'धर्मातमा मनुष्यों को कभी किसी तरह की हानि से भी पीड़ा नहीं होती। सज्जन सदा धर्म में ही लगे रहते हैं। मेरा यह बालक सर्वथा मरने ही वाला था, इसलिये इस धर्म की हत्या मैं नहीं चाहती हूँ। अत: तू भी दया का

आश्रय ले इस सर्प के अपराध को क्षमा कर और इसे छोड़ दे।'

'व्याध बोला---'देवि ! इस सर्प को मार डालने से जो बहुतों का भला होगा, वही अक्षय लाभ है क्योंकि इसकी मृत्यु से बहुतेरे मनुष्यों की रक्षा होगी। अनेकों की मृत्यु के लिये एक की रक्षा करना कदापि उचित नहीं है। धर्मज्ञ अपराधी को दण्ड देते हैं इसलिये यह पापी सर्प मार डालने योग्य है। वृत्रासुर का वध करके देवराज इंद्र ने बहुतों का भला किया था। भगवान रुद्र ने नीच कर्म को रोकने के लिये दक्ष का गला कटवाया जिससे वह शुद्ध बुद्धि को प्राप्त हुआ।'

'सर्प ने कहा—'नादान अर्जुन ! इस बालक की मृत्यु में मेरा दोष नहीं है, मैं तो पराधीन हूँ। क्रोध और कामना के वशीभूत होकर मैंने बालक को नहीं डँसा है। मृत्यु ने मुझे इस कार्य के लिये प्रेरित एवं विवश किया है अतः यदि इसमें कुछ अपराध है तो मृत्यु का है।'

'व्याध बोला—'ओ सर्प ! यद्यपि तूने दूसरे के अधीन होकर यह पाप किया है तथापि तू भी तो इसमें कारण है ही। जैसे मिट्टी का बर्तन बनाते समय मनुष्य, दण्ड और चाक आदि को भी उसमें कारण माना जाता है उसी प्रकार तू भी इस बालक के वध में कारण है। जो भी अपराधी हो वह मेरे लिये बध्य है। तू अपराधी है, क्योंकि तू स्वयं अपने आपको इसके वध का कारण बताता है।'

'सर्प ने कहा—'व्याध ! जैसे मिट्टी का बर्तन बनाने में दण्ड, चक्र आदि सभी कारण पराधीन होते हैं, उसी प्रकारमैं भी मृत्यु के अधीन हूँ। यदि तुम मानते हो कि दण्ड, चक्र आदि भी एक-दूसरे के प्रयोजक होते हैं इसलिये कारण ही हैं, किन्तु ऐसा मानने से एक-दूसरे को प्रेरणा देने वाला होने के कारण कार्य कारण भाव के निर्णय में संदेह हो जाता है। यदि तुम किसी का अपराध समझते हो तो वह सारे कारणों के समूह

पर ही लागू होता है।'

'व्याध ने कहा—'सर्प ! यदि यह मान भी लें कि तू अपराध का न तो कारण है न कर्ता ही, तो भी इस बालक को तूने ही मारा है। तेरे मत के अनुसार यदि दुष्टतापूर्ण कार्य करके भी कर्ता उस दोष से लिप्त नहीं होता तब तो चोर और हत्यारे आदि अपराधी भी दोष के भागी नहीं होंगे अतः उन्हें दण्ड नहीं मिलना चाहिये।'

'सर्प बोला—'व्याध ! प्रेरक कर्ता रहे या न रहे, कर्ता के बिना क्रिया नहीं होती, इसलिये यहाँ यद्यपि मैं और मृत्यु समान रूप से हेतु हैं, किन्तु मृत्यु प्रेरक होने के कारण विशेष रूप से अपराधी है। वास्तव में विचार करने पर प्रेरणा करने के कारण मृत्यु ही प्राणियों के विनाश का कारण है। जैसे यजमान के यहाँ यज्ञ में ऋत्विज अग्नि में आहुति डालते हैं किन्तु उसका फल उन्हें नहीं मिलता, इसी प्रकार इस अपराध का फल मुझे नहीं भोगना चाहिये।'

'जब सर्प ने बारंबार अपने को निर्दोष बताया तब मृत्यु देवता भी वहाँ आ पहुँचा और बोला—'सर्प ! काल से प्रेरित होकर ही मैंने तुझे इस बालक को डँसने के लिये प्रेरणा दी थी, अतः इसके विनाश में न तो तू कारण है और न मैं ही। जैसे हवा बादलों को इधर-उधर उड़ा ले जाती हैं, उसी भाँति मैं भी काल के वश में हूँ। तीनों गुण भी काल की ही प्रेरणा से प्राणियों को प्राप्त होते हैं। पृथ्वी अथवा स्वर्ग में जितने भी स्थावर जंगम पदार्थ हैं सभी काल के अधीन हैं। प्रवृत्ति-निवृत्ति तथा उनके फल सब काल के ही स्वरूप हैं। सूर्य, चन्द्र, जल, वायु, इंद्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, भाव और अभाव इत्यादि सभी काल के द्वारा ही रचे जाते हैं और काल ही इनका संहार करता है। यदि ऐसी स्थिति में भी मुझ पर दोषारोपण हो सकता है, तब तो तू भी दोषी ही है।'

'सर्प ने कहा—'अर्जुन ! तुमने मृत्यु की बात सुन ली, अतः

मुझ निरपराध को दण्ड देना तुम्हारे लिये उचित नहीं।'

'व्याध बोला--'सर्प ! मैंने तुम्हारी और मृत्यु दोनों की वात सुन ली है किन्तु इसमें तेरी निर्दोषता तो सिद्ध नहीं होती।'

'मृत्यु ने कहा--'व्याध ! हम दोनों ही काल के अधीन होने के कारण उसका ही आदेश पालन करते हैं इसलिये तुम्हें हमारे ऊपर रोष नहीं करना चाहिये।'

'कर्मों का प्रायश्चित कराने के निमित्त काल ही सबको कुसमय की ओर ले जाता है। माता-पिता की सेवा, देवताओं की पूजा तथा अन्य सद्‌गुणयुक्त सदाचार भी बुरे दिनों में किसी पुरुष के लिये सुखदायक नहीं होते। काल से पीड़ित हुए मनुष्य को विद्या, तप, दान, मित्र और बंधु-बांधब भी कष्ट से नहीं बचा पाते। यदि कोई पुरुष अपने को ही कर्ता मानते हैं तो उनको भी उत्पन्न करनेवाला तथा उनकी उन्नति-अवनति का कारण काल ही है। काल की आज्ञा का उल्लंघन करना किसी के लिये भी सम्भव नहीं है। जो अस्थिर को स्थिर और स्थिर को अस्थिर मानते हैं, उनके हृदय काल के प्रभाव से विपरीत भावना से ग्रस्त हैं। काल का सहयोग पाकर मनुष्य जिन कर्मों को करने से सुखी होता है, काल का सहयोग न रहने से उन्हीं कर्मों से उसे दुःख की प्राप्ति होती है। जो काल की पकड़ में आ चुका है उसको उससे छूटने का कोई उपाय नहीं है। सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान से महान भूत भी काल के ही अधीन है। जीव प्रमाद में पड़कर सोते रहते हैं किन्तु काल उनके पाप-पुण्य का संकलन करते हुए जागता रहता है और समय आने पर मनुष्य को उन भोगों का भोग भोगना पड़ता है। काल से प्रेरित जीव अपने पाप और पुण्य कर्मों का फल भोगने के लिये नरक और स्वर्ग में जाते हैं। वहाँ अपने कर्मों के फल का भोग भोगने के पश्चात काल की प्रेरणा से फिर इस संसार में जन्म लेते हैं। दिन-रात और महीनों के चक्र चलते रहते हैं। इसी प्रकार

जन्म, मृत्यु और जरा आदि के क्रम चलते रहते हैं। किसी प्रकार इनकी निवृत्ति हो ही नहीं सकती। काल समस्त प्राणियों को अपने वेग से बहा लेता है और उन्हें कोई भी बचा नहीं सकता। मृत्यु के वश में पड़े हुए प्राणी को कोई बचा नही सकता और जिसकी आयु शेष है उसे कोई मार नहीं सकता। जन्म के समय से ही मृत्यु मनुष्य के पीछे लगी रहती है। आत्म-ज्ञान ही सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से छुटकारा दिलाने का साधन है। आत्म-ज्ञान ही वह सिद्धि हैं जो काल के प्रभाव को रोक सकती है।'

'तदनन्तर धार्मिक विषय में संदेह उपस्थित होने पर काल भी वहाँ आ पहुँचा और व्याध से बोला—'व्याध ! न तो मैं, न यह मृत्यु और न सर्प ही इस जीव की मृत्यु के अपराधी और प्रेरक हैं। इस बालक ने जो कर्म किया है वही इसकी मृत्यु में प्रेरक हुआ है। हम सब तो कर्म के अधीन हैं। जीव अपने कर्म से ही सुख-दुःख और सब कुछ पाता है। वह कर्म से ही जीता-मरता है। जैसे धूप और छाया दोनों नित्य निरन्तर एक-दूसरे से मिले रहते हैं उसी प्रकार कर्म और कर्ता एक साथ रहते हैं।

'दुष्कृत कर्म, मन, वाणी और क्रिया से होते हैं। पहले मन के द्वारा उसका चिन्तन होता है फिर वाणी द्वारा उसे प्रकाश में लाया जाता है, तदनन्तर क्रिया द्वारा उसे सम्पन्न किया जाता है। मन से वाणी का और वाणी से शारीरिक पाप अधिक माना जाता है। दोषों को त्यागना मनुष्य को धर्माचरण के पथ पर ले जाता है। पापों से डरने से, निष्कपट धर्म का पालन करने से मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त करता है। ज्ञानी मनुष्यों के सम्पर्क से, धर्मोपदेश सुनकर इन्द्रियों का निग्रह करने से तथा सन्तोष और धैर्य धारण करने से दोषों का परित्याग होता है। अल्प बुद्धि मानव क्रूर कर्म करके अपने आपको नरकगामी बनाता है। वह यह नहीं समझता कि पुण्य कर्म सर्वथा उसके अधीन है, एवं दुष्कर्मों को त्यागने से उत्तम गति प्राप्त होती है। दोष संयम को धर्म कहा गया है वह सबसे अधिक कल्याण-

कारी है। स्वधर्म पालन से, दान देने से, तप और शुभ कर्मों के आचरण से दोष नष्ट होते हैं। जैसे नौका नदी से पार होने का साधन है उसी प्रकार सत्य स्वर्गलोक में पहुँचने की सीढ़ी है। सत्य के पालन से मनुष्य दीर्घायु होता है। सत्य से कुलपरम्परा का पालन होता है। सत्य का आश्रय लेने से लोक मर्यादा का आचरण होता है।

'मनुष्य जिस स्थूल या सूक्ष्म शरीर से जो-जो कर्म करता है उसी शरीर से वह उस कर्म का फल भोगता है। कर्म कभी नष्ट नहीं होते। इन्द्रियाँ और मन—उस कर्म के साक्षी हैं। जैसे बछड़ा हजारों गौओं के बीच में अपनी माता को पहचान लेता है उसी प्रकार पहले का किया हुआ कर्म भी कर्ता के पास जाकर उसका अनुसरण करता है।

'जो स्वेच्छा से असत् कर्म या पाप करता है उस कर्म का किसी तरह नाश नहीं होता, किन्तु असावधानी या दैवेच्छा से जो पाप बन जाता है वह दूसरे किसी श्रेष्ठ कर्म से नष्ट हो जाता है। यदि उद्देश्य कुटिलतापूर्ण न हो अपितु धर्म के गौरव से शुद्ध हो तो दोष की प्राप्ति नहीं होती। मनुष्य को जीवन में पाप और पुण्य का फल मिलता ही है, इसलिये कभी उसे दुःख कभी सुख प्राप्त होता है। कर्मों का फल भोगने पर शरीर को बहुधा आत्मा त्याग देता है। कभी बचे हुए कर्मों का फल लेकर जीव दूसरी देह धारण कर पूर्व जन्म के कर्म फलों को सेवन करता है। आत्मा कर्म नहीं करता है। शरीर क्षीण होता है आत्मा नहीं। प्रकृति के गुणों से युक्त प्राणी द्वारा ही सदा कर्म किया जाता है। प्राणी का शरीर वैसे वात, पित्त और कफ से व्याप्त रहता है इसी प्रकार सत्व, रज और तम यह तीनों गुण उससे विद्यमान रहते हैं। सत्व सदा प्रकाशस्वरूप माना गया है। रजोगुण दुःख रूप और तमोगुण मोह बताया गया है। ज्योति या तेज के द्वारा रात्रि का अंधकार नष्ट हो जाता है, परन्तु तम ज्योतियों के प्रकाश से भी दीप्त नहीं होता।

विद्वानों ने जनहित की कामना से ज्ञान द्वारा ही घोर तम का नाश बताया है। जीव की इन तीनों गुणों के प्रभाव से कर्म में प्रवृत्ति होती है, इसलिये समस्त शुभाशुभ कार्यारम्भ गुणमय है।

'आत्मा व्यग्रतारहित, अकर्ता और अविनाशी है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश, मन, यम, बुद्धि, दिन-रात और आत्मा ये सदा एक साथ मनुष्य के धर्म पर दृष्टि रखते हैं। यद्यपि निष्प्राण शरीर का सब परित्याग कर देते हैं पर मनुष्य के किये हुए कर्मों के अनुसार धर्म-अधर्म ही उसके साथ जाते हैं। जो मनुष्य पापकर्म के वशीभूत होता है वह नरक में गिरता है। परन्तु जो अज्ञानवश अधर्म करने पर पश्चाताप और प्रायश्चित करता है वह अधर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। जो कार्य मनुष्य को अच्छा नहीं लगता वह दूसरे के प्रति भी नहीं करना चाहिये। वेद, ज्ञान, कर्तव्य और अकर्तव्य, वाच्य और अवाच्य का बोध करानेवाला है। सुकर्म करने से कीर्ति और बुरे से अपयश मिलता है। वेद में तीन पवित्र कर्म बताये हैं---द्रोह न करना, दान देना, और सत्य बोलना। उनमें दान ही सबसे कल्याणकारी है। जो मनुष्य यज्ञ, दान और तपस्या में संलग्न रहते हैं वे ही पुण्य कर्म करनेवाले हैं। दानी स्वयं पूजित और सम्मानित होकर दूसरों का पूजन और सम्मान कराते हैं।'

'गौतमी ब्राह्मणी ने कहा—'अर्जुन! मनुष्य को अपने कर्मों के अनुसार ही फल मिलता है। यह बालक अपने कर्मों से ही प्रेरित हो काल के द्वारा विनाश को प्राप्त हुआ है। मैंने भी वैसा ही कर्म किया था जिससे मेरा पुत्र मर गया, अतः काल और मृत्यु अपने-अपने स्थान पर पधारें और तू इस सर्प को छोड़ दे।'

भीष्मजी बोले—'युधिष्ठिर! इस उपाख्यान को सुनकर शान्ति धारण करो, शोक में न पड़ो। काल का ही यह सारा कार्य समझो जिससे रणभूमि में अनेक भूपाल मारे गये हैं।'

दान,श्राद्ध, गंगा, दैवी और आसुरी सम्पदा

युधिष्ठिर ने कहा—'पितामह ! अब मुझे दान, श्राद्ध, गंगा और देवी-आसुरी सम्पदा के बारे में उपदेश दें।'

भीष्म बोले—'राजन्! सम्पूर्ण प्राणियों को अभय दान देना, संकट के समय उन पर अनुग्रह करना, याचक को उसकी अभीष्ट वस्तु देना और प्यासे को पानी पिलाना उत्तम दान है। जिस दान को देकर प्रत्युपकार की भावना न हो, वह दान ही श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ मनुष्य को दान देने से दाता पापमुक्त हो जाता है। जो याचक का अपनी शक्ति के अनुसार सत्कार नहीं करता वह दोषी है। जो दीन, दु:खी और दुर्बलों को कर्तव्य मानकर सहायता देता है वह पुण्यात्मा कहलाता है। यज्ञ और दान दोनों ही मनुष्य को पवित्र करने वाले कर्म हैं, किन्तु जो दान दक्षिणा से युक्त है वह यज्ञों से भी बढ़कर है। विद्वानों को दान देने से, उनकी पूजा करने से, दाता को यज्ञ का फल प्राप्त होता है। सब दानों से बढ़कर भूमि का दान है, क्योंकि पृथ्वी अचल और अक्षय है। शास्त्रों का सिद्धान्त है कि जैसा दान किया जाता है उसका वैसा ही फल मिलता है, अत: श्रद्धापूर्वक योग्य व्यक्ति को समयानुसार दान करने से पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य ऐसा समझे कि मैं धर्मात्मा हूँ, मैं बलवान हूँ, मैं राजा हूँ और दीनों की उपेक्षा करके स्वयं ही उपभोग करता है वह नरक में गिरता है।

'युधिष्ठिर ! मेरी यह धारणा है कि अन्न और जल के दान से बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं हैं क्योंकि अन्न और जल से ही सब प्राणी जीवन धारण करते हैं। जल से अन्न की उत्पत्ति मानी गई है, इसलिये जल-दान का भी बड़ा महत्व है। दान के समय यदि क्रोध आ जाये तो वह दान के फल को नष्ट कर देता है, इसलिये श्रद्धा से दान करना चाहिये। वेद मंत्रों से सदा पवित्र होने के कारण हव्य और कव्य नष्ट नहीं होते हैं। यदि

दाता निष्काम भाव से दान देते हैं तब देवता और पितर उन्हें सादर ग्रहण करते हैं। धर्मात्मा श्रोत्रियों को दिया हुआ हव्य-कव्य प्रज्वलित अग्नि मे डाली हुई आहुति के समान सफल होता है। स्वधर्म का पालन करने वाला ब्राह्मण या तपस्वी दोनों ही दान देने योग्य सुपात्र हैं। जो सदाचार के ही भक्त हैं, जिनके घर में सदाचार का ही पालन होता है, जिन्हें सदाचार का ही बल है, जिन्होंने सदाचार का ही आश्रय ले रखा है, उनको दिया हुआ दान महान फल की प्राप्ति कराने वाला है। जो दान, तपस्या और सत्य के द्वारा धर्म का अनुष्ठान करते हैं, जो क्षमावान, धीर, धर्म कार्य के लिये उद्यत रहने वाले हैं, जो अनासक्त हो वस्त्र, आभूषण, भोजन, फल, अन्न-दान करते हैं, उनके कार्य कुटुम्ब की वृद्धि में सहायक होते हैं। दान देने के समय ऊँकार सहित पुण्याह वाचन करना चाहिये।

'देवता, पितर, अग्निहोत्र सम्बन्धी कार्यों में दिये हुए दान का महान फल होता है। जिस मनुष्य को जो प्रिय लगे उसे उसी वस्तु का सदा दान करना चाहिये। पुण्य क्षेत्रों में तथा पुण्य के अवसरों पर जो दान दिया जाता है वह अत्यन्त शुभकारक है। गौएँ परम पवित्र हैं, अतः गौओं का दान भी श्रेष्ठ माना गया है। कुआँ, धर्मशाला, देवस्थान, गौशाला आदि का निर्माण या जीर्णोद्धार भी उत्तम दान ही कहलाता है। विद्यादान, रोगियों को औषधि प्रदान करना भी श्रेष्ठ दान ही है। वृक्ष छाया, फल और फूल प्रदान करने वाले हैं इसलिये उनकी रक्षा और लगाने का कार्य भी पुण्यमय दान के सदृश ही है। जो मनुष्य जन्म से ही कल्याणमय गुणों से सम्पन्न होते हैं, यह उनके पूर्व जन्म की तपस्या और दान का ही फल है।

'श्राद्ध--कर्म धन, यश और पुत्र की प्राप्ति कराने वाले हैं, अतः विधि के साथ उनका अनुष्ठान करना चाहिये। सभी तिथियों में श्राद्ध करने से पितर प्रसन्न होते हैं। श्राद्ध-वेत्ताओं ने श्राद्ध कल्प में जो हविष्य नियत किये हैं वे सबके सब

काम्य हैं। जो वेद का ज्ञाता अथवा उपदेशक है, जो श्रोत्रिय नियमपूर्वक व्रत का पालन करने वाला, सत्यवादी, धर्मशील, अपने कर्तव्य में तत्पर है, वह पात्र श्राद्ध कर्मों के लिये उपयुक्त है। अतः इन्हें दिया हुआ श्राद्ध में दान अक्षय होता है।

'जिसके श्राद्ध के भोजन में मित्रों की प्रधानता रहती है, उनके श्राद्धकर्म पितरों और देवताओं को तृप्त नहीं करते। श्राद्ध के लिये शास्त्रों में जो फल-मूल आदि भोज्य पदार्थ बताये गये हैं उन सबका ही प्रयोग करना चाहिये। श्राद्ध में पहले अग्नि को भोजन अर्पण करना चाहिये। पहले माता-पिता को पिण्ड देना चाहिये, फिर दादा-दादी को। पिता, पितामह और प्रपितामह—इनके रूप में तीनों पिण्डों में ब्रह्म को ही स्थित जानना चाहिये।

'राजन्! धर्म का मूल है चित्त की शुद्धि और यश का मूल है धर्म। अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम सुख है। सम्पूर्ण धर्मशास्त्रों में अहिंसा को परम पद बताया गया है। धर्म और अधर्म पहले मन में ही आते हैं। यदि मन को वश में कर लिया जाय तो स्वर्ग मिलता है, नहीं तो नरक की प्राप्ति अवश्यम्भावी है। शरणागत की रक्षा करने से जो महान फल प्राप्त होता है, उसके विषय में तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ।

'एक समय एक बाज कबूतर को मार रहा था। वह कबूतर बाज के डर से भाग कर राजा शिवि उशीनर की गोद में छिप गया। राजा उशीनर ने पक्षी को आश्वासन देकर कहा—'अण्डज! शान्त रह! यहाँ तुझे कोई भय नहीं है। बता तुझे यह भय कहाँ और किससे प्राप्त हुआ है? तूने क्या अपराध किया है? जिससे तू बेसुध-सा हो रहा है। अब तू मेरी शरण में आ गया है अतः तुझे कोई भी पकड़ने का साहस नहीं करेगा।'

'इतने में ही बाज भी वहाँ आ गया और बोला—'राजन्! विधाता ने इस कबूतर को मेरा भोजन नियत किया है। मैंने बड़े प्रयत्न से इसे प्राप्त किया है अतः आप मेरे इस आहार को

आश्रय देकर विघ्न न डालिये। मैं बड़ी दूर से इसके पीछे पड़ा हुआ हूँ। मेरे पंखों और पंजों से यह घायल हो चुका है अतः ऐसी दशा में आप इसकी रक्षा न करें। नरश्रेष्ठ! आप अपने देश में रहने वाले मनुष्यों की ही रक्षा के लिये राजा बनाये गये हैं। भूख से पीड़ित पक्षी के आप स्वामी नहीं है। यदि आप में शक्ति हो तो आपकी आज्ञा भंग करने वाले शत्रुओं तथा इंद्रियों के विषयों पर पराक्रम प्रकट कीजिये, किन्तु पक्षियों पर अपने बल का प्रयोग न कीजिये। यदि धर्म के लिये आप इस कबूतर की रक्षा करना चाहते हैं तो मुझ भूखे पक्षी पर भी आपको सहानुभूति रखनी चाहिये।'

'बाज की बात सुनकर राजर्षि उशीनर को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे उससे इस प्रकार बोले—'बाज! तुम्हारी भूख मिटाने के लिये मैं तुम्हें किसी दूसरे पशु का माँस प्रस्तुत कर दूँगा किन्तु मैं शरणागत का त्याग नहीं कर सकता।'

'बाज ने कहा—'राजन्! मैं दूसरे का माँस नहीं खाऊँगा। सनातन काल से मेरे लिये जो खाद्य नियत किया गया है वही मुझे मिलना चाहिये। निष्पाप नरेश! यदि आपको इस कबूतर पर बड़ा स्नेह है तो आप मुझे इसके बराबर अपना ही माँस तौल कर दे दीजिये।'

'राजा बोला—'बाज! तुमने मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया है। मैं ऐसा ही करूँगा।' तदनन्तर राजा ने अपना माँस काटकर तुला पर रखना आरम्भ कर दिया। यह देखकर अंतःपुर की रानियों, मंत्रियों, बंधु-बांधवों, सत्पुरुषों और भृत्य-जनों में हाहाकार मच गया। यद्यपि राजा शीघ्रता से अपने माँस द्वारा उस तराजू को भरते थे तथापि वह माँस-राशि उस कबूतर के वजन के बराबर नहीं होती थी, अतः राजा माँस काटने का प्रयास छोड़कर स्वयं ही उस तराजू पर चढ़ गये।

'यह देखकर आकाशवाणी हुई—'राजन्! तुमने शरणागत के लिये सर्वस्व निछावर कर दिया है इसलिये तुमने इस पुण्य

कर्म के प्रभाव से सनातन दिव्यलोक को प्राप्त किया है।'

भीष्मजी ने कहा—'युधिष्ठिर! जो सदाचारी, धीर, सत्य-प्रतिज्ञ और शुद्ध हृदयवाला प्राणियों पर दया रखता है वह अपने पुण्य कर्म से संसार में विख्यात हो जाता है। ज्ञानवान मनुष्य द्वारा किया हुआ थोड़ा-सा धर्म भी महान बन जाता है और अज्ञानपूर्वक किया हुआ धर्म भी निष्फल हो जाता है।

'मनुष्य सदाचार से आयु, सम्पत्ति, अत्र परत्र में कीर्ति पाता है। सदाचार ही धर्म का लक्षण है। सच्चरित्रता ही श्रेष्ठ मनुष्य की पहचान है। श्रेष्ठ मनुष्य जैसा बरताव करते हैं वही सदाचार कहलाता है। मनुष्य जितेन्द्रिय न होने पर भी श्रद्धा-मात्र से पवित्र हो जाता है। यज्ञ, होम, दैव कार्य की सिद्धि ब्राह्मणों के अधीन नहीं है, वह तो दैव की प्रसन्नता से ही होती है। जो देवता, पिता, गुरुजन, अतिथि, गौ, श्रेष्ठ पुरुष और माता-पिता का मन, वाणी एवं क्रिया द्वारा पूजन करते हैं, वे वास्तव में भगवान विष्णु की ही आराधना करते हैं।'

गंगा—भागीरथी गंगा जिन प्रदेशों के मध्य से होकर बहती है वे प्रदेश पुण्य की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। गंगा के सेवन से मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त करता है। मरने पर जिनकी हड्डियाँ गंगाजी में डाली जाती हैं उनके पाप नष्ट हो जाते हैं। मन, वाणी और क्रिया द्वारा पाप करने वाला मनुष्य भी गंगाजी का दर्शन करने से सद्भाव को प्राप्त होते हैं। गंगाजल की अंजलि देने से दैव और पितर भी प्रसन्न होते हैं। जैसे देवताओं में सूर्य एवं चन्द्र श्रेष्ठ माने जाते हैं, उसी प्रकार सरिताओं में गंगाजी सबसे उत्तम मानी जाती हैं। इसलिये गंगाजी सर्वदा पवित्र मानी जाती हैं। गंगाजी में पापी स्नान करके गंगाजल को अपवित्र कर देते हैं, उसे गंगातट पर रहने वाले ब्रह्मत्व को प्राप्त तपःरत ऋषि-मुनि और ब्राह्मण स्पर्श मात्र से ही पुनः पवित्र कर देते हैं क्योंकि उनकी तपस्या ही धन है। वे वेदों के ज्ञाता तथा वेदोक्त धर्म का ही आश्रय लेते हैं। वे

भोजन के पहले देवताओं की पूजा करते हैं और क्षमाशील रहते हैं। वे विधिवत यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। वे जितेन्द्रिय और मन को वश में रखने वाले हैं। वे धर्म, पृथ्वी और गौओं की पूजा करते हैं। वे नित्य निरन्तर समस्त प्राणियों पर प्रसन्न-चित्त हो वेदों के स्वाध्याय में संलग्न रहते हैं। वे उत्तम व्रत का पालन करने वाले मननशील सत्य प्रतिज्ञ हैं। जो भिक्षा से जीवन निर्वाह करने वाले तपस्या में संलग्न रहते हैं वे धन, सुख और दुःख की चिन्ता नहीं करते। वे ममता प्रतिद्वंद्वियों से रहित, प्रवचन कुशल और ब्रह्मवादी हैं। वे नाना प्रकार के व्रतों का पालन करने वाले स्वभावतः पुण्यात्मा हैं। ऐसे संसार में सर्वश्रेष्ठ अज्ञानान्धकार का नाश करने वाले ऋषि-मुनियों को सब प्रणाम करते हैं।

'जहाँ गंगाजी पूर्व या उत्तर की ओर बहती हैं, जहाँ गंगाजी का दूसरी नदियों में संगम होता है, जहाँ गंगाजी का समुद्र के साथ संयोग हुआ है वे स्थान श्रेष्ठ तीर्थ हैं। गंगाजी के दोनों तटों पर मनीषी मनुष्यों ने जिस स्थान का सेवन किया है वह उत्कृष्ट तीर्थ है। तपस्या, पापनाश और बाहर-भीतर की शुद्धि के लिये पुण्य तीर्थों में स्नान करने से मनुष्य का कल्याण होता है।

दैवी और आसुरी सम्पदा——संसार में दो प्रकार के प्राणी होते हैं, एक देवभाव से और दूसरे असुर भाव से आश्रित। जो मनुष्य मन, वाणी और क्रिया द्वारा सदा सबके प्रतिकूल ही आचरण करता है वह असुर है। वे हिंसक, चोर, धूर्त, परस्त्री-गामी, नीच कर्मपरायण, शौच और मंगलाचार से रहित, अपवित्र, दूसरों पर कलंक लगाने वाले हैं। जो दैवी प्रकृति वाले मनुष्य हैं, वे मन, वाणी और क्रिया द्वारा सदा सबके अनु-कूल रहते हैं। जो शौच, सरलता में तत्पर रहते हैं, जो धीर दूसरों का धन अपहरण नहीं करते और समस्त प्राणियों के प्रति समभाव रखते हैं वे मनुष्य पवित्र हैं। जो धार्मिक, मधुर-

भाषी हैं और कभी मन से भी अयोग्य कार्य नहीं करते वे धर्मात्मा हैं। जो दरिद्र होने पर भी याचक को शक्ति अनुसार दान देते हैं, जो आस्तिक सदा बड़े-बूढ़ों की सेवा करते हैं और प्रतिदिन पुण्य कर्म में संलग्न रहते हैं वे पुण्यात्मा हैं। जो ममता और अहंकार से शून्य, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, क्रोध, लोभ, मद और मात्सर्य से रहित और परोपकारी हैं, वे साधु समान हैं। जगत में सारा चराचर समुदाय शुभाशुभ है। इनमें जो शुभ कर्म करने वाले हैं वे दैव और अशुभ आचरण करने वाले असुर हैं। इंद्रियाँ सदा जीर्ण और आयु सदा नष्ट होती जाती है। मौत सामने खड़ी है। मनुष्य सदा शारीरिक और मानसिक व्याधियों से पीड़ित रहता है। वह अपने मनोरथों की पूर्ति का उपाय सोचता रहता है और कामनाओं से तृप्त नहीं होता, उसी समय उसे मृत्यु उठा ले आती है अतः आसुरी स्वभाव त्याज्य है।

'सम्पूर्ण संसार में मोक्ष के अतिरिक्त जरा और मृत्यु की निबृत्ति नहीं होती। मनुष्य न तो धन से, न रसायन प्रयोग से, न राज्य से, न यज्ञ एवं तप से और न विद्या-लाभ से जरा-मृत्यु को लांघ सकता है। जब शरीर की मृत्यु निश्चित और अटल है और यहाँ पल भर भी ठहरना काल के अधीन है, तब आसुरी स्वभाव का त्यागना ही श्रेयष्कर है। इस प्रकार सदा सभी पदार्थों और जीवन की अनित्यता का चिन्तन करने से मनुष्य दैवी स्वभाव का होकर उसके मन में वैराग्य उदय हो जाता है और वह जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्त होने का प्रयत्न करता है। मुक्ति के प्रयत्नों द्वारा मनुष्यों की सद्गति हो जाती है और वह दुःख से छूट जाता है।

'शौच दो प्रकार का माना गया है। एक बाह्य और दूसरा आभ्यन्तर, जिसे मानसिक सुकृत कहते हैं। शरीर को शुद्ध रखना, आचमन करना बाह्य शौच है। बाहर-भीतर की शुद्धता से ही भजन, तप, स्वाध्याय, दान देने की प्रवृत्ति और

सत्य भाषण होता है। कृतज्ञ मनुष्यों के लिये गुरुजनों का सत्कार करना आवश्यक है। अध्यापक, माता और पिता, बड़ा भाई, मामा, श्वसुर और भय से रक्षा करने वाला स्वामी भी गुरुजन कहे गये हैं। जो गुरुजनों से कलह, विवाद, छल, कपटव्यवहार नहीं करता और आलस्य छोड़कर उनकी आज्ञा का पालन करता है, वह पुण्यात्मा है। जो गुरुजनों से द्रोह करते हैं उनसे बढ़कर पापाचारी इस संसार में दूसरा कोई नहीं है। संकल्प से, दृष्टि से, न्यायोचित वचन से, स्पर्श से और संयोग से गुरुजनों से प्रीति होती है। यज्ञ और तप का फल मनुष्य को वैसा लाभ नहीं पहुँचाता जैसा गुरुजनों का आशीर्वाद। सभी आश्रमों में गुरुजनों की सेवा के बिना कोई भी धर्म सफल नहीं होता, इसलिये क्रोधरहित और सरल भाव से उनकी सेवा करनी चाहिये।

'मनुष्य को शुभ कर्म करना और अशुभ से दूर रहना चाहिये।'

भीष्म पितामह की स्वर्ग-यात्रा

राजा युधिष्ठिर को कुरुकुल शिरोमणि भीष्मजी के बताए हुए पचास दिन के समय का स्मरण हो आया। वे बंधु-बांधवों को ले कुरुक्षेत्र में शान्तनुनन्दन भीष्मजी के पास जा पहुँचे। उस समय बुद्धिमान व्यास, देवर्षि नारद और असित देवल ऋषि भीष्म पितामह के पास बैठे थे। अनेक देशों के नरेश जो युद्ध-भूमि में आहत नहीं हुए थे, वे महात्मा भीष्म की रक्षा कर रहे थे। कुन्तीकुमार ने पहले पितामह को प्रणाम किया, उसके बाद व्यास आदि ब्राह्मणों को मस्तक झुकाया।

सर शय्या पर सोये हुए भरतश्रेष्ठ भीष्मजी से धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार बोले—'महाबाहो! मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। प्रभो! मेरे पास आचार्य, ऋषि, सब भाई और

भगवान श्रीकृष्ण भी यहाँ उपस्थित हैं।' भीष्मजी ने आंखें खोलकर सम्पूर्ण भारतवंशियों को देखा। फिर प्रवचनकुशल बलवान भीष्म ने युधिष्ठिर की विशाल भुजा हाथ में लेकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहा—'कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! सौभाग्य की बात है कि तुम, ऋषि-मुनि, बंधु-बांधव और भगवान श्रीकृष्ण यहाँ उपस्थित हैं। सहस्र किरणों से सुशोभित भगवान सूर्य अब दक्षिणायन से उत्तरायण लौट चुके हैं। इन तीखे अग्रभाग वाले बाणों की शय्या पर शयन करते आज मुझे अठावन दिन हो गये। इस समय चन्द्रमा के अनुसार माघ शुक्ला अष्टमी प्रतीत होती है। तुम धर्म को अच्छी तरह जानते हो और अर्थ तत्व का भी तुमने भलीभाँति निर्णय किया है। तुमने अनेक शास्त्रों का ज्ञान रखनेवाले विद्वान ब्राह्मणों की सेवा की है और उनके सत्संग से लाभ उठाया है इसलिये तुम्हारे मन में सब प्रकार के सन्देह मिट गये होंगे ?'

फिर उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा—मनुजेश्वर ! तुम्हें बीती घटनाओं पर शोक नहीं करना चाहिये, क्योंकि जो कुछ हुआ है वह अवश्यम्भावी था। ये पाण्डव जैसे राजा पाण्डु के पुत्र हैं वैसे ही धर्म की दृष्टि से तुम्हारे भी। ये सदा गुरुजनों की सेवा में संलग्न रहते हैं। तुम भी धर्म में स्थित रहकर अपने पुत्रों के समान ही इनका पालन करना। धर्मराज युधिष्ठिर का हृदय बहुत ही शुद्ध है। ये सदा तुम्हारी आज्ञा के अधीन रहेंगे। तुम्हारे पुत्र बड़े दुरात्मा, क्रोधी, लोभी, ईर्ष्या के वशीभूत तथा दुराचारी थे, अतः उनके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।'

मनीषी धृतराष्ट्र से ऐसा कहकर कुरुवंशी भीष्म ने महाबाहु भगवान श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहा—'देव देवेश्वर ! देवता और असुर सभी आपके चरणों में मस्तक झुकाते हैं। नारायण देव ! आप वासुदेव, हिरण्यात्मा, पुरुष, सविता, विराट, जीवात्मा और सनातन परमात्मा हैं, आपको मेरा नमस्कार है। पुरुषोत्तम ! आप मेरा उद्धार करें और मुझे जाने की आज्ञा दें।

आप ही जिनके परम आश्रय हैं, उन पाण्डवों की भी आपको सदा रक्षा करनी चाहिये। मैंने दुर्बुद्धि दुर्योधन से कहा था कि जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ धर्म है, और जहाँ धर्म है उस पक्ष की जय होगी। इसलिये दुर्योधन! तुम भगवान श्रीकृष्ण की सहायता से पाण्डवों के साथ संधि कर लो। इस प्रकार बारंबार कहने पर भी उस मंद बुद्धि ने मेरी बात नहीं मानी और सारी पृथ्वी के वीरों का नाश कराकर अन्त में वह स्वयं भी काल के गाल में चला गया। हे माधव ! अब आपकी आज्ञा से मैं इस शरीर का परित्याग करूँगा, जिससे मुझे परमगति प्राप्त होगी।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले––'महातेजस्वी भीष्मजी ! मैं आपको सहर्ष आज्ञा देता हूँ, आप वसुलोकों में जाइये। इस लोक में आपके द्वारा अणु मात्र भी पाप नहीं हुआ है।' गंगानन्दन भीष्म ने पाण्डवों और धृतराष्ट्र से कहा—'तुम्हें सदा सत्य, धर्म का पालन करना चाहिये क्योंकि सत्य ही सबसे बड़ा बल है। तुम लोगों को सबके साथ कोमल व्यवहार करना, सदा अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखना तथा धर्मनिष्ठ एवं तपस्वी होना चाहिये।' ऐसा कहकर बुद्धिमान भीष्म ने सब सुहृदों को गले से लगाकर आशीर्वाद दिया। तदनन्तर कुरुश्रेष्ठ शान्तनु-नन्दन चुप हो गये और अपने आपको भगवान श्रीकृष्ण में विलीन कर दिया। यह देख उपस्थित सज्जनों की आँखों से प्रेम के अश्रु बह निकले और सबने भीष्म पितामह की जय ध्वनि करते हुए उनके लिये मंगल कामनाएँ कीं। देवताओं ने दुन्दुभियाँ बजाईं और फूलों की वर्षा की। सिद्धों और ऋषियों को बड़ा हर्ष हुआ और वे भीष्मजी को साधुवाद देने लगे। भगवान श्रीकृष्ण ने पांडवों और उनके सुहृदों का शोक दूर करने एवं धैर्य धारण करने की शिक्षा दी और कहा कि भीष्मजी उत्तम लोक में गये हैं। सब कुरुश्रेष्ठ भीष्मजी की अंतिम क्रिया करने के पश्चात अपने-अपने घर चले गये।

जब राजा युधिष्ठिर भीष्मजी को गंगाजी में जलाञ्जली

दे बाहर निकले, उस समय उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह रही थी और उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ शोक से व्याकुल थीं। वे व्याध के बाणों से बिंधे हुए गजराज के समान गिर पड़े, किन्तु भगवान श्रीकृष्ण की प्रेरणा से भीमसेन ने उन्हें पकड़ लिया।

भगवान श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—'राजन् ! आपको ऐसा अधीर नहीं होना चाहिये।'

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—'कुरुवंश के सिंह कुन्तीनन्दन ! उठो और जो कार्य शेष रह गया है उसे पूर्ण करो। तुमने क्षत्रिय धर्म के अनुसार पृथ्वी पर विजय पायी है। अब तुम अपने भाइयों और सुहृदों के साथ इसे भोगो। तुम्हारे लिए शोक करने का कोई कारण नहीं है। शोक तो मुझको और गांधारी को करना चाहिये, जिनके सौ पुत्र स्वप्न में प्राप्त हुए धन की भाँति नष्ट हो गये। मुझे दुःख है कि मैंने परम हितैषी महात्मा विदुर के हितकर वचनों पर ध्यान नहीं दिया, इसलिये आज अत्यन्त संतप्त हो रहा हूँ। धर्मात्मा विदुर ने मुझसे कहा था कि यदि आप अपने कुल का कल्याण चाहते हैं तो इस मंदबुद्धि दुष्टात्मा दुर्योधन का परित्याग कर धर्मात्मा युधिष्ठिर को उनके राज्य पर अभिषिक्त कीजिये। मैंने पापी दुर्योधन का ही अनुसरण किया, क्योंकि मेरी बुद्धि मंद हो गयी थी। नरेश्वर ! दुःख में डूबे हुए हम दोनों बूढ़े माता-पिता की ओर देखो।' बुद्धिमान राजा धृतराष्ट्र के ऐसा कहने पर भी मेधावी युधिष्ठिर चुप ही रहे।

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'यदि मनुष्य मरे हुए प्राणियों के लिये मन में शोक करता है तो उसका वह शोक पहले के मरे हुए पितामहों को भारी संताप में डाल देता है। इसलिये अब आप यज्ञों के अनुष्ठान द्वारा देवता और पितरों को तृप्त कीजिये। आपने भीष्मजी से राजधर्म का वर्णन सुना है और श्रीकृष्ण द्वैपायनव्यास, देवर्षि नारद और विदुरजी से कर्तव्य का उपदेश श्रवण किया है। महाराज ! शोक त्याग दीजिये,

क्योंकि जो कुछ हुआ है वैसी ही होनहार थी। युद्ध में जो वीर मारे गये हैं उन्हें आप नहीं देख सकते।'

युधिष्ठिर ने कहा—'गोविन्द आपका जो मेरे ऊपर प्रेम है, वह मुझे अच्छी तरह ज्ञात है। आपका स्नेह और सौहार्द सदा ही मुझ पर कृपा करते रहे हैं। इसलिये कृपासिंधो! मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।'

अश्वमेध-यज्ञ

व्यासजी ने कहा—'युधिष्ठिर! मनुष्य काल से प्रेरित होकर ही भले-बुरे काम करता है, अतः तुम्हें युद्ध-भूमि में मरे हुओं के लिये शोक नहीं करना चाहिये। यदि तुम अपने आपको ही युद्धरूपी पापकर्म का प्रधान हेतु मानते हो तो वह पाप जिस प्रकार नष्ट हो सकता है वह उपाय करो। पुरुषसिंह! पापाचारी मनुष्य यज्ञ, दान और तपस्या से ही पवित्र होते हैं। जैसा विधिवत् यज्ञ दशरथनन्दन श्रीराम और शकुन्तलानन्दन राजा भरत ने किया था उसी प्रकार तुम भी करो। राजन्! इस विषय में मैं तुम्हें करन्धम के पौत्र मरुत का वृत्तान्त सुनाता हूँ :

'अविक्षित के पुत्र मरुत में प्रजा का अनुराग था। उन्होंने मन में यज्ञ का संकल्प कर वृहस्पतिजी से कहा—'गुरुदेव! आपने कुछ समय पहले मुझे यज्ञ करने की आज्ञा दी थी, उस यज्ञ को मैं अब प्रारम्भ करना चाहता हूँ। आपके कथनानुसार मैंने यज्ञ की सब सामग्री एकत्र कर ली है। मैं आपका पुराना यजमान हूँ इसलिये मेरा यह यज्ञ आप करवा दीजिये।'

'वृहस्पतिजी ने कहा—'अब मैं देवराज इन्द्र का पुरोहित हो गया हूँ इसलिये तुम्हारा यज्ञ नहीं कराऊँगा।' ऐसा निराशा-पूर्ण उत्तर पाकर महाराज मरुत बड़े खिन्न मन घर लौट आये। मार्ग में उन्हें देवर्षि नारद का दर्शन हुआ। राजा मरुत ने उन्हें

विधिवत् प्रणाम किया और वृहस्पतिजी से जो उनकी वार्तालाप हुई थी, उसे उन्होंने उनको बताया।

'नारदजी बोले--'राजन्! खेद न करो। वृहस्पतिजी के भाई संवर्त बड़े तेजस्वी हैं, वे प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारा यज्ञ करा देंगे। वे इस समय वाराणसी में महेश्वर विश्वनाथ के दर्शन करने पागल के समान वेष धारण कर गए हुए हैं।'

'राजा मरुत महर्षि संवर्त के पास गए और बहुत अनुनय विनय द्वारा उन्होंने उन्हें यज्ञ करवाने के लिये राजी कर लिया।

'महर्षि संवर्त ने कहा—'राजन्! यज्ञ करने के पहले तुम्हें धन की बड़ी राशि इकट्ठी करनी होगी, इसलिए तुम हिमालय की तराई में जाकर भगवान शंकर की आराधना करो। कुवेर भगवान शंकर की आज्ञा से तुम्हें धन देंगे।' राजा मरुत्त महर्षि संवर्त की आज्ञा से हिमालय के निकट गये और भगवान शंकर की इस प्रकार स्तुति की—'भगवन्! आप अंतर्यामी हैं एवं भक्तों को अभीष्ट वर प्रदान करने वाले हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे त्रिनेत्रधारी! आप कल्याणकारी, भवसागर से पार उतारने वाले तीर्थ स्वरूप हैं। हे देवाधिदेव! आप संसार की उत्पत्ति, पालन, संहार, कामनाओं की वृष्टि करने वाले धर्मस्वरूप हैं। हे पशुपते! आप अजन्मा, सबके स्वामी, तेजस्वी, अग्नि स्वरूप हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे मृगचर्म धारणकरने वाले महादेव! आपको मेरा प्रणाम है। हे पिनाकधारी त्र्यम्बक! आप वरदान देने वाले हैं। हे विश्वेश्वर! आप ही रुद्र, शिव हैं। हे गौरीश एवं शरणागत वत्सल महादेव! आपको मेरा प्रणाम है। हे शम्भु। आप सर्वव्यापी, त्रिगुणरहित निर्मल हैं, मैं आपकी शरण में आया हूँ। अध्यात्म तत्व का विचार करने वाले ज्ञानी मनुष्य मोक्ष तत्व में जिसकी स्थिति मानते हैं तथा तत्वमार्ग में परिनिष्ठत योगीजन अविनाशी कैवल्य पद को जिनका स्वरूप समझते हैं और आसक्ति शून्य समदर्शी महात्मा जिन्हें सर्वत्र समान रूप से स्थित समझते हैं,

उन निर्गुण परमात्मा शिव की मैं शरण लेता हूँ। जो भक्तों के लिये सुलभ और विमुख रहने वालों के लिये दुर्लभ हैं उन सर्व-कल्याणी भगवान की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।' भगवान शंकर की स्तुति करने से राजा मरुत्त को धन प्राप्त हो गया। इस कथा को सुनकर पाण्डवों ने भी भगवान शिव की आराधना आरम्भ कर दी और यज्ञ करने का निर्णय लिया।

इस सुविचार से भगवान श्रीकृष्ण भी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने राजा युधिष्ठिर से कहा—'धर्मराज! कुटिलता मृत्यु का स्थान है और सरलता ब्रह्म की प्राप्ति का। यही ज्ञान का विषय है। जिसने अपने कर्तव्य-कर्मों को पूरा नहीं किया है, उसने अपने ही शरीर के भीतर बैठे शत्रुओं पर विजय नहीं पाई है। केवल राज्य आदि बाह्य पदार्थों का परित्याग करने से ही सिद्धि प्राप्त नहीं होती, किन्तु जो अनासक्त हो पदार्थों में ममत्व की दृष्टि नहीं रखता, वह ही महान भय से छुटकारा पाता है। कोई भी प्रवृत्ति कामना के बिना नहीं होती और समस्त कामनाएँ मन से ही प्रकट होती हैं। जिसका मन कामनाओं में आसक्त है, उसे संसार में दुःख मिलता है। योगी मनुष्य अभ्यास से योग को ही मोक्ष का मार्ग निश्चय कर कामनाओं का नाश कर डालता है। कामनाओं का निग्रह ही धर्म है और वही मोक्ष का मूल है। राजन्! आपको अपने मन के साथ युद्ध कर उस पर विजयी होना चाहिये। तभी योग के द्वारा परब्रह्म को प्राप्त करोगे। महाराज! आप अश्वमेघ यज्ञों का अनुष्ठान कीजिये और अपनी उस कामना को धर्म में लगा दीजिये जिससे उत्तम कीर्ति और परलोक में श्रेष्ठ गति मिलेगी।'

भगवान श्रीकृष्ण की हितकर शिक्षा से महाराज युधिष्ठिर यज्ञ का अनुष्ठान करने की तैयारी करने लगे। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले—'निष्पाप कुरुनन्दन! यहाँ मेरे रहने का जो प्रयोजन था वह अब पूरा हो गया। अब मैं द्वारिका

जाना चाहता हूँ इसलिये यदि तुम उचित समझो तो महात्मा राजा युधिष्ठिर से मेरा यह प्रस्ताव कहो।' भगवान श्रीकृष्ण के कथन से अर्जुन मन में दुःखित हुए। महाराज युधिष्ठिर ने भी भगवान श्रीकृष्ण का खिन्न मन से प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण कुन्ती, विदुर और पाण्डवों से सत्कारपूर्वक विदा ले हस्तिनापुर से चल पड़े।

युधिष्ठिर ने व्यासजी से कहा—'भगवन् ! जब आपको अश्वमेघ यज्ञ आरम्भ करने का ठीक समय जान पड़े, तब आप मुझे उसकी दीक्षा दें।'

व्यासजी बोले—'धर्मराज ! आगामी चैत्र की पूर्णिमा को यज्ञ को सम्पूर्ण किया जाएगा। जो अश्व चुना जाय, उसे शास्त्रीय विधि के अनुसार छोड़ो। वह तुम्हारे दीप्तमान यश का विस्तार करता हुआ सुरक्षित रूप से पृथ्वी पर भ्रमण करेगा। राजन् ! अर्जुन सब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ, सहनशील, धर्म और अर्थ में कुशल तथा सम्पूर्ण विद्याओं में प्रवीण है अतः वे ही इस घोड़े के पीछे-पीछे जायेंगे। कुन्तीकुमार ! भीमसेन अमित पराक्रमी और अत्यंत तेजस्वी है। नकुल में भी वे ही गुण हैं। ये दोनों ही राज्य की रक्षा करने में पूर्ण समर्थ हैं अतः वे राज्य के कार्य देखें। कुरुनन्दन ! सहदेव कुटुम्ब पालन संबंधी समस्त कार्यों की देख-भाल करे।'

कुरुतिलक युधिष्ठिर ने सारा कार्य उसी प्रकार सम्पन्न किया और अर्जुन को आदेश दिया—'हे महाबाहो ! अश्व की रक्षा के समय जो राजा तुम्हारा विरोध करे, उससे जहाँ तक हो सके युद्ध न करना। मेरे इस यज्ञ करने का समाचार राजाओं को बताते हुए उन्हें यथासमय यज्ञ में पधारने का निमंत्रण भी देना।'

व्यासजी एवं ऋत्विजों ने राजा युधिष्ठिर को विधिपूर्वक अश्वमेघ यज्ञ की दीक्षा दी और यज्ञ के लिये चुने हुए अश्व को शास्त्रीय विधि के अनुसार छोड़ा। अर्जुन प्रसन्नता के साथ

धर्मराज की आज्ञा से उस अश्व के पीछे-पीछे चले। मार्ग में सज्जन पुरुष अर्जुन की विजय और उनके कुशलपूर्वक शीघ्र लौटने की कामना कर रहे थे। धर्मराज की आज्ञा से अर्जुन के साथ बहुत-से वेदों के पारंगत ब्राह्मण और शूरवीर क्षत्रिय भी थे। वह अश्व पहले तो उत्तर दिशा की ओर बढ़ा फिर पूर्व की ओर। जो वीर महाभारत-युद्ध में पाण्डवों द्वारा परास्त किये गये थे या मारे गये थे उनके पुत्रों ने अर्जुन का सामना किया किन्तु वे विफल रहे। त्रिगर्त में वजदत्त से अर्जुन को भयानक युद्ध करना पड़ा किन्तु वह परास्त हो गया। जब मणिपुर नरेश बभ्रुवाहन ने सुना कि पिता अर्जुन मेरे राज्य में अश्व के पीछे आये हैं तब वह ब्राह्मणों को और बहुत-सा धन लेकर बड़ी विनय के साथ उनके दर्शन के लिये नगर से बाहर निकला, किन्तु बुद्धिमान अर्जुन ने उसका आदर नहीं किया।

वे कुपित होकर बोले-'बेटा, तेरा यह व्यवहार क्षत्रिय धर्म के विपरीत है। मैं महाराज युधिष्ठिर के अश्व की रक्षा करता हुआ तेरे राज्य के भीतर आया हूँ, किन्तु तू मुझसे युद्ध नहीं करता। तूने संसार में अभी तक कोई पुरुषार्थ नहीं किया है। यदि मैं खाली हाथ तेरे पास आता तो तेरा इस प्रकार व्यवहार ठीक था।'

अर्जुन की अपने पुत्र बभ्रुवाहन के प्रति ऐसी कटु बातें नागकन्या उलूपी जो अर्जुन की पत्नी थी, सहन न कर सकी और बभ्रुवाहन से धर्म-सम्मत बोली—'बेटा मैं तुम्हारी विमाता हूँ। तुम मेरी आज्ञा का पालन करो, इससे तुम्हें महान धर्म की प्राप्ति होगी। तुम्हारे पिता धर्मज्ञ कुरुकुल के श्रेष्ठ वीर अर्जुन इस समय युद्ध के मद से उन्मत्त हो रहे हैं, अतः इनके साथ तुम अवश्य युद्ध करो। ऐसा करने से वे तुम पर प्रसन्न होंगे।' माता के द्वारा इस प्रकार अमर्ष दिखलाने पर महातेजस्वी राजा बभ्रुवाहन ने युद्ध करने का निश्चय किया और अर्जुन का सामना करने के लिये आगे बढ़ा। उसने अपने पिता पार्थ

द्वारा सुरक्षित उस अश्व को पकड़ लिया और सैंकड़ों बाणों द्वारा अर्जुन को बींध डाला।

इस पर महातेजस्वी अर्जुन ने अपने पुत्र की प्रशंसा करते हुए उससे कहा—'महाबाहु चित्रांगदा कुमार! तुम धन्य हो। वत्स, तुम्हारा यह पराक्रम देखकर मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। अब मैं तुम पर बाणों की वर्षा करने वाला हूँ। तुम सावधान एवं स्थिर हो जाओ।' ऐसा कहकर अर्जुन ने बभ्रुवाहन पर नाराचों की वर्षा आरम्भ कर दी किन्तु बभ्रुवाहन ने बिजली के समान तेजस्वी उन समस्त नाराचों को अपने बाणों द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिये। कुन्तीपुत्र अर्जुन अपने पुत्र के पराक्रम से बहुत प्रसन्न थे, इसलिये उन्होंने उसे अधिक पीड़ा नहीं दी, किन्तु बलबान बभ्रुवाहन पिता को युद्ध में विरत मानकर बाणों द्वारा पीड़ा देने लगा। उसने बालोचित अविवेक के कारण परिणाम पर विचार किये बिना ही एक तीखे बाण द्वारा अपने पिता की छाती में गहरा आघात पहुँचाया। उस अत्यन्त दुःखदायी बाण ने पाण्डु पुत्र अर्जुन के मर्म स्थान को बेध दिया, इससे कुरुनन्दन अर्जुन मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। राजा बभ्रुवाहन बड़े पराक्रम और अभय से लड़ा, पर अर्जुन के बाणों द्वारा वह भी घायल हो चुका था, अतः पिता को अचेत देख वह भी मूर्छित हो गया।

पति को अचेत और पुत्र को भी संज्ञा-शून्य देखकर शोक से संतप्त हो दिव्यरूप धारिणी नागकन्या उलूपी जो सामने खड़ी थी चित्रांगदा से बोली—'बहन! देखो हम दोनों के स्वामी अचेत होकर पृथ्वी पर सो रहे हैं। तुम्हारी ही प्रेरणा से मेरे बेटे ने समर विजयी अर्जुन की यह दशा की है। बहन। तुम तो आर्य धर्म को जानने वाली और पतिव्रता हो। यदि ये हमारे पति सर्वथा तुम्हारे अपराधी हों तो भी आज तुम इन्हें क्षमा कर दो। शुभे! यद्यपि मेरा पुत्र भी पृथ्वी पर निस्तेज पड़ा है तो भी मैं उसके लिये शोक नहीं करती हूँ, किन्तु मुझे

अपने पतिदेव के लिये शोक है जिनका हमने यहाँ इस प्रकार आतिथ्य सत्कार किया है। बहन ! तुम्हें शोक या पश्चाताप नहीं हो रहा है इसका क्या कारण है ?' चित्रांगदा अर्जुन को संबोधन कर फिर बोली--'प्राणेश्वर ! मैंने तुम्हारा यज्ञ पशु छोड़ दिया है, अतः इसकी रक्षा के लिये तुम उठो और इसके पीछे-पीछे जाओ। कुरुनन्दन ! मेरे और पाण्डवों के प्राण तुम्हारे ही अधीन हैं फिर तुम यहाँ पृथ्वी पर क्यों सो रहे हो ? बहन उलूपी ! मृत्यु के वश में पड़ा हुआ मेरा यह बालक चाहे सदा के लिये भूमि पर सोता रह जाये, किन्तु निद्रा के स्वामी अरुणनयन अर्जुन अवश्य जीवित हों यही उत्तम है। विधाता ने पति और पत्नी का सम्बन्ध सर्वदा और अटूट बनाया है। इस महत्व को समझो और ऐसा कोई उपाय करो जिससे तुम्हारा भी इनके साथ स्थापित किया हुआ सम्बन्ध सत्य एवं सार्थक रहे। बहन ! मैं पति और पुत्र से वंचित होकर दुःख में डूब रही हूँ अतः सबके देखते-देखते मैं आमरण अनसन करूँगी,' और वहीं उपवास का संकल्प लेकर चुपचाप बैठ गयी।

कुछ समय पश्चात राजा बभ्रुवाहन को चेत हुआ। उसने देखा, माता पति के साथ मरने का निश्चय करके बैठी है। इससे उसे अत्यंत दुःख हुआ और उसने अपनी शोकग्रस्त माता से कहा—'मेरे अपराध को क्षमा करो। संग्राम में किसी के लिये, जिनका सामना करना नितान्त कठिन है, जो सम्पूर्ण शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हैं, उन्हीं मेरे पिता अर्जुन की मैंने अज्ञान के आवरण से ऐसी दशा कर दी। माता ! मुझे धिक्कार है कि ऐसा कुकर्म करने पर भी मेरी छाती नहीं फटती। मैं अत्यन्त पापी, क्रूर और समरांगण में पिता की हत्या करने वाला हूँ अतः इन असीम पापों का नाश करने के लिये मुझे कौन-सा प्रायश्चित करना चाहिये। नागकुमारी माता ! अब मैं इस शरीर को धारण नहीं कर सकता। मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं भी उसी मार्ग पर जाऊँगा जहाँ पिताजी गये हैं, क्योंकि

उनके बिना मेरा जीवन असम्भव है।'

पिता के शोक से संतप्त हुआ मणिपुर नरेश बभ्रुवाहन अपनी माता के साथ आमरण उपवास व्रत लेकर बैठ गया। यह देख उलूपी संजीवनी मणि जो नागों के जीवन की आधारभूत है ले आई और बभ्रुवाहन से बोली—'बेटा ! उठो, शोक न करो। ये अर्जुन तुम्हारे द्वारा परास्त नहीं हुये हैं। ये तो संग्राम में अपने पुत्र का बलबुद्धि जानना चाहते थे। ये तो मनुष्य और इन्द्र सहित सभी देवताओं के लिये भी अजेय हैं। यह तो मैंने तुम्हारे यशस्वी पिता धनंजय का प्रिय करने के लिये ही मोहिनी माया दिखलायी थी। पुत्र ! मेरे पास जो दिव्य मणि है वह नागराजों को जीवित किया करती है। तुम इसे अपने पिता की छाती पर रख दो, वे स्वस्थ हो जायेंगे।'

माता उलूपी की आज्ञा से निष्पाप, अमित तेजस्वी बभ्रुवाहन ने अपने पिता पार्थ की छाती पर स्नेहपूर्वक वह मणि रख दी। उस मणि के प्रभाव से शक्तिशाली अर्जुन देर तक सोकर जगे हुए की भाँति आँख मलते हुए पुनः उठ खड़े हुए। बभ्रुवाहन ने उनके चरणों में प्रणाम किया और अर्जुन ने भी उसको हृदय से लगाकर उसका मस्तक सूँघा।

अर्जुन ने देखा, बभ्रुवाहन की शोकाकुल माता चित्रांगदा उलूपी के साथ खड़ी है। अर्जुन ने नागकन्या उलूपी से पूछा—'देवी ! यह सारा समरांगण शोक, विस्मय और हर्ष से युक्त क्यों दिखायी देता है ? यहाँ स्त्रियों के आने का क्या कारण है ?'

नागराज कन्या हँसती हुई-सी बोला—'प्राणवल्लभ ! पहले तो मैं आपके चरणों में सिर रखकर प्रणाम करती हूँ। यदि मुझसे कोई दोष हो गया हो तो आप मुझ पर क्रोध न करें, क्योंकि मैंने जो कुछ किया है वह सब आपकी प्रसन्नता के लिये ही किया है। प्राणेश्वर ! आपने महाभारत युद्ध में शान्तनुनन्दन भीष्म पितामह को शिखण्डी को आगे करके उन्हें अधर्मपूर्वक मारा है, उस पाप का अब प्रायश्चित हो गया। उसकी

शांति किये बिना ही यदि आप प्राणों का परित्याग करते तो उस पाप कर्म के प्रभाव से निश्चय ही आपको नरक में जाना पड़ता। महामते ! पूर्व काल में गंगातट पर वसुओं और गंगाजी ने आपको शाप दिया था कि वीर अर्जुन की मृत्यु उनके पुत्र के हाथ होगी। यह सुनकर मेरी सारी इंद्रियाँ व्यथित हो उठीं और मैंने अपने पिताजी से सारा वृतान्त कह दिया। पिताजी को यह अशुभ समाचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ और वे वसुओं के पास जाकर बारंबार आपके अपराध की क्षमा याचना करने लगे।

'तब वसुगण बोले--'महाभाग नागराज! मणिपुर का नवयुवक राजा बभ्रुवाहन अर्जुन का पुत्र है, यदि वह युद्ध भूमि में अपने बाणों द्वारा उन्हें पृथ्वी पर गिरा देगा तब अर्जुन हमारे शाप से मुक्त हो जायेगा।' मेरे पिता ने मुझसे यह बात कही थी। तब से मैंने इसीके अनुसार चेष्टा की है और आपको शाप से मुक्त किया है। प्राणेश्वर ! देवराज इन्द्र भी आपको युद्ध में परास्त नहीं कर सकते। पुत्र तो आपकी आत्मा ही है। किन्तु शाप के कारण इसके हाथ से यहाँ आपकी पराजय हुई है।'

अर्जुन ने प्रसन्न चित्त से कहा—'प्रिय उलूपी ! तुमने जो यह कार्य किया है वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। पुत्र बभ्रुवाहन ! आगामी चैत्र मास की पूर्णिमा को महाराजा युधिष्ठिर का यज्ञ सम्पन्न होगा। तुम अपनी दोनों माताओं और मंत्रियों के साथ अवश्य हस्तिनापुर आना।'

बभ्रुवाहन ने कहा—'धर्मज्ञ ! आपकी आज्ञा से मैं अश्वमेघ महायज्ञ में अवश्य उपस्थित होऊँगा और ब्राह्मणों को भोजन परोसने का काम करूँगा। मेरी प्रार्थना पर आप अपनी इन दोनों धर्मपत्नियों के साथ मेरे नगर में प्रवेश करें और एक रात सुखपूर्वक वहाँ निवास करें क्योंकि वह भी आपका ही घर है।'

अर्जुन बोला—'चित्रांगदा कुमार ! तुम जानते हो कि मैं

दीक्षा ग्रहण कर विशेष नियमों का पालन करता हुआ विचर रहा हूँ। इसलिये तुम्हारे नगर में प्रवेश नहीं करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं घोड़े के पीछे जाता हूँ।' तदनन्तर बभ्रुवाहन ने अपने पिता अर्जुन की विधिवत् पूजा की और वे अपनी दोनों भार्याओं की अनुमति लेकर वहाँ से चल दिये।

दैवयोग से घोड़ा हस्तिनापुर की तरफ चल दिया। रास्ते में राजगृह नामक नगर में राजा मेघसन्धि ने धनंजय पर आक्रमण कर दिया। दोनों में घमासान युद्ध हुआ, पर मगध नरेश थोड़ी देर में ही बलहीन हो गया। अर्जुन ने उसे सांत्वना देते हुए कहा—'वत्स ! तुमने क्षत्रिय धर्म का पूरा-पूरा प्रदर्शन किया है। अब अपने घर जाओ। भूपाल ! तुम अभी बालक हो। इस समरांगण में तुमने जो पराक्रम दिखाया है, यही तुम्हारे लिये बहुत है। राजन् ! महाराजा युधिष्ठिर का आदेश है कि चैत्र मास की पूर्णिमा को अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर तुम हस्तिना-पुर अवश्य आना।' सहदेव पुत्र मेघसन्धि ने अर्जुन की आज्ञा शिरोधार्य की और उनका विधिवत् पूजन किया।

तदनन्तर अश्व चेदीराज शिशुपाल के पुत्र शरमन की राजधानी में पहुँचा। वहाँ शरमन ने पहले तो अर्जुन से युद्ध किया किन्तु परास्त होने पर उनकी पूजा की। वीर अर्जुन ने उसे भी हस्तिनापुर आने का निमन्त्रण दिया।

दक्षिण देश में महाबली शत्रुमर्दन चित्रांगद नरेश से अर्जुन का भयंकर युद्ध हुआ किन्तु वह भी परास्त हो गया। उसे भी अर्जुन ने सांत्वना देकर हस्तिनापुर आने का निमंत्रण दिया। फिर उन्होंने निषादराज एकलव्य के पुत्र को परास्त किया और उसके द्वारा भी पूजित हुए। अर्जुन का द्रविड़, आन्ध्र, रौद्र, महाषिक और कोलाचल के प्रान्तों में रहने वाले वीरों के साथ भी युद्ध हुआ। उन सबको मृदुल पराक्रम से ही जीत कर वे सौराष्ट्र, गोकर्ण और प्रभास क्षेत्र से होते हुए द्वारिकापुरी में जा पहुँचे। वहाँ पाण्डवों के मामा वसुदेव और राजा उग्रसेन

अर्जुन से बड़ी प्रसन्नतापूर्वक मिले।

उन दोनों से विदा ले अर्जुन अश्व के पीछे फिर चले जो पंचनद प्रदेश में होता हुआ गान्धार में जा पहुँचा। वहाँ शकुनि-पुत्र के साथ किरीटधारी अर्जुन का घोर युद्ध हुआ। गान्धार राजमाता अत्यन्त भयभीत हो मंत्रियों के साथ उत्तम अर्घ्य लेकर रणभूमि में उपस्थित हुई। उसने अपने व्यग्रतारहित एवं रणोन्मत पुत्र को युद्ध करने से रोका और वीर अर्जुन को प्रिय वचनों द्वारा प्रसन्न किया। सामर्थ्यशाली अर्जुन ने भी मामी का सम्मान किया और शकुनि के पुत्र को सांत्वना देते हुए कहा—'महाबाहुवीर! तुमने जो मुझसे युद्ध करने का विचार किया, यह मुझे प्रिय नहीं लगा क्योंकि तुम तो मेरे भाई ही हो। राजन्! मैंने माता गान्धारी और पिता धृतराष्ट्र का तुमसे सम्बन्ध याद कर युद्ध में तुम्हारी उपेक्षा की है, इसलिये तुम अभी तक जीवित हो।अब हम लोगों में ऐसा व्यवहार नहीं होना चाहिये। तुम आगामी चैत्र मास की पूर्णिमा पर अश्वमेध यज्ञ देखने हस्तिनापुर अवश्य आना।' यह सुन शकुनि पुत्र ने उनका सम्मान किया और उन्हें सहर्ष विदा दी। गान्धार देश से अश्व हस्तिनापुर पहुँचा। अर्जुन ने राजधानी में पहुँच कर गुरुजनों को प्रणाम किया और उन्होंने भी उन्हें बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिये।

अर्जुन के अद्भुत पराक्रम को सुनकर युधिष्ठिर के हर्ष की सीमा न रही। माघ महीने की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि एवं पुष्प नक्षत्र का योग के दिन महाराज युधिष्ठिर ने भाइयों से अश्वमेध यज्ञ के लिये सामग्री जुटाने और व्यवस्था करने की आज्ञा दी। उन्होंने उन मित्र राजाओं को निमंत्रण भेजा जो भाँति-भाँति के रत्न और अस्त्र-शस्त्र लेकर हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। राजा युधिष्ठिर ने उन अतिथियों का अलौकिक सत्कार किया। उस महायज्ञ में बहुत से वेदवेत्ता मुनि, वेदपाठी ब्राह्मण भी पधारे थे। भीमसेन के द्वारा अपूर्व सुन्दर यज्ञशाला

निर्मित की गई थी। प्रतिदिन बड़ी संख्या में ब्राह्मणों को स्वादिष्ट भोजन कराया जाने लगा। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण, बलदेवजी, सात्यकि, प्रद्युम्न, गद, निशठ, साम्ब तथा कृतवर्मा आदि वृष्णि वंशी हस्तिनापुर पहुँचे। महाराज युधिष्ठिर ने उन सबका उत्तम सत्कार किया। बभ्रुवाहन भी अपनी दोनों माताओं, मंत्रियों सहित राजधानी हस्तिनापुर में पहुँचे। पाण्डवों सहित द्रौपदी ने उन सबका बहुत सत्कार किया और नाना प्रकार की भेंट अर्पित की। बभ्रुवाहन और उनकी माताओं ने भगवान श्रीकृष्ण, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा और पाण्डवों की विधिवत पूजा की और उनसे अनेक आशीर्वाद प्राप्त किये।

तदनन्तर महर्षि व्यास ने युधिष्ठिर को यज्ञ कार्य करने की आज्ञा दी। धर्मराज युधिष्ठिर से वेदों के ज्ञाता सर्वज्ञ याजकों ने यज्ञ के सम्पूर्ण कर्म किये और करवाये। यज्ञ मंडप में अग्नि चयन के लिये चार स्थान बने थे। उनमें प्रत्येक वेदी गरुड़ के समान आकार की सुवर्णमय पंखों से युक्त बनी थी। मनीषी याजकों ने देवताओं की विधिवत पूजा की और व्यासजी ने यज्ञ को पूर्ण किया। युधिष्ठिर और पाण्डवों ने ब्राह्मणों, मुनि, याजकों और दीन-दुखियों को बहुत दान देकर संतुष्ट किया।

तत्पश्चात राजा युधिष्ठिर ने अपने राज्य की सम्पूर्ण भूमि व्यासजी को दान दे दी। उसे उन्होंने ग्रहण कर युधिष्ठिर से कहा—'राजन् ! तुम्हारी दी हुई इस पृथ्वी को मैं पुनः तुम्हारे ही अधिकार में छोड़ता हूं। तुम मुझे इसके बदले कुछ धन दे दो, क्योंकि ब्राह्मण धन के ही इच्छुक होते हैं राज्य के नहीं।'

महामना युधिष्ठिर ने कहा—'विप्रवरो ! अश्वमेध महायज्ञ में पृथ्वी की दक्षिणा देने का विधान है, अतः अर्जुन के द्वारा जीती हुई यह सारी पृथ्वी मैंने ऋत्विजों को दे दी है। अब मैं वन में चला जाऊँगा। आप लोग चातुर्होत्र यज्ञ के प्रमाणानुसार पृथ्वी के चार भाग करके इसे आपस में बाँट लें। द्विजश्रेष्ठ ! मैं ब्राह्मणों का धन नहीं लेना चाहता। मेरे भाइयों का भी ऐसा

ही निश्चय है।' इस महान त्याग की बात को सुनकर सबके हर्ष से रोंगटे खड़े हो गये।

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'भारत श्रेष्ठ पाण्डवो! तुमने बहुत ही उत्तम निश्चय किया है। तुम धन्य हो।' यही शब्द ब्राह्मण समूह के मुँह से भी निकले।

मुनिवर व्यासजी ने युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए कहा—'राजन्! तुमने तो यह पृथ्वी मुझे दे ही दी किन्तु अब मैं इसे वापस करता हूँ। तुम इन ब्राह्मणों को इसके बदले धन दे दो और पृथ्वी अपने पास ही रखो।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'धर्मराज! भगवान व्यास जैसा कहते हैं वैसा ही तुम्हें करना चाहिये।' यह सुन कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर भाइयों सहित बहुत प्रसन्न हुए और ब्राह्मणों को संतोषप्रदायक उचित धन देकर विदा किया। महातेजस्वी व्यासजी ने दक्षिणा के रूप में जो धन प्राप्त किया था वह उन्होंने बड़े आदर से कुन्ती को भेंट कर दिया। श्वसुर की ओर से प्रेमपूर्वक मिली हुए धन राशि को पाकर कुन्ती देवी बड़ी प्रसन्न हुई और उसके द्वारा उन्होंने सामूहिक पुण्य कार्य किये। राजा युधिष्ठिर यज्ञ के अंत में भाइयों से सम्मानित हो अवभृथ स्नान करके पापरहित हो गये। उन्होंने आये हुए अतिथि राजाओं को उत्तम भेंट देकर विदा किया। उन्होंने वीर बभ्रुवाहन को भी प्रचुर धन दे अपने राज्य में लौटने की आज्ञा दी। तदनन्तर राजा युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति की और उन्हें भी परिवार सहित विदा किया। उस यज्ञ में जो निमंत्रित आये थे, वे आनन्द विभोर हो रहे थे क्योंकि जिसकी जैसी इच्छा थी वही उसको मिलता था, इसलिये इच्छा व कामना के तृप्त होने पर वे अपने-अपने घर लौट गए।

श्रद्धापूर्वक दान सबसे उत्तम

महाराज युधिष्ठिर के महान दान से चारों ओर जय-जय ध्वनि हो रही थी। इसी समय उनकी सभा में एक नेवला जिसकी आँखें नीली थीं और शरीर का आधा भाग सुनहरा था, आया और कहा—'राजन्! तुम्हारा यह यज्ञ एक उञ्छवृत्तिधारी उदार ब्राह्मण के सेरभर सत्तू दान करने के बराबर भी नहीं हुआ है।'

नेवले की बात सुन समस्त श्रेष्ठ ब्राह्मणों को बड़ा आश्चर्य हुआ। ब्राह्मणों ने उससे पूछा—'नेवले! इस यज्ञ में तो साधु पुरुषों का ही समागम हुआ है। तुम कहाँ से आ रहे हो? तुम में कौन-सा बल और कितना शास्त्र ज्ञान है? तुम कौन हो? हमें अपना परिचय दो। तुम इस यज्ञ की निन्दा क्यों करते हो? हमने नाना प्रकार की सामग्रियों द्वारा यह यज्ञ पूर्ण किया है। इस यज्ञ में शास्त्रसम्मत और न्याययुक्त प्रत्येक कर्तव्य कर्म का यथोचित पालन किया गया है। इसमें पूजनीय पुरुषों की विधिवत पूजा हुई है और मंत्रों द्वारा अग्नि में आहुतियाँ दी गई हैं। महाराजा युधिष्ठिर ने निष्काम भाव से देने योग्य वस्तुओं का दान किया है। यह सब होने पर भी तुमने यहाँ क्या देखा या सुना है जिससे इस यज्ञ पर आक्षेप लगाते हो?'

नेवला बोला—'विप्र वृन्द! मैंने आप लोगों से मिथ्या या घमंड में आकर कोई बात नहीं कही है। मैंने सब सत्य ही कहा है। मैंने उपरोक्त वृत्त करने वाले ब्राह्मण के सम्बन्ध में जो कुछ देखा और अनुभव किया है वह उत्तम एवं अद्‌भुत है। उस दान के प्रभाव से उस द्विजश्रेष्ठ ने पत्नी, पुत्र, पुत्रवधु सहित स्वर्गलोक को प्राप्त किया है। वहाँ जिस तरह मेरा यह आधा शरीर स्वर्ण रूप बन गया, वह सब प्रसंग मैं आप लोगों को बताता हूँ।

'द्विज श्रेष्ठो! कुछ समय पहले धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में बहुत से

धर्मज्ञ महात्मा और ब्राह्मण रहते थे। वे उञ्छवृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करते थे। वे शुद्ध आचरण जितेन्द्रिय तपस्या में संलग्न रहते थे। एक समय वहाँ भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। एक ब्राह्मण के पास अन्न का संग्रह नहीं था अतः वह भूख से संतप्त रहने लगा। एक दिन ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष में दोपहर के समय ब्राह्मण सपरिवार अन्न लाने के लिये चला। यद्यपि वे सब भूख, गर्मी और परिश्रम से पीड़ित थे किन्तु उन्हें अन्न नहीं मिला। एक आगन्तुक ने उन्हें एक सेर जौ अर्पण किया। उन्होंने उस जौ से सत्तू तैयार किया और जप तथा नैत्यिक नियम पूर्ण करके अग्नि में विधिपूर्वक आहुति देने के पश्चात उस सत्तू को बाँटकर खाने का प्रयत्न करने लगे। उसी समय एक ब्राह्मण अतिथि उनके यहाँ आया। उस अतिथि को प्रणाम कर उन्होंने उससे उसका मंगल पूछा और कहा—'भगवन् ! अर्घ्य, पाद्य, आसन और यह सत्तू आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं। इन्हें आप स्वीकार कर हमें कृतार्थ करें। ब्राह्मण ने जो अपने भाग का सत्तू उस अतिथि को अर्पण किया था वह उसने खा लिया किंतु उससे वह संतुष्ट नहीं हुआ।

'ब्राह्मण पत्नी ने कहा—'नाथ ! यह मेरे भाग का सत्तू भी इन्हें दे दीजिये जिससे कि ब्राह्मण देवता इच्छानुसार तृप्ति लाभ कर यहाँ से पधारें।' गृहस्थ ब्राह्मण ने विचार किया कि यह मेरी वृद्धा स्त्री अत्यन्त दुर्बल, क्षुधा से पीड़ित, थकान से काँप रही है। इस तपस्विनी के शरीर में चमड़े से ढकी हुई हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया है, ऐसी अवस्था में इससे उसके भाग का सत्तू अतिथि को नहीं देना चाहिये।

'ब्राह्मण बोला—'शोभने ! अपनी स्त्री की रक्षा और पालन-पोषण करना तो कीट-पतंग और पशु का भी कर्तव्य है अतः तुम्हें ऐसी बात नहीं करनी चाहिये। जो पुरुष होकर भी स्त्री के द्वारा अपना पालन-पोषण और देह रक्षण करता है, वह मनुष्य दया का पात्र है। वह उज्ज्वल कीर्ति से भ्रष्ट हो जाता

है और उसे उत्तम लोक नहीं मिलते। धर्म, काम, अर्थ-सम्बन्धी कार्य, सेवा सुश्रूषा तथा वंश-परम्परा की रक्षा सब स्त्री के ही अधीन है। जो पुरुष स्त्री की रक्षा करना अपना कर्तव्य नहीं समझता या रक्षा करने में असमर्थ है, वह महान अपयश का भागी होता है और उसे नरक में जाना पड़ता है।'

'ब्राह्मणी ने कहा—'पतिदेव ! स्त्रियों का सत्य, धर्म, स्वर्ग तथा उनकी सारी अभिलाषा पति के ही अधीन है। पति के संयोग से ही वंश-परम्परा चलती है। स्त्रियों के लिये पति ही सबसे बड़ा देवता है। आप पालन करने के कारण मेरे पति, भरण-पोषण करने से भर्ता और पुत्र प्रदान करने के कारण वरदाता हैं। इसलिये यह मेरे हिस्से का सत्तू अतिथि देवता को अर्पण कीजिये। जैसी मेरी स्थिति है वैसी ही आपकी भी है।' पत्नी के आग्रह पर ब्राह्मण ने पत्नी के हिस्से का भी सत्तू अतिथि देवता को दे दिया। अतिथि उस सत्तू को भी खा गया, किन्तु असन्तुष्ट ही रहा।

'पुत्र बोला—'पिताजी ! आप मेरे हिस्से का यह सत्तू भी अतिथि देवता को दे दीजिये। मैं इसे पुण्य मानता हूँ। साधु पुरुषों का कथन है कि पुत्र को अपने माता-पिता का यत्नपूर्वक पालन-पोषण करना चाहिये। सनातन श्रुति भी यही कहती है। प्राण धारण मात्र से तप हो सकता है अतः प्राण ही परम धर्म है।'

'पिता ने कहा—'बेटा ! पुत्र को जन्म देकर ही पिता अपने को कृतकृत्य मानता है। बच्चों की भूख प्रबल होती है। मैं तो बूढ़ा हूँ, अतः भूखा रहकर भी प्राण धारण कर सकता हूँ। जीर्ण अवस्था हो जाने के कारण मुझे भूख अधिक कष्ट नहीं देती। मैं तो दीर्घ काल तक तपस्या कर चुका हूँ, इसलिये अब मुझे मरने का भय भी नहीं है।'

'पुत्र बोला—'तात ! मैं आपका पुत्र हूँ, पुरुष का त्राण करने के कारण ही संतान को पुत्र कहा है, अतः आप अपने

आत्माभूत पुत्र के द्वारा अपनी रक्षा कीजिये।'

'पिता ने कहा—'बेटा ! तुम शील, धर्म, आचरण, इंद्रिय-संयम में मेरे ही समान हो। तुम्हारे इन गुणों की मैंने अनेक बार परीक्षा की है।' यह कह उसने पुत्र के हिस्से का सत्तू भी अतिथि देवता को हँसते-हँसते परोस दिया। वह सत्तू खाकर भी अतिथि देवता का पेट न भरा। यह देखकर ब्राह्मण संकोच में पड़ गया।

'उनकी पुत्रवधू भी बड़ी सुशीला थी। उसने बड़ी प्रसन्नता से अपने श्वसुर से कहा—'पूज्यवर ! आपके पुत्र से मुझे संतान प्राप्त होगी। पुत्र के द्वारा मनुष्य पितृ-ऋण से छूटकर उन लोकों में जाते हैं जहाँ शोक नहीं करना पड़ता। जैसे धर्म संयुक्त अर्थ और काम स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाले हैं तथा जैसे आह्व-नीय, आर्हपत्य और दक्षिणाग्नि ये तीनों स्वर्ग प्राप्त कराने के साधन हैं उसी प्रकार पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र ये त्रिविध संतानें स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाली हैं। आप मेरे परम पूज्य हैं। मेरे हिस्से का सत्तू भी आप अतिथि देवता को अर्पित कीजिये।'

'श्वसुर बोला—'बेटी ! हवा, धूप, व्रत और आचार का पालन करने से तुम कान्तिहीन और दुर्बल हो गई हो। क्षुधा के कष्ट से तुम्हारा चित्त अत्यंत व्याकुल है। तुम्हें ऐसी दशा में देखकर तुम्हारा सत्तू मैं कैसे अतिथि को अर्पण करूँ ? तुम्हारा सत्तू लेने से अधर्म होगा, इसलिये कल्याणि ! तुम्हें ऐसी बात नहीं करनी चाहिये।'

'पुत्रवधू ने कहा—'भगवन् ! आप मेरे गुरु देवता हैं। मेरा शरीर, प्राण और धर्म बड़ों की सेवा के लिये ही है। आपके प्रसाद से मुझे उत्तम लोकों की प्राप्ति हो सकती है अतः आप मुझे भक्त मानकर यह सत्तू अतिथि को दे दीजिये।'

'श्वसुर बोला—'बेटी ! तुम सती, साध्वी, धर्मशीला और सदाचार पालन करने वाली नारी हो, अतः तुम्हारा दिया हुआ सत्तू मैं अवश्य अतिथि को देता हूँ।'

'चौथे भाग का सत्तू खाकर ब्राह्मण महात्मा बड़ा प्रसन्न हुआ। उस श्रेष्ठ द्विज के रूप में साक्षात धर्म ही वहाँ उपस्थित थे। वे ब्राह्मण से बोले—'द्विजश्रेष्ठ ! तुमने अपनी शक्ति के अनुसार धर्मपूर्वक न्यायोपार्जित शुद्ध अन्न का दान मुझे दिया है इससे तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हूँ। भूख मनुष्य की बुद्धि को मंद कर देती है, इसलिये वह धीरज खो बैठता है और उसके धार्मिक विचार मिट जाते हैं। जब मनुष्य में दान विषयक रुचि जाग्रत होती है, तब उसके धर्म का ह्रास नहीं होता। मनुष्य के लिये न्यायपूर्वक धन उपार्जन कर उसे सत्पात्र को अर्पण करना ही श्रेष्ठ कर्म है। साधारण समय में दान देने की अपेक्षा उत्तम समय पर दान देना अच्छा है किन्तु श्रद्धा का महत्व काल से भी बढ़कर है। स्वर्ग का द्वार मनुष्य मोह, क्रोध और लोभवश देख नहीं पाते, किन्तु जो जितेन्द्रिय हैं वे दान के प्रभाव से उस द्वार को देखते हैं। निर्धन राजा रंतिदेव जल का ही दान कर पाये थे, इससे वे स्वर्ग लोक में गये। तात ! अन्यायपूर्वक प्राप्त हुए द्रव्य की बड़ी राशि दान देने से भी धर्म को उतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी न्यायपूर्वक श्रद्धा से दिये हुए थोड़े से अन्न-दान से होती है। ब्राह्मण ! मैं धर्म हूँ, मेरी प्रसन्नता से तुम स्त्री, पुत्र और पुत्रवधू के साथ शीघ्र ही स्वर्ग में चले जाओगे।' इतना कह धर्म अंतर्धान हो गये और ब्राह्मण सपरिवार स्वर्ग सिधारा।'

नेवले ने कहा—'तदनन्तर मैं बिल से बाहर आया और पृथ्वी पर पड़े हुए सत्तू के कणों को सूँघा, आचमन से गिरे हुए जल और अर्पण किये हुए पुष्पों से मेरा स्पर्श हुआ। उसी के प्रभाव से मेरा यह आधा शरीर स्वर्ण के रूप का हो गया। ब्राह्मणो ! अब मैं इस चिन्ता में हूँ कि मेरे शरीर का शेष भाग भी स्वर्ण के रूप का कैसे हो। इसी उद्देश्य से बड़े हर्ष और उत्साह के साथ मैं अनेक यज्ञ स्थलों में जाता हूँ। महाराज युधिष्ठिर के इस यज्ञ की प्रशंसा सुन बड़ी आशा लगाकर मैं

यहाँ आया था, किन्तु मेरा यह आधा शरीर स्वर्ण रूप नहीं हुआ। ब्राह्मणो ! इसीसे मैंने दु:खी मन से हँसकर कहा था कि यह यज्ञ ब्राह्मण के दिये हुए सेर भर सत्तू के बराबर भी नहीं है।'

उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों से ऐसा कह वह नेवला वहाँ से चला गया। इस पर ब्राह्मणों ने भी निश्चय किया कि न्यायोपार्जित वस्तु का श्रद्धापूर्वक दान करना अति उत्तम है।

पाण्डवों का महाप्रस्थान

महाभारत युद्ध के कई वर्षों पश्चात् राजा युधिष्ठिर को अपशुकन दिखायी देने लगे। बिजली की गड़गड़ाहट के साथ प्रचण्ड आँधी चलने लगी। दिशाएँ कुहरे से आच्छादित रहने लगीं। आकाश से उल्कापात होने लगा। उदय काल से ही सूर्य तेजोहीन प्रतीत होते थे। बहुत-से भयसूचक उत्पात दिखायी देने लगे, जो हृदय को उद्विग्न कर देने वाले थे।

अर्जुन द्वारका गये हुए थे। कई महीने बीत जाने पर भी वह वहाँ से लौटकर नहीं आये। उन्होंने भीमसेन से कहा—'भीम ! अर्जुन को हमने द्वारका इसलिए भेजा था कि वहाँ श्रीकृष्ण क्या कर रहे हैं, इसका पता लगा आयें और संबंधियों से मिल भी आयें। सात महीने बीत गये, पर वह अब तक नहीं लौटे, इसका कारण मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। कहीं देवर्षि नारद द्वारा बतलाया हुआ भगवान श्रीकृष्ण की लीला समाप्ति का समय तो नहीं आ गया ? मेरा हृदय अधीर हो रहा है और तरह-तरह की चिन्ताओं ने मुझे घेर रखा है।'

युधिष्ठिर ऐसा कह ही रहे थे कि अर्जुन द्वारका से लौटकर आये। उन्होंने देखा कि अर्जुन का शरीर निस्तेज है और उनकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। युधिष्ठिर ने चिन्तातुर हो उनसे पूछा—'भाई ! द्वारकापुरी में यादव सकुशल तो हैं ?

प्रभु बलराम तो आनन्द से हैं ? भगवान श्रीकृष्ण और सभी आत्मीय कुशल से हैं न ? तुम स्वयं कुशल से हो न ? तुम श्री-हीन से दिखलाई पड़ रहे हो, तुम्हारा किसी ने अपमान तो नहीं किया ? मुझे विश्वास है कि तुमने कोई ऐसा निन्दनीय काम नहीं किया होगा, जो तुम्हारे योग्य न हो। हो न हो, अपने परम-प्रिय सुहृदय श्रीकृष्ण के विछोह से अपने को तुम शून्य मान रहे हो । इसके सिवा ऐसा कोई दूसरा कारण तो नहीं दीखता, जिससे तुम्हें इतनी मानसिक पीड़ा हो ?'

अर्जुन श्रीकृष्ण के विरह से कृश हो रहे थे । उन्हीं के चिन्तन में वह ऐसे डूब रहे थे कि बड़े भाई के प्रश्नों का तुरन्त कुछ भी उत्तर न दे सके । भगवान ने उनके साथ जो मित्रता, अभिन्नहृदयता और प्रेम से भरे व्यवहार किये थे, उनकी याद उन्हें रह-रहकर आ रही थी, किन्तु बड़े कष्ट से उन्होंने अपने शोक के वेग को रोका और उत्तर दिया—'महाराज ! आज श्रीकृष्ण से मेरा बिछोह हो गया है । मेरे जिस प्रबल पराक्रम की बड़े-बड़े देवता भी आश्चर्य से प्रशंसा किया करते थे, उसे श्रीकृष्ण ने मुझसे छीन लिया । उनके आश्रय से स्वयंवर में राजाओं के तेज को हरण कर मैंने द्रौपदी को प्राप्त किया था । उनके सान्निध्य मात्र से देवताओं सहित इन्द्र को भी जीतकर मैंने खाण्डव-वन अग्निदेव को भेंट किया और मय दानव की निर्माण की हुई सभा प्राप्त की । भीमसेन ने उन्हींकी शक्ति से जरासंध का वध किया, जिसकी मृत्यु के पश्चात बहुत से बंदी किये गए राजाओं को मुक्त कर दिया गया था । महा-रानी द्रौपदी कौरवों के अत्याचार से आँसू भरकर जब श्रीकृष्ण के चरणों में गिर पड़ी, तब उन्होंने उसके सामने ही उस घोर अपमान का बदला लेने की प्रतिज्ञा कर उन धूर्तों की स्त्रियों की ऐसी दशा कर दी कि वे विधवाएँ ही हो गईं । वनवास के समय हमारे वैरी दुर्योधन के षड्यंत्र से दस हजार शिष्यों के साथ भोजन करने वाले महर्षि दुर्वासा ने हमें जब दुस्तर संकट

में डाल दिया था, उस समय उन्होंने द्रौपदी के पात्र में बची हुई शाक की पत्ती का भोग लगाकर हमारी रक्षा की थी । उनके ऐसा करते ही नदी में स्नान करती हुई मुनि-मडली को प्रतीत हुआ, मानो उनकी तो बात ही क्या, सारा त्रिलोक तृप्त हो गया है । उनके प्रताप से मैंने युद्ध में भगवान शंकर को प्रसन्न कर उनसे पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया । उनकी कृपा से मैं इसी शरीर से स्वर्ग गया और देवराज इन्द्र की सभा में उनके बराबर के आसन पर बैठने का मुझे सम्मान मिला ।

'महाराज ! भीष्म, द्रोण आदि महारथियों से संचालित कौरवों की सेना अजेय थी, परन्तु उनका आश्रय ग्रहण कर अकेले ही मैंने उसे परास्त किया और राजा विराट का सारा गोधन उन्हें वापस दिलाया था । कुरुक्षेत्र में कौरवों की सेना भीष्म, कर्ण, द्रोण, शल्य तथा अन्य वीरों से शोभित थी । उसके सामने मेरे आगे-आगे चलकर वे अपनी दृष्टि से ही उन महारथी यूथपतियों की आयु, मन, उत्साह और बल को हर लिया करते थे । जैसे दैत्यों के अस्त्र-शस्त्र भगवद्-भक्त प्रह्लादका स्पर्श तक नहीं करते थे, वैसे ही द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, भूरिश्रवा, शल्य और जयद्रथ आदि के शस्त्र मुझे छू तक न सके। यह सभी श्रीकृष्ण के भुजदण्डों की छत्रछाया में रहने का ही प्रभाव था। श्रेष्ठपुरुष संसार से मुक्त होने के लिये जिनके चरण-कमलों का सेवन करते हैं और अपने आप तक को जिनके लिए निछावर कर देते हैं, ऐसे भगवान को मुझ दुर्बुद्धि ने अपना सारथि तक बना डाला । महाराज ! जो मेरे हृदय ही थे, उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान से मैं आज विहीन हो गया हूँ । श्रीकृष्ण की पत्नियों को मैं द्वारका से अपने साथ ला रहा था, परन्तु मार्ग में दुष्ट भीलों ने मुझे एक अबला की भाँति हरा दिया और मैं उनकी रक्षा न कर सका। वही मेरा गाण्डीव धनुष है, वे ही बाण, वही रथ है, वे ही घोड़े और वही मैं रथी अर्जुन हूँ, परन्तु श्रीकृष्ण के बिना ये सब एक ही क्षण में निस्तेज हो गये ।

'द्वारकावासी ब्राह्मण के शापवश मोहग्रस्त हो गये। मदिरापान से उन्मत्त हो वे आपस में ही एक-दूसरे से भिड़ पड़े और नष्ट हो गये। उनमें केवल चार-पाँच ही बचे हैं। वास्तव में यह सर्वशक्तिमान भगवान की ही लीला है। युदुवंशियों से भगवान ने दूसरे राजाओं का संहार कराया। तत्पश्चात यदुवंशियों से ही यदुवंश का नाश करा उन्होंने पूर्ण रूप से पृथ्वी का भार उतार दिया। भगवान श्रीकृष्ण ने मुझे जो शिक्षाएँ दी थीं, वे देश, काल और प्रयोजन के अनुकूल तथा हृदय के ताप को शांत करने वाली थीं। उनका स्मरण आते ही मेरा चित्त विकल हो जाता है।'

इस प्रकार प्रगाढ़ प्रेम से भगवान श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों का चिन्तन करते-करते अर्जुन की चित्त-वृत्ति अत्यन्त निर्मल और प्रशांत हो गई। उन्हें युद्ध के प्रारम्भ में भगवान के द्वारा उपदेश किया हुआ गीता-ज्ञान पुनः स्मरण हो आया। ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति से माया का आवरण भंग हो जाने के कारण उन्हें गुणातीत अवस्था प्राप्त हो गई। कुन्ती ने अर्जुन के मुख से यदुवंशियों के विनाश और भगवान के परमधाम-गमन की बात सुन संसार से अपना मुँह मोड़ लिया। भगवान के स्वधाम प्रयाण और यदुवंश के संहार का वृत्तान्त सुन निश्चलमति युधिष्ठिर ने स्वर्गारोहण का निश्चय किया। भगवान श्रीकृष्ण ने जिस दिन अपने मानव देह का उत्सर्ग कर इस पृथ्वी से प्रयाण किया, उसी दिन यहाँ कलियुग आ धमका। महाराज युधिष्ठिर से कलियुग का प्रसार छिपा न रहा। उन्होंने देखा कि देश, नगर, घरों और प्राणियों में लोभ, असत्य, छल, हिंसा आदि अधर्मों की वृद्धि हो रही है। अपने विनयी पौत्र परीक्षित को हस्तिनापुर के सम्राट पद पर अभिषिक्त कर युधिष्ठिर ने गृहस्थाश्रम के धर्म से मुक्ति ले संन्यास ग्रहण किया। पाण्डवों और देवी द्रौपदी ने अंगों से आभूषण उतारकर वल्कल वस्त्र धारण कर लिये। उन्होंने ब्राह्मणों और

गुरुजनों की विधिवत् पूजा की और महायात्रा के लिये प्रस्थान किया। पाण्डवों के साथ एक कुत्ता भी यात्रा में चला। ये सब योगमुक्त थे। हृदय में परब्रह्म का ध्यान करते हुए उन्होंने उत्तर दिशा की यात्रा की। भीमसेन, अर्जुन आदि भी श्रीकृष्ण के चरणों की प्राप्ति का निश्चय कर अपने बड़े भाई के पीछे-पीछे चल दिये। पाण्डवों के हृदय में भगवान श्रीकृष्ण के चरण-कमलों के ध्यान से भक्तिभाव उमड़ आया और उनकी बुद्धि सर्वथा परिशुद्ध हो भगवान के उस स्वरूप में अनन्य भाव से स्थिर हो गई, जिसे निष्पाप पुरुष ही प्राप्त कर सकते हैं।

वे अनेक तीर्थों में स्नान करते और महात्माओं का दर्शन करते थे। अर्जुन ने अपने दिव्य गाण्डीव धनुष तथा अक्षय तरकस का परित्याग नहीं किया था किन्तु अग्निदेव के कहने पर उन्होंने दिव्य आयुधों को जल में फेंक दिया। संयम और योग से पूर्ण पाण्डव महापर्वत हिमालय के निकट पहुँच गये और उन्होंने पर्वतों में श्रेष्ठ महागिरि मेरु का दर्शन किया। धर्मपरायण एवं नियमों का पालन करने वाले पाण्डव शीघ्रता से हिमालय पर चल रहे थे। उनमें से द्रुपदकुमारी कृष्णा का मन योग से विचलित हो गया, अतः वह लड़खड़ाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

उसे नीचे गिरी देख महाबली भीमसेन ने धर्मराज से पूछा—'परंतप! महारानी द्रौपदी ने कभी कोई पाप नहीं किया था, फिर किस कारण से यह गिर गई है?'

युधिष्ठिर ने कहा—'पुरुषप्रवर! उसके मन में अर्जुन के प्रति पक्षपात था। आज वह उसी का फल भोग रही है।' ऐसा कह द्रौपदी की ओर देखे बिना ही भारतभूषण बुद्धिमान, धर्मात्मा युधिष्ठिर मन को एकाग्र कर आगे बढ़ गये।

कुछ समय बाद विद्वान सहदेव भी धराशायी हो गये। भीमसेन ने पूछा—'भैया! यह तो सदा हम लोगों की सेवा किया करता था और इसमें अहंकार का नाम भी नहीं

था। दैव! यह माद्रीनंदन सहदेव किस दोष के कारण ऐसी स्थिति में पहुँचा है ?'

युधिष्ठिर बोले—'यह राजकुमार सहदेव किसी को अपने समान विद्वान् या बुद्धिमान् नहीं समझता था इसलिये इसकी यह दशा उस दोष के कारण हुई है।' ऐसा कह युधिष्ठिर और शेष भाई सहदेव को वहीं छोड़ आगे बढ़े। द्रौपदी और भाई सहदेव के वियोग से आर्त हो बंधु-प्रेमी शूरवीर नकुल भी गिर गये।'

भीमसेन ने कहा—'महाराज! संसार में जिसके रूप की समानता करने वाला कोई नहीं था, तो भी जिसने अपने धर्म में त्रुटि नहीं आने दी और जो सर्वदा हम लोगों की आज्ञा पालन में तत्पर रहता था, वह हमारा प्रिय बन्धु क्यों पृथ्वी पर गिर गया।

युधिष्ठिर बोले---'भीमसेन! नकुल के मन में सदा रूप का घमण्ड रहता था इसलिये यह पृथ्वी पर गिरा है। जिसका जैसा कर्म है वह उसका फल अवश्य भोगता है।' द्रौपदी, सहदेव और नकुल के गिरने से श्रेष्ठ पाण्डुपुत्र अर्जुन शोक से संतप्त हो स्वयं भी गिर पड़े।

इन्द्र के समान तेजस्वी दुर्धर्ष वीर पुरुषसिंह अर्जुन जब पृथ्वी पर गिरकर प्राण त्यागने लगे तब भीमसेन ने करुणा-युक्त हो राजा युधिष्ठिर से पूछा—'भैया! अर्जुन सत्यवादी, बड़ों को सम्मान देने वाले, आज्ञाकारी थे। वे ऐसी दशा को क्यों प्राप्त हुए हैं ?'

युधिष्ठिर ने कहा---'भीमसेन! इन्हें अपनी शूरता का अभिमान था। इन्होंने कहा था कि मैं एक ही दिन में शत्रुओं का नाश कर दूँगा, किन्तु ऐसा नहीं कर पाए। अर्जुन ने सम्पूर्ण धनुर्धरों का अपमान भी किया था, उन्हीं दोषों से इनकी यह दशा हुई है। अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को ऐसा नहीं कहना चाहिये।' यों कहकर राजा युधिष्ठिर आगे बढ़े। इतने

में ही भीमसेन भी गिर पड़े।

उन्होंने राजा युधिष्ठिर को पुकार कर पूछा—'मैं आपका प्रिय भीमसेन यहाँ गिर पड़ा हूँ, मेरी तरफ एक बार तो देखिये। मेरे इस पतन का क्या कारण है ?'

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—'भीम ! तुम बहुत खाते थे और अपने बल की चर्चा और गर्व किया करते थे। इसी दोष से तुम्हें धराशायी होना पड़ा है।' यह कहकर महाबाहु युधिष्ठिर उनकी ओर देखे बिना ही आगे चल दिये। वह कुत्ता भी बराबर उनका अनुसरण करता रहा।

तदनन्तर देवराज इंद्र युधिष्ठिर के पास आकर बोले—'कुन्तिनंदन ! तुम इस रथ पर सवार हो स्वर्ग में चले जाओ।' धर्मराज युधिष्ठिर ने भाइयों के शोक में संतप्त होने के कारण इन्द्र के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और बोले—'देवेश्वर ! मेरे प्रिय भाई और द्रौपदी मार्ग में गिर पड़े हैं उनके बिना मैं अकेला स्वर्ग में नहीं जाऊँगा।'

इन्द्र ने कहा—'भारत श्रेष्ठ ! तुम्हारे सभी भाई और साध्वी द्रौपदी स्वर्ग में पहुँच गये हैं। वहाँ चलने पर वे तुम्हें मिलेंगे। वे मानव शरीर का परित्याग करके ही स्वर्ग में जा सके हैं किन्तु तुम इस शरीर में वहाँ जा सकोगे।'

युधिष्ठिर बोले—'देवराज ! यह कुत्ता मेरा बड़ा भक्त है। इसने सदा ही मेरा साथ दिया है अतः इसे भी मैं स्वर्ग में ले जाना चाहता हूँ। ऐसा न करने से मैं निष्ठुरता के पाप से दोषी माना जाऊँगा।'

इन्द्र ने कहा—'राजन् ! तुम्हें अमरता, मेरी समानता, स्वर्ग सुख, पूर्ण लक्ष्मी और बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त हुई है, अतः तुम इस कुत्ते का मोह छोड़ दो और मेरे साथ चलो।'

युधिष्ठिर बोले—'देवराज ! किसी आर्य पुरुष के द्वारा निम्न श्रेणी का काम करना अधर्म कहलाता है ! मुझे ऐसी

लक्ष्मी, ऐश्वर्य नहीं चाहिये जिसके कारण भक्त का त्याग करना पड़े।'

इन्द्र ने कहा—'धर्मराज! कुत्ते के लिये स्वर्ग में स्थान नहीं है। सोच-विचार कर काम करो। हठ करने से क्रोध उत्पन्न होता है, जिसके प्रभाव से पुण्य का नाश माना गया है, तुम इस कुत्ते को यहाँ छोड़ दो। ऐसा करने से तुम्हें निर्दयता का दोष नहीं लगेगा।'

युधिष्ठिर बोले—'महेन्द्र! भक्त का त्याग करने वाले के पाप का कभी अंत नहीं होता। संसार में भक्त का त्याग ब्रह्म हत्या के समान माना गया है, अतः अपने सुख के लिये मैं इस कुत्ते का त्याग नहीं करूँगा। जो डरा हुआ हो, भक्त हो, आर्त-भाव से शरण में आया हो, दुर्बल हो, अपने प्राण बचाना चाहता हो, ऐसे प्राणी का परित्याग प्राण जाने पर भी नहीं करना चाहिये।'

इन्द्र ने कहा—'वीरवर! दान, यज्ञ, स्वाध्याय और पुण्य कर्म पर यदि कुत्ते की दृष्टि पड़ जाये तब उनके फल का नाश हो जाता है। इसलिये इस कुत्ते का त्याग कर दो अन्यथा तुम्हें स्वर्ग प्राप्त नहीं होगा। वीर! तुमने अपने सहोदर भाई और प्रिय द्रौपदी का भी परित्याग किया है फिर इस कुत्ते को नहीं त्यागते? इससे मोह करना अच्छा नहीं है।'

युधिष्ठिर बोले—'भगवन्! संसार में मरे हुए मनुष्य के साथ न किसी का मेल रहता है न विरोध। प्रिय द्रौपदी और अपने भाइयों को जीवित करना मेरे वश की बात नहीं है अतः मर जाने पर ही मैंने उनका त्याग किया है, जीवित अवस्था में नहीं। शरण में आये हुए को भय देना, स्त्री का वध करना, ब्राह्मण का धन लूटना और मित्रों के साथ द्रोह करना—ये चार अधर्म भी एक साथ यदि तुला में रखे जायें और भक्त का त्याग दूसरी ओर हो, तो मेरी दृष्टि में भक्त का त्याग उन चारों से भी भारी है।'

युधिष्ठिर का यह कथन सुनकर धर्मराज जो कुत्ते के रूप में थे, बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'राजेन्द्र ! तुम अपने सदाचार, बुद्धि और दया के कारण उत्तम पुरुष हो। बेटा ! पूर्वकाल में भी वन में रहते समय एक बार मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी, जबकि तुम्हारे सभी भाई पानी पीने का उद्योग करते हुए मारे गये थे। उस समय तुमने अपने सगे भाई भीम और अर्जुन को छोड़कर नकुल के जीवन का दान माँगा था। इस समय भी भक्त कुत्ते के कारण तुमने स्वर्ग का परित्याग करने का निश्चय किया है, इसलिये स्वर्ग में भी तुम्हारे समान कोई नहीं है। उपरोक्त कारणों से तुम्हें अपने इसी शरीर से अक्षय लोकों की प्राप्ति हुई है।' ऐसा कहकर वे युधिष्ठिर को विमान पर बैठाकर स्वर्गलोक पधारे।

युधिष्ठिर ने कहा—'देववर ! मेरे भाइयों और द्रौपदी को शुभ या अशुभ जो भी स्थान प्राप्त हुआ हो, उसीको मैं भी पाना चाहता हूँ। उन्हें छोड़कर दूसरे लोकों में जाने की मेरी इच्छा नहीं है।'

देवराज इन्द्र ने कहा—'महाराज ! तुम अपने शुभ कर्मों द्वारा स्वर्गलोक में निवास करो। मनुष्य लोक के स्नेह पाश को क्यों स्मरण करते हो ? तुम्हें जो उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है, वह तुम्हारे भाइयों को नहीं मिली।'

बुद्धिमान युधिष्ठिर बोले—'दैत्यसूदन ! अपने भाइयों के बिना मुझे वहाँ रहने का उत्साह नहीं है। मैं बुद्धिमती, सत्वगुण-सम्पन्ना द्रौपदी और मेरे भाई जहाँ गये हैं वहीं रहूँगा। मैं स्वर्ग के सुखों को देखना भी नहीं चाहता।'

देवराज इन्द्र ने उन्हें स्वर्ग में राजा दुर्योधन को दिखाया, जो देवताओं सहित श्रेष्ठ नरेशों द्वारा पूजित होकर वहाँ निवास करता था और कहा—'इसने युद्ध में अपने शरीर की आहुति दे उत्तम गति पायी है। तुम्हें दुर्योधन से अधिक सत्कार मिलेगा इसलिये अपना हठ छोड़ दो।'

युधिष्ठिर बोले--'देवेश्वर ! जिसके कारण हमने सुहृदों और बंधुओं का युद्ध में संहार कर डाला, जिसने हम लोगों को वन में अत्यंन्त क्लेश पहुँचाया, जिसने हमारी धर्मपरायण पत्नी द्रौपदी का भरी सभा में गुरुजनों के सामने अपमान किया, उस लोभी और पापी दुर्योधन और उसके साथियों के साथ मैं इस पुण्य लोक में नहीं रहूँगा। मैं दुर्योधन को देखना भी नहीं चाहता हूँ, अतः मैं वहाँ रहूँगा जहाँ मेरे भाई और प्रिय द्रौपदी हैं।'

देवराज इंद्र ने हँसकर कहा—'राजन् ! स्वर्ग में रहने पर पहले का वैर विरोध शान्त हो जाता है। तुम्हें दुर्योधन के प्रति अयोग्य विचार मन में नहीं करना चाहिये। तुम्हें इसके किये हुए अपराधों को भुला देना चाहिये। तुम दुर्योधन से सम्मान-पूर्वक मिलो।'

राजा युधिष्ठिर बोले—'देव श्रेष्ठ ! जिसके कारण हमारी क्रोधाग्नि में हजारों निरपराध वीर भस्म हो गये, जो धर्म का नाम भी नहीं जानता था, जिसने जीवन भर सुहृदों के साथ द्रोह किया, उस पापी दुर्योधन को यदि यह सनातन वीरलोक प्राप्त हुआ है तो जो वीर, महात्मा, व्रतधारी, सत्यप्रतिज्ञ मेरे भाई हैं उन्हें कौन-से लोक प्राप्त हुए हैं ? मैं उसी में निवास करना चाहता हूँ। मैं माता कुन्ती के दानवीर पुत्र महात्मा कर्ण और वीर अभिमन्यु और हमारे स्वजन जो समरांगण में मारे गये हैं उन्हें यहाँ क्यों नहीं देखता हूँ ? यदि उन्हें यह शुभ एवं अक्षय लोक नहीं प्राप्त हुआ है तब मैं भी यहाँ उनके बिना नहीं रहूँगा। अपने भाइयों से पृथक् रहकर मुझे इस स्वर्ग लोक में दुःख ही मिलेगा अतः जहाँ मेरे भाई हैं वहीं मेरे लिये स्वर्ग है।'

देवेन्द्र ने कहा—'वत्स ! यदि उन सबमें तुम्हारा ऐसा अनुराग है तो मेरा दूत तुम्हें वहीं ले जायेगा।' आगे-आगे देवराज की आज्ञा से उनका दूत चलता था पीछे-पीछे राजा युधिष्ठिर। वे दोनों उस स्थान की ओर चले जहाँ पुरुषप्रवर भीमसेन आदि थे। वे दोनों ऐसे दुर्गंधमय मार्ग पर जा पहुँचे जहाँ पापी ही

यातना भोगने के लिये आते-जाते थे। उस मार्ग पर अंधकार छाया हुआ था। मार्ग हड्डियों, केश और कीड़ों से भरा हुआ था। कौवे, गीध आदि पक्षी मुर्दों का माँस खा रहे थे। धर्मराज युधिष्ठिर मन ही मन बहुत चिन्ता करते हुए उसी मार्ग के बीच से निकले, जिसका दृश्य अमंगलकारी, वीभत्स दिखाई देता था। आगे चलकर उन्होंने देखा कि खौलते हुए पानी से भरी हुई एक नदी है जिसे पार करना अति कठिन है। उसके दूसरे किनारे पर छुरों की धार के समान पत्तों से परिपूर्ण वन है। वहाँ गरम-गरम बालू बिछी है और पत्थर की चट्टानों से अग्नि निकल रही है। कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने यह भी देखा कि वहाँ पापाचारी जीवों को बड़ी कठोर यातनाएँ दी जाती हैं। ऐसा भयानक दृश्य देखकर उन्होंने देवदूत से कहा :

'भैया ! ऐसे मार्ग पर हम लोगों को कितनी दूर और चलना है, यह कौन-सा लोक है ? मेरे भाई और सती द्रौपदी कहाँ हैं ?'

देवदूत ने कहा—'धर्मराज ! यहीं तक आपको आना था। देवराज ने मुझे आज्ञा दी थी कि जब युधिष्ठिर थक जायें तब उन्हें वापस लौटा लाना अतः आपको लौटना है।' युधिष्ठिर वहाँ की दुर्गंध से घबड़ा गये थे। उन्हें मूर्छा-सी आने लगी थी, इसलिये उन्होंने लौटने का निश्चय किया। शोक और दुर्गंध से पीड़ित धर्मात्मा युधिष्ठिर ज्योंही वहाँ से लौटने लगे, त्योंही उन्हें चारों ओर से आर्त मनुष्यों की दीनवाणी सुनाई दी।

'धर्मनन्दन ! हे राजर्षि ! हे पवित्र पाण्डव युधिष्ठिर ! आप हम लोगों पर कृपा करने के लिये दो घड़ी यहीं और ठहर जाइये। आप पुण्यात्मा महापुरुष के आते ही यहाँ परम पवित्र हवा चलने लगी है। इससे हम लोगों को बड़ा सुख मिल रहा है। नृपश्रेष्ठ ! आज दीर्घकाल के पश्चात आपका दर्शन पाकर यहाँ की यातनायें हमें कष्ट नहीं दे रही हैं और हम सुख का अनुभव कर रहे हैं।' दीनतापूर्वक वचन कहने वाले उन प्राणियों की पुकार सुन दयालु राजा युधिष्ठिर वहीं खड़े हो गये।

उन्होंने देवदूत से कहा—'इन बेचारों को बड़ा कष्ट हो रहा है। ये लोग कौन हैं और किसलिये यहाँ रहते हैं ?'

देवदूत बोला—'प्रभो ! ये कर्ण, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी और द्रौपदी के पुत्र हैं।'

यह सुन राजा युधिष्ठिर के मन में बड़ा संताप हुआ और वे कहने लगे कि दैव का यह कैसा विधान है। मेरे इन स्वजनों ने कौन-सा ऐसा पाप किया था कि जिसके प्रभाव से वे इस दुर्गंधपूर्ण स्थान में निवास करते हैं। जहाँ तक मुझे विदित है ये सब तो पुण्यात्मा ही थे। दुर्योधन और उनके साथियों ने तो कभी पुण्य कर्म किया भी नहीं था फिर भी वे सम्मानित और लक्ष्मी से सम्पन्न हुए हैं। क्या मैं सोता हूँ या जागता हूँ ? मुझे चेत है या नहीं ? क्या यह मेरे चित्त का विकार है या मन का भ्रम। शोक के आवेश से युक्त हो राजा युधिष्ठिर इस तरह नाना प्रकार से विचार करने लगे और उनकी इंद्रियाँ चिन्ता से व्याकुल हो गयीं।

उन्होंने देवदूत से कहा—'महामते ! आप लौट जाइये। मेरे यहाँ ठहरने से मेरे दुःखी सुहृदों को सुख मिलता है अतः मैं यहीं ठहरूँगा। धर्मराज युधिष्ठिर को उस स्थान पर खड़े हुए दो ही घड़ी बीतने पायी थीं कि इन्द्र, धर्म आदि मुख्य देवता वहाँ उपस्थित हुए। उनके आते ही वहाँ का सारा अंधकार दूर हो पापयातना गृह भी अदृश्य हो गया।

तदनन्तर देवराज इन्द्र ने युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हुए कहा—'धर्मराज युधिष्ठिर ! तुम्हें अक्षय लोक प्राप्त हुए हैं। अब आपको अधिक कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तुम्हें बहुत बड़ी सिद्धि मिली है। तुम्हें जो नरक देखना पड़ा है इसके लिये क्रोध न करो। समस्त राजाओं को नरक निश्चय ही देखना पड़ता है। तात ! मनुष्य के जीवन में शुभ और अशुभ कर्मों की दो राशियाँ संचित होती ही हैं। जो पहले शुभ कर्मों का फल भोगता है, उसे पीछे नरक में अवश्य जाना

पड़ता है; परन्तु जो पहले नरक का कष्ट भोग लेता है वह पीछे स्वर्ग में जाता है। जिसके पाप-कर्म अधिक हैं वह पहले स्वर्गों के सुख भोग लेता है। नरेश्वर! मैंने तुम्हारे कल्याण की इच्छा से तुम्हें पहले ही नरक का दर्शन कराने के लिये वहाँ भेज दिया था। राजन्! तुमने युद्धक्षेत्र में छल से द्रोणाचार्य को उनके पुत्र की मृत्यु का विश्वास दिलाया था इसलिये मैंने भी तुम्हें छल से ही नरक का दृश्य दिखलाया है। जैसे तुम वहाँ लाये गये थे, उसी प्रकार भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी—ये सभी छल से नरक के निकट लाये गये थे। पुरुष-सिंह! अब वे सभी पापों से मुक्त हो गये हैं। जो तुम्हारे पक्ष के राजा युद्ध में मारे गये हैं वे सभी स्वर्ग में पहुँच गये हैं। तुम जिनके लिये सदा संतप्त रहते हो, उन सम्पूर्ण शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ दानवीर कर्ण को भी परम सिद्धि मिली है। तुम उनके लिये शोक त्याग दो। तुम्हारे भाइयों को भी अपने-अपने योग्य स्थान प्राप्त हुआ है। उन सबकी सद्‌गति के विषय में अब तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। कुरुनन्दन! पहले तुमने कष्ट का अनुभव कर लिया, अब से तुम मेरे साथ रहकर रोग-शोक से रहित हो स्वच्छन्द विहार करो और अपने किये हुए पुण्य-कर्मों, तपस्या और दान का फल भोगो। पुण्य सलिला आकाश गंगा और मंदाकिनी के पवित्र जल में स्नान करने से तुम्हें शोक, संताप और वैरभाव से छुटकारा मिल जायेगा। तुम्हारे भाई और साध्वी द्रौपदी को तुमने मेरी माया द्वारा नरक में कष्ट भोगते देखा है, किन्तु वे नरक में रहने के योग्य नहीं हैं।'

देवराज के कहने पर राजा युधिष्ठिर ने परम पावन देव नदी गंगाजी में स्नान किया और अपने मानव शरीर को वहीं त्याग दिया। तदनन्तर राजा युधिष्ठिर उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ कुरुश्रेष्ठ भीम और अर्जुन थे। उन्होंने देखा कि भगवान श्रीकृष्ण अपने ब्रह्म-विग्रह से सम्पन्न हैं। तेजस्वी वीर अर्जुन उनकी आराधना में लगे हुए हैं। उन दोनों ने युधि-

ष्ठिर को उपस्थित देखकर उनका यथावत सम्मान किया। इसके बाद उनकी दृष्टि श्रेष्ठ कर्ण पर पड़ी जो बारह आदित्यों के साथ विराजमान थे। कुरुनन्दन युधिष्ठिर ने नकुल और सहदेव को अश्विनी कुमारों के साथ बैठे देखा। तदनन्तर उन्होंने कमलों की माला से अलंकृत साध्वी द्रौपदी को देखा जो अपने तेज से स्वर्ग को प्रकाशित कर रही थी।

देवराज इन्द्र ने कहा---'राजन्! जो यह पवित्र गंधवाली मालाओं से सुशोभित देवी दिखाई दे रही है वह साक्षात भगवती लक्ष्मी है। ये ही अयोनि सम्भूता द्रौपदी के रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई थी। देखो, महाधनुर्धर वीर अभिमन्यु चन्द्रमा के साथ विराजमान हैं और शान्तनुनन्दन राजा भीष्म बसुओं के साथ। इसी प्रकार द्रोणाचार्य वृहस्पति के साथ बैठे हैं। तुम्हारे पक्ष के भूपाल गंधर्वों, यक्षों और पुण्यजनों के साथ हैं। ये सब अपने कर्मों का फल भोगने यहाँ आये हैं।

'भरतनन्दन! यह सारा परिचय मैंने तुम्हें सुनाया है। जो तुम्हारा पवित्र चरित्र सुनेगा और कार्यों का अनुसरण करेगा, उसको उत्तम गति मिलेगी। भगवान की आराधना और उत्तम आचरण करने वालों को नरक में नहीं जाना पड़ता और उसे प्रभुधाम प्राप्त हो जाता है। इसलिए मानव देह जो सब प्राणियों में श्रेष्ठ है उसे पाकर शुभ कर्म ही करने चाहिये।'

अब भगवान श्रीकृष्ण को बार-बार प्रणाम कर इस कथा-रूपी अमृत को मैं समाप्त करता हूँ। आशा है, इसको पढ़कर पाठक लाभ उठायेंगे और मेरी त्रुटियों पर ध्यान नहीं देंगे।

०००

'मण्डल' द्वारा प्रकाशित

नीति-अध्यात्म-साहित्य



- भगवद्गीता
- भजगोविन्दम् स्तोत्र
- अनासक्ति योग
- विष्णु-सहस्रनाम
- उपनिषदों का बोध
- उपनिषद
- वेदान्त
- भागवत कथा
- रामकृष्ण उपनिषद
- महाभारत कथा
- दशरथनन्दन श्रीराम
- रामायण के पात्र (२ भाग)
- रामकीर्ति
- महाभारत के पात्र (११भाग)
- कृष्ण-कथा
- श्रीमद्भागवत के पंचगीत
- महाभारत-सार

